जैन पूजा-काव्य : एक चिन्तन

डॉ. दयाचन्द्र जैन, साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ

प्राक्कथन

विश्व में सदैव लोक-कल्याण के लिए एक धर्म, एक दर्शन एवं एक संस्कृति की आवश्यकता रहती है। "आवश्यकता आविष्कारों की जननी है" इस नीति के अनुसार विश्व में अहिंसाधर्म, अनेकान्तदर्शन एवं अहिंसात्मक संस्कृति का उदय हुआ। कर्मयुग के प्रारंभ में मानव की जीवन यात्रा के लिए ऋषभदेव ने सर्वप्रथम असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और व्यापार का उपदेश दिया।

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः, शशास कृष्यादिसु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयः, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः॥

दैनिक कर्तव्य

उपर्युक्त के अतिरिक्त ऋषभादि तीर्थंकरों ने लोक कल्याण, एवं जीवन की पवित्रता के लिए प्रतिदिन छह करणीय कर्तव्यों का आदेश दिया है। वे इस प्रकार हैं--(1) देव पूजा, (2) गुरु की भक्ति, (3) हितकर ग्रन्थों का स्वाध्याय, (4) संयम एवं नियम का आचरण, (5) दूषित इच्छाओं को निकालकर अच्छे कार्य करना, चित्त का वशीकरण, (6) स्व-पर कल्याण हेतु दान करना।

आचार्य पद्मनन्दी ने इन 6 कर्मों का समर्थन किया है—

देवपूजा गुरुपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने॥[1]

दैनिक कर्तव्यों में पूजा : प्रथम

उक्त छह कर्तव्यों में देवपूजा, सबसे प्रथम कर्तव्य कहा गया है, कारण कि परमात्मा का पूजन (गुणों का स्मरण) करने से मानव के हृदय, वचन एवं शरीर की शुद्धि होती है। इन तीन योगों की शुद्धि होने से सम्पूर्ण मानव-जीवन पवित्र हो जाता है। व्यक्तिगत जीवन पवित्र होने से सामाजिक जीवन एवं पारिवारिक जीवन पवित्र हो जाता है, इसी कारण से राष्ट्रीय जीवन भी नियम से पवित्र हो जाता है।

---

1. पद्मनन्दी पंचविंशतिका : आ. पद्मनन्दी : सं. जवाहरलाल शास्त्री, भीण्डर, श्लोक 403 : पृ.191.

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा के गुणों का अर्चन आत्मशुद्धि, पारिवारिक शुद्धि, सामाजिक शुद्धि, राष्ट्रशुद्धि और लोकशुद्धि का कारण है।

पूजा के पर्यायवाची शब्द

मंगल, पूजा, पूजन, नमस्या, सपर्या, अर्चा, अर्चन, अर्हणा, अर्हण, उपासना, भक्ति, कीर्तन, स्तुति, स्तोत्र, स्तव, नुति, भजन, यजन, वन्दना, नमस्कृति, नमस्कार, कृतिकर्म, चितिकर्म, विनयकर्म, अतिथिसंविभाग व्रत। इन सब पर्यायशब्दों का तात्पर्य एक ही है : परमात्मा, परमेष्ठी अथवा तीर्थंकरों के गुणों का कीर्तन और तदनुकूल आचरण करना।

विभिन्न मतों में पूजा

आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शती ई.) ने मानव के चार कर्तव्य–दान, पूजा, तप एवं शील निरूपित किये हैं।[1] इनमें पूजा द्वितीय स्थान पर है। इन्हीं ने अपने ग्रन्थ रयणसार में भी पूजा को आवश्यक कर्तव्य घोषित किया है।[2]

आ. समन्तभद्र (120-80 ई.) ने भी त्रियोगपूर्वक पूजन को आवश्यक कर्तव्य प्रतिपादित किया है।[3]

इसी प्रकार आचार्य जिनसेन (आठवीं शती), आ. अमितगति[4], सोमप्रभ[5], चामुण्डराय[6], योगीन्दुदेव[7], जटासिंहनन्दी[8], तथा पं. आशाधर ने भी मानव के दैनिक कर्तव्यों में पूजा को प्राथमिक करणीय कार्य विश्लेषित किया है।

भारतीय दर्शन में पूजा तत्त्व

भारतवर्ष में सुदूर प्राचीन काल से तत्त्व-चिन्तन की समृद्ध परम्परा दार्शनिक विचारों के रूप में पल्लवित और पुष्पित होती आ रही है। यहाँ प्रचलित वैदिक और अवैदिक अथवा ब्राह्मण और श्रमण प्रायः सभी दार्शनिक धाराओं में पूजा/उपासना

---

1. अष्टपाहुड : संस्कृत टीका, सम्पा. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र. दि. जैन संस्थान, महावीर जी, 1968, पृ. 100
2. रयणसार, प्र. जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, महावीर जी, 1962, पृ. 8.
3. स्तुतिविद्या, प्र. वीर सेवा मन्दिर देहली, 1950, पद्य 114.
4. अमितगति श्रावकाचार, (श्रावकाचार संग्रह, जिल्द एक में संगृहीत), 1976, पृ. 336.
5. सूक्ति मुक्तावली, सं. नाथूराम प्रेमी, (बनारसी विलास के साथ प्रकाशित). प्र. जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्या. बम्बई, 2432 वी. नि., पृ. 258.
6. चारित्रसार, (श्रावकाचार संग्रह, जिल्द-एक में संगृहीत), पृ. 258.
7. परमात्म प्रकाश, सं. डॉ. ए.एन. उपाध्ये, प्र. रामचन्द्र ग्रन्थमाला अगास, 1973 ई. पृ. 280.
8. वरांगचरित, सं. खुशालचन्द्र गोरावाला, प्र. जैन संघ चौरासी मथुरा, 1953 ई. पृ. 204.

तत्त्व की स्वीकृति, प्रतिष्ठा और मान्यता है। यह अलग विषय है कि कोई निर्गुण उपासना को मानता है, तो कोई सगुण उपासना पद्धति को। कोई मूर्ति के माध्यम से भगवत्पूजन करता है तो कोई बिना मूर्ति के ही। कोई मन से, कोई वचन से और कोई शारीरिक क्रियाओं से पूजा/उपासना करता है। कोई द्रव्य से पूजा करता है तो कोई दूसरा भाव-पूजा अंगीकार करता है। कोई सिद्धान्त की ही पूजा करता है तो अन्य मानवता का अर्चन करता है। निष्कर्ष यही है कि—पूजा या उपासना की मान्यता वैदिक और अवैदिक या ब्राह्मण और श्रमण—सभी दर्शनों में समान भाव से उपलब्ध होती है।

वेदों में उपासना/भक्ति/पूजा तत्त्व

विश्व के लिखित प्राचीनतम वाङ्मय में 'ऋग्वेद' सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। वेदों की संख्या चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इन सभी में पूजा/उपासना तत्त्व विद्यमान है।

'श्रमण' दर्शनों के प्राचीनतम ग्रन्थों, षट्‌खण्डागम, आचारांगसूत्र, सम्राट् खारवेल आदि के शिलालेखों और सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्म पिटक में भी पूजा, भक्ति, उपासना के प्रेरक प्रसंग अनेकशः उपलब्ध हैं।

सांख्य दर्शन में दो तत्त्व प्रमुख हैं—(1) पुरुष (आत्मा), (2) प्रकृति। आत्मा स्वभावतः निर्विकार है, उसमें सत्त्व, रजोगुण, तमोगुण नहीं हैं। प्रकृति के विकार रूप बुद्धि आदि 25 तत्त्व उत्पन्न होते हैं। जिनमें इस विश्व की रचना होती है। प्रकृति के संसर्ग से आत्मा में विकार होता है। जब आत्मा में विवेक (भेद विज्ञान) होता है, तब आत्मा विशुद्ध हो जाता है। इस दर्शन में ईश्वर की मान्यता नहीं है किन्तु आत्मा ही ईश्वर माना गया है। आत्मा विवेक रूप पुरुषार्थ से प्रकृति से भिन्न शुद्ध हो जाता है। विवेक रूप उपासना (भक्ति) से ही आत्मा शुद्ध परमात्मा हो जाता है यही आत्मा की मुक्ति है। शुद्ध आत्मस्वरूप का ध्यान करना ही इस दर्शन के अनुसार उपासना (पूजा) है।

न्यायदर्शन में चार प्रमाणों के द्वारा 16 तत्त्वों की सिद्धि की गयी है। अतः यह कहा गया है कि तत्त्वज्ञान से दुःखों का अत्यन्त क्षय होता है। विश्व के जीवात्मा, शिव परमात्मा की उपासना करके शुद्ध होते हुए परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।

वैशेषिक दर्शन में मूलतः 7 पदार्थ माने गये हैं। उन पदार्थों के तत्त्व ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। तत्त्वज्ञानपूर्वक शिव ईश्वर की भक्ति करने से मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। इस कारण इस दर्शन में उपासना या भक्ति सिद्ध होती है।

मीमांसादर्शन की दो परम्पराएँ हैं—(1) ब्रह्मवादी, (2) कर्मवादी। ब्रह्मवादी सम्प्रदाय एक ही परब्रह्म (ब्रह्माद्वैत) की उपासना करता है और संसारी आत्मा का परब्रह्म की आत्मा में विलीन होने को मुक्ति मान्य करता है।

द्वितीय-कर्मवादी सम्प्रदाय सत्क्रिया, सदाचार, यज्ञ आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना करके मुक्ति या स्वर्ग की उपलब्धि मानता है।

बौद्ध दर्शन का मुख्य सिद्धान्त है कि आत्मशुद्धि (मैं आत्मा हूँ यह बुद्धि) से दुख होता है तथा जन्म-मरण की परम्परा बढ़ती है। सत्यज्ञान यही है कि मैं न आत्मा हूँ, न भूत हूँ और न कोई तत्त्वरूप हूँ। किन्तु चित्त की वृत्तियों (विचारों) का प्रवाह चलता रहता है। संसारी प्राणी इन चित्तवृत्तियों को आत्मा मान लेते हैं। वे अभौतिक अनात्मवादी कहलाते हैं।

बौद्धदर्शन में चार आर्यसत्य स्वीकार किये गये हैं—दुःख, दुःखहेतु, दुःखनिरोध, दुःखनिरोधहेतु (दुःखनिरोधगामीमार्ग)। इनमें से दुःखनिरोधगामी मार्ग आठ प्रकार का होता है—सम्यक्‌दृष्टि, संकल्प, वचन, कर्म, जीविका, प्रयत्न, स्मृति, समाधि (उपासना या ध्यान)। इनमें दुःखनिरोध के कारणभूत समाधि या उपासना को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है।

चार्वाक दर्शन केवल इन्द्रियप्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध तत्त्व को मानता है। इस दर्शन की मान्यता है कि लोक में चार तत्त्व हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु। इन ही चार तत्त्वों का यथायोग्य सम्मिश्रण होने पर उस पिण्ड में (शरीर में) एक चेतना शक्ति उत्पन्न होती है, इस ही को आत्मा कहते हैं। जब इन चार तत्त्वों का सम्मिश्रण समाप्त हो जाता है तब उसको मरण कहते हैं। इसको छोड़कर आत्मा कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है।

इस दर्शन की मान्यता यह भी है कि भौतिक भोग-उपभोग पदार्थों की सेवा से आत्मा सुखी तथा उनके सेवन के बिना आत्मा दुखी होता है। अतः आत्मा को बड़े प्रयत्न से सुखी बनाना चाहिए। इस दर्शन के अनुसार आत्मा की भौतिक सेवा ही उपासना कही जा सकती है। वस्तुतः इसमें ईश्वर की सत्ता नहीं है।

फल-प्राप्ति की इच्छा न रखकर ईश्वर की उपासना (सेवा), कर्तव्य का पालन और परोपकार करना निष्काम कर्मयोग है। यह भक्ति योग तथा ज्ञानयोग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि श्रद्धा की अपेक्षा भक्तियोग उपयोगी है और ज्ञानयोग उससे भी अधिक उपयोगी है तथापि 'निष्काम कर्मयोग' मध्यममार्ग है जो भक्तियोग और ज्ञानयोग दोनों में निष्काम कर्म की शिक्षा प्रदान करता है। इस योग में परमेश्वर की उपासना पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इन्द्रियों के विषयों में व्यापारयुक्त चित्तवृत्तियों के निरोध करने को योग कहते हैं। योग की प्रधानता होने से इस दर्शन को योगदर्शन कहते हैं। इसके प्रणेता पतंजलि ऋषि कहे जाते हैं। जब पूर्णरूप से योग का निरोध हो जाता है तब शुद्ध चैतन्य के साथ कैवल्य अवस्था प्राप्त हो जाती है। योग के साधनभूत अंग आठ होते हैं—

यम (पाँच पापों का त्याग), नियम, (सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-भक्ति

आदि), आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार (विषयभोगों का त्याग), धारणा, ध्यान, समाधि। इन आठ अंगों में ईश्वर-भक्ति, ध्यान तथा समाधि—ये उपासना के ही नामान्तर हैं। कारण कि बिना उपासना के योग की साधना सम्भव नहीं है।

वेदान्त का अर्थ है जिस तत्त्व की साधना में वेद (ज्ञान) का अन्त (चरमसीमा) प्राप्त हो। उपनिषद् का अर्थ होता है—उप (आत्मा के समीप) निषद् (स्थित होना) अर्थात् आत्मा में लीन होना। इस वेदान्त को उत्तरमीमांसा भी कहते हैं।

वेदान्त की मान्यता मुख्यतया दो धाराओं में प्रचलित है—(1) विशिष्टाद्वैत के रूप में, (2) निर्विशेषाद्वैत के रूप में।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में 3 तत्त्व माने गये हैं—(1) चित् (जीव), (2) अचित् (अचेतन, अजीव), (3) ईश्वर की उपासना।

निर्विशेषाद्वैत सिद्धान्त में एक ही परब्रह्म तत्त्व मान्यता को प्राप्त है। इस ब्रह्मतत्त्व के चार पाद होते हैं—(1) जागृत (भक्ति में व्याप्त), (2) सुषुप्ति (ज्ञानमय उपयोग तथा बाह्य पदार्थों से निवृत्ति), (3) अन्तःप्रज्ञ (जीवन्मुक्त), (4) तुरीयपाद-परब्रह्म। इस दर्शन में भी परब्रह्म की भक्ति का महत्त्व है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे॥[1]

जगत् के मानव इन अवतारों की निर्गुणभक्ति और सगुणभक्ति करके अपना कल्याण करते हैं। कोई मानव मूर्ति के माध्यम से पूजा करते हैं और कोई मूर्ति के बिना भी अर्चा करते हैं। कोई जल, चन्दन आदि द्रव्यों से देव की अर्चा करते हैं और कोई बिना द्रव्य के परमेश्वर तथा अवतारों की भाव अर्चा करते हैं।

ज्ञानाद्वैतदर्शन में उपासना का स्थान

ज्ञानाद्वैतदर्शन में विश्व के अन्तर्गत एक ज्ञान ही तत्त्व माना गया है। यह दर्शन ज्ञान के द्वारा ही विश्व का कल्याण मानता है। यह सम्पूर्ण विश्व ज्ञानमय है। उत्कृष्टज्ञान की प्राप्ति ही मोक्ष है अतः ज्ञान की उपासना (पूजा) ही श्रेष्ठ कर्तव्य मान्य है।

ब्रह्माद्वैतदर्शन में उपासना का महत्त्व

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता : भाष्यकार—बालगंगाधर तिलक : प्र.रा.ब. तिलक गायकवाडा, पूना, सन् 1926 : पृ. 76.

ब्रह्माद्वैत दर्शन में एक ही परब्रह्ममय सम्पूर्ण जगत् माना गया है, प्रकृष्ट परब्रह्म से ही विश्व का कल्याण होता है, इसी में विलीन हो जाना ही मुक्ति। इसलिए इस दर्शन में परब्रह्म की ही उपासना करना एक कर्त्तव्य माना गया है।

शब्दाद्वैत दर्शन में एक शब्द तत्त्व से व्याप्त सम्पूर्ण जगत् माना गया है। जितने पदार्थ दृश्यमान हैं वे सब शब्द की ही पर्याय हैं, शब्द से ही आत्मा का कल्याण होता है, शब्द में विलीन हो जाना ही मुक्ति है। अतः शब्द की उपासना-भक्ति करना ही प्रधान कर्त्तव्य है।

भारत में या विश्व में जितने भी अद्वैतदर्शन प्रचलित थे या हो रहे हैं उन सबमें अपने अपने इष्टदेव अथवा इष्ट सिद्धान्त की उपासना का विधान है।

आधुनिक सम्प्रदायों में उपासना का महत्त्व

इस सम्प्रदाय में ईश्वर-भक्ति के आधार पर ही श्रद्धा, आचार और लोक व्यवहार माना गया है। ईश्वर भक्ति से ही आत्मकल्याण और जगत्कल्याण होता है। ईश्वर में विलीन हो जाना ही मुक्ति मानी गयी है। इसमें अनेक उपसम्प्रदाय हैं जैसे रामभक्त, कृष्णभक्त, सनातन हिन्दू, याज्ञिक आदि। इस सम्प्रदाय में ईश्वर में और ईश्वर-अवतार के प्रति भक्ति की मान्यता विशिष्ट है।

शैव सम्प्रदाय में शिव-पार्वती की स्मृति में एक कुण्ड में स्थित शिवलिंग की पूजा को 'अखण्ड ब्रह्मपिण्ड' कहते हैं, शिव-पार्वती की जल, चन्दन, पुष्प, पत्र, फल, नैवेद्य, दीप आदि द्रव्यों से पूजा करके तथा विविध यज्ञों के द्वारा उपासना के माध्यम से स्वर्ग, मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं, तदनुकूल आचरण एवं व्यवहार और पर्वों की मान्यता प्रायः वैष्णवों के समान करते हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त पारस्परिक प्रेम-प्रीतिपूर्ण भक्ति को प्रमुख मानकर राधा-कृष्ण को ईश्वर के रूप में मानते हैं, जल आदि द्रव्यों से पूजा करते हैं, विश्व का कर्ता, धर्ता, हर्ता मान्य करते हैं। राधाकृष्ण की मूर्तिस्थापित कर पूजा करते हैं।

सीताराम सम्प्रदाय के भक्त जन रामचन्द्र एवं सीता को जगत् का कर्ता, धर्ता, हर्ता, ईश्वर मानते हैं, जल, पुष्प आदि द्रव्यों से पूजा करते हैं, सीता-राम की मूर्ति स्थापित कर उपासना करते हैं, तदनुकूल आचरण व्यवहार और पर्वों की मान्यता करते हैं।

कबीरपन्थी सम्प्रदाय में आध्यात्मिक तत्त्व की मुख्यता है। इस सम्प्रदाय के मानव मूर्ति के बिना तथा जल चन्दन आदि द्रव्यों के बिना ईश्वर की निर्गुण रूप से भक्ति-पूजा करते हैं। ईश्वर का ध्यान, ग्रन्थों का अध्ययन, धार्मिक लेखन, नैतिक आचरण आदि के द्वारा मन तथा वचन को पवित्र रखना इसका लक्ष्य है।

सराक शब्द श्रावक का अपभ्रंश है। ये प्राचीन काल से ही जैनधर्म के

अनुयायी रहे हैं। परन्तु संगति, वातावरण अनुकूल न होने, धार्मिक उपदेश की उपलब्धि न होने से जीवन में संस्कार-हीनता आ गयी है। इस समाज में पार्श्वनाथ तीर्थ की उपासना करना, रात्रि में भोजन नहीं करना, वस्त्र से जल को छानकर पीना आदि संस्कार अब भी उपलब्ध होते हैं।

जो शक्ति की उपासना करते हैं उन्हें शाक्त कहते हैं। ये विविध देवी-देवाताओं तथा देवी माताओं की शक्ति रूप में उपासना करते हैं। मूर्ति की स्थापना कर जल, पुष्प, चन्दन आदि द्रव्यों से पूजा करते हैं। धार्मिक पर्वों पर विशेष पूजा करते हैं। इनके आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज वैष्णवों के समान होते हैं।

सिक्ख सम्प्रदाय के अनुयायी मुख्यतया गुरु के उपासक होते हैं। गुरुजन के उपदेश से वे एक ब्रह्म की उपासना, बिना मूर्ति और बिना द्रव्य के निर्गुण भक्ति के साथ करते हैं। ये गुरुजन इस पन्थ के उपासकों को विनय, दया, दान, सेवा तथा परब्रह्म की भक्ति करने का उपदेश देते हैं। तदनुसार वे कर्तव्यों का पालन दृढ़ता के साथ करते हैं। वर्तमान में नव गुरुवर न मिलने के कारण तथा अन्तिम नवम गुरुवर के इस उपदेश के कारण—"कि अब गुरुवर का मिलना कठिन है अतएव पूज्यग्रन्थ को ही गुरु समझो।" इसलिए इस सम्प्रदाय में पूज्य ग्रन्थ की ही पूजा गुरुवर के समान होती है। उपद्रवियों के अत्याचार, अन्याय एवं अपमान को सहन न करना और उनका संहार करना—यह भी उनका मुख्य उपदेश है। इनके ग्रन्थ साहब में दया, सेवा, विनय तथा अद्वैत ईश्वर की उपासना करने का अनिवार्य उपदेश है।

ईसाई ईशु महापुरुष को, ईश्वर का भेजा हुआ पैगम्बर मानते हैं और उसके उपदेश के अनुसार दुखियों एवं असहायों की सेवा करने को अपना परम कर्तव्य एवं धर्म समझते हैं। उनके वर्तमान आचार एवं व्यवहार से ज्ञात होता है कि सत्य बोलना, दगाबाजी न करना इनका धार्मिक गुण है, किन्तु दया का व्यवहार मनुष्यों तक ही सीमित है। कारण कि इस सम्प्रदाय में मांस-भक्षण की तथा शिकार करने की प्रवृत्ति प्रायः देखी जाती है। इनके सिद्धान्त में भी सृष्टि के पूर्व भूमि का जलमय होना, सृष्टि कर्तृत्व, आकृति तथा संख्या को ही मूलतत्त्व की मान्यता, विश्व की स्थिरता आदि की मान्यता है। मूर्ति तथा जल, पुष्प आदि द्रव्यों के बिना ही ईश्वर की निर्गुण उपासना करना इस सिद्धान्त का ध्येय है।

इस्लाम का अर्थ शान्ति है। किसी देश या समाज के अशान्त वातावरण में मुहम्मद साहब ने शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न किये थे, इस कारण वहाँ की प्रजा द्वारा वे मुहम्मद साहब, अल्लाह के द्वारा भेजे हुए पैगम्बर के रूप में माने जाने लगे। इनके मौलिक ग्रन्थ कुरान शरीफ में अहिंसा का उपदेश है। मांस-भक्षियों को मांस त्याग का उपदेश दिया गया है। मूल सिद्धान्त को भूल जाने से ही इस सम्प्रदाय में लोलुपतावश प्रायः मांस-भक्षण की प्रवृत्ति चल पड़ी है। मौलिक उपदेश तो यही

है कि किसी जीव को मत सताओ, इसका आचारण भी करते हैं, जब हज्ज (तीर्थयात्रा) को जाते हैं तब जूँ तक भी नहीं मारते, चोरी नहीं करते, देखकर चलते हैं। इस धर्म के सिद्धान्त इस प्रकार हैं—एक अद्वैत निर्गुण ईश्वर अल्लाह ही परम ध्यान करने योग्य है, अल्लाह केवल जगत् का कर्ता-धर्ता है। साकार ईश्वर भी राजा के समान महान् होता है। वह दूत के समान सब का हितकारक है। इस सम्प्रदाय में भी मूर्ति के बिना तथा जल, पुष्प आदि वस्तुओं के बिना निर्गुण ईश्वर की उपासना एकान्त में होती है, यही ईश्वर-पूजा का भावपक्ष है।

पारसी सम्प्रदाय के अनुयायी अग्निदेव के उपासक होते हैं। यह अग्नि ब्रह्मतेज का प्रतीक है। पारसी शब्द का शुद्ध रूप संस्कृत में पार्श्वी होता है, जिसका तात्पर्य होता है—पार्श्व अर्थात् समीपस्थ होकर परमात्मा की उपासना (भक्ति) करनेवाले को पार्श्वी (पारसी) कहते हैं। इस सम्प्रदाय के

थियोसोफी मत हिन्दूधर्म के अन्तर्गत मान्य है। इसका सिद्धान्त है कि इस जगत में एक अतिविशाल जड़ द्रव्य है जो बहुत उष्ण है। उसका करोड़ों मील का विस्तार है, वह मेघ के समान शक्तियों का समूह है। वह द्रव्य घूमते-घूमते सूर्य का मण्डल बन जाता है। उसी से हाइड्रोजन वायु, लोहा आदि पदार्थ बन जाते हैं। कुछ द्रव्यों के संयोग से जीवनशक्ति (आत्मा) प्रकट हो जाती है। इसी से क्रमशः वनस्पति, पशु, पक्षी तथा मनुष्य बन जाते हैं। सूर्य की भक्ति से ज्ञान प्राप्त करके वह मानव अन्त में मुक्त हो जाता है।

आर्यसमाज सम्प्रदाय के जन्मदाता ऋषि दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसकी मान्यता है कि परमात्मा, जीव और प्रकृति—ये तीन पदार्थ अनादिकाल से विद्यमान हैं। मुक्ति में जीव विद्यमान रहता है। परब्रह्म की उपासना कर विश्वव्यापी ब्रह्म में वह मुक्त जीव बिना रुकावट के विज्ञान एवं आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है। (सत्यार्थ प्रकाश-समुल्लास 9, पृ. 252)

सोलहवीं शती में बुन्देलखण्ड के अंचल में 'तारणतरणस्वामी' नामक एक महान् सन्त ने जन्म लिया। समय की परिस्थिति वश उन्होंने शिष्यों को अध्यात्मवाद को विशेष दृष्टि में रखकर उपदेश दिया। उन सन्त ने स्वरचित 'पण्डित पूजा' पुस्तक में पण्डित और देवपूजा का स्वरूप कहा है—

ओं नमः विन्दते योगी, सिद्धं भवत शाश्वतम्।
पण्डितो सोपि जानन्ते, देवपूजा विधीयते॥ (पण्डितपूजा-श्लोक-1)

तात्पर्य—जो पंचपरमेष्ठी के गुणों का आत्मा में अनुभव और निरन्तर उन्हीं को स्मरण करते हैं, वे अपने शाश्वत सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं। उन्हीं को पण्डित

1. विस्तार के लिए देखिए—भागवत धर्म (सहजानन्द डायरी सन् 1959) - लेखक- सहजानन्द महाराज : प्र. सहजानन्द शास्त्रमाला, सन् 1971, पृ. 29-69

और योगी कहते हैं। परमेष्ठी देवों के गुणों का अथवा आत्मा के शुद्धस्वरूप का स्मरण करना ही सच्ची देवपूजा है।

इस सम्प्रदाय में मूर्ति तथा द्रव्यों के माध्यम से पूजा नहीं की जाती, किन्तु वेदी में शास्त्र को स्थापित कर आरती द्रव्य से पूजा करते हैं, नृत्य करते हैं, जयकार की ध्वनि करते हैं, प्रणाम करते हैं।

कतिपय वर्ष पूर्व कहानजी सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी। निश्चय नय प्रधान इस पन्थ में आत्मा एवं परमात्मा के गुणों का स्मरण करना पूजा कहा गया है। मूर्ति एवं द्रव्यों के माध्यम से भी पूजा की जाती है। इसमें आरती, नृत्य आदि क्रियाओं को स्थान नहीं है। ज्ञान की आराधना मुख्यतया होती है। शुद्ध आत्मा की उपासना के लिए देव, शास्त्र, गुरु की पूजा को मान्य किया जाता है। इस मान्यता में पुण्यकार्य को हेय तथा शुद्धात्मा को उपादेय एकान्त रूप से ग्राह्य है।

इस प्रकार भारतीय प्राचीन दर्शन, धर्म, संस्कृति और आधुनिक सम्प्रदाय, ईश्वर सम्बन्धी तथा सिद्धान्त विषयक उपासना या भक्ति का समर्थन, श्रद्धा और मान्यता करते हैं। इस कारण से हमारे मन में यह प्रेरणात्मक विचार उत्पन्न हुआ कि 'जैन पूजा-काव्य' इस विषय पर शोध प्रबन्ध लिखना चाहिए। तदनुसार 'जैन पूजा-काव्य' पर शोध प्रबन्ध का प्रणयन किया।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की आवश्यकता

इस विषय पर अभी तक किसी भी विद्वान् ने शोध कार्य नहीं किया है और न लेखमाला का सृजन किया है। इसलिए हमने निर्देशक महोदय के परामर्श से 'जैन पूजा-काव्य' पर शोधकार्य करना स्वकीय परमकर्तव्य समझा है और उत्साह के साथ इस पवित्र कार्य को पूर्ण करके विषय का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के रूप में है।

भारत राष्ट्र के बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों के प्रमुख नगरों में तथा ग्रामों में श्री सिद्धचक्रविधान, त्रिलोकमण्डलविधान, इन्द्रध्वजविधान, कल्पद्रुमविधान, नन्दीश्वरविधान, तेरह द्वीपमण्डलविधान आदि विधान (विशेष पूजा) प्रतिवर्ष शुभमुहूर्त में सम्पन्न होते रहते हैं जो बृहत् स्तर पर सामूहिक रूप से समारोहपूर्वक सम्पन्न होते रहते हैं। इस अवसर पर हजारों नर-नारियों का समूह एकत्रित होता है। मन्दिर के बाहर/निकट खुले क्षेत्र में पाण्डाल बनाया जाता है। जिसमें इन्द्राणी के साथ इन्द्र विशेष अभिषेक पूजा-विधान करते हैं। शास्त्र-प्रवचन होते हैं, आमसभाओं में विद्वानों एवं राष्ट्रीय नेताओं के भाषणों से जनता सम्बोधित होती है। आरती, नृत्य, गान संगीत के साथ होते हैं। प्रबुद्ध चिन्तकों के साथ-साथ राजनेता, विधायक, सांसद, मन्त्री आदि आमन्त्रित किये जाते हैं, उनके स्वागत–तिलककरण के साथ देशहितकारी भाषण

होते हैं जिससे मानव-समाज प्रभावित होता है, तथा समाज कल्याण के साथ देश में शान्ति का वातावरण उपस्थित होता है। भजनोपदेश एवं कीर्तनों के द्वारा समाज का मनोरंजन होता है। एकांकी अभिनय, नाटक एवं तीर्थ-यात्रा की तथा समाज कल्याण की फ़िल्मों द्वारा समाज को शिक्षा दी जाती है। कवि-सम्मेलनों के माध्यम से देश में नवजागरण किया जाता है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तों के विविध नगरों में श्री जिनबिम्ब पंच कल्याण प्रतिष्ठा गजरथ परिक्रमा महोत्सव, मानस्तम्भ प्रतिष्ठा महोत्सव, विश्वशान्ति महायज्ञ भी प्रतिवर्ष यथायोग्य होते रहते हैं। इन विशिष्ट समारोहों के शुभावसरों में भी सभी कार्य ऊपर की ही भाँति होते हैं। इन महोत्सवों में सहस्रों मानव उपस्थित होते हैं और अन्तिम गजरथ परिक्रमा के दिन तो एक लक्ष (लाख) से भी अधिक संख्या यात्रियों की हो जाती है। ये पंच-कल्याणक महोत्सव 24 तीर्थंकरों के शास्त्रानुकूल विधि-विधान से सम्पन्न होते हैं, यह भी 'विशेष पूजा' का एक प्रकार है।

इस प्रकार सामूहिक पूजा-विधानों और पंचकल्याणक पूजा-महोत्सवों का विशेष प्रभाव, महत्त्व, देश और समाज का सुधार देखकर हमारे मानस में यह भावना उद्भूत हुई कि 'जैन पूजा-काव्य' पर शोध कार्य करना चाहिए। उसी की निष्पत्ति प्रस्तुत प्रबन्ध है।

नास्तिकता का परिहार करने के ध्येय से भी यह शोध प्रबन्ध लिखा जा रहा है। कारण कि सर्वज्ञ परमात्मा और उनकी अमृतवाणी पर किसी मानव की आस्था दूर न हो जाए, तथा जो परमात्मा की उपासना करते हैं उनकी आस्था अतिदृढ़ हो जाए, इस पवित्र दृष्टि से यह शोध प्रबन्ध लिखा गया है।

शिष्टाचार परम्परा सदैव चलती रहे, उसका कभी विच्छेद न हो जाए इस ध्येय से यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत है अर्थात् शिक्षित सभ्य पुरुष परमात्मा का स्मरण, कीर्तन, प्रणाम, पूजा आदि रूप उपासना सदैव करते/कराते रहें और भारतीय साहित्य के विकास और उन्नति के लिए लेखन की परम्परा का विच्छेद न हो जाए इस पवित्र लक्ष्य से भी यह शोध प्रबन्ध उदित है।

जिन सर्वदर्शी परमात्मा ने विश्व के कल्याण के निमित्त मानवों को सन्मार्ग दर्शाया, अपनी दिव्यवाणी द्वारा सम्बोधित किया, जिनकी कृपा से शासन आदि महान् कार्य नीतिपूर्वक संचालित किये जा रहे हैं, उनके प्रति स्तुति, प्रणति, भक्ति आदि उपासना के द्वारा कृतज्ञता प्रकाशित करना मानवों का कर्तव्य है। नीतिकारों का कथन भी है—'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति' इस पावन लक्ष्य से भी यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।

समीचीन श्रद्धा, ज्ञान, सदाचार, विनय, सत्य, संयम आदि गुणों की प्राप्ति के लिए एवं अज्ञान को दूर कर पूजा-स्तुति, उपासना के ज्ञान को प्राप्त करने के पावन

लक्ष्य से इस शोध प्रबन्ध का अभिलेख किया गया है।

कृतज्ञता प्रकाशन

डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. राधावल्लभ जी त्रिपाठी के हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिनके कार्यकाल में प्रस्तुत विषय पर अनुसन्धान कार्य करने की स्वीकृति संस्कृत-शोधोपाधि समिति ने प्रदान की।

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय दमोह के संस्कृत प्राकृत विभागाध्यक्ष एवं जैन विधाओं के अग्रगण्य मनीषी प्रियवर डॉ. भागचन्द्र जी जैन 'भागेन्दु' ने अत्यन्त आत्मीय भाव से मेरे शोध कार्य का कुशल निर्देशन किया है। उनका एवं उनके सम्पूर्ण परिवार का आत्मीय भाव श्लाघनीय है। अतः उनके प्रति सादर कल्याण कामना करता हूँ।

बाल्यकाल में स्वयं शिक्षा देकर तथा छात्र जीवन में प्रेरणा से विद्याभ्यास में साधक, अध्यात्मवेत्ता, संगीतज्ञ पं. भगवानदास जी भाई जी पूज्यपिता श्री के प्रति हम अतिकृतज्ञ हैं जिनके प्रभाव से यह प्रबन्ध लिखा गया।

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह के सेठ गिरधारीलाल राजाराम जैन पारमार्थिक न्यास, गढ़ाकोटा, श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, डॉ. आर. जी. भाण्डारकर प्राच्य विद्या संस्थान पूना, रमारानी जैन शोध संस्थान मूडबिद्री आदि के सर्वश्री डॉ. भागचन्द्र जी 'भागेन्दु' दमोह, सिंघई जीवेन्द्र कुमार जी सागर, श्री वीरेन्द्र कुमार जी इटोरिया दमोह, श्री सिंघई सन्तोष कुमार जी (बैटरी वाले) सागर आदि के निजी पुस्तक-संग्रहालयों का भरपूर उपयोग किया है। अतएव उक्त सभी संस्थाओं के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं विभिन्न महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अनुसन्धान यज्ञ की पूर्णता में मेरी पुत्री आयुष्मती किरण जैन शास्त्री एम. ए. ने अविस्मरणीय सहयोग किया है। अतः इसे मंगलकामना पूर्वक शुभाशीष प्रदान करता हूँ। इन सबके अतिरिक्त प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से जिन महानुभावों और मित्र वर्ग का सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है उन सभी का सहज भाव से आभार स्वीकार करता हूँ।

अनुसन्धाता द्वारा विहित 'जैन पूजा-काव्य' के अध्ययन-अनुशीलन से समाज, साहित्य, संस्कृति, कला, पुरातत्त्व, दर्शन चिन्तन, विद्वज्जनों, मुमुक्षुओं, धर्म श्रद्धालुओं और अनुसन्धाताओं को यदि किञ्चिदपि 'अल्पादप्यल्पतरम्' लाभ हो सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

अन्त में—इस मंगलवाक्य से अपने प्राक्कथन को विराम देता हूँ कि—

"क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।

दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रसरतु सततं सर्वसौख्य-प्रदायि॥"

विदुषां वशंवदः
दयाचन्द्र जैन, साहित्याचार्य

विजयदशमी
दिनांक : 10/10/89

अनुक्रम

1. जैन पूजा-काव्य का उद्भव और विकास 19
2. जैन पूजा-काव्य के विविध रूप 90
3. संस्कृत और प्राकृत जैन पूजा-काव्यों में छन्द, रस, अलंकार 152
4. हिन्दी जैन पूजा-काव्यों में छन्द, रस, अलंकार 203
5. जैन पूजा-काव्यों में रत्न-त्रय 224
6. जैन पूजा-काव्यों में संस्कार 239
7. जैन पूजा-काव्यों में पर्व 256
8. जैन पूजा-काव्यों में तीर्थक्षेत्र 266
9. जैन पूजा-काव्यों का महत्व 341

परिशिष्ट : एक
संस्कृत जैन पूजा-काव्य (प्रकाशित और अप्रकाशित) 369

परिशिष्ट : दो
हिन्दी जैन पूजा-काव्य (प्रकाशित और अप्रकाशित) 379

परिशिष्ट : तीन
सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची 388

परिशिष्ट : चार
जैन पूजा-काव्यों में उपयुक्त मण्डल 401

प्रथम अध्याय

जैन पूजा-काव्य का उद्भव और विकास

आवश्यकता आविष्कार की जननी

किसी भी मानव को मिथ्याविचार और दुराचरण के साथ सन्देह के झूले में झूलने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसको अपने पुरुषार्थ से आत्मशुद्धि के लिए यथार्थ विश्वास, सत्यार्थज्ञान एवं पवित्र आचरण को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। प्रत्येक मानव को यह हितकारी पुरुषार्थ करने की इस कारण आवश्यकता होती है कि जीवन में इस प्राणी की प्रवृत्ति, अपने पूर्वकृत[1] कर्म-परम्परा के अनुरूप सुख-दुःख विशिष्ट फलानुभव में होती है तथा हित-अहित रूप कार्य में संलग्न होती है।[2]

उसी सुखदुखरूप कर्मफलानुभव को, दशवीं शती के आचार्य अमृतचन्द्र ने स्पष्टतया घोषित किया है :

> परिणममानो नित्यं, ज्ञानविवर्तैरनादिसन्तत्या।
> परिणामानां स्वेषां, स भवति कर्ता च भोक्ता च॥[3]

तात्पर्य—यह संसारी प्राणी, चिरकाल से निरन्तर मोह, राग, द्वेष, मान, माया, लोभ आदि विकारों से लिप्त होता हुआ, अपने पुण्य या पाप रूप परिणामों का स्वयं ही कर्ता है और स्वयं ही उन कर्मों के फलों का भोक्ता है। सारांश यह है कि यह प्राणी अपने शुभ-अशुभ कर्मों का तथा उनके अनुरूप फल भोगने का स्वयं विधाता है।

---

1. 'शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य'
   आचार्य उमास्वामी : तत्त्वार्थसूत्र : अ.-6, सू. 3. सं. पं. मोहनलाल शास्त्री : जबलपुर
2. 'स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
   परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥'
   आ. अमितगतिः सामयिक पाठः पद्य 30, पृ. 30, सं. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' : दमोह : 1984
3. आ. अमृतचन्द्र : पुरुषार्थसिद्ध्युपायः परमश्रुतप्रभावक मण्डल, अगास : 1977 : पद्य 10

जब यह मानव पूर्वजन्मकृत अथवा वर्तमान कृत स्वकीय कर्मों के प्रभाव से हिंसा, तृष्णा, मद, असत्य, राग, मोह, द्वेष आदि विकारभावों को अपनाता है और उनके दुःखप्रद फलों का अनुभव करता है तब यह मानव आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सदाचरण, शक्ति, संयम, परोपकार आदि श्रेष्ठ गुणों को विस्मृत कर देता है और गुणवानों के उपदेश, संगति, विनय, श्रद्धा, सत्य आदि गुणों को भी तिरस्कृत कर देता है। फलतः वह व्यक्ति गुणों को प्राप्त करने के लिए कभी भी परमात्मा की भक्ति, शिक्षित गुणी सन्तों की संगति और अच्छे कर्तव्य के बिना कोई भी मानव अपने ज्ञान आदि गुणों का विकास नहीं कर सकता। नीति भी है—

गुणा गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः, समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥[1]

गुणी सन्तों की संगति से मानव गुणी हो जाता है और स्वकीय गुणों की सुरक्षा करता है तथा व्यसनी, अज्ञानी, हिंसक पुरुषों की संगति या उपासना करने से मानव दोषी दुराचारी बन जाता है, जैसे कि सरिता का जल स्वभाव से मधुर हितकारी होता है परन्तु क्षार जलपूर्ण सागर की संगति से वह मधुर जल भी अपेय हो जाता है।

इसलिए मानव को जीवन में परमात्मा तीर्थंकर की भक्ति और यथार्थ गुरु महात्मा गुणी सन्तों की संगति करना आवश्यक है। इस उपासना से ज्ञान सदाचार आदि गुणों का विकास और दुर्गुणों का निराकरण नियमतः हो जाता है।

नीतिज्ञ विद्वानों का एक महत्त्वपूर्ण श्लोक यह भी जागृति को प्रदान करता है—

हीयते हि मतिस्तात! हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति, विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥[2]

गुणहीन मूर्ख पुरुष की संगति से मनुष्य की बुद्धि घट जाती है। समान पुरुषों की संगति से बुद्धि समान और महापुरुषों अथवा परमात्मा की सन्निधि से मानव की बुद्धि या ज्ञान महान् हो जाता है।

अतएव मानव को महागुणी बनने के लिए पूज्य परमात्मा की भक्ति, आचार्य, उपाध्याय, गुरुजनों की संगति करने की सदैव आवश्यकता होती है, यही आवश्यकता 'जैन पूजा-काव्य' रूप आविष्कार की जननी है।

व्यापार, कृषि, भोजन, शिल्प आदि लौकिक कार्यों से उत्पन्न दोषों या भ्रष्टाचार आदि दुष्कर्मों को दूर करने के लिए मानव को परमात्मा या वीतरागदेव की पूजा, स्तुति तथा गुणकीर्तन आदि कर्तव्यों की आवश्यकता है। यही आवश्यकता

---

1. हितोपदेश मित्रलाभ : सं. विश्वनाथ झा : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1964, पृ. 22.
2. नीतिसंग्रह : सं. गौरीनाथ पाठक : मानव मन्दिर मुद्रणालय, वाराणसी, पृ. 16, 1982.

'जैन पूजा-काव्य' रूप आविष्कार की जननी है।

मानव-जीवन के योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एवं विविध राष्ट्रीय परिस्थितियों को योग्य बनाने के लिए अशान्ति, असत्य, हिंसा, तृष्णा, क्रोध आदि अन्तरंग शत्रुओं का शमन करने के लिए अथवा सुसंस्कृत जीवन के विकास हेतु परमात्मा परमेष्ठी परमदेवों की उपासना, स्तुति, प्रणति आदि करना मानव-मात्र को अति आवश्यक है। यही आवश्यकता 'जैन पूजा-काव्य' रूप आविष्कार की जननी है। जिसका विस्तृत विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत है।

उद्देश्य

लोक में प्रत्येक साध्य का उद्देश्य होना आवश्यक है। उद्देश्य को हृदय में धारण करके ही मानव कार्य करने में उद्यमी होता है, ऐसा लोक में देखा भी जाता है। एवं लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते'।

इसका भाव यह है कि बिना प्रयोजन के मूर्खजन भी किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नहीं करता। जैन पूजा-काव्य एक महान् साध्य है इसलिए इसका उद्देश्य भी महान् है। उद्देश्य को निश्चित करके ही अरिहन्त, सिद्ध, परमात्मा की उपासना करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है।

उद्देश्य सात प्रकार के हैं—निर्विघ्न इष्ट सिद्धि, शिष्टाचार पालन, नास्तिकत्ता परिहार, मानसिक शुद्धि, श्रेयोमार्ग सिद्धि, तद्गुणलब्धि और कृतज्ञताप्रकाशन।

नास्तिकत्वपरीहारः शिष्टाचार-प्रपालनम्।
पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं, शास्त्रादावाप्तसंस्तवात्॥[1]

(1) **निर्विघ्न इष्ट सिद्धि**—अपने तथा दूसरे व्यक्ति के उपकार के लिए यथायोग्य धर्म, अर्थ तथा काम पुरुषार्थ की सिद्धि होना।

(2) **शिष्टाचार पालन**—लोक में शिष्ट एवं शिक्षित मानवों की यह परम्परा है कि वे प्रातः-सायं परमात्मा का दर्शन, पूजन, कीर्तन करते हैं तथा प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में पूज्य इष्ट देव का स्मरण करते हैं और उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

(3) **नास्तिकता परिहार**—जो मानव परमात्मा की दैनिक भक्ति-अर्चा या उपासना करता है उससे यह सिद्ध होता है कि भक्ति करनेवाला पुरुष आत्मा, परमात्मा, लोक, परलोक, स्वर्ग, नरक, शास्त्र, गुरु आदि तत्त्वों पर श्रद्धा रखता है। वह 'नास्तिक' नहीं, प्रत्युत 'आस्तिक' है। सम्यक् दृष्टि पुरुष का आस्तिक्य यह लक्षण भी धर्मग्रन्थों में कहा गया है—

---

1. न्यायदीपिका : सं. डॉ. दरबारी लाल कोठिया, वीरसेवा मन्दिर 21 दरियागंज, देहली : सन् 1968, पृ. 135 (हिन्दी अनुवाद)

आप्ते श्रुते व्रते तत्त्वे चित्तमास्तिक्य संयुतम्।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं युक्तं युक्तिधरेण वा॥[1]

अर्थात् आस्तिक अथवा परीक्षा प्रधानी पुरुष—सर्वज्ञ, शास्त्र, व्रत और जीव आदि तत्त्वों में अस्तित्व बुद्धि रखने को 'आस्तिक्य' कहते हैं। आस्तिक्य प्रयोजन के बिना किसी भी मानव का परमात्मा में भक्ति का भाव नहीं हो सकता।

(4) मानसिक शुद्धि—मन की पवित्रता को 'मानसिक शुद्धि' कहते हैं। जब मनुष्य सर्वज्ञ परमात्मा के श्रेष्ठ गुणों का कीर्तन या चिन्तन करता है तब उसमें अहित विचार दूर होकर या पाप वासना का नाश होकर मन के अच्छे विचार तथा उत्साह जागृत हो जाता है, यही 'मानसिक शुद्धि' है। यह प्रयोजन भी अत्यावश्यक है, गुणी महापुरुष के गुणों के चिन्तन या कीर्तन बिना हृदय की शुद्धि नहीं हो सकती। आध्यात्मिक अथवा लोकोपकारी किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए मानसिक शुद्धि आवश्यक है। नीतिकार का कथन है—

मानसं उन्नतं यस्य तस्य सर्वं समुन्नतम्।
मानसं नोन्नतं यस्य, तस्य सर्वमनुन्नतम्॥

तात्पर्य यह है कि—जिस पुरुष का मन उन्नत या पवित्र है, उसके सब ही कार्य ऊँचे होते हैं और जिस पुरुष का मन गन्दा है या विकारी है, उसके सभी कार्य नीचे होते हैं अथवा अहितकारी होते हैं। अतः भक्ति करने का यह लक्षण भी महान् है।

(5) श्रेयोमार्ग की सिद्धि—श्रेयोमार्ग का अर्थ है मुक्ति का मार्ग अथवा आत्म-कल्याण का मार्ग।

इसमें विश्व-कल्याण की भावना भी सन्निविष्ट है। कारण कि जो व्यक्ति मुक्ति मार्ग या आत्महित की साधना करता है उस व्यक्ति से ही विश्व का कल्याण हो सकता है। इस मुक्तिमार्ग की सिद्धि परमेष्ठी-परमात्मा की भक्ति के बिना नहीं हो सकती। कारण कि जिस आत्मा ने मुक्तिमार्ग की साधना कर मुक्ति को प्राप्त किया है वह आत्मा ही संसार से मुक्ति का मार्ग दर्शा सकती है। इसलिए परमेष्ठी परमात्मा की भक्ति या कीर्तन करना आवश्यक कर्तव्य है। विक्रम की नवमी शती में हुए आचार्य विद्यानन्द ने 'आप्तपरीक्षा' ग्रन्थ में मंगलाचरण के प्रसंग में कहा है—'श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः' इति।[2]

भावार्थ यह है कि परमेष्ठी (परमदेव) के प्रसाद से श्रेयोमार्ग, मुक्तिमार्ग को

---

1. पं. आशाधर : सागार धर्मामृत : सम्पा. पं. कैलाशचन्द्रशास्त्री : प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 1978 ई.
2. आप्तपरीक्षा : सम्पा. न्यायाचार्य पं. दरबारीलाल कोठिया : प्र. वीरसेवा मन्दिर, देहली : 1949, पद्य 2, पृ. 2

सिद्धि होती है। यहाँ पर प्रसाद का अर्थ है कि प्रसन्नचित्त से परमात्मा की उपासना करना। इससे जो कल्याणमार्ग की सिद्धि होती है वही यथार्थ में परमेष्ठी का प्रसाद है। जैसे किसी रोगी पुरुष को प्रसन्नचित्त से नियमित सेवन की गयी औषधि से जो स्वास्थ्य-लाभ होता है वह औषधि तथा वैद्यराज का प्रसाद कहा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा के प्रति लक्ष्य रखकर किया गया उपासना का पुरुषार्थ ही उपासक (भक्त) को मुक्तिमार्ग की साधना कराता है और उससे 'मुक्ति' की प्राप्ति होती है।

मुक्ति का मार्ग[1]—सम्यक् श्रद्धा, समीचीन ज्ञान और समीचीन आचरण इन तीनों की युगपत् साधनारूप होता है,[2] जिसको श्रावक अहिंसाणुव्रत आदि बारह व्रतों की आंशिक साधना से सिद्ध करता है और अहिंसा महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुणों का धारी 'योगी' उस मुक्तिमार्ग की साधना सर्वांशरूप से करता है। रागद्वेष, मोह, कषाय आदि विकारीभावों के क्षयपूर्वक सम्यक्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—इन तीनों की पूर्णता प्राप्त होने को मुक्ति कहते हैं।

(6) तद्गुणलब्धि—परमात्मा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त करना। इस सन्दर्भ में लोकनीति निदर्शनीय है कि—'यो यस्य गुणलब्ध्यर्थी, स तं वन्दमानो' दृष्टः[3] इसका आशय यह है—जो पुरुष जिस गुणी पुरुष के समान गुणों को प्राप्त करना चाहता है वह उस गुणी पुरुष की संगति करता है, उसको नमस्कार करता है, उसकी प्रशंसा करता है। जैसे विद्यार्थी गुरु को नमस्कार करता है, संगति करता है। इसी प्रकार परमात्मा के समान गुणों को प्राप्त करने के लिए मानव उसकी पूजा करता है, उसको प्रणाम करता है।

सारांश यह है कि मनुष्य को गुणग्राही बनकर गुणी की पूजा-वंदना करना चाहिए किन्तु लोक-सम्मान, विषय-भोग, धन आदि के लोभ से नहीं। तद्गुणलब्धि के विषय में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि' के मंगलाचरण में कहा है—

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥[4]

आशय यह है कि जो हितोपदेशी, वीतराग और सर्वज्ञ हो उसको उसके समान गुणों की प्राप्ति के हेतु, मैं वन्दना करता हूँ। इस कारण से 'तद्गुणलब्धि' उपासना का षष्ठ प्रयोजन या उद्देश्य कहा गया है।

---

1. आचार्य उमास्वामी : तत्त्वार्थसूत्र : 1 : 1.
2. आचार्य भट्टाकलंक देव : तत्त्वार्थवार्तिक (राजवार्तिक) : सं.प्रो. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य : प्र. भा. ज्ञानपीठ काशी, 1953 ई. पृ. 8 : वा. 17 तथा पृ. 10.
3. आचार्य विद्यानन्द आप्तपरीक्षा : सं. दरबारीलाल न्यायाचार्य : प्र. वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट देहली : सन् 1949 : पृ. 12.
4. सर्वार्थसिद्धि : सं. फूलचन्द्र शास्त्री, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् 1955, पृ. 61.

इस प्रकार भगवत्पूजा के छह प्रयोजन (लक्ष्य) युक्ति तथा प्रमाणों से सिद्ध होते हैं, बिना प्रयोजनों के किसी भी मानव का भगवद्भक्ति का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

पूजा की रूपरेखा

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—इन पंच परमेष्ठी, जैसे पूज्य महापुरुषों के गुणों में श्रद्धापूर्वक आदर-सत्कार की प्रवृत्ति को 'पूजा' कहते हैं अथवा जिसके द्वारा पूज्य पुरुषों के गुण पूजे जाते हैं, तथा पूज्य पुरुषों के गुणों को पूजना, गुणों का अर्चन-पूजन कहा जाता है। जैसा कि कहा है—'पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः' अथवा 'गुणेषु अनुरागो भक्तिः'[1] अर्थात् पूज्य पुरुषों के गुणों में रुचिरूप परिणाम तथा उनके समान गुणों को प्राप्त करने की इच्छा करना पूजा या भक्ति कही जाती है।

"अर्हदाचार्यबहुश्रुतेषु प्रवचनेषु च भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः"[2]

तात्पर्य यह कि अरिहन्त परमात्मा, आचार्य, उपाध्याय, साधु और उनके प्रवचनों में विशुद्ध भावपूर्वक अनुराग होना 'भक्ति या पूजा' है।

'अमरकोष' में पूजा के पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख प्राप्त है—'पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः'।[3]

पूजा—पूजनं पूजा, पूज् पूजायां—धातु से अङ् प्रत्यय द्वारा पूजा की सिद्धि।

नमस्या—नमस्करणं नमस्या, नमस् + य + अ + आ, नमस्कार करना।

अपचिति—अप + चाय् (चि) + ति = अपचिति = निर्दोष भक्ति करना।

सपर्या—सपर् पूजायां, सपर् + य + अ + आ = सपर्या = गुणों की प्रशंसा करना।

अर्चा—अर्च् पूजायां, अर्च् + अ + आ = अर्चा = गुणों का स्तवन करना।

अर्हणा—अर्ह पूजायां, अर्ह + यु (अन) + आ = अर्हणा = गुणों का आदर करना।

इनके अतिरिक्त कृति, स्तवन, कीर्तन, भक्ति, श्रद्धा, आदर, उपासना, वन्दना, स्तुति, स्तव, स्तोत्र, नुति, ध्यान, चिन्तन, अर्चना, प्रणाम, नमोऽस्तु—ये शब्द भी पूजा के वाचक हैं। प्राकृत-संस्कृत और हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में इन शब्दों के प्रयोग बहुधा दृष्टिगत होते हैं, लोक-व्यवहार में भी इनके प्रयोग बहुलता से देखे जाते हैं।

---

1. दि. जैन पूजन संग्रह : सं. राजकुमार शास्त्री, इन्दौर : प्राक्कथन, पृ. 4, 1958.
2. आचार्य पूज्यपाद : सर्वार्थसिद्धि : सं. पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर, 1938 ई., अ.-6, सूत्र 24, पृ. 221.
3. अमरसिंह : नामलिंगानुशासनम् : सं. डॉ. रामकृष्ण भण्डारकर, प्र. निर्णय-सागर प्रेस बम्बई : 1890 : द्वि. काण्ड : पद्य-35.

प्रतिष्ठा तथा विधान (विशेष पूजा) शब्द भी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं और लोक-व्यवहार में भी प्रयुक्त होते हैं जैसे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, सिद्धचक्रविधान, इन्द्रध्वज विधान आदि।

पूजा (उपासना) के विशेष स्वरूप को समझने के लिए (1) पूज्य, (2) पूजक, (3) पूजा, (4) पूजाफल–इन चार तत्त्वों पर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए।

(1) प्रथम यह ज्ञान करना आवश्यक है कि पूज्य आत्मा की पूजा कैसे करनी चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर में जैनशास्त्रों में कथन है–

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥[1]

सारांश–जो आत्मा अठारह दोषों से रहित वीतरागी हो, विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता (सर्वज्ञ) हो और जो हितोपदेशी हो वही अर्हन्त परमात्मा पूज्य है। अठारह दोष इस प्रकार हैं–जन्म, जरा, मरण, क्षुधा, तृषा (प्यास), रोग, भय, मद, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद, प्रस्वेद, दुःख।

अथवा– भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥[2]
यो विश्वं वेद वेद्यं जनन जलनिधेर्-भङ्गिनः पारदृश्वा।
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम्॥
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्त-दोष-द्विषन्तं
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा॥[3]

संसार के जन्म-मरण आदि दुःखों को बढ़ानेवाले राग-द्वेष, मोह आदि दोष जिनके पृथक् हो गये हों उस पूज्य आत्मा को नमस्कार है–चाहे वह आत्मा ब्रह्मा हो, अथवा विष्णु हो, अथवा महेश हो, अथवा जिनेन्द्र हो। सारांश यह है कि जो आत्मा वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो वह परमात्मा पूज्य है।

पूजक का स्वरूप

इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा गया है कि जो सदाचारी परोपकारी श्रद्धालु, विनयी, पूजन के फल की चाह न करनेवाला, क्रोध तथा मायाचार न करनेवाला, दुर्व्यसन का त्यागी, न्यायपूर्वक जीविका करनेवाला, उत्साही, सुशील, ज्ञानवान्,

1. आचार्य समन्तभद्र : रत्नकरण्ड श्रावकाचार : सं.पं. पन्नालाल साहित्याचार्य : प्र. वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट, सन् 1972, श्लोक 5.
2. सुभाषितरत्न भाण्डागार : सं. काशीनाथ शर्मा : प्र. निर्णयसागर प्रेस बम्बई : सन् 1905 : पृ. 1, श्लोक-9.
3. अकलंक स्तोत्र : स्तोत्रपूजापाठ संग्रह, मदनगंज किशनगढ़ 1976, पृ. 249.

निर्दोषी, निरोग, मद्य-त्यागी प्रभृति मानवीय गुणों से शोभित हो अथवा गुणग्राही हो वही वास्तव में परमात्मा का पुजारी हो सकता है। जो पाँच इन्द्रियों के विविध कुविषयों की चाह रखता हो वह पूजक पद के योग्य नहीं इस विषय में श्री वसुविन्दु आचार्य का कथन है—

> न्यायोपजीवी गुरुभक्तिधारी कुलादिहीनो विनयप्रपन्नः।
> विप्रस्तथा क्षत्रियवैश्यवर्गो व्रतक्रियावन्दन शीलपात्रः॥
> श्रद्धालुदातृत्वमहेच्छुभावो ज्ञाता श्रुतार्थश्च कषायहीनः।
> कलंकपंकोन्मदतापवादकुकर्मदूरोऽर्हदुदारबुद्धिः ॥[1]

इस प्रकार का पूजक शास्त्र में यज्वा, याजक, यष्टा, पूजक, यजमान, षट्कर्मा, यागकृत, संघी, प्रतिष्ठापक कहा गया है।

जिसकी श्रद्धा लौकिक विषयों में है उसकी आस्था परमात्मा के गुणों में कैसे हो सकती है अतः पूजक को लौकिक वस्तुओं की चाह के बिना ही शुद्धभाव से भगवत्पूजन करना चाहिए।

पूजा—शुद्ध मन, वचन तथा वस्त्रशोभित शरीर से, परमेष्ठी के गुणों का कीर्तन करते हुए, तन्मयता से प्रसन्न होकर जल-चन्दन आदि द्रव्यों के अर्पण करने का पुरुषार्थ होना पूजा का क्रियात्मक रूप है। पूजा की परिभाषा पूर्व प्रकरण में भी विश्लेषित है। उसका यह रचनात्मक रूप है।[2]

पूजा-फल

पवित्र अन्तःकरण से भगवान् की नित्य भक्ति करनेवाला भक्त जब भगवान् के पद को प्राप्त कर लेता है, पूजा का वही अन्तिम या पूर्ण फल कहा जाता है। इसके मध्य में लौकिक श्रेष्ठ फल की प्राप्ति हो जाती है। इस विषय में श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा कहा गया है—

> पूयाफलेण तिलोए सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो।
> दाणफलेण तिलोए सारसुहं भुंजदे णियदं॥[3]

जो मनुष्य शुद्धभावों से श्रद्धापूर्वक भगवान् जिनेन्द्र का पूजन करता है वह पूजन के फल से त्रिलोक का ज्ञाता, अधीश (भगवान्) हो जाता है तथा देवों-इन्द्रों से भी पूज्य हो जाता है और जो सुपात्रों के लिए आहार, ज्ञान औषधि तथा अभय

---

1. आ. जयसेन : वसुविन्दु प्रतिष्ठापाठ, सं. हीरालाल दोशी, प्र. बडी सोलापुर, 2452 वी.नि., पृ. 19, श्लोक 77-78.
2. पूजा के स्वरूप-विश्लेषण के लिए देखिए इसी अध्याय का पृष्ठ 24
3. आ. कुन्दकुन्द : रयणसार : सं. ग. देवेन्द्रकुमार जैन : प्र. ग्रन्थ प्रकाशन समिति इन्दौर : 1974 : पृ. 59, गाथा 13.

(प्राण-सुरक्षा)—इन चार प्रकार के दानों को देता है वह दान के फल से त्रिलोक में सारभूत उत्तम सुखों को भोगता है।

जैन पूजा का उद्भव और विकास

'जैन पूजा' का व्याकरण की दृष्टि से व्युत्पत्तिलभ्य विवेचन इस प्रकार है—"जयति ज्ञानावरणमोहादिशत्रून् इति जिनः, जिनमधिकृत्य प्रणीतं पूजाविधानमिति जैन पूजा-विधानं" अर्थात् वे तीर्थंकर (जिनेन्द्र) जिन्होंने आत्मपुरुषार्थ से ज्ञानावरण, मोह, राग-द्वेष, निर्बलता, क्रोध, मान आदि विकारों को जीत लिया है, वे 'जिन' या जिनेन्द्र कहे जाते हैं, और जिनेन्द्र के विषय में सर्व-प्रथम जो पूजा-विधान आदि सिद्धान्तों अथवा अनुष्ठानों का उपदेश दिया गया है वह जैन पूजा-विधान का आद्य उद्भव स्थान तथा प्रथम समय है। अहिंसा, स्याद्वाद, सत्य, अपरिग्रहवाद आदि मौलिक सिद्धान्तों का तथा पूजा-विधान का प्रथम उद्भव स्थान जिन (अर्हन्त) को ही क्यों कहा गया है? इस प्रश्न का उत्तर वस्तुतः इस प्रकार प्रतीत होता है कि जिस मानव ने आत्मपौरुष से (1) ज्ञानावरण (ज्ञान को आवरण करनेवाला कर्म या दोष), (2) दर्शनावरण (वस्तुदर्शन का आवरण करनेवाला कर्म), (3) मोहनीय (आत्मा, परमात्मा आदि तत्त्वों को भुलाकर, अतत्त्वों पर श्रद्धा करानेवाला रागद्वेष, मोह, माया, क्रोध, लोभ आदिरूप कर्म)। (4) अन्तराय (आत्मशक्ति का नाशक कर्म), इन चार महान् घातिकर्म या महादोषों पर विजय प्राप्त कर क्रमशः केवल ज्ञान (विशदविश्वज्ञान), केवलदर्शन (विशद विश्वतत्त्वदर्शन), अक्षयसुख या शान्ति और अक्षय आत्मबल प्राप्त कर लिया है, उसको जिन—जिनेन्द्र, अरिहन्त, वीतराग, सर्वज्ञ, केवली, धर्मचक्र प्रवर्तक, तीर्थंकर, तीर्थंकर, तीर्थकृत्, दिव्यवाक्पति[1]—इन नामों से अलंकृत किया गया है।

इस प्रकार के सर्वज्ञ वीतराग देव के द्वारा जो सिद्धान्त और संविधान कहा जाता है वह लोकोपकारी प्रमाणित और सर्वथा विरोधरहित होता है। कारण कि वक्ता की प्रामाणिकता से वचनों में प्रामाणिकता सिद्ध की जाती है। इसलिए पूजा-विधान या अहिंसा आदि सिद्धान्तों का प्रथम उद्भवस्थान तीर्थंकर सिद्ध होता है।

जैनदर्शन के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ आप्तमीमांसा में इसी विषय का उल्लेख भी किया गया है—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते॥[2]

---

1. धनंजय कवि : नाममाला : प्र. मोहनलाल शास्त्री जबलपुर : पृ. 48 : पद्य- 114/1980.
2. आ. समन्तभद्र : आप्तमीमांसा : सं. पं. दरबारी लाल कोठिया : प्र. वीरसेवा मन्दिर दिल्ली : 1967 : पद्य 6.

हे भगवान्! आप निर्दोष हैं। इसलिए आप के द्वारा उपदिष्ट वचन युक्ति तथा प्रमाणशास्त्रों से विरोध को प्राप्त नहीं होते हैं। आपने जिन सिद्धान्तों एवं पूजातत्त्वों का प्रतिपादन किया है, उनमें कोई विरोध नहीं है, वे लोकोपकारी हैं—नीतिपूर्ण हैं, अनुभवसिद्ध हैं, इसीलिए आप का इष्ट सिद्धान्त प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रमाणों से विरोध को प्राप्त नहीं होता।

जैनधर्म प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता पुराण, इतिहास, पुरातत्त्व और अभिलेखों से सिद्ध है।

भगवान ऋषभदेव की प्राचीनता

जैनधर्म में चौदह कुलकरों के पश्चात् जिन महापुरुषों ने कर्मभूमि की सभ्यता के युग में धर्मोपदेश एवं अपने चरित्र द्वारा हेय-उपादेय तत्त्व का भेद सिखाया, ऐसे विशेष गणनीय महापुरुषों की संख्या 63 है। इन्हें 'श्रेष्ठ शलकापुरुष' भी कहा जाता है।

इन श्रेष्ठ शलाकापुरुषों में सर्व प्रथम आद्यतीर्थंकर वृषभनाथ हैं, जिन्होंने इस युग में जैनधर्म का प्रवर्तन किया।

पिता नाभिराज के निधन के पश्चात् वे राजसिंहासन पर बैठे और उन्होंने आजीविका के छह साधनों—कृषि, असि, मसि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या की विशेष रूप से व्यवस्था की। देश व नगरों एवं वर्ण व जातियों आदि का सुविभाजन किया।

जैन साहित्य में ऋषभदेव के जीवन व तपस्या का तथा केवलज्ञान प्राप्त कर धर्मोपदेश का विस्तृत वर्णन है। ऋषभदेव के काल का अनुमान लगाना कठिन है, उनके काल की दूरी का वर्णन जैन पुराण, सागरों के प्रमाण से करते हैं। सौभाग्य से ऋषभदेव का जीवन चरित जैन साहित्य में ही नहीं, प्रत्युत वैदिक साहित्य में भी पाया जाता है। भागवतपुराण के पंचम स्कन्ध के प्रथम छह अध्यायों में ऋषभदेव के वंश, जीवन वृत्त व तपश्चरण का विस्तृत वृत्तान्त वर्णित है, जो सभी मुख्य-मुख्य बातों में जैन पुराणों से मिलता है।

प्रथम तीर्थंकर और वातरशना मुनि

भगवत पुराण में कहा गया है कि—

> "बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो
> नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो
> वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लयातन्वावततार।[1]

"हे विष्णुदत्त परीक्षित! यज्ञ में महर्षियों द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने

1. भागवतपुराण, 5/3/20

पर श्री भगवान विष्णु, महाराज नाभि का प्रिय करने के लिए उनके रनिवास में महारानी मरुदेवी के गर्भ से वातरशना (दिगम्बर) श्रमणऋषियों और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिए शुद्ध सत्त्वमय विग्रह से ऋषभदेव प्रकट हुए।"

इस अवतार का जो हेतु भागवतपुराण में बताया गया है उससे जैनधर्म की परम्परा, भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से निःसन्देह रूप से जुड़ जाती है। ऋषभावतार का एक हेतु वातरशना श्रमण ऋषियों के धर्म को प्रकट करना निरूपित किया गया है। भागवतपुराण में, यह प्रसंग विशेषतः निदर्शनीय है कि—'अयमवतारो रजसोपप्लुत-कैवल्योपशिक्षणार्थः'[1]।

"ऋषभदेव का यह अवतार रजोगुण से भरे हुए मानवों को कैवल्य की शिक्षा देने के लिए हुआ था।" किन्तु उक्त वाक्य का यह अर्थ भी सम्भव है कि "यह अवतार रज से उपप्लुत अर्थात् रजोधारण (मलधारण) वृत्ति द्वारा कैवल्य प्राप्ति की शिक्षा देने के लिए हुआ था।"

कारण कि जैन मुनियों के आचार में अस्नान, अदन्तधावन, मलपरीह आदि द्वारा रजोधारण संयम का आवश्यक अंग माना गया है। महात्मा बुद्ध के समय में भी रजोजल्लिक श्रमण विद्यमान थे। बुद्ध भगवान् ने श्रमणों की आचार-प्रणाली में व्यवस्था लाते हुए कहा है—

> "नाहं भिक्खवे संघाटिकस्स संघाटिधारणमत्तेन सामण्णं
> वदामि, अचेलकस्स अचेलकमत्तेन रजोजल्लिकस्स रजोजल्लिकमत्तेन—
> जटिलकस्स जटाधारणमत्तेन सामण्णं वदामि"।[2]

"हे भिक्षुओ! संघाटिक के संघाटीधारण मात्र से श्रामण्य नहीं कहलाता, अचेलक के अचेलकत्व मात्र से, रजोजल्लिक के रजोजल्लिकत्व मात्र से और जटिलक के जटाधारणमात्र से भी श्रामण्य नहीं कहलाता।"

उपर्युक्त उल्लेखों के प्रकाश में यह तथ्य विचारणीय है कि जिन वातरशना के धर्मों की स्थापना करने तथा रजोजल्लिकवृत्ति द्वारा कैवल्य की प्राप्ति सिखलाने के लिए भगवान ऋषभदेव का अवतार हुआ था, वे कब से भारतीय साहित्य में उल्लिखित पाये जाते हैं! इसके समाधान के लिए भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों का अनुशीलन आवश्यक है। इन वेदों में वातरशना मुनियों का उल्लेख अनेक स्थलों में प्राप्त होता है।

वातरशना मुनियों से सम्बन्धित ऋग्वेद की ऋचाओं में उन मुनियों की साधनाएँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। यथा—

---

1. देखिए—भागवतपुराण, 5/6/12
2. मज्झिमनिकाय, पृ. 40.

"मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला।
वातस्यानुध्राजिंयन्ति यद्देवासो अविक्षत॥
उन्मदिता मौनेयेन वाता आ तस्थिमा वयम्।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभिपश्यथ॥[1]

मनीषियों ने वेदों का अर्थ बैठाने के लिए बहुविध प्रयत्न किये हैं किन्तु अब तक निःसन्देह रूप से अर्थ बैठाना सम्भव नहीं हो सका है, तथापि सायण-भाष्य की सहायता से, पुराविद्याओं के मूर्धन्य मनीषी डॉ. हीरालाल जी ने उक्त ऋचाओं का अर्थ निम्न प्रकार से किया है—

"अतीन्द्रियार्थदर्शी वातरशना मुनि मल धारण करते हैं, जिससे वे पिंगल वर्ण दिखाई देते हैं। जब वे वायु की गति को प्राणोपासना द्वारा धारण कर लेते हैं अर्थात् रोक लेते हैं, तब वे अपने तप की महिमा से दीप्यमान होकर देवता स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। सर्व लौकिक व्यवहार को छोड़कर हम मौनवृत्ति से उत्कृष्ट आनन्द सहित वायुभाव को (अशरीरी ध्यानवृत्ति) को प्राप्त होते हैं और तुम साधारण मनुष्य हमारे बाह्य शरीर मात्र को देख पाते हो, हमारे सच्चे आभ्यन्तर स्वरूप को नहीं"। ऐसा वे वातरशना मुनि प्रकट करते हैं।"[2]

ऋग्वेद में उक्त ऋचाओं के साथ 'केशी' की भी स्तुति की गयी है—

"केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते"॥[3]

"केशी, अग्नि, जल स्वर्ग और पृथिवी को धारण करता है। केशी समस्त विश्व के तत्त्वों का दर्शन कराता है। केशी ही प्रकाशमान (ज्ञान) ज्योति (केवलज्ञानी) कहलाता है।

केशी की यह स्तुति उक्त वातरशना मुनियों के वर्णन आदि में की गयी है, जिससे प्रतीत होता है कि केशी, वातरशना मुनियों के वर्णन में प्रधान थे।

ऋग्वेद के इन केशी व वातरशना मुनियों की साधनाओं का भागवतपुराण में वर्णित वातरशना श्रमण ऋषि, उनके अधिनायक ऋषभदेव और उनकी साधना तुलना करने योग्य है। ऋग्वेद के 'वातरशना मुनि' और भागवत के 'वातरशनाश्रमण ऋषि' एक ही सम्प्रदाय के वाचक हैं। वस्तुतः केशी का अर्थ केशधारी है। केशी स्पष्ट रूप से वातरशना मुनियों के प्रधान ही हो सकते हैं, जिनकी साधना में मलधारणा,

---

1. ऋग्वेदः सं. नारायण शर्मा, सोनटक्के तथा सी.जी. काशीकर : प्र.-वैदिक संशोधनमंण्डल पूना : 1946 ई. 10/136/2-3.
2. डॉ. हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान : प्र.-मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् भोपाल, 1975 ई., पृ. 13-14.
3. ऋग्वेद, 10/136/1.

मौनवृत्ति और उन्मादभाव का विशेष उल्लेख है। ऋग्वेद में उन्हें देवदेवों के मुनि, उपकारी और हितकारी मित्र कहा है। इसकी तुलना श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णित ऋषभदेव के चरित्र से की जा सकती है।[1] जिसमें उल्लेख है कि ऋषभदेव के शरीरमात्र परिग्रह शेष था। वे उन्मत्तवत् दिगम्बर वेषधारी, बिखरे हुए केशों सहित आहवनीय अग्नि को अपने में धारण करके ब्रह्मावर्त देश से प्रव्रजित हुए। वे जड़, अन्ध, मूक, बधिर, पिशाचोन्माद युक्त जैसे अवधूत वेश में लोगों के बुलाने पर भी मौनवृत्ति धारण किये हुए चुप रहते थे।...सब ओर लटकते हुए अपने कुटिल, जटिल और कपिश केशों के भार सहित अवधूत और मलिन शरीर सहित वे ऐसे दिखाई देते थे जैसे मानो उन्हें भूत लगा हो।

वस्तुतः ऋग्वेद के उक्त केशी सम्बन्धी सूक्त तथा भागवतपुराण में वर्णित ऋषभदेव के चरित्र में पर्याप्त साम्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेद के सूक्त का विस्तृत भाष्य किया गया है। क्योंकि उक्त दोनों ग्रन्थों में वही वातरशना या नगन परिधानवृत्ति, केशधारण, कपिशवर्ण, मलधारण, मौन और उन्मादभाव—उभयत्र निदर्शित है।

भगवान् ऋषभदेव के जटिल केशों की परम्परा जैन मूर्तिकला में प्राचीनतम काल से आज तक अक्षुण्ण पायी जाती है।[2] और यही उनका प्राचीन विशेष लक्षण भी माना जाता है। राजस्थान में केशरियानाथ क्षेत्र का नामकरण और वहाँ विराजमान मूल नायक ऋषभदेव का केशरियानाथ के रूप में पूजा जाना हमारे उक्त निष्कर्ष की सम्पुष्टि करता है।[3] जैन पुराणों में ऋषभदेव की जटाओं का सदैव उल्लेख किया गया है।[4]

केशी और ऋषभ एक ही पुरुषवाची हैं। इसकी पुष्टि निम्नलिखित ऋचा से भी होती है—

> "ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवा वचीत्सारथिरस्य केशी।
> दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋछन्ति ष्मानिष्पदो मुदगलानीम्॥[5]

---

1. विस्तार के लिए देखिए—भागवतपुराण, 5/6/28-31.
2. इस प्रकार की मूर्तियों के परिचय और चित्रों के लिए देखिए—
डॉ. भागचन्द जी 'भागेन्दु' : देवगढ़ की जैन कला : एक सांस्कृतिक, अध्ययन प्र. भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 1974, पृ. 73, 75.
3. केशरशब्द जटाओं का वाचक है—'सटा जटाकेसरयोः' विश्वलोचनकोष : श्रीधर सेन : प्र. जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय बम्बई : सन् 1912, पृ. 78.
4. देखिए—(अ) पद्मपुराण, 3/288
(ब) हरिवंशपुराण, 9/204
(स) डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' सर्जना, 1977 में प्रकाशित शोधलेख,
5. देखिए, ऋग्वेद, 10/102/6

सायणभाष्य तथा निरुक्त को दृष्टिपथ में रखकर भारतीय दार्शनिक परम्परानुसार निम्नप्रकार किया गया है—

मुद्गल ऋषि के सारथी (विद्वान् नेता) केशी वृषभ जो शत्रुओं का विनाश करने के लिए नियुक्त थे, उनकी वाणी निकली, जिसके फलस्वरूप जो मुद्गल ऋषि की गौवें (इन्द्रियाँ) जुते हुए दुर्धर रथ (शरीर) के साथ दौड़ रही थीं, वे निश्चल होकर मौद्गलानी (मुद्गल की स्वात्मवृत्ति) की ओर लौट पड़ीं।

तात्पर्य यह कि मुद्गलऋषि की जो इन्द्रियाँ पराङ्मुखी थीं वे उनके योगयुक्त ज्ञानी नेता केशी वृषभ के धर्मोपदेश को सुनकर अन्तर्मुखी हो गयीं।

इस प्रकार केशी और ऋषभ या वृषभ के एकत्व का पूर्णतः समर्थन स्वयं ऋग्वेद से हो जाता है। इसी क्रम में—

"त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आ विवेश"।[1]

का अर्थ निम्न प्रकार से विचारणीय है कि—त्रिधा (ज्ञान, दर्शन, और चारित्र से) अनुबद्ध ऋषभ ने धर्म घोषणा की और वे एक महान् देव के रूप में भक्तियों में प्रविष्ट हुए।

इसी शृंखला में ऋग्वेद के शिश्नदेवों (नग्नदेवों) वाले उल्लेख भी ध्यातव्य हैं।[2]

प्राचीन साहित्य तथा अभिलेखों के उल्लेख

समस्त प्राचीन वाङ्मय, वैदिक, बौद्ध व जैन ग्रन्थों तथा शिलालेखों में भी ब्राह्मण और श्रमण—दोनों सम्प्रदायों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।[3] जैन और बौद्ध साधु आज भी 'श्रमण' कहलाते हैं।[4]

---

1. देखिए, ऋग्वेद, 4/58/3
2. देखिए, ऋग्वेद, 7/21/5 तथा ऋग्वेद, 10/99/3
3. विस्तार के लिए देखिए—
   (अ) भागवतपुराण, 5/4/5, 5/5/19
   (ब) आर्यमंजुश्री, मूलश्लोक, 390/92
   (स) आदिपुराण, 16/224 तथा 17/178.
   (द) हरिवंशपुराण, 9/41
   (इ) पद्मपुराण, 3/282
4. देखिए— (अ) अशोक का गिरनार अभिलेख क्र.-4
   (प्राकृत-अपभ्रंशसंग्रह, पृ. 102 पर संगृहीत)
   काशी प्रसाद जायसवाल : कलिंग चक्रवर्ती महाराज खारवेल के शिलालेख का विवरण : प्र. नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, भाग 8, अंक 3.
   (ब) भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ. 17

वैदिक साहित्य के यति और व्रात्य

ऋग्वेद में मुनियों के अतिरिक्त यतियों का भी बहुतायत से उल्लेख हुआ है। ये यति श्रमण परम्परा के ही साधु हैं क्योंकि इनके प्रति प्रारम्भ में तो सद्भाव मिलता है किन्तु पीछे वैदिक परम्परा में इनके प्रति रोष दिखाई पड़ता है।[1]

भगवत्गीता में ऋषि, मुनि और यति का स्वरूप समझाकर उन्हें समान रूप से योग में प्रवृत्त माना है। इनमें से मुनि इन्द्रियविजेता और मन से संयमी, इच्छा, भय व क्रोधरहित, मोक्षमार्ग के पथिक बताये गये हैं।[2] और यति को कषाय-रहित, संयतचित्त व वीतरागी कहा है।[3]

अथर्ववेद में व्रात्यों का वर्णन आया है। सामवेद में उन्हें व्रात्यस्तोम-विधि द्वारा शुद्ध कर वैदिक परम्परा में सम्मिलित करने का भी वर्णन है क्योंकि ये लोग वैदिक पद्धति से अपरिचित थे और प्राकृत बोलते थे। मनुस्मृति में भी लिच्छिवि आदि क्षत्रिय जातियों को व्रात्यों में परिगणित किया है। इन सब उल्लेखों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि ये व्रात्य भी श्रमण परम्परा के साधु व गृहस्थ थे जो वेदविरोधी होने से वैदिक अनुयायियों के कोपभाजन बने हुए थे। व्रात्यशब्द की निष्पत्ति व्रत शब्द से हुई है। जैनधर्म में अहिंसा आदि नियमों को व्रत कहते हैं। इनके एकदेश पालक श्रावक को देश विरत या अणुव्रती और पूर्णरूप से पालक मुनि को महाव्रती कहते हैं। जो लोग विधिपूर्वक व्रतग्रहण नहीं करते, तथापि धर्म में श्रद्धा रखते हैं वे अविरत सम्यग्दृष्टि हैं। इसी प्रकार के व्रतधारी 'व्रात्य हैं, इसीलिए उपनिषदों में इनकी बहुत प्रशंसा की गयी है।[4]

महान् दार्शनिक और भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधा-कृष्णन् ने भी यजुर्वेद में उल्लिखित ऋषभदेव, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि का विश्लेषण किया है और ऋषभदेव को जैनधर्म का आद्य संस्थापक स्वीकार किया है।[5]

इन ही ऋषभदेव के युग से जैन पूजा-पद्धति का श्रीगणेश हुआ।

जब ऋषभदेव राज्यभार का दायित्व सँभालने योग्य हुए तो महाराज नाभिराज ने उनका राज्याभिषेक कर दिया। यथा—

---

1. देखिए, (अ) तैत्तरीय संहिता, 2,4,9 : 6,2,7,5.
   (ब) ताण्ड्य ब्राह्मण, 14,2,28,18,1,9.
2. देखिए, भगवद्गीता, 5/18
3. वही, 5/26, 8/11
4. देखिए, प्रश्नोपनिषद्, 2/11
5. देखिए, भारतीय दर्शन, जिल्द 1, प्र. राजपाल एण्ड सन्स, देहली, सन् 1969, पृ. 264

नृपा मूर्धाभिषिक्ता ये, नाभिराजपुरस्सराः।
राजवद्राजसिंहोऽयमभ्यषिञ्चन् तैः समम्॥[1]

सब राजाओं में श्रेष्ठ यह ऋषभदेव वास्तव में राजपद के योग्य हैं, ऐसा मानकर नाभिराज आदि राजाओं ने उनका एक साथ अभिषेक किया।

तपकल्याणक के उत्सव के समय

मरुदेव्या समं नाभिराजो राजशतैर्वृतः।
अनूत्तस्थौ तदा द्रष्टुं विभोर्निष्क्रमणोत्सवम्॥[2]

उस समय महाराज नाभिराज भी मरुदेवी तथा सहस्रों नृपों से परिवृत होकर प्रभु ऋषभदेव के तप कल्याणक का उत्सव देखने के लिए पालकी में स्थित ऋषभदेव के पीछे जा रहे थे।

उस समय का दृश्य बड़ा विचित्र था। एक ही समय में विविध रसों का परिपाक हो रहा था। यथा—

ऊर्ध्वं नवरसा जाता नृत्यदप्सरसां स्फुटाः।
नाभेयेन विमुक्तानामधः शोकरसोऽभवत्॥[3]

तात्पर्य—ऊपर आकाश में तो अप्सराओं के नृत्य से नवरस प्रकट हो रहे थे और नीचे पृथिवी पर तीर्थंकर ऋषभदेव के वियोग से मानव शोकरस से अभिभूत हो रहे थे।

ऋषभदेव की दीक्षा का वर्णन

आपृच्छनं ततः कृत्वा, पित्रोर्बन्धुजनस्य च।
'नमः सिद्धेभ्य' इत्युक्त्वा, श्रामण्यं प्रत्यपद्यत॥[4]

तात्पर्य—आचार्य रविषेण के अनुसार ऋषभदेव ने वन में पहुँचकर माता-पिता और बन्धुजनों से आज्ञा लेकर 'णमो सिद्धाणं' यह मन्त्र कहकर पंचमुष्टि केशलोंच करते हुए श्रमण दिगम्बर दीक्षा को ग्रहण किया।

---

1. जिनसेनाचार्य : आदिपुराण : सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.-भा. ज्ञानपीठ, देहली, सन् 1977, पर्व 16, पृ. 366.
2. तथैव, पर्व 17, पृ. 388.
3. जिनसेनाचार्य - हरिवंशपुराण : सं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, देहली : 1963, पर्व 9, श्लोक 11.
4. रविषेणाचार्य : पद्मपुराण : सं. पन्नालाल साहित्याचार्य. प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, देहली. पर्व 3, श्लोक 282.

हे शुद्ध दीप्तिमान सर्वज्ञ वृषभ! हमारे ऊपर ऐसी कृपा करो कि हम कभी नष्ट न हों।

"अनिर्वाणं वृषभं मन्द जिह्वबृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्के"[1]

सारांश—मिष्टभाषी, ज्ञानी, स्तुतियोग्य ऋषभ की पूजा साधक मन्त्रों द्वारा वर्धित करो। वे स्तोता को नहीं छोड़ते।

अहो मुंचं वृषभयाज्ञिमानं विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां न पातमश्विना हुवेधिप इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तमोजः॥[2]

सारांश—सम्पूर्ण पापों से मुक्त तथा अहिंसक व्रतियों में प्रथम राजा, आदित्यस्वरूप श्री ऋषभदेव का मैं आह्वान करता हूँ। वे मुझे बुद्धि एवं इन्द्रियों के साथ बल प्रदान करें।

महर्षि शुकदेव द्वारा 'श्रीमद्भागवत' में नाभिराज एवं मरुदेवी का वर्णन—

विदितानुरागमापौरप्रकृतिं जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायाम-भिषिच्य सह मरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन महिमानवाप।[3]

गद्यसार : पुरवासियों और प्रकृति (मन्त्री आदि) को अभिव्याप्त करनेवाला जिनका प्रेम प्रसिद्ध है और नगरवासियों को जो प्रमाणित व्यक्ति थे, ऐसे महाराज नाभिराज, धर्ममर्यादा की सुरक्षा के लिए अपने पुत्र ऋषभदेव का राज्याभिषेक करके बदरिकाश्रम में प्रसन्नचित्त से घोर तप करते हुए यथासमय जीवन्मुक्त हो गये।

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ, धर्मोऽसि वृषरूपधृक्।
यदधर्मकृतः स्थानं, सूचकस्यापि तद्भवेत्॥[4]

सारांश—हे धर्मज्ञ ऋषभदेव! आप धर्म का उपदेश करते हैं। आप निश्चय से वृषभरूप से स्वयं धर्म हैं। अधर्म करनेवाले को जो नरकादि स्थान प्राप्त होते हैं, वे ही स्थान आप के निन्दक को प्राप्त होते हैं।

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं, सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः।
पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरात्, अतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः॥[5]

सारांश—मेरे इस अवतार शरीर का रहस्य साधारण जनों के लिए बुद्धिगम्य

1. ऋग्वेद मण्डल—1, सूक्त 190, मन्त्र-10
2. अथर्ववेद—19/42/4.
3. भागवतपुराण- 5/4/5, पृ. 72.
4. भागवत—1/17/22.
5. भागवत्—5/5/19.

नहीं है। शुद्ध सत्त्व ही मेरा मन है और उसी में धर्म की स्थिति है। मैंने अधर्म को अपने से अत्यन्त दूर कर दिया है, इसी कारण से सत्य पुरुष हमको ऋषभ कहते हैं।

> प्रजापतेः सुतो नाभिः, तस्यापिसुतमुच्यते।
> नाभिनो ऋषभपुत्रो वै, सिद्धकर्मदृढव्रतः॥
> तस्यापि मणिचरो यक्षः, सिद्धो हैमवते गिरौ।
> ऋषभस्य भरतः पुत्र........॥[1]

सारांश—प्रजापति के पुत्र नाभि हुए। उनके पुत्र ऋषभ, जो कृतकृत्य और दृढ़व्रती थे। मणिधर उनका यक्ष था। हिमवान् (हिमालय) पर्वत पर वे सिद्ध हुए। उनके पुत्र का नाम भरत था।

> अग्नीध्रसूनोर्नाभिस्तु, ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः।
> ऋषभाद् भरतो जज्ञे, वीरः पुत्रशताद् वरः॥
> हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं, भरताय पिता ददौ।
> तस्मात्तु भारतं वर्षं, तस्य नाम्ना महात्मनः॥[2]

तात्पर्य—नाभिराज के पुत्र ऋषभदेव हुए और ऋषभदेव के सुपुत्र भरत, अपने शत (सौ) भ्राताओं में सबसे श्रेष्ठ (ज्येष्ठ) थे। ऋषभदेव ने हिमालय के दक्षिण का क्षेत्र भरत के लिए दिया और इस कारण उस महात्मा के नाम से इस क्षेत्र का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

> नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत्।
> तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं, भारतं चेति कीर्त्यते॥[3]

श्री नाभिराज के सुपुत्र ऋषभदेव हुए और ऋषभदेव के पुत्र भरत हुए। इस क्षेत्र के शासक होने से भरत के नाम से इस क्षेत्र का नाम 'भारतवर्ष' यह प्रसिद्ध हुआ।

"ऋग्वेद में एक स्थान पर ऋषभदेव के समान श्रेष्ठ आत्मा बनने की स्तुति रुद्रदेव से की गयी है (ऋग्वेद 101/21/66)। डॉ. सर राधाकृष्णन् ने अपने गम्भीर अध्ययन के द्वारा यह सिद्ध किया है कि जैनधर्म के संस्थापक ऋषभदेव ही हैं। इस विषय में उन्होंने यजुर्वेद में कुछ मन्त्र भी खोज निकाले हैं।"[4]

जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. जैकोबी ने ऋषभदेव को ऐतिहासिक सिद्ध

---

1. आर्यमंजुश्री मूलश्लोक—390/92.
2. मार्कण्डेय पुराण—अ. 50, पृ. 150.
3. विष्णुपुराण—द्वितीयांश अ.-1, श्लोक = 57.
4. डॉ. सर राधाकृष्णन् : इण्डियन फ़िलासफी, जिल्द-1, पृ. 287

करके, उनको जैनधर्म का आद्य संस्थापक घोषित किया है।[1]

उक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि जैन, वैदिक एवं बौद्ध पुराणों के आधार से, आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव की मान्यता प्राचीनकाल से ही लोक में चली आ रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास के पृष्ठ भी ऋषभदेव का अस्तित्व घोषित कर रहे हैं।

भारत भूमि को पवित्र करनेवाले चौबीस तीर्थंकरों ने पूजा-काव्य (भक्ति काव्य) को अपने तीर्थ में सतत परम्परा रूप से प्रवाहित किया। चौबीस तीर्थंकरों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

1. इण्डियन एण्टीक्वेरी—भाग 9, पृ. 163.

क्र.	तीर्थंकर	चिह्न	जन्म नगरी	जन्मतिथि	वंश	वैराग्यकारण	केवलज्ञान	प्रमुख गणधर	निर्वाणधाम
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1.	ऋषभनाथ	वृषभ	अयोध्या	चैत्र कृ.9	इक्ष्वाकु (क्षत्रिय)	नीलांजनामरण	शकटवन (प्रयाग)	ऋषभसेन	कैलाशपर्वत
2.	अजितनाथ	गज	अयोध्या	माघ शु.10	"	उल्कापात	सहेतुकवन	सिंहसेन	सम्मेदशिखर
3.	सम्भवनाथ	अश्व	श्रावस्ती	मगसिर शु.15	"	मेघविनाश	सहेतुकवन	चारुदत्त	सम्मेदशिखर
4.	अभिनन्दन	वानर	अयोध्या	माघ शु.12	"	ग. नगरनाश	अग्रवन	व्रजचमर	सम्मेदशिखर
5.	सुमतिनाथ	चकवा	अयोध्या	श्रावण शु.11	"	जातिस्मरण	सहेतुकवन	वज्र	सम्मेदशिखर
6.	पद्मप्रभ	पद्म	कौशाम्बी	आसौज कृ.13	"	जातिस्मरण	मनोहरवन	चमर	सम्मेदशिखर
7.	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक	वाराणसी	ज्येष्ठशु.12	"	वसन्तनाश	सहेतुकवन	बलदत्त	सम्मेदशिखर
8.	चन्द्रप्रभ	अर्धचन्द्र	चन्द्रपुर	पौष कृ.11	"	12 भावना	सर्वार्थवन	वैदर्भ	सम्मेदशिखर
9.	पुष्पदन्त	मगर	काकन्दीपुर	मगसिर शु.1	"	उल्कापात	पुष्पवन	नाग	सम्मेदशिखर
10.	शीतलनाथ	कल्पवृक्ष	भद्रिलपुर	माघ कृ.12	"	हिमनाश	सहेतुकवन	कुन्थु	सम्मेदशिखर
11.	श्रेयांसनाथ	गैंडा	सिंहपुर	फाल्गुन शु.11	"	वसन्तनाश	मनोहरोद्यान	धर्मदत्त	सम्मेदशिखर
12.	वासुपूज्य	महिष	चम्पापुर	फा.शु.14	"	जातिस्मरण	मनोहरोद्यान	मन्दिर	चम्पापुर
13.	विमलनाथ	शूकर	कम्पिलापुरी	माघ शु.14	"	मेघनाश	सहेतुकवन	जयदत्त	सम्मेदशिखर
14.	अनन्तनाथ	सेही	अयोध्या	जेष्ठ कृ.12	"	उल्कापात	सहेतुकवन	अरिष्ट	सम्मेदशिखर
15.	धर्मनाथ	वज्रदण्ड	रत्नपुर	माघ शु.13	कुरुवंश	उल्कापात	आम्रवन	सेन	सम्मेदशिखर
16.	शान्तिनाथ	हरिण	हस्तिनापुर	ज्येष्ठ शु.12	इक्ष्वाकु	जातिस्मरण	सहेतुकवन	चक्रायुध	सम्मेदशिखर
17.	कुन्थुनाथ	बकरा	हस्तिनापुर	वैशाख शु.1	कुरुवंश	जातिस्मरण	सहेतुकवन	स्वयम्भु	सम्मेदशिखर

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
18.	अरनाथ	मच्छ	नागपुर	मग.शु.14	कुरुवंश	मेघनाश	मनोहरवन	कुम्भ	सम्मेदशिखर
19.	मल्लिनाथ	कलश	मिथिलापुरी	मग.शु.11	इक्ष्वाकु	12 भावना	नीलवन	विशाख	सम्मेदशिखर
20.	मुनिसुव्रतनाथ	कच्छप	राजगृह	आसौज शु.12	यादव (क्षत्रिय)	जातिस्मरण	[illegible]त्रवन	मल्लि	सम्मेदशिखर
21.	नमिनाथ	नीलकमल	मिथिलापुरी	अषाढ़ शु.10	इक्ष्वाकु	जातिस्मरण	[illegible]कुल	सुप्रभ	सम्मेदशिखर
22.	नेमिनाथ	शंख	शौरीपुर	वैशाख शु.13	यादव	जातिस्मरण	[illegible]प्रशृंग	वरदत्त	ऊर्जयन्तगिरि
23.	पार्श्वनाथ	सर्प	वाराणसी	पौष कृ.11	उग्रवंश	जातिस्मरण	[illegible]जुकूलानदी	स्वयम्भू	सम्मेदशिखर
24.	महावीर	सिंह	कुण्डलपुर	चैत्र शु.13	नाथवंश (क्षत्रिय)	जातिस्मरण	[illegible]वावन	इन्द्रभूति	पावापुरी

इन तीर्थंकरों ने न केवल भक्ति-काव्य की धारा को प्रवाहित किया, अपितु विश्वकल्याण के लिए अहिंसा, अनेकान्त, (स्याद्वाद), अपरिग्रह, अध्यात्मवाद और मुक्तिवाद जैसे सिद्धान्तों का, सहस्रों देशों में विहार करते हुए प्रणयन किया, इसी कारण से वे तीर्थंकर, तीर्थकर, तीर्थकृत् इत्यादि नाम से प्रसिद्ध हैं। संस्कृत व्याकरण से निरुक्ति है—धर्मतीर्थं करोतीति तीर्थंकरः।

तृ (प्लवन-तरणयोः) धातु से थक् प्रत्यय करने पर तीर्थ सिद्ध है। जिसके द्वारा या जिसके आधार से संसार-सागर तरा जाए।

इस समय अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर द्वारा प्रसारित भक्ति-काव्य (पूजा-काव्य) आदि सिद्धान्तों की गंगा बह रही है जिसमें सभी मानव स्नान करते हैं।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् आचार्य-परम्परा

1. गौतम स्वामी	केवलज्ञानी	12 वर्ष
2. सुधर्माचार्य	केवलज्ञानी	12 वर्ष
3. जम्बूस्वामी	केवलज्ञानी	38 वर्ष
		योग-62 वर्ष
4. विष्णुनन्दी	श्रुतकेवली	14 वर्ष
5. नन्दिमित्र	श्रुतकेवली	16 वर्ष
6. अपराजित	श्रुतकेवली	22 वर्ष
7. गोवर्धन	श्रुतकेवली	19 वर्ष
8. भद्रबाहु	श्रुतकेवली	29 वर्ष
		योग-100 वर्ष
9. विशाखाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	10 वर्ष
10. प्रोष्ठिलाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	19 वर्ष
11. क्षत्रियाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	17 वर्ष
12. जयसेनाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	21 वर्ष
13. नागसेन	दशपूर्वज्ञानधारी	18 वर्ष
14. सिद्धार्थ	दशपूर्वज्ञानधारी	17 वर्ष
15. धृतिषेण	दशपूर्वज्ञानधारी	18 वर्ष
16. विजयाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	13 वर्ष
17. बुद्धिलिंग (बुद्धिल)	दशपूर्वज्ञानधारी	20 वर्ष
18. देवाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	14 वर्ष
19. धर्मसेनाचार्य	दशपूर्वज्ञानधारी	14 वर्ष
		योग-181 वर्ष

20. नक्षत्र	ग्यारह अंगज्ञानी	18 वर्ष
21. जयपाल	अंगज्ञानी	20 वर्ष
22. पाण्डव	अंगज्ञानी	39 वर्ष
23. ध्रुवसेन	अंगज्ञानी	14 वर्ष
24. कंसाचार्य	अंगज्ञानी	32 वर्ष
		योग-123 वर्ष
25. सुभद्र	अनेक अंगज्ञानी	6 वर्ष
26. यशोभद्र	अनेक अंगज्ञानी	18 वर्ष
27. भद्रबाहु (द्वि.)	अनेक अंगज्ञानी	23 वर्ष
28. लोहाचार्य	अनेक अंगज्ञानी	52 वर्ष
		योग-99 वर्ष
29. अर्हद्बलि	एक अंगज्ञानी	28 वर्ष
30. माघनन्दि	एक अंगज्ञानी	21 वर्ष
31. धरसेन	एक अंगज्ञानी	19 वर्ष
32. पुष्पदन्त	एक अंगज्ञानी	30 वर्ष
33. भूतबलि	एक अंगज्ञानी	20 वर्ष
		योग-118 वर्ष
		कुल योग- 683 वर्ष[1]

इसके पश्चात् भगवान महावीर की जो आचार्य-परम्परा सतत प्रवाहित होती रही है उसके द्वारा सिद्धान्त साहित्य, अध्यात्म साहित्य, कर्म साहित्य, पौराणिक चरित काव्य, कथा-काव्य, दूतकाव्य, न्यायदर्शन साहित्य, आचार-काव्य, स्तोत्र एवं पूजाभक्ति-काव्य, नाटक-काव्य और विविधविषयक काव्यों की यथा समय यथाविषय यथायोग्य संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश आदि भाषाओं में रचना की गयी है जिससे धर्म, दर्शन, साहित्य और काव्यों का अखण्ड रूप से प्रचुर प्रसार और प्रचार हुआ है। वह आचार्य परम्परा अखिल विश्व का कल्याण करती है। उसकी विशालता का दिग्दर्शन अग्र पृष्ठ पर अंकित है।

1. आचार्य गुणधर—विक्रमपूर्व प्रथम श.ती.
2. आचार्य धरसेन--सन् 73
3. आ. पुष्पदन्त—सन् 50 से 80
4. आ. भूतबलि—सन् 87 प्रायः

---

1. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2 : डॉ. नेमिचन्द्रजैन सागर : सन् 1974, पृ. 19.

5. आ. यतिवृषभ—सन् 176
6. उच्चारणाचार्य—ई. द्वितीय शती का अन्त
7. आर्य मंक्षु— वी.नि. 467
8. आ. नागहस्ति—वी.नि. 620 से 689 तक
9. आ. कुन्दकुन्द—सन् प्रथम शती
10. आ. वट्टकेर—सन् प्रथम शती
11. आ. शिवार्य—सन् प्रथम शती
12. गृद्धपिच्छाचार्य (उमास्वामी ई.) प्रथम शती
13. आ. कार्तिकेय (कुमार) वि.द्वि. शती
14. आ. वप्पदेव—ई. सन् 5-6 शती
15. आ. समन्तभद्र—ई. सन् द्वि. शती
16. आ. सिद्धसेन—वि.सं. 625 के समीप
17. पूज्यपाद (देवनन्दि) ई. छठी शती
18. पात्र केसरी—वि. छठी शती—उ.भा.
19. जोइन्दु (योगीन्द्र) ई. छठी शती उ.भा.
20. आ. विमलसूरि—ई. 4 शती निकट
21. ऋषिपुत्र—ई. छठी शती निकट
22. आ. मानतुंग—ई. 7 शती मध्यवर्ती
23. आ. अकलंक—वि.सं. 7 शती उ.भा.
24. एलाचार्य—ई. 8-9 शती का मध्य
25. आ. वीरसेन—ई. सन् 816
26. जिनसेन (द्वि.) ई. नवमी शती
27. आ. वीरनन्दि (सि.च.)—ई. 12 शती मध्य
28. आ. विद्यानन्द—ई. नवमी शती
29. देवसेन—वि.सं. 990-1012 तक
30. आचार्य अमितगति (प्र.) वि.सं. 1000
31. अमितगति (द्वि)—वि.सं. 11वीं शती
32. आ. जिनसेन (प्र.)—ई. 748-818 तक
33. आ. अमृतचन्द्र—वि.सं. 962
34. आ. प्रभाचन्द्र—ई. सन् 11वीं शती
35. अनन्तवीर्य—वि.सं. शती का पूर्वभाग
36. वीरनन्दि (द्वि)—ई. 950 से 999 तक
37. नरेन्द्र सेन— वि.सं. 12वीं शती
38. महासेनाचार्य (प्र.)—वि.सं. 1050

39. भावसेन त्रैविद्य—सन् 13 शती का मध्य
40. आ. आर्यनन्दि—
41. नेमिचन्द्र गण (नेमि. सि.देव) सं. 1125
42. पद्मनन्दि (प्रथम) सन् ई. 977 निकट
43. आमल्लिषेण—ई. सन् 11वीं शती
44. आ. भट्टवोसरि—सन् 10-11 शती मध्य
45. आ. हरिषेण—ई. सन् 914
46. आ. वादिराज—ई. 1010 से 1065
47. पद्मनन्दि (द्वि) सन् 11वीं शती
48. पद्मप्रभमलधारिदेव—सन् 12वीं शती
49. महासेन (द्वि) सन्—8-9 शती मध्य
50. आ. गणधर कीर्ति—वि.सं. 1189
51. आ. सोमदेव—ई. सन् 959
52. मुनि पद्मकीर्ति—शक सं. 999
53. हस्तिमल्ल प.क.—वि. 1217-1237.
54. आ. शुभचन्द्र—वि.सं. 11वीं शती
55. आ. रामसिंह—
56. जयसेन (प्र.)—वि.सं. 1055
57. आ. अनन्तकीर्ति—सन् 9वीं शती उत्तर
58. आ. नयनन्दि—वि.सं. 11-12 शती मध्य
59. जिनचन्द्राचार्य—ई. 11-12 श. मध्य
60. माधवचन्द्र त्रैविद्य— सन् 1100-1225
61. श्रीधर आचार्य—सन् 8-9 शती मध्य
62. आ. विश्वसेन
63. दुर्ग देवाचार्य—सन् 11वीं शती
64. जयसेन (द्वि.) सन् 11-12 शती मध्य
65. रामसेनाचार्य—सन् 11 शती का उत्तरभाग
66. आ. वसुनन्दि—सन् 11-12 शती मध्य
67. इन्द्रनन्दि—(द्वि) सन् 10-11 शती मध्य
68. इन्द्रनन्दि (प्र.) सन् 10वीं शती मध्य
69. उग्रदित्याचार्य—वि.सं. 749
70. आ. नयसेन—ई. सन् 1121.
71. आ. श्रुतमुनि—सन् 13 शती का अन्त
72. आ. माघनन्दि—ई. 12 शती का अन्त

73. मुनि पद्मसिंह—वि.सं. 1080
74. रविषेणाचार्य—वि.सं. 840
75. जयसिंह नन्दि—सन् 7-8 शती मध्य
76. नेमिचन्द्र सि.च.—ई. 10 शती उ.भा. या वि. 11 शती का पूर्वभाग
77. आ. सिंहनन्दि—ई. द्वि. शती
78. आ. सुमति—वि.सं. 8-9 शती मध्य
79. कुमारनन्दि—वि. सं. 8वीं शती
80. कुमार सेन गुरु—वि.सं. 8वीं शती
81. वज्रसूरि—वि.सं. 6वीं शती
82. यशोभद्र—वि.स. 6वीं शती पूर्व भाग
83. शान्तिषेण—वि.स. 7वीं शती
84. आ. श्रीपाल—वि.सं. 9वीं शती
85. काणभिक्षु—जिनसेन (द्वि) के पूर्ववर्ती
86. कनकनन्दि—वि.सं. 10-11 शती मध्य
87. गुणभद्र—ई. नवमशती का अन्तचरण
88. शाकटायन पाल्यकीर्ति—सन् 1140 प्रायः
89. वादीभसिंह—वि. 11 शती का उ.भा.
90. महावीराचार्य—ई. 9वीं शती का पू. भा.
91. बृहत् अनन्तवीर्य—सन् 975-1025 मध्य
92. माणिक्यनन्दि—वि.सं. 1060 (ई. 1003)
93. आचार्य श्रीदत्त—वि.सं. 4-5 शती के मध्य।
94. महाकवि आ. विशेषवादि—ई. नवमी शती।

इनके अतिरिक्त हरिवंश पुराण के अन्त में लिखित प्रशस्ति के अनुसार आचार्य विनयन्धर से लेकर जिनसेन आचार्य तक चौंतीस (34) आचार्यों का उल्लेख है।[1]

विभिन्न प्रान्तों में, विक्रम सं. की पंचम शती के मध्यभाग से लेकर वि.सं. 1865 तक, श्री आ. बृहत् प्रभाचन्द्र से लेकर आ. ललितकीर्ति तक पचास (50) आचार्य विश्वविख्यात हुए हैं जिन्होंने संस्कृत प्राकृत आदि विविध भाषाओं में अनेक सिद्धान्त विषयों पर तथा काव्यों पर रचना कर साहित्य एवं जैनदर्शन का प्रसार तथा प्रचार किया है।[2]

जिस प्रकार गणधरों, महर्षियों और आचार्यों की परम्परा ने सिद्धान्त दर्शन एवं साहित्य की अनुभवपूर्ण रचनाओं से श्री तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्यवाणी

---

1. पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. 451.
2. वही पुस्तक, पृ. 299 से 452.

को, विश्व-कल्याण के लिए प्रसारित किया है, उसी प्रकार आचार्य तुल्य का व्यवहार और लेखकों ने भी अपने जीवन में आचार्यों द्वारा निर्मित सैद्धान्तिक दार्शनिक एवं साहित्यिक विषयों का अनुशीलन कर अपनी प्रशस्त रचनाओं द्वारा मानव समाज का महान् कल्याण किया है तथा आचार्यों की परम्परा का अनुकरण कर भगवान महावीर की विश्वकल्याणी वाणी को आगे बढ़ाया है। भारत के विविध प्रदेशों में जन्मकाल से ही अपनी प्रतिभा रखते हुए संस्कृत भाषा में इन काव्यकारों तथा लेखक महानुभावों ने चारित्रकाव्यों, पूजा-काव्यों और नैतिक काव्यों का सृजन कर भारतीय साहित्य और संस्कृति के विकास में स्वकीय पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। संस्कृत भाषा के इन लेखकों एवं कवियों की सूची अंकित है—

महाकवि धनंजय, महाकवि हरिचन्द्र, चामुण्डराय, विजयवर्णी, महाकवि आशाधर, पद्मनाभ कायस्थ, धर्मधर, श्रीधरसेन, पण्डित वामदेव, रामचन्द्र मुमुक्षु, दोड्डय्य, पद्मसुन्दर, ब्रह्म कृष्णदास, अरुणमणि, महाकवि असग, वाग्भट्ट, (प्रथम), अजित सेन, अभिनव वाग्भट्ट, महाकवि अर्हद्दास, ज्ञानकीर्ति, गुणभद्र (द्वितीय), नागदेव, पण्डित मेधावी, वादिचन्द्र, राजमल, पं. जिनदास, अभिनव चारुकीर्ति, जगन्नाथ।

संस्कृत भाषा के उपरिकथित काव्यकार और लेखक भारत के विभिन्न प्रदेशों में ई. सन् की आठवीं शती से लेकर वि.सं. की 17वीं शती के अन्त और 18वीं शती के प्रारम्भ तक अपनी प्रज्ञाप्रतिभा द्वारा साहित्य और काव्य की धारा को प्रवाहित करते आये हैं। इन संस्कृतज्ञ कवियों ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए मानवहित की भावना से सिद्धान्त, आचार, दर्शन, उपासना, नीति आदि विषयों की रचना कर भारतीय साहित्य को समृद्ध बनाया है।

प्राकृत-अपभ्रंश भाषा के कवि और लेखक

संस्कृत साहित्य की विविध रचनाओं के समान प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में भी काव्यकारों ने भारतीय साहित्य की समृद्धि के लिए अपनी सजीव लेखनी का प्रयोग किया है। इन काव्यकारों द्वारा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, धर्म, नीति, आचार शास्त्र एवं उपासना या पूजा-काव्यों का सृजन हुआ है। इन प्राकृत-अपभ्रंश भाषा के विद्वानों ने विक्रम की छठी शती से लेकर वि. 17वीं शती तक अपनी काव्य प्रतिभा से विश्व को प्रभावित किया है। इनके शुभनामों की तालिका निम्न प्रकार है—कवि चतुर्भुज, त्रिभुवन स्वयम्भु, कवि धनपाल, हरिषेण, श्रीचन्द्र, श्रीधर (द्वितीय), देवसेन, मुनि कनकामर, लाखु, देवचन्द्र, बालचन्द्र, महाकवि दामोदर, दामोदर (तृतीय), महाकवि रइधू, लक्ष्मण देव, धनपाल (द्वि.), गुणभद्र, हरिचन्द्र (द्वि.) महीन्दु, कवि अलवाल, कवि शाह ठाकुर, कवि माणिकचन्द्र, कवि ब्रह्मसाधारण, कवि अल्हू, पं. योगदेव, कवि देवदत्त, सन्त तारणस्वामी, महाकवि स्वयम्भुदेव, महाकवि पुष्पदन्त,

धवल कवि, वीर कवि, श्रीधर (प्रथम), श्रीधर (तृतीय), अमरकीर्ति गणि, महाकवि सिंह, यशः कीर्ति (प्रथम), उदयचन्द्र, विनयचन्द्र, दामोदर (द्वि.) अथवा ब्रह्म, सुप्रभाचार्य, विमलकीर्ति, तेजपाल, कवि हरिचन्द्र या जयमित्रहल, हरिदेव, नरसेन या नरदेव, विजयसिंह, वल्ह या बूचिराज, माणिक्यराज, भगवती दास, कवि देवनन्दि, जल्हि गले, कवि लक्ष्मी चन्द्र, कवि नेमिचन्द्र।

हिन्दी के प्रमुख कवि और लेखक

विश्व के राष्ट्रों में समय-समय पर जैसे-जैसे भाषाओं का आविष्कार और विकास होता जाता है वैसे-वैसे ही उन भाषाओं में साहित्य-सिद्धान्त की रचना करना भी परम आवश्यक होता है। अपभ्रंश के पश्चात् राजस्थानी तथा ब्रजभाषा का भी राष्ट्र में विकास हुआ है तथा उस भाषा में काव्य की रचना भी बहुत हुई है। इसी क्रम में परिष्कृत हिन्दी भाषा का विकास, प्रसार तथा प्रचार हुआ है और इतना प्रसार हुआ है कि परिष्कृत हिन्दी भाषा ने राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त किया। इसलिए इस राष्ट्रभाषा में भी साहित्य रचना आवश्यक होने से जैन कवि और लेखकों ने सिद्धान्तों एवं उपासना आदि तत्त्वों पर अपनी ओजस्वी लेखनी चलायी है। हम यहाँ अब हिन्दी भाषा के कवियों एवं लेखकों का नाम निर्देश करते हैं—

महाकवि बनारसीदास, पं. रूपचन्द्र या रूपचन्द्र पाण्डेय, जगजीवन, कुँवर पाल, कवि सालिवाहन, कवि बुलाकीदास, भैया भगवतीदास, महाकवि भूधरदास, कवि द्यानतराय, किशनसिंह, कवि खड्गसेन, मनोहरलाल या मनोहरदास, नथमल विलाला, पं. दौलतराम काशलीवाल, आचार्यकल्प पं. टोडरमल, दौलतराम द्वितीय, पं. जयचन्द्र छावड़ा, दीपचन्द्र शाह, सदासुख काशलीवाल, पण्डित भागचन्द्र, कवि बुधजन, कवि वृन्दावनदास, जयसागर, खुशालचन्द्र काला, शिरोमणिदास, जोधराज गोदीका, कवि लोहट, लक्ष्मीदास, गद्यकार राजमल्ल, पाण्डे जिनदास, ब्रह्मगुलाल, भारामल, बखतराम, टेकचन्द्र, पं. जगमोहनदास, पं. परमेष्ठीदास, मनरंगलाल, नवलशाह।

इनके अतिरिक्त अन्य जैन कवि महोदय भी संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, हिन्दी, कन्नड़, तामिल, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के काव्यकार रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। जिन्होंने साहित्य-दर्शन, सिद्धान्त और आचारशास्त्र के विविध अंगों की रचना कर भारतीय संस्कृति एवं साहित्य को समृद्धशाली बनाया। साहित्य संसार के निर्माता ये ग्रन्थकार, कवि और लेखक, विधाता कहे जाते हैं। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं।

जैन पूजा-काव्य का मौलिक आधार

बाह्य निमित्त—जैन पूजा-काव्य का मूल उद्भव और विकास को ज्ञात करने के पश्चात् स्वभावतः यह प्रश्न होता है कि जैन पूजा-काव्य का या जैन पूजा का मूल आधार या आश्रय अथवा स्पष्ट शब्दों में कहा जाए कि पूज्य कौन है, किस

की पूजा करना आवश्यक है। विचार करने पर प्रश्न का उत्तर शास्त्रों से यही सिद्ध होता है कि सत्यार्थ देव, शास्त्र (वाणी), गुरु की पूजा करना चाहिए। इन तीन पूज्य रत्नों की पूजा या उपासना करने से ही पूजक की आत्मा पवित्र होती है। आत्महित का मार्ग ज्ञात होता है। सत्यार्थ देव की परिभाषा है—जो सर्वज्ञ, वीतराग और सब प्राणियों को हित का उपदेश करनेवाला हो उसको सत्यार्थ देव कहते हैं, जिस महात्मा को अर्हन्त, जिन, जीवन्मुक्त, सकलपरमात्मा इत्यादि नामों से स्मरण करते हैं। सत्यार्थ देव का प्रथम विशेषण-'सर्वज्ञ' है जिसका स्पष्ट अर्थ होता है कि जिस महात्मा के ज्ञानावरण कर्मदोष के नाश होने से सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शनावरण कर्मदोष के नाश होने से पूर्ण दर्शन (पूर्णद्रष्टा), मोहनीय कर्मदोष के अभाव से अक्षय सुख (शान्ति) और अन्तराय कर्मदोष के अभाव से पूर्ण शक्ति (आत्मबल) ये चार सम्पूर्ण निर्मलगुण विकसित हो गये हैं उसको सर्वज्ञ या पूर्ण ज्ञाता द्रष्टा कहते हैं।

द्वितीय विश्लेषण 'वीतराग' का अर्थ होता है कि जिसने आत्मबल से अठारह दोषों को जीत लिया है, 18 दोषों के नाम इस प्रकार हैं—(1) जन्म, (2) जरा, (3) तृषा, (प्यास), (4) क्षुधा (भूख), (5) आश्चर्य, (6) अरति, (7) दुःख, (8) रोग, (9) शोक, (10) मद, (11) मोह, (12) भय, (13) निद्रा, (14) चिन्ता (आकुलता), (15) स्वेदमल, (16) राग, (17) द्वेष, (18) मरण।

तृतीय विश्लेषण—'हितोपदेशी' वह होता है जो जीवन्मुक्त या अर्हन्त हो, विशद् केवलज्ञानी हो, कर्मकलंक से रहित हो, कृतकृत्य या सिद्ध साध्य प्राप्त हो, अक्षय हो, विश्व के प्राणियों का कल्याण करनेवाला हो। सारांश यह है कि जो महान् आत्मा सर्वदर्शी वीतराग और हितोपदेशक हो वही वास्तव में सत्यार्थ देव हो सकता है, स्वयं विचार करें कि जो अल्पज्ञानी या मिथ्या-ज्ञानी हो, रागी दोषी हो, और हित की वाणी न कह सकता हो वह यथार्थ देव कैसे हो सकता है, कदापि नहीं।

तीन रत्नों में दूसरा रत्न शास्त्र की परिभाषा इस प्रकार ज्ञातव्य है जो यथार्थ आप्त (अर्हन्त) द्वारा उपदिष्ट हो, जिस देव की वाणी को कोई असत्य सिद्ध न कर सके, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, तर्क आदि प्रमाणों से विरोध रहित हो, वस्तुतत्त्व का कथन करनेवाला हो, समस्त प्राणियों का कल्याण करनेवाला हो, हिंसा, असत्य, अन्याय, मद्यपान, माया, मद, लोभ आदि दोषों का नाश करनेवाला हो, श्री गणधर एवं उनके शिष्य आचार्यों द्वारा रचित हो, वही वास्तव में 'शास्त्र, कहा जाता है। इसी को दूसरे शब्दों में दिव्य ध्वनि, दिव्योपदेश, जिनशासन, जिनवाणी, आगम, सरस्वती, द्वादशांगवाणी, सिद्धान्त, स्याद्वादवाणी आदि नामों से कहते हैं। भगवान महावीर या अर्हन्त देव की वाणी इस कारण से सत्य है क्योंकि वे ज्ञानावरण आदि दोषों से रहित हैं, वक्ता की प्रामाणिकता से उसके वचनों में प्रमाणता सिद्ध होती है, निर्दोष व्यक्ति के वचन निर्दोष और अज्ञानी सदोष व्यक्ति के वचन सदोष होते हैं। भगवान अर्हन्त की या तीर्थंकर महावीर की वाणी में सत्यता सिद्ध करने की

दूसरी युक्ति यह है कि भगवान महावीर का कहना है जो हम कहते वह ही सत्य है, इस वाक्य को मत मानो, किन्तु जो स्वयं सत्य सिद्ध है स्वाभाविक वस्तु स्वरूप है वह हम कहते हैं, इस वाक्य को मान लो तो वीतराग अर्हन्त के वचनों में सत्यता सिद्ध हो जाती है।

तीन रत्न जो पूर्व में कहे गये हैं उनमें तृतीय रत्न सत्यार्थ गुरु है, उसकी परिभाषा पर ध्यान दिया जाए—

(1) स्पर्शन, (2) रसना, (3) नासिका, (4) नेत्र, (5) कर्ण, इन पंच इन्द्रियों के विषयभोगों से जो विरक्त हो, (1) हिंसा, (2) असत्य, (3) चौर्य या अपहरण, (4) कुशील या व्यभिचार, (5) परिग्रह। इन पंच पापों का परित्यागी हो, जो अन्तरंग तथा बहिरंग परिग्रह या लोभ माया आदि के आडम्बर से रहित हो, जो कुटुम्ब के वातावरण से निश्चिन्त हो, एवं जो ज्ञानाभ्यास ध्यानयोग और अन्तरंग, बहिरंग रूप तपश्चरण में सर्वदा दत्तचित्त रहता हो वह वास्तविक गुरु कहा जाता है। इनको दूसरे शब्दों में ऋषि, यति, मुनि, भिक्षु, तापस, तपस्वी, संयमी, योगी, वर्णी, आचार्य, उपाध्याय और साधु भी कहते हैं। ये महात्मा स्वपरहितकारी कर्तव्य पथ पर स्वयं चलते और अन्य मानवों को चलाते हैं।

इस प्रकार सत्यार्थ देव (परमात्मा), सत्यार्थ शास्त्र (दिव्यवाणी), तथा वास्तविक गुरु (तपस्वी सन्त)—ये तीन शुभ पूज्यरत्न, जैन पूजा-विधान के आधार (आश्रय) या निमित्त हैं। प्रत्येक गृहस्थमानव को प्रतिदिन उक्त पूज्यरत्नत्रय का अर्चन कर आत्मा को पवित्र करना चाहिए। जैनदर्शन में 'देवशास्त्रगुरु-पूजा' इस नाम से प्रसिद्ध महापूजा कही जाती है, यह इसकी प्रथम विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि यह देवशास्त्र गुरु पूजन सामान्य पूजन है, इसमें कोई विशेष व्यक्ति महात्मा के नाम से पूजन या गुण कीर्तन किया गया नहीं है इसलिए इसमें सम्पूर्ण वीतराग परमदेवों (1. अर्हन्त, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय, 5. साधु, 6. जिनधर्म, 7. जिनवाणी या जिनशास्त्र, 8. चैत्य (जिन प्रतिमा), 9. जिन चैत्यालय) का अन्तर्भाव हो जाता है तथा नवदेवों की समस्त पूजाओं का अन्तर्भाव हो जाता है। तृतीय विशेषता इस महापूजन में यह है कि 'देवशास्त्रगुरु' ये तीन पूज्यरत्नत्रय कहे जाते हैं, इनको शुभरत्नत्रय भी कहते हैं। ये शुभरत्नत्रय, आध्यात्मिक रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के परम कारण हैं जो आध्यात्मिक रत्नत्रय मुक्ति या परमात्मा पद की प्राप्ति के विशेष कारण हैं। इस विषय में आचार्य श्री उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में अध्याय प्रथम में कहा है—'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'[1] अर्थात् सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न समीकरण रूप से मोक्ष का मार्ग है। कविवर श्री द्यानतराय ने स्वरचित हिन्दी की देवशास्त्र-गुरु-पूजन में स्पष्ट कथन

1. तत्त्वार्थसूत्र : सं.पं. मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर : सन् 1985 : अ. 1, सूत्र 1.

किया है—"देवशास्त्रगुरुरतनशुभ, तीन रतन करतार। भिन्न-भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार"।[1]

अर्थात् देव, शास्त्र, गुरु—ये तीन शुभरत्न हैं जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—इन तीन आध्यात्मिक रत्न के परमकारण हैं और ये आध्यात्मिक रत्न मुक्ति के कारण हैं। इन तीन विशेषताओं के कारण ही, दैनिक पूजन में एवं विशेष पूजन तथा विधानों में, देव-शास्त्र-गुरु पूजन सबसे प्रथम की जाती है चाहे वह संक्षेप से हो या विस्तार से हो।

प्राचीन संस्कृत भाषा की देव-शास्त्र-गुरु महापूजन में इस पूजा का महत्त्व तथा प्रयोजन एवं विशेषता का दर्शन कराया गया है—

> ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
> त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयन्तो नराः।
> पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा-
> स्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम्॥[2]

सारांश—जो पुण्यात्मा मानव प्रातः मध्यकाल और सायंकाल, अनेक प्रकार की भावपूर्ण काव्य-रचना द्वारा गुण कीर्तन करते हुए भक्ति से सदा देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करते हैं वे भव्य मानव मुनिपद धारण कर तपश्चरण से शोभित होते हुए केवल ज्ञान से रुचिर उत्कृष्ट निर्वाणपद को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार जैन पूजा का आधार या निमित्त यथार्थ देव-शास्त्र-गुरु—ये तीन शुभरत्न कल्याणकारी हैं।

उपरिकथित तथ्य, कृतयुग (अवसर्पिणी का चतुर्थकाल) में अवतरित हुए साक्षात् तीर्थंकर अर्हन्त देव का है, उनकी दिव्यवाणी साक्षात् शास्त्र या धर्म की है और उन तीर्थंकर के मार्ग पर आचरण करनेवाले साक्षात् साधु का है, परन्तु वर्तमान युग में साक्षात् तीर्थंकर के अभाव में, उनकी प्रतिनिधि रूप वीतराग प्रतिमा की, दिव्यवाणी के अभाव में उसकी प्रतिनिधि रूप शास्त्र या ग्रन्थ की और साक्षात् साधु के अभाव में उनके प्रतिनिधिस्वरूप तत्प्रतिमा की अथवा सुयोग्य ज्ञानी ध्यानी दिगम्बर मुनि की उपासना करना उपयुक्त है। यदि यह पद्धति न अपनायी जाए तो गृहस्थ मानव समाज को उपासना करने का अन्य कोई उपाय नहीं है अतः देव-शास्त्र-गुरु की प्रतिनिधि पद्धति से उपासना करना श्रेयस्कर है।

प्रश्न—यहाँ पर कोई तर्कवादी व्यक्ति प्रश्न करता है कि आकाशपुष्प के समान सर्वलोक में सर्वज्ञ वीतराग-अर्हन्त का अभाव है अतः सर्वज्ञ के प्रति

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि - सं.पं. फूलचन्द्र शास्त्री : भा. ज्ञानपीठ देहली : सन् 1977 : पृ. 110.
2. तथैव, पृ. 43.

पूजा-भक्ति का अनुष्ठान करना व्यर्थ है, कारण कि जिस देव का सद्भाव माना जाए उसकी ही पूजा-भक्ति का विधान करना उचित होता है।

उत्तर—प्रश्नकर्ता का यह प्रश्न सम्यक् नहीं है, कारण कि अनुमान, आगम और युक्ति से अर्हन्त सर्वज्ञ की सिद्धि होती है। अतः उसके विषय में पूजा-भक्ति का अनुष्ठान करना भी समीचीन है।

अनुमान प्रमाण से सर्वज्ञ की सिद्धि पर ध्यान देना चाहिए। सूक्ष्म पदार्थ (परमाणु आदि), अन्तरित पदार्थ (काल के अन्तर से सहित श्री रामचन्द्र आदि महापुरुष), दूरवर्ती पदार्थ—(मेरु-हिमालय पर्वत आदि) किसी आत्मा के प्रत्यक्ष से दृष्ट है क्योंकि ये पदार्थ अनुमान से जाने जाते हैं अग्नि के समान। जैसे दूर पर्वत आदि पर स्थित अग्नि हम सबके द्वारा, धूम देखकर अनुमान से जानी जाती है तथा अग्नि, पर्वत पर खड़े हुए पुरुषों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखी जाती है, उसी प्रकार सूक्ष्म, कालान्तरित और दूरवर्ती पदार्थ हम सबके द्वारा अनुमान करने योग्य हैं और वहाँ स्थित पुरुषों के द्वारा एवं प्रत्यक्षदर्शी महात्मा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जाने जाते हैं और जो महात्मा उन तीन प्रकार के पदार्थों को प्रत्यक्ष जानता है वही सर्वज्ञ है।

प्रश्न—पुद्गल का परमाणु नेत्र से दिखाई नहीं देता, इसलिए उसका अभाव है।

उत्तर—यह कहना सत्य नहीं कि परमाणु की भी अनुमान से सिद्धि होती है, परमाणु को सिद्धि करनेवाला अनुमान यह है--इस जगत् में परमाणु विद्यमान हैं क्योंकि परमाणु समूह से बने हुए घट पट आदि पदार्थ देखे जाते हैं, यह सभी मानव प्रत्यक्ष जानते हैं। इसी प्रकार सर्वज्ञदेव भी अनुमान से जाने जाते हैं। यदि सर्वज्ञ अर्हन्त द्वारा पदार्थों का उपदेश न दिया जाता तो हम सब सूक्ष्म पदार्थ तथा रामचन्द्र युधिष्ठिर आदि महापुरुषों को एवं मेरुपर्वत स्वर्ग, नरक आदि को कैसे जान सकते थे, सभी मानव अज्ञानान्धकार में पड़े रहते। अतः सर्वज्ञ का सद्भाव सिद्ध होता है।

सर्वज्ञ अर्हन्त की सिद्धि का दूसरा अनुमान—भगवान् अर्हन्त सर्वज्ञ हैं क्योंकि वे दोषरहित हैं। जो सर्वज्ञ हैं वे निर्दोष हैं, जो सर्वज्ञ नहीं है वह आत्मा निर्दोष नहीं है जैसे रथ्यापुरुष (मार्ग में चलनेवाला पुरुष)। इस अनुमान से भी सर्वज्ञ की सिद्धि होती है। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि जो अल्पज्ञानी या मिथ्याज्ञानी पुरुष हैं वे निर्दोष नहीं हैं अर्थात् दोष सहित हैं। वे सर्वज्ञ कैसे हो सकते हैं, कभी नहीं।

अर्हन्त सर्वज्ञ, अज्ञान-मोह-राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोषों से हीन वीतराग हैं क्योंकि आपके कथित अहिंसा, स्याद्वाद, मुक्ति, अपरिग्रह, अध्यात्मवाद आदि सिद्धान्त, प्रत्यक्ष अनुमान आगम और स्वानुभव रूप युक्तियों से परस्पर विरोध को प्राप्त नहीं होते। जो-जो आत्मा निर्दोष होती है उस-उसके वचनों में कभी परस्पर विरोध नहीं देखा जाता। नीति है कि वक्ता की प्रमाणता से वचनों में प्रमाणता होती

है। वक्ता यदि निर्दोष है तो वचन भी उसके निर्दोष तथा अविरुद्ध होते हैं और वक्ता यदि पक्षपाती, अज्ञानी, शराबी और द्यूतकारी होता है तो उसके वचन भी दोषपूर्ण-अन्यायी-पापपूर्ण-अहितकारी होते हैं। अतः अर्हन्त सर्वज्ञ निर्दोष हैं अतएव उनके उपदेश तथा सिद्धान्त भी निर्दोष तथा विरोध-रहित हैं।

आगम प्रमाण द्वारा भी सर्वज्ञ अर्हन्त सिद्ध होता है, इसका प्रमाण—

> सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद् यथा।
> अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः॥
> स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
> अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते॥[1]

अर्थात् सूक्ष्म परमाणु आदि, कालान्तरित रामचन्द्र युधिष्ठिर आदि, दूरवर्ती मेरु हिमालय आदि पदार्थ किसी आत्मा के प्रत्यक्ष गोचर अवश्य हैं। कारण कि वे अनुमान करने योग्य हैं, जैसे धूम से दूरस्थित अग्नि का अनुमान किया जाता है तथा वह अग्नि किसी व्यक्ति के द्वारा प्रत्यक्ष देखी गयी है। उसी प्रकार ये तीन प्रकार के पदार्थ भी किसी आत्मा के प्रत्यक्ष दृष्ट हैं और समस्त लोक के पदार्थों का वह प्रत्यक्षदर्शी सर्वज्ञ ही है। वह सर्वज्ञ अर्हन्त देव ही सर्वज्ञ इस कारण से है कि वह अज्ञान-मोह आदि दोषों से रहित है, तथा वह निर्दोष इस कारण से है कि उसके वचन (उपदेश) युक्ति आगम तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से विरोधरहित हैं और उसके वचन विरोध रहित इस कारण से हैं कि प्रत्यक्ष या स्वानुभव से मुक्ति, अहिंसा, स्याद्वाद आदि सिद्धान्त परस्पर विरोधपूर्ण नहीं हैं एवं विश्व के हितकारी हैं।

सर्वज्ञपरमात्मा की सिद्धि में कुछ अनुभवपूर्ण स्पष्ट युक्तियाँ

आकाशपुष्प, वन्ध्यापुत्र, घोड़े के सींग, गन्ने में फल इत्यादि पदार्थों का वर्णन किसी शास्त्र में नहीं देखा जाता है इसलिए इनका सद्भाव नहीं है परन्तु सर्वज्ञ अर्हन्त का वर्णन प्रमाण तथा युक्तियों से शास्त्रों में देखा जाता है, उनके गुणों का कीर्तन तथा स्मरण किया जाता है, इसलिए सर्वज्ञ का सद्भाव है। उनका स्तवन-कीर्तन करने से आत्मा निर्मल पवित्र हो जाता है इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा का अस्तित्व है। जिस तरह सत्यस्वरूप ज्ञान इन्द्रियों का विषय नहीं है तो भी आत्मानुभव में आता है, इसी प्रकार सूक्ष्म परमात्मा इन्द्रियों द्वारा दृष्ट नहीं है तो भी आत्मानुभव में आता है और उसके प्रति श्रद्धाभाव जागृत होता है। अतएव सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध होती है।

---

1. न्यायदीपिका : प्रत्यक्ष प्रकाश, सं. डॉ. दरबारी लाल : प्र.—वीरसेवा मन्दिर देहली, सन् 1968, पृ. 47 (प्र. द्वि. संस्करण)

भावनाज्ञान का चमत्कार देखिए–

पिहितेकारागारे तमसि च सूचीमुखाग्रदुर्भेद्ये।
मयि च निमीलितनयने तथापि कान्तानन्नं दृष्टम्॥[1]

अर्थात्–एक पुरुष कारागार (जेलखाना) में विशाल ऊँची तथा अनेक दीवारों से घिरी हुई काल कोठरी के अन्दर बैठा है, अत्यन्त घनघोर अन्धकारमय रात्रि का समय है, उसने वस्त्र लगाकर अपनी आँखें भी बन्दकर ली हैं तो भी भावना-ज्ञान के बल से उसने अपनी प्रिय स्त्री का सुन्दर मुख देख लिया। उसने भावना-ज्ञान के द्वारा अपनी स्त्री का अनुभव कर लिया और चक्षु इन्द्रिय ने अपना काम नहीं किया। इसी प्रकार बिना इन्द्रियों के ज्ञानी पुरुष भावना ज्ञान के द्वारा सर्वज्ञ परमात्मा का अनुभव कर लेते हैं तथा उनकी आत्मा में बहुत आनन्द होता है। पापों से, इन्द्रियभोगों से, क्रोधादि कषायों से विरक्ति होती है। इससे सिद्ध होता है कि कोई परमात्मा अवश्य है।

यदि अर्हन्त परमात्मा न होते तो द्वादशांग का विशाल ज्ञान, न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, गणित आदि विषयों का ज्ञान तथा कला विज्ञान कहाँ से होता अर्थात् कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकता था। सर्वदर्शी परमात्मा ही यह विशेष ज्ञान प्रदान कर सकता है। उसको ही अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है, वे ही इस विश्व में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि इस विश्व में सर्वज्ञ परमात्मा अवश्य है, इसलिए उसकी उपासना, भक्ति-पूजन करना मानव का परम कर्तव्य है। आचार्यों का वचन है–

परमेष्ठी परंज्योतिः विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्त सार्वः शास्तोपलाल्यते॥[2]

इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ यह है कि जो परमात्मा, उत्कृष्ट ज्ञानी, 18 दोषहीन वीतरागी, कर्मदोष से रहित, पूर्ण सिद्धि को प्राप्त, सर्वदर्शी, अविनाशी, समस्त प्राणियों का हितकारी हो वह महात्मा ही सत्यार्थ उपदेशी अथवा पदार्थ विज्ञान का विशद् व्याख्याता होता है। उक्त प्रमाणों से सर्वज्ञसिद्ध होने पर उसकी उपासना करना उचित एवं आवश्यक है।

जैन पूजा के बाह्य आधार का द्वितीय प्रकार

जैन उपासना का प्रथम बाह्य आधार 'देव-शास्त्र-गुरु' है। जैन उपासना के बहिरंग निमित्त नव देवता कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं–अरिहन्तदेव, सिद्धदेव,

---

1. प्रमेयरत्नमाला : सं.प. हीरालाल जैन, प्र.–चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, पृ. 98, सन्-1964
2. रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक 7 अ., प्र.–जैनेन्द्र प्रेस ललितपुर सं.। सं. पं. माणिकचन्द्र न्यायतीर्थ, पृ. 4.

आचार्यदेव, उपाध्यायदेव, साधुदेव, धर्मदेव, आगमदेव, चैत्य (प्रतिमा) देव, चैत्यालय (मन्दिर) देव।

1. अर्हन्तदेव परमेष्ठी की परिभाषा

जैनदर्शन में कर्म (दोष या आवरण) आठ कहे गये हैं—(1) ज्ञानावरण (ज्ञान का आवरण करनेवाला), (2) दर्शनावरण (पदार्थों के दर्शन या सामान्य प्रतिभास को आवरण करनेवाला), (3) वेदनीय (इन्द्रियविषयों के सुख दुःख को अनुभव करानेवाला), (4) मोहनीय (आत्मा को मोहित कर आत्मा आदि तत्त्वों पर अश्रद्धा करानेवाला), (5) आयुकर्म (शरीर में आत्मा का संयोग करानेवाला), (6) नामकर्म (विविध शरीर आदि की रचना करनेवाला), (7) गोत्रकर्म (लोकपूजित तथा लोक निन्दित कुल में उत्पन्न करनेवाला), (8) अन्तरायकर्म (आत्मा की शक्ति को नष्ट करनेवाला)।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय—ये चार कर्म घाति कहे जाते हैं कारण कि ये आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आत्मिक सुख और शक्ति का घात (विनाश) करते हैं। शेष चार कर्म अघाति कहे गये हैं। कारण कि ये चार आत्मा के अव्याबाधत्व आदि गुणों का घात कर आत्मा को विकृत करते हैं।

अरिहन्त उनको कहते हैं जिनके उक्त चार घातिकर्म का नाश होने से क्रमशः अक्षय पूर्णज्ञान, दर्शन, आत्मिक सुख और अक्षय बल—इन चार अक्षय गुणों की पूर्णता हो, अठारह दोषों से रहित वीतरागता हो, विश्व-कल्याणकारी दिव्य उपदेशकता हो और दिव्य शरीर की शोभा हो। वे प्रथम परमेष्ठी, अरिहन्त, जिन, वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, जीवन्मुक्त आदि एक हजार आठ नामों से पूजित होते हैं। यह अर्हन्त की आध्यात्मिक विभूति है। बाह्यविभूति पुण्याधिक्य से जन्म समय दश अतिशय, केवल ज्ञान के उदय के समय दश अतिशय (चमत्कार विशेष), लोक-विहार करते समय देवकृत चौदह अतिशय और सिंहासन आदि आठ प्रातिहार्य (रमणीय वस्तु विशेष) से शोभित होते हैं। इनकी अपेक्षा आध्यात्मिक विभूति का महत्त्व विशेष होता है।

2. सिद्ध परमेष्ठी की परिभाषा

वे अर्हन्त या जीवन्मुक्त आत्मा चतुर्थ शुक्ल ध्यान के द्वारा जब शेष चार अघाति कर्मों का क्षय कर देते हैं तब सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। वे परमात्मा, द्रव्य कर्म तथा भाव कर्म से पूर्ण मुक्त, नो कर्म (शरीर) रहित, लोकाग्रभाग में स्थित, आठ आत्मीय गुणों से शोभायमान होते हैं। वे प्रधान आठ गुण इस प्रकार हैं—(1) ज्ञानावरण के क्षय से केवलज्ञान, (2) दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन, (3) मोह कर्म के क्षय से अतीन्द्रिय सुख, (4) अन्तरायकर्म के क्षय से आत्मबल,

(5) नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, (6) आयु कर्म के क्षय से अवगाहनत्व, (7) गोत्र कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व (8) वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधत्व। इनके अतिरिक्त उन परम आत्मा में अनन्त गुण होते हैं। यह पहले से ही कहा गया है कि जीवन्मुक्त परमात्मा तथा सिद्ध परमात्मा क्षुधा आदि अठारह दोषों से पूर्णतः रहित वीतराग होते हैं।

3. आचार्य परमेष्ठी की परिभाषा

जो अन्तरंग तथा बहिरंग परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर मुनि के वेश में दैनिक चर्या का पालन करते हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की साधना करते हैं, जो साधु संघ के अधिपति हों, जो योग्य शिष्यों को नवीन दीक्षा देते हों, अज्ञान या प्रमाद से व्रत में कोई त्रुटि होने पर संघस्थ साधु को प्रायश्चित्त देकर शुद्धि कराते हों, इनके छत्तीस मूलगुण होते हैं—12 तप, 10 धर्म, 5 आचार, 6 आवश्यक, 3 गुप्ति—ये 36 मुख्य गुण हैं। 12 तप—(1) अनशन या उपवास (24 घण्टे तक पूर्ण भोजन का त्याग), (2) ऊनोदर (भूख से कम भोजन करना), (3) आहार के विषय में नवीन प्रतिज्ञा करना (4) यथाशक्ति भोजन के रसों का त्याग करना, (5) एकान्त स्थान में शयन करना, स्वाध्याय करना, (6) शरीर के कष्टों को शान्तभाव से सहन करना, (7) प्रायश्चित्त—(आवश्यक षट् कर्तव्यों में यदि कदाचित् अज्ञान या प्रमाद से दोष उपस्थित हो जाए तो आचार्य के पास जाकर स्वयं दोष कहना और उनके आदेश से प्रायश्चित्त = दोषों की शुद्धि तथा प्रतिक्रमण = दोष पर पश्चात्ताप करना एवं भविष्य में न करने की प्रतिज्ञा करना), (8) विनय (रत्नत्रय धर्म तथा उसके साधक धर्मात्माओं साधु एवं गृहस्थ समाज का आदर करना-भक्ति करना), (9) वैयावृत्य—आचार्य-उपाध्याय-साधु-त्यागी, ब्रह्मचारी आदि ज्ञानी तपस्वी महात्माओं की सेवा-शुश्रूषा एवं चिकित्सा करना, (10) स्वाध्याय करना (ज्ञान की वृद्धि के लिए एवं श्रद्धान तथा चारित्र को दृढ़ करने के लिए जिन प्रणीत शास्त्रों का अध्ययन, वाचन, प्रश्नोत्तर समझना), (11) व्युत्सर्ग तप (मिथ्यात्व, क्रोधादि कषायरूप अन्तरंग परिग्रह तथा धन-धान्य-मकान आदि बाह्य आडम्बर से मोह तथा शरीर से ममत्व का त्यगा करना), (12) अन्य विषय की चिन्ता को रोककर किसी एकतत्त्व के चिन्तन में आत्मा को स्थिर करना तथा मन का वशीकरण 'ध्यानतप' है।

आचार्य के मुख्य गुणों में दश धर्म : (1) उत्तम क्षमा (क्रोधकषाय का त्याग करना), (2) उत्तम मार्दव (मान का त्याग कर विनय धारण करना), (3) उत्तम आर्जव (छल-कपट का त्याग कर सरलवृत्ति धारण करना), (4) उत्तम शौच (लोभ, तृष्णा का त्याग कर मन-वचन-काय को शुद्ध रखना), (5) उत्तम सत्य (असत्य का त्याग कर हित-मित-प्रिय वचनों का प्रयोग करना), (6) उत्तम संयम (पंच इन्द्रिय तथा मन को वश में करना इन्द्रिय संयम है और प्राणियों की हिंसा न कर उनकी

रक्षा का प्रयास करना प्राणी संयम है।), (7) उत्तम तप (कर्मरूप विकार को या इन्द्रिय विषयों को रोकने के लिए इच्छाओं का त्याग करना तथा पूर्व कथित द्वादश तप का आचरण), (8) उत्तम त्याग (विविध वस्तुओं से मोह-माया छोड़कर परोपकार करना तथा दान का आचरण), (9) उत्तम आकिंचन्य (चौबीस प्रकार के परिग्रहों का त्यागकर शुद्ध चैतन्य आत्मा का ध्यान करना), (10) उत्तम ब्रह्मचर्य (मन-वचन-काय से स्त्री एवं पुरुष सम्बन्धी विषयभोग का त्याग कर शुद्ध आत्मा में रमण करना), इस तरह अन्तर तथा बाह्य धर्मों का पालना।

आचार्य के मूल गुणों में पंच आचार—(1) दर्शनाचार (निर्दोष तत्त्व श्रद्धान का आचरण करना तथा कराना), (2) सम्यक् ज्ञानाचार (संशय-विपरीतत्व-मोह इन तीन दोषों से रहित ज्ञान का विकास करना), (3) सम्यक् चारित्राचार (श्रद्धा एवं ज्ञानपूर्वक व्रत-संयम का पालन करना), (4) तपाचार (मनसा-वाचा-कर्मणा द्वादश तपों का आचरण करना तथा विषयाभिलाषा का निरोध करना), (5) वीर्याचार (आत्मबल का विकास करना)।

आचार्य के मूलगुणों में छह आवश्यक कर्तव्य : (1) समता या सामायिक (वस्तुओं से राग-द्वेष-मोह-माया-तृष्णा का त्याग कर समता तथा शान्ति को धारण करना), (2) स्तव (चौबीस तीर्थंकरों के गुणों का कीर्तन तथा चिन्तन करना अथवा अर्हन्त सिद्ध परमात्मा का गुण-कीर्तन एवं स्मरण करना), (3) वन्दना (अर्हन्त सिद्ध परमात्मा के गुणों का स्मरण कीर्तन करते हुए करबद्ध, मस्तक नम्रीभूत कर प्रणाम सविनय करना), (4) प्रतिक्रमण (अज्ञानवश साधना में कोई त्रुटि (ग़लती) हो जाने पर अपनी निन्दा करते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा त्रुटि का शोधन करना), (5) नाम स्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा, अयोग्य वस्तुओं का मन, वचन, काय से त्याग करना, (6) कायोत्सर्ग—पंच परमेष्ठी की वन्दना स्तुति आदि के समय 27 स्वासोच्छ्वास काल प्रमाण तक मौनपूर्वक स्थिरता के साथ नववार णमोकार मंत्र का जाप करना)। ये छह आवश्यक कर्तव्य हैं जिनका पालन साधु करते हैं।

आचार्य के मुख्यगुणों में तीन गुप्ति (आत्मरक्षा) : (1) मनोगुप्ति (अधर्म से आत्मा की सुरक्षा के लिए मन को जीतना), (2) वचनगुप्ति (अनीति से आत्मा की सुरक्षा के हेतु वचन को वश में करना अर्थात् मौनव्रत धारण करना), (3) कायगुप्ति (अन्याय तथा व्यसनों से आत्मा की सुरक्षा के लिए शरीर-क्रिया पर विजय प्राप्त करना)। इन तीन गुप्तियों का पालन आचार्य स्वयं करते और अन्य साधुओं से कराते हैं।

4. उपाध्याय परमेष्ठी की परिभाषा

साधु संघ में इनका पद उपाध्याय इसलिए होता है कि ये बहुत श्रुतज्ञानी होते हैं, संघस्थ मुनियों आदि त्यागियों को सिद्धान्त न्याय व्याकरण आदि शास्त्रों का

अध्ययन कराते हैं, शंका समाधान करते हैं, तत्त्वोपदेश देने में दक्ष, बहुभाषाविज्ञ होने से प्रभावक वक्तृत्व कला में प्रवीण होते हैं और मुनियों के सम्पूर्ण कर्तव्यों का पालन करते हैं। श्रुतज्ञान के यथासम्भव द्वादश अंगों का इनको ज्ञान होता है। इन अंग शास्त्रों का स्वयं अध्ययन करते और शिष्यों को कराते हैं। बारह अंगों के नाम भेद-प्रभेद—(1) आचारांग शास्त्र (साधुओं के आचार का वर्णन) (2) सूत्रकृतांगशास्त्र (ज्ञान विनय, व्यवहार धर्म का वर्णन), (3) स्थानांगशास्त्र (द्रव्यों के भेद-प्रभेदों का वर्णन), (4) समवायांगशास्त्र (द्रव्यों के सामान्य गुणों का वर्णन), (5) व्याख्या प्रज्ञप्ति शास्त्र (धर्म के प्रश्नों का समाधान), (6) ज्ञातृधर्मकथा शास्त्र (तीर्थंकरों का माहात्म्य, महापुरुषों की कथा आदि), (7) उपासकाध्ययनांगशास्त्र (श्रावकों के व्रत नियम मन्त्र आदि का वर्णन), (8) अन्तःकृत् दशांग शास्त्र (तीर्थंकरों के तीर्थंकाल में दशदशमुनियों की तपस्या और मुक्ति का वर्णन), (9) अनुत्तरोपपादक दशांगशास्त्र (तीर्थंकरों के तीर्थंकाल में हुए मुनियों की तपस्या का दिव्यवर्णन), (10) प्रश्नव्याकरणांगशास्त्र में लौकिक प्रश्नोत्तर तथा चार कथाओं का वर्णन), (11) विपाकसूत्रशास्त्र (पुण्यपापरूप कर्मों के फल का वर्णन), (12) दृष्टि प्रवाद-शास्त्र (तीन सौ त्रेसठ मतों के तत्त्वों का वर्णन तथा उनका खण्डन)।

बारहवें दृष्टि प्रवाद अंग शास्त्र के मुख्य पाँच भेद हैं—(1) परिकर्मशास्त्र (गणित के करणसूत्रों का वर्णन), (2) सूत्रशास्त्र (363 मतों के सिद्धान्त और उनका निराकरण), (3) प्रथमानुयोगशास्त्र (त्रेसठ शलाका (गणनीय) महापुरुषों के चरित्र का चित्रण), (4) चूलिकाशास्त्र के पाँच भेद हैं—1. जलगता (जलविद्या तथा अग्निविद्या के मन्त्रों का वर्णन), 2. स्थलगता शास्त्र (मेरु कुलाचल हिमालय भूमि आदि में प्रवेश तथा शीघ्रगमन आदि के मन्त्र-तन्त्रों का वर्णन), 3. मायागताशास्त्र (इन्द्रजाल सम्बन्धी मन्त्र तन्त्रों का वर्णन), 4. आकाशगता (आकाश में गमन आदि के मन्त्र-तन्त्रों का वर्णन), 5. रूपगता (सिंह, गज आदि के रूपरचना के मन्त्र-तन्त्रों का वर्णन)। (5) दृष्टिप्रवाद अंग के अन्तिम भेद 'पूर्वगत' के चौदह प्रकार होते हैं—

1. उत्पाद पूर्व शास्त्र (द्रव्यों के गुण, पर्याय और संयोगीधर्मों का वर्णन)।
2. अग्रायणी पूर्वशास्त्र (सुनय, दुर्नय, छह द्रव्य, सात तत्त्वों आदि का वर्णन)।
3. वीर्यानुवाद (आत्मवीर्य, परवीर्य, गुणवीर्य आदि अनेक बलों का वर्णन)।
4. अस्तिनास्तिप्रवाद शास्त्र (अनेकान्तवाद-स्याद्वाद का वर्णन)।
5. ज्ञान प्रवाद शास्त्र (प्रमाणज्ञान, मिथ्याज्ञान का पूर्ण वर्णन)।
6. सत्यप्रवाद शास्त्र (शब्द ब्रह्म तथा भाषा विज्ञान की व्याख्या)।
7. आत्मप्रवाद (स्याद्वाद रीति से आत्मा का वर्णन)।
8. कर्म प्रवाद शास्त्र (ज्ञानावरण आदि कर्मों की अनेक दशा का वर्णन)।
9. प्रत्याख्यानशास्त्र (नाम स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि का वर्णन)

10. विद्यानुवादशास्त्र (अल्पविद्या, महाविद्या, सिद्धविद्या का फल आदि का वर्णन)।
11. कल्याणवाद शास्त्र (तीर्थंकरों के कल्याणक तथा ज्योतिर्विज्ञान का वर्णन)।
12. प्राणवाद शास्त्र आठ प्रकार के आयुर्वेद का वर्णन, दशप्राण आदि का वर्णन
13. क्रियाविशाल शास्त्र (72 पुरुष कला, 64 स्त्रीकला, 16 संस्कारों का वर्णन)।
14. लोकबिन्दुसारशास्त्र (तीन लोक का वर्णन, मुक्ति का कथन आदि)।

इन 11 अंग, 14 पूर्व आदि शास्त्रों का अध्ययन यथायोग्य उपाध्याय स्वयं करते और शिष्यों को अध्ययन कराते हैं।

5. साधु परमेष्ठी की परिभाषा

मुक्ति का अन्तिम साक्षात् मार्ग चारित्र, निश्चय तथा व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। उस चारित्र की मनसा, वाचा, कर्मणा साधना, आत्म-सिद्धि के लिए जो महात्मा करते हैं उन्हें सार्थक नाम वाले 'साधु कहते हैं। वे सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्ज्ञानी होते हैं। संसार-शरीर एवं पंचेन्द्रिय के विषय भोगों से उदासीन, वस्त्ररहित, दिगम्बर मुद्रा के धारी, चौबीस प्रकार के परिग्रह से हीन, परीषह (22 प्रकार के कष्ट) तथा उपसर्ग (अचानक उपस्थित किया गया उपद्रव) को जीतने वाले होते हैं। वे ध्यान के द्वारा कर्मकलंक को ध्वस्त करने का सदैव पुरुषार्थ करते रहते हैं। उनके 28 मुख्य गुण होते हैं। 5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियविजय, 6 आवश्यक, शेष सात क्रिया विशेष, 5 + 5 + 5 + 6 + 7=28 मूलगुणों का विवरण इस प्रकार है—

पंच महाव्रत : (1) अहिंसा महाव्रत (मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमति, परस्पर गुणित इन नवरीतियों से जीवों की द्रव्यहिंसा एवं भावहिंसा का त्याग करना)। (2) सत्यमहाव्रत (उक्त नवरीति से राग-द्वेष रहित, पापरहित सत्य वचन का प्रयोग करना)। (3) अचौर्यमहाव्रत (बिना दिया, कहीं पर रखा हुआ। अकस्मात् पतित या विस्मृत परवस्तु का कथित नवरीति से ग्रहण नहीं करना)। (4) ब्रह्मचर्य महाव्रत (नवरीति से पुरुष-स्त्री सम्बन्धी विषयभोग का त्यागकर शील के अठारह हजार भेदों का पाल करना)। (5) परिग्रहत्याग महाव्रत (मिथ्यात्व, क्रोधादि कषाय रूप 14 प्रकार के अन्तरंग परिग्रह का तथा भूमि, मकान, सुवर्ण, चाँदी, रुपया, अनाज आदि दस प्रकार के द्रव्य-समूह का नव रीति से पूर्ण त्याग करना)। इन पंच महाव्रतों की साधना मुनिराज नवरीति (मन, वचन, काय 3 × 3 कृत, कारित, अनुमति 3 × 3 = 9 प्रकार) से करते हैं।

पंच समिति—प्राणियों की सुरक्षा के लिए तथा अपनी दैनिक चर्या को संयमित चलाने के लिए, नयरीति से सावधानपूर्वक क्रिया करना समिति का अर्थ है। यह पाँच प्रकार की होती है—1. ईर्यासमिति (दिन में स्वच्छमार्ग पर सामने चार हाथ आगे भूमि को देखते हुए शान्तिपूर्वक गमन करना), 2. भाषा समिति (पैशुन्य = चुगली परुष-द्रोहकारित्व से रहित, हित, मित, प्रिय वचन का प्रयोग करना), 3. एषणा समिति (भोजन के 46 दोष रहित, शुद्ध, प्रासुक, आहार को स्वाध्याय तथा ध्यान की साधना के लिए ग्रहण करना), 4. आदान निक्षेपण समिति (ज्ञान के साधन शास्त्र, पुस्तक आदि को और संयम के साधन पीछी, कमण्डलु आदि को सावधानी से उठाना एवं स्थापन करना), 5. उत्सर्ग समिति (दूरवर्ती, गुप्त, अविरुद्ध तथा जीव-जन्तु आदि से रहित महीतल पर मल-मूत्र आदि का त्याग करना)। इन पंच समितियों की साधु-सन्त पूर्ण रीति से साधना करते हैं।

पंचेन्द्रिय विजय—1. स्पर्शन (शरीर) इन्द्रिय, 2. रसना (जिह्वा) इन्द्रिय, 3. नासिका, 4. चक्षु, 5. श्रोत्र (कर्ण)—इन पंच इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों में रति तथा अनिष्ट पदार्थों में अरति (द्वेष) नहीं करना, पंच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना।

साधु परमेष्ठी के शेष सात मूलगुण—(1) केशलुंचन (सिर और दाढ़ी के बालों को हाथों से उखाड़ना केशलुंचन कहा जाता है। इससे परीषहजय (कष्ट विजय), उदासीनता, वैराग्य, शरीर निर्ममत्व एवं संयम की प्राप्ति होती है। यही लाभ नहीं, किन्तु सिर में कीटाणु उत्पन्न नहीं होने से जीवहिंसा का बहिष्कार होता है। यह उत्तम केशलुंच दो माह में, मध्यम तीन माह में और जघन्य चार मास में प्रतिक्रमण (दोष का पश्चात्ताप) सहित उपवास के साथ हर्ष से किया जाता है। (2) आचेलक्य (वल्कल, चर्म तथा वस्त्र आदि आवरणों से शरीर का नहीं ढाकना, अलंकार एवं शृंगार से दूर रहना, यही अचेलकता अर्थात् नग्नता और दिगम्बरत्व का एक रूप है)। (3) स्नानत्याग (शरीर में पसीना-धूलि आदि मललिप्त होने पर भी इन्द्रिय संयम तथा प्राणी संयम की सुरक्षा के लिए स्नान आदि का त्याग)। (4) भूमि शयन (स्वच्छ, प्रासुक, निर्जीव, शोधित भूमितल या शिलातल पर रात्रि के अन्तिम भाग में एक करवट से, दण्ड के समान सीधे शयन करना)। (5) स्थिति भोजन (अपनी पीछी के द्वारा तथा दाता के द्वारा शुद्ध की गयी भूमि पर समान दोनों पैर (चरण) रखकर निराश्रय खड़े होते हुए अपने दोनों हाथों से आहार ग्रहण करना। (6) दन्तधावन त्याग (पाषाण, छाल, नख आदि के द्वारा दन्तों को नहीं घिसना। खाने योग्य पदार्थों से तथा देह से मोह छोड़ना इसका प्रयोजन है। (7) एक भक्त कर्तव्य (सूर्य उदय के दो घण्टे पश्चात् तथा सूर्यास्त के दो घण्टे पहले के समय में दिन में एक बार शुद्ध आहार ग्रहण करना, अन्य समय में पानी भी नहीं पीना।

इन 28 मूल गुणों की साधना साधु परमेष्ठी करते हैं। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पंच सामान्य रूप से परमेष्ठी कहे जाते हैं परन्तु विशेष रूप से

कुछ अन्तर रहता है—अर्हन्त केवल ज्ञानी, जीवन मुक्त पद में, वीतराग मुक्ति-मार्ग रूप परमपद के उपदेष्टा हैं अतः वे परमेष्ठी कहे जाते हैं और सिद्ध परमात्मा, परमसिद्धि रूप मुक्ति में विद्यमान होने से सिद्ध परमेष्ठी कहे जाते हैं। केवलज्ञानी दो प्रकार के होते हैं—(1) तीर्थंकर केवलज्ञानी (जो अतिशय पूर्ण पंचकल्याणकों से शोभित होते हैं तथा तीर्थंकर नामक विशिष्ट पुण्य प्रकृति के प्रभाव से, देवरचित समवोशरण में दिव्य उपदेश विश्व को प्रदान करते हैं, धर्म तीर्थ के प्रवर्तक होते हैं)। (2) सामान्य केवल ज्ञानी जिनके अतिशय नहीं होते, समवशरण की रचना नहीं होती, परन्तु विश्व की जनता को दिव्य उपदेश अवश्य देते हैं। ये दोनों परमेष्ठी सिद्ध पद को नियम से प्राप्त करते हैं।

अर्हन्त, सिद्ध परमेष्ठी के अतिरिक्त आचार्य, उपाध्याय और साधु ये भी परमेष्ठी कहे जाते हैं कारण कि ये महात्मा भी वीतराग रूप मुक्ति मार्ग के परमसाधक कहे जाते हैं। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि जो परमपद में स्थित हों, उनको परमेष्ठी कहते हैं। यद्यपि बाह्य दृष्टि से इन तीनों का वेष दिगम्बर मुद्रा एक है, व्रत, चर्चा, परीषह, रत्नत्रय की साधना समान है, अन्तरंग में वीतरागता पूर्ण समताभाव जागृत है तथापि उन तीनों परमेष्ठियों के आचार्य, उपाध्याय तथा साधु रूप विशिष्ट पदों की अपेक्षा लक्षण तथा पृथक्-पृथक् मूलगुण पूर्व में कहे गये हैं—जिससे कि मुक्ति मार्ग के कर्तव्य निष्ठा के साथ अनुशासन सुदृढ़ रहे।

6. धर्म देवता की उपासना

जैनदर्शन में अर्हन्त तथा सिद्ध परमात्मा की तुलना में सम्यक् धर्म को भी देव कहा गया है। इसका कारण यह है कि जैसे परमशुद्ध निर्दोष परमात्मा पूज्य एवं विश्वहितकारी हैं उसी प्रकार उनके द्वारा कथित वस्तुतत्त्व या पदार्थ का यथार्थ स्वरूप भी पूज्य एवं विश्वहितकारी है, उसी को दूसरे शब्दों में सिद्धान्त, दर्शन, धर्म, श्रेयस्, सुकृत् और वृष कहते हैं। यह विषय युक्ति तथा अनुभव से भी सिद्ध है कि वक्ता या उपदेष्टा के अनुकूल वस्तु तत्त्व (धर्म) का कथन होता है। उपदेष्टा यदि रागी, द्वेषी, मोही, मानी एवं मायावी है तो उसके द्वारा प्रतिपादित धर्म भी राग-द्वेष-मोह आदि दोषों से परिपूर्ण है। उसे धर्म नहीं कहा जा सकता और उपदेष्टा (वक्ता) यदि सर्वदोषों से हीन है तो उसके द्वारा कथित धर्म भी निर्दोष है। उसी वस्तु तत्त्व को सत्यार्थ धर्म कहा जा सकता है। इसलिए परमात्मा के समान सत्यार्थ धर्म भी परम पूज्य तथा कल्याणकारी सिद्ध होता है। वह धर्म लोक में मंगलमय उत्तम तथा शरण कहा जाता है।

प्राकृत मंगल पाठ में इसी विषय का वर्णन किया गया है—

(1) चत्तारिमंगलं—अर्हन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहूमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

सारांश—लोक में चार मंगल हैं—(क) अर्हन्त भगवान मंगल हैं; (ख) सिद्ध परमात्मा मंगल हैं; (ग) आचार्य, उपाध्याय, साधु महात्मा मंगलमय हैं और (घ) अर्हन्त परमेष्ठी द्वारा कथित धर्म मंगलरूप है।

(२) चत्तारि लोगुत्तमा—अर्हन्ता लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

सारांश—लोक में चार उत्तम हैं—(क) लोक में उत्तम अर्हन्त भगवान् हैं। (ख) सिद्ध परमात्मा लोक में उत्तम हैं। (ग) आचार्य, उपाध्याय, साधु महात्मा लोक में उत्तम हैं। (घ) अर्हन्त भगवान द्वारा प्रणीत धर्म लोक में उत्तम है।

(३) चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अर्हन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वजामि।

सारांश—भक्त मानव कहता है कि मैं चार की शरण को प्राप्त होता हूँ,[1] (क) अर्हन्त भगवान् की शरण को प्राप्त होता हूँ, (ख) सिद्ध भगवान् की शरण को प्राप्त होता हूँ, (ग) साधु महात्मा (आचार्य–उपाध्याय-साधु-मुनि) की शरण को प्राप्त होता हूँ, (घ) अर्हन्त भगवान् के द्वारा प्रणीत धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ। अर्थात् धर्म की साधना शुद्ध भावपूर्वक करके आत्मकल्याण करता हूँ।

धर्म की उपासना के विषय में अन्य प्रमाण

धर्म एव सदा बन्धुः स एव शरणं मम।
इह वाऽन्यत्र संसारे इति तं पूजयेऽधुना॥

सारांश—इस लोक में और परलोक में इस प्राणी का सत्यार्थ धर्म ही सदा भ्राता या मित्र है, वह ही सदा शरण है, इस कारण से हम धर्म की पूजा करते हैं।

लोकालोकस्वरूपस्य वक्तृ धर्ममंगलम्।
अर्चे वादित्रनिर्घोष-गीतनृत्यैः वनादिभिः॥

सारांश—मंगलरूप धर्म लोक और अलोक के समस्त पदार्थों का दिग्दर्शन कराने वाला है इसलिए हम वाद्यध्वनि, गीत, नृत्य आदि के द्वारा तथा जल आदि द्रव्यों के द्वारा धर्म का अर्चन करते हैं।

उत्तमक्षमया भास्वान्, सद्धर्मो विष्टपोत्तमः।
अनन्तसुखसंस्थानं यज्यतेऽम्भः सुमादिभिः॥[2]

तात्पर्य—उत्तमक्षमा आदि धर्मों से विभूषित, सम्पूर्ण विश्व में उत्तम, अक्षय

1. पूर्वोक्त ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 27.
2. सरल जैन विवाह विधि : सं.पं. मोहनलाल शास्त्री, जवाहरगंज जबलपुर, सन् 1965, सप्तम संस्करण, पृ. 28, 29.

अनन्त सुख का स्थान विशेष, इस समीचीन धर्म का जलादि द्रव्यों के द्वारा अर्चन करते हैं।

> केवलिनाथमुखोद्गत-धर्मःप्राणिसुखहितार्थमुद्दिष्टः।
> तत्प्राप्त्यै तद्यजनं, कुर्वे मखविघ्ननाशाय॥[1]

सारांश—अर्हन्त केवलज्ञानी के मुख से उपदिष्ट सत्यार्थ धर्म, प्राणियों के उपकार तथा शान्ति सुख की प्राप्ति के लिए लक्ष्य रखकर कहा गया है अतः अर्चन यज्ञ आदि श्रेष्ठ कार्यों में विघ्न-बाधा के निराकरण हेतु हम धर्म की साधना के लिए धर्म का अर्चन करते हैं।

> धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
> धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं, धर्माय तस्मै नमः।
> धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
> धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय॥[2]

सारांश—'धर्म' सब प्रकार के सुखों का खजाना है, धर्म सर्वप्राणियों का हितकारी है, बुद्धिमान् पुरुष धर्म की साधना करते हैं, धर्म के द्वारा ही अक्षय मुक्ति सुख की प्राप्ति होती है, उस सत्यार्थ श्रेष्ठ धर्म के लिए नमस्कार है। धर्म को छोड़कर अन्य कोई पदार्थ प्राणियों का मित्र नहीं है, धर्म का मूल कारण दया है अथवा मैत्री है, भव्य पुरुष कहता है कि मैं प्रतिदिन धर्म के प्रतिपालन में चित्त को स्थिर करता हूँ। हे धर्म! आप हमारी रक्षा करें।

> धर्मो वसेन्मनसि यावदलं स तावद्,
> हन्ता न हन्तुरपि पश्य गतेऽथ तस्मिन्।
> दृष्टा परस्परहतिर्जनकात्मजानां,
> रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एव।[3]

देखो, जब तक वह वास्तविक धर्म मन में अतिशय निवास करता है तब तक मानव अपने मारनेवाले को भी नहीं मारता अर्थात् उस घातक के प्रति भी मैत्री भाव रखता है, परन्तु जब वह धर्म हृदय से निकल जाता है तब पिता और पुत्र में परस्पर मार-पीट (घातक वृत्ति) देखी जाती है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि इस विश्व की सुरक्षा उस धर्म के रहने पर ही हो सकती है।

---

1. गणेश वर्णी ग्रन्थमाला, मन्दिर वेदी प्रतिष्ठा कलशारोहण विधि : सं.पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, सन् 1961 : भदैनी वाराणसी, पृ. 17
2. धर्मध्यान दीपिका : श्री 108 अजितसागर महाराज, सं.प्र. महावीर जी राजस्थान : प्र. सं., पृ. 345.
3. गुणभद्र : आत्मानुशासन : सं. प्रो. हीरालाल जैन, प्र.—जैन सं. सं. संघ सोलापुर, 1961, पृ. 25.

ऊपर जिस धर्म की महिमा का वर्णन किया गया है उस धर्म की परिभाषा को भी जान लेना आवश्यक होता है अतः धर्म की परिभाषा देखिए।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार धर्म की परिभाषा–

"यः संसारदुःखतः दूरीकृत्य प्राणिनः अक्षयसुखे धरति स धर्मः"

अर्थात्–जो प्राणियों को संसार के जन्म-मरण, क्षुधा, तृषा, रोग, क्रोध, अभिमान आदि दुःखों से निकालकर अक्षय परमसुख (मुक्ति सुख) को प्राप्त करा देता है वह सत्यार्थरूप में धर्म कहा जाता है। इसी लक्षण को श्री समन्तभद्र आचार्य ने दर्शाया है–

"संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे–, अर्थात् जो विश्व के प्राणियों को जन्म-मरण, राग, द्वेष, मोह आदि अपार कष्टों से दूर कर मोक्ष के अविनाशी सुख को प्राप्त करा देता है, वह यथार्थ धर्म कहा जाता है।

धर्म की विशद परिभाषा

धम्मोवत्थुसहावो खमादिभावोऽय दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो॥[1]

स्पष्टार्थ–निश्चय नय की दृष्टि से या द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से वस्तु के स्वभाव (नित्यगुण) अथवा शुद्ध द्रव्य की प्रकृति को धर्म कहते हैं जैसे इक्षु (गन्ने) का मधुर-स्वभाव, अग्नि का उष्ण धर्म, जल की शीतल प्रकृति, नींबू का आम्ल (खट्टा) गुण, इसी प्रकार आत्मा का ज्ञानदर्शन स्वभाव धर्म है, धर्म की यह सामान्य व्याख्या है। इस लक्षण से मानव धर्म की सामान्य परिभाषा तो जान सकता है परन्तु विशेष परिभाषा जानकर अपने कर्तव्य का बोध नहीं कर सकता और न दूसरे को समझा सकता है। ऐसी दशा में दूसरे व्यवहार नय की दृष्टि (विशेष दृष्टि) से धर्म की परिभाषा की जाती है–

धर्म के विशेष भेद दस होते हैं–(1) उत्तम क्षमा (क्रोध को जीतकर क्षमा या सहनशीलता धारण करना), (2) उत्तम मार्दव (अभिमान का त्याग कर विनय नम्रता धारण करना), (3) उत्तम आर्जव (मायाचार का त्याग कर सरल प्रवृत्ति या निष्कपट आचरण करना), (4) उत्तम शौच (लोभ-तृष्णा का त्याग कर मन, वचन, शरीर को पवित्र रखना), (5) उत्तम सत्य (असत्य का त्याग कर हित, मित, प्रिय वचनों का प्रयोग करना), (6) उत्तम संयम (स्पर्शन, रसना, नासिका, नेत्र, कर्ण तथा मन इन छह इन्द्रियों की विषय लालसा को वश में करना तथा मैत्री भाव से प्राणियों

1. कार्तिकेयानुप्रेक्षा : सं. आदिनाथ उपाध्याय, प्र.–राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात), सन् 1978, पृ. 364, धर्मानुप्रेक्षा पद्य 478.

की रक्षा करना), (7) उत्तम तप (भौतिक वस्तुओं में बढ़ती हुई इच्छा को रोककर धार्मिक नियमों का पालन करना), (8) उत्तम त्याग (विविध वस्तुओं की आसक्ति या लोभ का त्याग कर यथा योग्य भोजन, ज्ञान, औषधि, सुरक्षा आदि का दान करना), (9) उत्तम आकिंचन्य (भौतिक वस्तुओं से तथा क्रोध आदि विकारों से मोह, माया का त्याग कर आत्मा में श्रद्धा रखना), (10) उत्तम ब्रह्मचर्य (आत्मा के ज्ञान, दर्शन गुणों की साधना, इन्द्रियलालसा तथा काम-विकार का त्याग करना)—ये दस आत्मा के गुण (धर्म) हैं। ये उत्तम कर्तव्य हैं, श्रद्धापूर्वक इनका पालन करना ही धर्म का पूजन करना है।

विशेष दृष्टि (व्यवहारनय) से आध्यात्मिक रत्नत्रय को भी धर्म कहा जाता है—(1) सम्यग्दर्शन (जीव (आत्मा) आदि सात तत्त्वों पर आस्था रखना, सत्यार्थ देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना, आठ अंग तथा गुण चतुष्टय को धारण करना, मद का त्याग करना आदि), (2) सम्यग् ज्ञान (1. आत्मा, 2. पुद्गल (भौतिक जड़), 3. धर्म द्रव्य, 4. अधर्मद्रव्य, 5. आकाशद्रव्य, 6. कालद्रव्य—इन मौलिक छह द्रव्यों का समीचीन ज्ञान करना। 1. जीव, 2. अजीव, 3. आस्रव, 4. बन्ध, 5. संवर, 6. निर्जरा, 7. मोक्ष, 8. पुण्य, 9. पाप—इन नव तत्त्व या पदार्थों का सत्यार्थ ज्ञान प्राप्त करना, शब्दाचार आदि आठ अंगों द्वारा ज्ञान का विकास करना, संशय विपरीतत्व तथा विमोह (अज्ञान)—इन तीन दोषों का त्याग करना। (3) सम्यक् चारित्र (श्रद्धान तथा यथार्थ ज्ञान के साथ राग-द्वेष-मोह आदि विकारों का त्याग कर आत्मा का चिन्तन करना, पंच अणुव्रत तथा पंचमहाव्रत रूप दो प्रकार से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन व्रतों का यथायोग आचरण करना, पूर्वोक्त पंच समिति तथा तीन गुप्ति का आचरण करना)।

व्यवहारनय (श्रावक की दृष्टि) से—1. हिंसा (प्राणिवध), 2. असत्य, 3. चौर्य, 4. कुशील (दुराचार), 5. परिग्रह—इन पंच पापों का स्थूल रीति से त्याग कर अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्य अणुव्रत, ब्रह्मचर्य अणुव्रत, परिग्रह परिमाण अणुव्रत का श्रावकों (गृहस्थों) द्वारा पालन।

आठ मूल गुण—(1) मदिरा आदि नशीली वस्तु का त्याग, 2. मांस का त्याग, 3. मधु (शहद) का त्याग, 4. रात्रि भोजन का त्याग, 5. बड़फल, पीपल, पाकर, कठूमर, अंजीर—इन पंच उदुम्बर फलों का त्याग, 6. वीतरागदेव शास्त्र-गुरु अथवा अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, वीतराग, साधु—इन पंच परमेष्ठी देवों का नित्य पूजन-भजन, 7. प्राणी मात्र में दयापूर्वक रक्षा का भाव रखना, 8. जल को छन्ने से छानकर उपयोग करना—इन आठ मूल गुणों का पालन करना भी धर्म है।

सप्त व्यसन (खोटी पाप वासना या आदत) का त्याग—1. द्यूत क्रीड़ा का त्याग, 2. मांस का त्याग, 3. मदिरा आदि का त्याग, 4. वेश्या-सेवन का त्याग,

5. पशु-पक्षी आदि प्राणियों के शिकार का त्याग, 6. चोरी या अपहरण आदि की आदत का त्याग, 7. परस्त्री-सेवन का त्याग—इन सप्त व्यसनों के अथवा सप्त महापापों के सेवन का त्याग करना भी धर्म है।

इस प्रकार वस्तु का स्वभाव रूप आत्मगुणों का चिन्तन करना, उत्तम क्षमा आदि दस धर्मों का चिन्तन एवं पालन, सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म का ध्यान एवं पालन, अहिंसा आदि पंचव्रतों का पालन, मद्यत्याग आदि आठ मूल-गुणों का पालन, द्यूतक्रीड़ा आदि सात व्यसन (महापाप) का त्याग पूर्वक चिन्तन, इन सब धर्मों का पालन, चिन्तन एवं अर्चन करना उक्त नवदेवताओं में छठे धर्म देवता का आराधन या अर्चन कहा जाता है।

7. आगम (शास्त्र) देवता का अर्चन

नव देवताओं में आगम सातवाँ देवता माना गया है कारण कि केवलज्ञानी अर्हन्त के उपदेश का सार इसमें लिखा गया है, समस्त प्राणियों के कल्याण का मार्ग दर्शाने वाला है, संशय, विपरीतता और अज्ञानता या विमोह दोष से रहित है। इसके दो प्रकार हैं—1. भाव आगम, 2. द्रव्य आगम जो आत्मज्ञान स्वरूप है, जिसकी रचना तीर्थंकरों के उपदेश के अनुसार, उनके विशेष ज्ञानधारी गणधरों तथा उपगणधरों द्वारा आत्मा में की गयी है, जो आचारांग आदि बारह अंगों (विभागों) में विभक्त है तथा जो उत्पाद पूर्व, ज्ञान प्रवाद पूर्व आदि चौदह पूर्व भेदों में विभाजित है, यह सब रचना आत्मा में ही होती है, इसलिए यह भाव आगम या भाव श्रुतज्ञान कहा जाता है। जो आत्मा का ज्ञानगुणस्वरूप होता है।

वही भाव आगम या भावश्रुतज्ञान, गणधर के शिष्य-प्रशिष्य अथवा आचार्यों-महर्षियों द्वारा जब भाषात्मक शब्दों के माध्यम से लिखा जाता है, जो प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी आदि भाषाओं में निबद्ध होता है, वह ताड़पत्र, ताम्रपत्र, रजतपत्र, पाषाण, कागज़ आदि पदार्थों पर लिखा जाता है वह द्रव्य आगम, द्रव्यश्रुत ज्ञान या शब्द श्रुतज्ञान कहा जाता है। दोनों प्रकार के आगम को सामान्य रूप से कृतान्त, सिद्धान्त, ग्रन्थ, राद्धान्त, शास्त्र, जिनवाणी आदि शब्दों से कहते हैं। इसका विशेष वर्णन, देव शास्त्र गुरु के प्रकरण में किया गया है, वहाँ पर दृष्टिगत कर लेना चाहिए।

इन शास्त्रों के स्वाध्याय, अध्ययन, मनन, प्रवचन, प्रश्नोत्तर, उपदेश करने से तथा लिखने से, परामर्श करने से आत्मा में ज्ञान की वृद्धि होती है, ज्ञान के साथ आत्मबल एवं सुख-शान्ति का अनुभव होता है। अतः जीवन में शास्त्र का अर्चन करना भी आवश्यक है। इसी विषय को पण्डितप्रवर श्री आशाधर जी द्वारा स्पष्ट किया गया है—

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या, ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम्।
न किंचिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयोः॥[1]

सारांश—जो मानव भक्तिपूर्वक शास्त्र का पूजन करते हैं। वे मानव परमार्थरीति से जिनेन्द्र (अर्हन्त) भगवान की ही पूजा करते हैं। कारण कि सर्वज्ञ देव, शास्त्र और परमात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं कहते हैं। अर्हन्त की वाणी का प्रतिनिधि ही शास्त्र कहा जाता है।

8. चैत्य (प्रतिमा) देवता का अर्चन

पूर्व में कहे गये नव देवताओं में आठवें क्रमांक के देवता चैत्य (प्रतिमा) है, कारण कि यह प्रतिमा देवता भी पूर्व कथित (1. अर्हन्त, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय, 5. साधु, 6. धर्म, 7. आगम—शास्त्र) सात देवताओं के समान हितकारी, प्रभावक, पुण्य प्रदायक, पापनाशक और चित्त के विचारों को पवित्र करनेवाला है। स्थिरता से धर्म पालन करने का साधन है। प्रतिमा (मूर्ति) मूल पदार्थ के गुणों का स्मरण कराती है। अवसर्पिणी कल्पकाल के चतुर्थकाल (कृतयुग) में मानव आदि प्राणी साक्षात् अर्हन्त केवलज्ञानी का दर्शन-पूजन करते थे, परन्तु इस पंचम कलिकाल में तीर्थंकर केवलज्ञानी का अभाव है अतः उनकी साकार मूर्ति बनाकर मन्त्रों द्वारा पूर्ण प्रतिष्ठा या मूल पदार्थ की स्थापना कर मूल पदार्थ के गुणों का स्मरण करते हुए उनका दर्शन-पूजन करते हैं। जैसे भगवान महावीर की मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठापूर्वक उनके गुणों का स्मरण, दर्शन, अर्चन करना। मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान (मूलवस्तु) का अर्चन करना गृहस्थ (श्रावक) जन के लिए आवश्यक है, साधु के लिए नहीं।

9. चैत्यालय देवता का अर्चन

उक्त आठ देवताओं से अतिरिक्त एक नवम देवता चैत्यालय है। इस प्रकार कुल नव देवता जैनदर्शन में कहे गये हैं जिनका अर्चन, पूजन, भजन, स्तवन नित्य किया जाता है। ये पूज्य नवदेव साक्षात् जहाँ पर विराजमान रहते हैं उसको समवशरण, मन्दिर, चैत्यालय, देवालय, जिन मन्दिर, जिनगृह आदि कितने ही शुभनामों से कहा जाता है। साक्षात् नव देवों के अभाव में इनके प्रतिनिधिरूप प्रतिमा (मूर्ति) जिन स्थानों में स्थापित की जाती है उस स्थान को भी जिन मन्दिर, चैत्यालय आदि कहते हैं। जहाँ पर अनेक मन्दिर शोभायमान हों अथवा तीर्थंकरों के पंच-कल्याणक स्थान हों, तथा अन्य ऋषि महात्मा-आचार्यों की तपोभूमि हो उसको पवित्र तीर्थक्षेत्र कहा जाता है। ये मन्दिर धर्म-साधन करने के आयतन, पवित्र धार्मिक

---

1. सागार-धर्मामृत, अ.2, श्लोक 44.

स्थान कहे गये हैं। ये चैत्यालय न केवल प्रतिमा के स्थान होते हैं किन्तु अन्य धार्मिक साधनों के भी आयतन होते हैं, जैसे शास्त्र भण्डार, पुस्तकालय, स्वाध्यायशाला, ध्यानकेन्द्र, धर्मशाला, उपासनागृह, वस्तु भण्डार, आहारदानशाला, औषधिशाला, पाठशाला, सभा भवन, कार्यालय। इन सब विभागों का पृथक्-पृथक् होना आवश्यक है। वर्तमान समय को लक्ष्य कर ऐसी समीचीन व्यवस्था हो जिससे इन मन्दिरों का माध्यम प्राप्त कर समाज अपना धार्मिक साधन अच्छी तरह कर सके, समाज का एकीकरण तथा सामाजिक व्यवस्था का संचालन सुरीत्या हो सके।

इसी विषय का कथन करते हुए श्री पण्डितप्रवर आशाधर ने चैत्यालय की आवश्यकता तथा सफलता को व्यक्त किया है—

प्रतिष्ठायात्राविव्यतिकरशुभस्वैरचरण-
स्फुरद्धर्मोद्धर्षप्रसररसपूरास्तरजसः।
कथं स्युः सागाराः श्रवणगणधर्माश्रमपदं
न यत्रार्हद्गेहं दलितकलिलीला विलसितम्॥[1]

सारांश—जहाँ पर जिन मन्दिर होते हैं वहाँ प्रत्येक मानव को प्रतिदिन दर्शन, अर्चन, भजन, कीर्तन एवं स्वाध्याय आदि का सुयोग प्राप्त होता है, मन्दिर के योग्य आधार से समाज में सदा धार्मिक उत्सव मनाये जाते हैं, उन धार्मिक उत्सवों में समाज के एकत्रित होने से सामूहिक रीति से महती धर्म प्रभावना होती है, धर्म-पालन के विषय में उत्साह बढ़ता है, जीवननिर्वाह के दैनिक कार्यों से तथा व्यापार आदि के कार्यों से जो पाप या दोष उत्पन्न होते हैं उनका प्रक्षालन (शोधन) होता है, कलिकाल का अधर्म या अन्याय रूप वातावरण का नाश होता है। मुनिराज, त्यागी, व्रती आदि धर्मात्मा पुरुषों का आश्रय स्थान है, धर्म का आयतन है। जहाँ पर मन्दिर नहीं होते हैं वहाँ पर ऊपर कहे गये सभी धर्म के साधन होना असम्भव है। जहाँ पर मन्दिर शोभायमान नहीं होते, वह नगर या ग्राम श्मशान जैसा झलकता है। इस प्रकार मानव का कर्तव्य है कि वह नित्य चैत्यालय देवता की भी आराधना करे।

इस प्रकार जैनदर्शन में पूजा का आधार रूप नवदेव कहे गये हैं जिनकी परिभाषा तथा उपयोगिता का वर्णन किया जा चुका है। इस विषय में जैन आचार्यों के प्रमाण का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

मध्ये कर्णिकमर्हदार्यमनघं बाह्येऽष्टपत्रोदरे,
सिद्धान् सूरिवरांश्च पाठकगुरून्, साधूंश्च दिक्पत्रगान्।

---

1. पं. आशाधर : सागार-धर्मामृत : सं. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, न्यू देहली, 1978, अध्याय 2, श्लोक 37.

सद्धर्मागमचैत्यचैत्यनिलयान्   कोणस्थदिक्पत्रगान्
भक्त्या सर्वसुरासुरेन्द्रमहितान् तानष्टधेष्ट्या यजे॥[1]

सारांश—श्रेष्ठ तथा चार घातिकर्म दोषों से रहित अर्हन्त देव, सिद्ध परमात्मा, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सद्धर्म, आगम, चैत्य (प्रतिमा), चैत्यालय (मन्दिर)—ये नवदेव, देवों, देवेन्द्रों, असुरेन्द्रों के द्वारा सदा पूजित होते हैं, उनकी हम सब भी आठ प्रकार की द्रव्यों के द्वारा पूजा करते हैं, इस प्रकार पूजा के आधार या निमित्त नवदेवों का कथन किया गया।

मूर्तिपूजा की उपयोगिता

वर्तमान युग में अनेक व्यक्ति यह प्रश्न उपस्थित करते हुए देखे जाते हैं कि मूर्तिपूजा करना पत्थर या धातु की पूजा करना है, क्या पत्थर की पूजा करने से कोई कल्याण हो सकता है! यह एक धर्म की रुढ़िमात्र है, आदि!

प्रश्नकर्ता से निवेदन है कि कहने मात्र से मूर्तिपूजा, मात्र रूढ़ि या निष्फल किया नहीं हो सकती। इसके विषय में अनुभव, युक्ति और प्रमाण से विचार अवश्य किया जाए तब निष्कर्ष निकल सकता है।

इस विश्व में आत्मा (जीव) अनन्त संख्यक हैं। विशुद्ध पूर्णज्ञान-दर्शन, अक्षय पूर्ण सुख (शान्ति), अक्षयपूर्ण बल, सूक्ष्मत्व, अरूपित्व, अक्षयत्व आदि अनन्तगुण आत्मा में विद्यमान हैं। इनके द्वारा ही आत्मा का स्वभाव या लक्षण कहा जाता है। आत्मा सामान्य रूप से दो प्रकार के हैं—1. कर्म से मुक्त, 2. कर्म से बद्ध। जो अज्ञान, शरीर, जन्म, मरण, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि सम्पूर्ण विकारों पर विजय प्राप्त कर अपने शुद्ध स्वरूप के विकास से 'परमात्म पद' या 'जिन' पद को प्राप्त हैं वे मुक्त आत्मा हैं, जैसे 24 तीर्थंकर आदि। जो आत्मा, जन्म-मरण, अज्ञान, मोह आदि विकारों से सहित हैं वे बद्ध (संसारी) कहे जाते हैं। जैनदर्शन में आत्म-स्वतन्त्रता या आत्म-विकास का इतना विशाल खुला द्वार है कि संसार का प्रत्येक कर्मबद्ध भव्य जीव परमात्मा बन सकता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक छहमास-आठ समयों में छह सौ आठ (608) कर्म बद्ध आत्मा परमात्मा होते जाते हैं, यह आत्मा का प्रबल पुरुषार्थ स्वयंकृत है।

बद्ध आत्मा को मुक्त या परमात्मा पद को प्राप्त करने में दो कारण हैं—1. उपादान कारण, 2. निमित्त कारण। बद्ध आत्मा को परमात्मा होने में, आत्मा स्वयं समर्थ उपादान कारण है। वह आत्मा स्वयं अपने पौरुष से ही परमात्मा हो जाता है। जैनदर्शन में कोई एक रजिस्टर्ड सृष्टिकर्ता, निर्वाचित परमात्मा नहीं माना गया

1. सरल जैन विवाह विधि : सं.पं. मोहनलाल शास्त्री : जवाहरगंज जबलपुर, सन् 1965, पृ. 24.

है। आत्मा से परमात्मा बन जाने में दूसरा निमित्त कारण या साधन पूर्वोक्त नव देवता या सत्यार्थ देव-शास्त्र-गुरु हैं जिनका वर्णन पहले कर आये हैं।

अवसर्पिणी कल्पकाल के चतुर्थकाल (कृतयुग = सतयुग) में मानवों को आत्मकल्याण के लिए साक्षात् नवदेवों का संयोग या सत्संगति समय-समय पर प्राप्त हो जाया करती थी, जिससे कि संसार की माया में लिप्त यह मानव आत्म-विकास कर लेता था। अर्हन्तदेव की साक्षात् वाणी सुनकर या उपासना करके आत्म-कल्याण करता था। सिद्धपरमेष्ठी की आराधना परोक्षरूप में करके आत्म-साधना करता था। आचार्य, उपाध्याय, साधु महात्माओं का प्रत्यक्ष दर्शन, अर्चन, कीर्तन तथा उपदेश श्रवण कर अपनी मुक्ति मार्ग की साधना में दत्तचित्त हो जाता था। प्रत्यक्ष रूप से तत्त्वोपदेश को श्रवण-मनन कर, स्वाध्याय कर तत्त्वज्ञानी हो जाता था, परन्तु इस कलिकाल में साक्षात् मूर्तमान नवदेव नहीं हैं और धार्मिक उपासना करके, कर्तव्य का ज्ञान करना और आत्मशुद्धि करना आवश्यक है, अनिवार्य है। ऐसी विषम परिस्थिति में बुद्धिजीवी मानव ने प्रतिमा पद्धति या प्रतिनिधि पद्धति का आविष्कार इस युग में किया है। इस प्रतिमा पद्धति का उदय जैन आचार्यों के उपदेश से धर्म तथा नीति के अनुसार हुआ है।

"मूर्तियों की पूजा श्रावकों की धार्मिक तृप्ति का साधन नहीं है। इस साधन में अभीष्ट देव के निवास-स्थान की कल्पना भी रही, जो मन्दिर के रूप में साकार हुई। स्थापत्य के रूप में मन्दिरों का निर्माण कदाचित् सर्वप्रथम उत्तर-भारत में हुआ। साहित्य में ईशा पूर्व छह सौ वर्ष से भी प्राचीन मन्दिरों के उल्लेख मिले हैं। मथुरा, काम्पिल्य आदि में पार्श्वनाथ महावीर आदि मन्दिरों का निर्माण हुआ था। महावीर से दो सौ वर्ष पूर्व मथुरा के कंकाली टीले पर किसी कुबेरा देवी ने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था"।[1]

"जैन आम्नाय के अनुसार, वास्तव में व्यक्ति विशेष की पूजा का विधान नहीं है बल्कि मूर्तमान की उस गुणराशि की पूजा है जो स्वात्मदर्शन के लिए परम सहायक है। वास्तव में भावपूजा ही सार्थक है न कि द्रव्यपूजा अथवा भौतिक उपासना। इसका कारण यह है कि जैनदर्शन में पूजा का तात्पर्य उस व्यक्ति-पूजा से नहीं, जो सामान्य अर्थ में प्रचलित है बल्कि किसी भी कृतकृत्य मनुष्य अर्थात् मुक्त आत्मा की उस गुणराशि की पूजा से है जिसका तीर्थंकर मूर्ति की पूजा के रूप में कोई पूजक अनुस्मरण करता है"।[2]

प्रमाण और नयज्ञान से वस्तु (पदार्थ) का विज्ञान होता है, प्रमाण से वस्तु

---

1. 'जैनकला में प्रतीक' : लेखक पवनकुमार जैन : प्र.—जैनेन्द्र साहित्य सदन ललितपुर। प्र. सं. 1983, पृ. 18.
2. 'जैनकला में प्रतीक' : लेखक-पवनकुमार जैन : ललितपुर. प्र.सं. 1983, पृ. 51.

का पूर्णज्ञान स्पष्ट रूप से होता है और प्रमाण के द्वारा विज्ञात पदार्थ के, विवक्षावश एकदेश (आंशिक) ज्ञान को नय कहते हैं। नय दो प्रकार का होता है—1. निश्चयनय, 2. व्यवहारनय। निश्चयनय अपेक्षावश वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कथन करता है और व्यवहार नय किसी अपेक्षा से वस्तु के बाह्यरूप का कथन करता है।

निश्चयनय की दृष्टि से अर्हन्त, सिद्ध आदि पंच परमेष्ठी देवों की शुद्ध आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुणों का, अपने चित्त में चिन्तन करना भाव प्रतिमा का अर्चन कहा जाता है। शुद्ध आत्मा का प्रभाव अशुद्ध आत्मा पर अवश्य ही होता है। अर्हन्त सिद्ध आदि शुद्ध आत्मा के गुणों का स्मरण करना अपने आत्मा के गुणों का स्मरण या अर्चन हो जाता है, कारण कि जगत् के सब ही आत्माद्रव्य ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुणस्वरूप ही हैं। इसी विषय को लक्ष्य कर श्री कुन्द-कुन्दाचार्य द्वारा घोषित किया गया है—

> जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
> सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं॥[1]

सारांश—जो समीचीन श्रद्धा वाला मानव, द्रव्य-गुण और पर्यायों (दशाओं) की अपेक्षा से भगवान अर्हन्त के प्रति श्रद्धा करता है, जानता है, गुणों का स्मरण करता है, वह मानव आत्मा को जानता है, श्रद्धा करता है तथा गुणस्मरण करता है, कारण कि आत्म-स्वभाव एक अखण्ड अविनाशी है। उस मानव के मोह, राग, द्वेष, अज्ञान आदि विकार नष्ट हो जाते हैं और वह परमविशुद्धि के लिए दर्शनज्ञानचारित्र की साधना सम्यक् रीति से करता है। यह निश्चय दृष्टि से अर्हन्त आदि की भाव प्रतिमा का भाव पूजन है। इस पूजन में उपादान कारण भक्त (पूजक) की आत्मा है और निमित्तकारण अर्हन्त की आत्मा है, यहाँ पर उपादान निमित्त सम्बन्ध जानना आवश्यक है।

अब व्यवहार दृष्टि से उपादान निमित्त कारण पर विचार किया जाता है, व्यावहारिक दृष्टि से भी भक्त (पूजनकर्ता) की आत्मा उपादान कारण है और भक्त का शरीर, पूजन की सामग्री तथा अर्हन्त भगवान की प्रतिमा (मूर्ति), और मन्दिर निमित्त कारण हैं। साक्षात् मूर्तिमान अर्हन्त आदि परमेष्ठी देवों के न होने पर, उनके गुणों का स्मरण करने के लिए तथा उनमें ध्यान स्थिर करने के लिए प्रतिमा की आवश्यकता होती है, प्रतिमा का प्रभाव भक्त के हृदय पर अवश्य प्रभावक होता है, यह एक प्रबल निमित्त है।

योग्य निमित्त का संयोग होने पर जो वस्तु स्वयं शक्ति से कार्यरूप परिणत हो जाए उसे उपादान कारण कहते हैं। जो वस्तु स्वयं कार्यरूप तो न हो परन्तु कार्य

---

1. कुन्दकुन्द : प्रवचनसार : सं. आदिनाथ उपाध्ये, प्र.—राजचन्द्र शास्त्रमाला, अगास (गुजरात), सन् 1964, पृ. 91, अ. 1, गा. 80.

के उत्पन्न होने में सहायक मात्र हो उसे निमित्त कारण कहते हैं। जैसे घट के उत्पन्न होने में मिट्टी उपादान कारण है क्योंकि मिट्टी ही घटरूप हो गयी है और कुम्हार, दण्ड, चक्र आदि बहुत संयोगी वस्तुएँ, घट के उत्पन्न होने में आवश्यक मिमित्त हैं कारण कि ये निमित्त कुम्हार, चक्र आदि घटरूप नहीं बन गये हैं। मिट्टी न हो और कुम्हार-चक्र आदि निमित्त विद्यमान रहें तो भी घट नहीं बन सकता है और मिट्टी विद्यमान हो तथा दण्ड-चक्र आदि बाह्य निमित्त न हों तो भी घट उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए यह निष्कर्ष (सारांश) निकला कि योग्य उपादान और निमित्त कारणों का संयोग होने पर ही कार्य उत्पन्न होता है। जगत् के समसत कार्यों के उत्पन्न होने का यही नियम है। प्रकृतविषय में भी यही नियम प्रयुक्त होता है कि भक्त (पूजक) की आत्मा उपादान कारण है और मूर्ति-मन्दिर-द्रव्य आदि निमित्त कारण हैं, इन दोनों कारणों के मिलने पर ही भक्त की आत्मा पवित्र होती है, यह परमात्मा होने की प्रथम सीढ़ी है।

इस प्रकार व्यवहारनय से मूर्ति-पूजा की सिद्धि की गयी।

निक्षेप की दृष्टि से मूर्तिपूजा की सिद्धि

नय की दृष्टि से प्रचलित वस्तु सम्बन्धी लोक-व्यवहार निक्षेप है। निक्षेप छह प्रकार के है नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, क्षेत्र निक्षेत्र, काल निक्षेप, भाव निक्षेप। इनकी अपेक्षा से मूर्ति के भी छह प्रकार हो जाते हैं—नाममूर्ति, स्थापना मूर्ति, द्रव्य मूर्ति, क्षेत्र मूर्ति, कालमूर्ति, भावमूर्ति।

(1) नाम-मूर्ति—द्रव्य जाति गुण तथा क्रिया के बिना किसी व्यक्ति का मूर्ति यह नाम रखने को नाममूर्ति कहते हैं—राममूर्ति, त्यागमूर्ति इत्यादि।

(2) स्थापना-मूर्ति—लेखनी आदि से चित्र बनाकर अथवा किसी भी धातु पाषाण आदि की, मूलवस्तु के अनुरूप (तदाकार) मूर्ति (प्रतिमा) बनाकर बुद्धि से उसमें 'यह वह है' इस प्रकार, मन्त्र पूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव करना स्थापना मूर्ति कही जाती है, जैसे पार्श्वनाथ की मूर्ति में भगवान अर्हन्त पार्श्वनाथ की कल्पना करके पार्श्वनाथ के गुणों का अर्चन करना, अथवा भगवान महावीर की मूर्ति बनाकर उसमें बुद्धि पूर्वक मन्त्रों द्वारा महोत्सव के साथ भगवान महावीर की प्रतिष्ठा (स्थापना) करना। अथवा शतरंज की मोहरों (गोटों) में बादशाह, वजीर आदि की स्थापना करना।

नाम निक्षेप तथा स्थापना निक्षेप में यह अन्तर है कि नाम निक्षेप में नाम-मात्र की प्रधानता होने से मूल पदार्थ की तरह पूज्यता नहीं होती है परन्तु स्थापना निक्षेप में मूलवस्तु या मूर्तमान पदार्थ को स्थापना होने से पूज्यता या आदरभाव मूर्ति में हो जाता है। जैसे किसी का महावीर नाम है तो उसकी पूज्यता भगवान महावीर के समान न होगी परन्तु यदि भगवान महावीर की साकार मूर्ति में प्रतिष्ठा कर दी

गयी है कि ये वही भगवान महावीर हैं तो उस मूर्ति की पूज्यता भगवान वीर की तरह ही होती रहेगी।

यह विषय ध्यान देने योग्य है कि इसी स्थापना निक्षेप के बल पर ही विश्व में मूर्तिपूजा का आविष्कार हुआ है, हो रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा। इसमें स्थापना (प्रतिष्ठा) का ही महत्त्व है।

(3) द्रव्यमूर्ति—भविष्य में अर्हन्त पद को प्राप्त करने के लिए सम्मुख महात्मा की वर्तमान में मूर्ति बनाना द्रव्यमूर्ति है अथवा भूतकाल में अर्हन्त परमेष्ठी पद को प्राप्त हुए तीर्थंकर की वर्तमान में मूर्ति-रचना करना द्रव्यमूर्ति कही जाती है।

(4) क्षेत्र-मूर्ति—जिस क्षेत्र से अर्हन्त परमेष्ठी, सिद्ध पद को प्राप्त हुए हैं उस क्षेत्र पर उनकी मूर्ति स्थापित करना क्षेत्रमूर्ति है, अथवा जिन क्षेत्रों की साकार मूर्ति निर्मित करना अथवा उन महात्माओं की साकार मूर्ति स्थापित करना क्षेत्र मूर्ति है।

(5) काल-मूर्ति—जिस काल में कोई वीतरागता के उपासक सम्यग्दृष्टि मानव अर्हन्त आदि पदों को प्राप्त हुए हैं उस काल में उनकी मूर्ति स्थापित करना कालमूर्ति है अथवा जिस काल में जिन तीर्थंकरों के पंच कल्याण महोत्सव सम्पन्न हुए हैं उन-उन कालों में उनकी प्रतिमा स्थापित करना, अथवा उस काल के क्षेत्रों की मूर्ति स्थापित करना कालमूर्ति है।

(6) भाव-मूर्ति—पूज्य-पूजक भाव का ज्ञाता जो सम्यग्दृष्टि मानव वर्तमान में अर्हन्त सिद्ध परमात्मा के गुणकीर्तन में उपयोग लगाता है अथवा उनके आत्मगुणों का स्वकीय आत्मा में ध्यान लगाता है, उसको भावमूर्ति कहते हैं।

उक्त मूर्ति के भेदों से यह सिद्ध होता है कि मूर्ति प्रत्येक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की दशा में होती है, उसके बिना मानव या प्राणीमात्र का लौकिक तथा पारमार्थिक कार्य सिद्ध नहीं होता है।

द्वितीय स्थापना निक्षेप की अपेक्षा मूर्तिपूजा की व्यापकता विश्व में सिद्ध होती है। यहाँ कोई व्यक्ति प्रश्न कर सकता है कि मूर्तिपूजा करना तो पाषाण धातु आदि जड़ की पूजा करना है उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि केवल पाषाण धातु आदि की मूर्ति बनाकर पूजना जिसका कोई लक्ष्य न हो, कोई मूल पदार्थ की स्थापना न की गयी हो, तो इसको हम भी कहते हैं कि यह केवल जड़ की पूजा है, इससे कोई लाभ नहीं है। परन्तु जो मूर्ति, मूल पदार्थ (मूर्तमान) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा या गुरु की विधिपूर्वक बनायी गयी हो, उसकी मन्त्रों द्वारा प्रतिष्ठा या स्थापना की गयी हो, जिसकी पूजा करने से आत्म-शुद्धि का लक्ष्य सिद्ध होता हो और दोषों को त्यागने की शिक्षा मिलती हो, वह मूर्तिपूजा उपयोगी है, यह जड़ की पूजा नहीं है। मूर्ति के माध्यम से मूर्तमान के गुणों का स्मरण करना मूर्तिपूजा का ध्येय है। इसी विषय को धर्मग्रन्थों में युक्ति-पूर्वक कहा गया है—

न त्वं मूर्तिर्न मूर्तिस्त्वं, त्वं त्वमेव सा सैव सा।
मूर्तिमालम्ब्य त्वद्भक्ताः, मूर्तमन्तमुपासते॥

सारांश—हे भगवन्! आप मूर्ति नहीं हैं और न मूर्ति आप हैं, आप आप हैं और मूर्ति मूर्ति है, तथापि आप के भक्त मूर्ति का आश्रय लेकर मूर्तमान् आप की उपासना करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मूल आदर्श परमात्मा के गुणों का स्मरण मूर्ति के माध्यम से करना मूर्तिपूजा का लक्ष्य है, वह आत्मशुद्धि के लिए उपयोगी है, इससे भिन्न मूर्तिपूजा नहीं कही जा सकती।

मूर्तिपूजा वास्तविक उपयोगी है—

अक्षरावगमलब्धये यथा, स्थूलवर्तुलदृषत्परिग्रहः।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा, दारुमृण्मयशिलामयार्चनम्॥[1]

तात्पर्य—जिस प्रकार अक्षरों का ज्ञान कराने के लिए छात्रों के समक्ष छोटे-छोटे कंकड़ आदि मिलाकर अक्षरों का आकार शिक्षण की शैली से सिखाया जाता है, उसी प्रकार शुद्ध-बुद्ध परमात्मा का ज्ञान कराने के लिए लकड़ी, मिट्टी या पाषाण की मूर्ति का प्रतीक रूप में उपयोग किया जाता है।

जिनेन्द्रदेव की मुद्रा (मूर्ति) का मूल्यांकन

गरलापहारिणी मुद्रा गरुडस्य यथा तथा-
जिनस्याऽप्येनसो हन्त्री दुरितारातिपातिनः॥[2]

भावसौन्दर्य—जिस प्रकार गरुडमुद्रा दर्शनमात्र से सर्प के विष का नाश करती है, उसी प्रकार जिनेन्द्रमुद्रा (मूर्ति) भी पापों का नाश करनेवाली होती है अर्थात् वीतराग जिनदेव की मूर्ति के दर्शन-पूजन से पाप-ताप विनष्ट हो जाता है।

विना न्यासं न पूज्यः स्यान्नवन्द्योऽसौ वृषत्समः।
सुखं न जनयेन् न्यासवर्जितः प्राणिनां क्वचित्॥[3]

सारांश—प्रतिष्ठा किये बिना मूर्ति पूज्य नहीं होती, बिना प्रतिष्ठा के वह पाषाण के समान है। अप्रतिष्ठितमूर्तियों से प्राणियों को पुण्य प्राप्त नहीं होता।

आ. वसुनन्दि ने भी इसी प्रकार प्रतिमा के प्रत्येक अंग में मन्त्रन्यास, 48 संस्कारों की स्थापना, नेत्रोन्मीलन, श्रीमुखोद्घाटन, सूरिमन्त्र आदि महामन्त्रों का अपने प्रतिष्ठा पाठ में उल्लेख किया है। इसलिए निवास गृहों में प्लास्टिक, कागज़,

---

1. लोकमान्य तिलक : गीतारहस्य, पृ. 413
2. आचारसार 9, 27
3. जिनपूजा एवं जिनमन्दिर : सं. पं. नाथूलाल शास्त्री, प्र. श्रीग्रन्थमालासमिति इन्दौर, 1982, पृ. 17।

काच आदि की फ़ोटो, मूर्ति व स्टेच्यू, प्रतिमा के अनुरूप नहीं मानी जाती। बिना प्रतिष्ठा के घरों में पाषाण या अन्य धातु की प्रतिमा भी पूजायोग्य नहीं है।

स्नपनार्चास्तुतिजपान्, साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युंज्याद् यथाम्नायमाद्याद् धृते संकल्पितेऽर्हति॥[1]

साम्यभाव की प्राप्ति के लिए अर्हन्त प्रतिमा का स्तवन, स्नपन, अर्चन, जपन को शास्त्र विधिपूर्वक करना चाहिए।

अभिषेकमहं नित्यं, सुरनाथाः सुरैः समम्।
द्विद्विप्रहरपर्यन्तमेकैकदिशि शान्तये॥[2]

तात्पर्य—शान्ति के लिए देवेन्द्र, देवों के साथ नित्य एक-एक दिशा में दो-दो प्रहर तक प्रतिमा का अभिषेक करते हैं।

शान्ति क्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशान्तये।
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः॥[3]

भावसौन्दर्य—कुस्वप्न से सूचित अनिष्ट फल की शान्ति के लिए भरत चक्रवर्ती ने जिनेन्द्र प्रतिमा का अभिषेक, सत्पात्रदान, अर्चा आदि कर्तव्यों को सम्पन्न किये।

नित्यपूजाविधानार्थं, स्थापयेन्मन्दिरे नये।
पुराणे तत्र भाण्डागारे संस्थापयेद् धनम्॥
रथयात्रां पुराकृत्वाऽभिषेकमहनीयताम्।
सम्पाद्य संघभक्तिं च, कुर्वीत याजकोत्तमः॥[4]

भावसौन्दर्य—नित्य पूजा, रथयात्रा और अभिषेक आदि श्रावक सदैव करता रहे, ये श्रावक के परम कर्तव्य हैं। जिन प्रतिमा का अस्तित्व तीन लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों में पाया जाता है। परन्तु मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों में अकृत्रिम प्रतिमाएँ और कृत्रिम (बनाये गये) चैत्यालयों में कृत्रिम प्रतिमाओं का अस्तित्व सिद्ध होता है। कृत्रिम प्रतिमाओं की सर्वप्रथम स्थापना तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती ने की थी। श्रुतज्ञान के 11 अंगों में से उपासकाध्ययन नाम के 7वें अंग में पूजा का विशेष वर्णन है।

ऋषभदेव ने जिनमन्दिरों का निर्माण करवाकर श्रावक वर्ग को पूजा, दान, शील

1. बृहत्सामायिक :
2. सिद्धान्तसार :
3. आदिपुराण : 41-81
4. आचार्य जयसेन : वसुबिन्दुप्रतिष्ठापाठ, श्लोक 912, 914।

और व्रत-उपवास आदि का उपदेश प्रदान किया था। महापुराण में आचार्य जिनसेन द्वारा गर्भाधान, जन्म, विवाह आदि संस्कारों के सम्पन्न कराने में पूजा की आवश्यकता व्यक्त की गयी। तथाहि—

"पूजयित्वाऽर्हतो भक्त्या, सर्वकल्याणकारिणी।"

सर्वकल्याणकारी अर्हन्त देव का भक्तिपूर्वक पूजन कर जन्मोत्सव, विवाह आदि संस्कार करना चाहिए।

वास्तविक बुद्धिभाव से लक्ष्य को रखकर की गयी मूर्तिपूजा जड़पूजा नहीं कही जा सकती। जड़पूजा का रूप तो यह है कि कोई मानव मूर्ति के सामने स्थित होकर अज्ञानभाव से यह कहे कि हे भगवान्! आप बड़े ही सुन्दर हो, जयपुर में आपको एक चतुर कारीगर (शिल्पी) ने बड़े परिश्रम से बनाया था, तुम्हारी क़ीमत पच्चीस हज़ार रुपये है, तुम्हारे यहाँ ले आने में भी बहुत रुपयों का व्यय हो गया है, तुम्हारे हाथ-पाद आदि अंग तथा नेत्र-कान-नासिका आदि उपांग बड़े सुन्दर हैं, आप को देखते ही नर-नारीगण बड़े प्रसन्न होते हैं, आप का वजन पचास क्विण्टल प्रमाण है, आप के शरीर की मोटाई तथा अवगाहना प्रशंसा के योग्य हैं, आप की पूजा हम जीवन भर करेंगे—यह सब कर्तव्य तथा ज्ञानशून्य केवल जड़पूजा या पुद्गल पूजा है।

सत्यार्थ मूर्ति पूजा का रूप यह होता है कि एक ज्ञानी कर्तव्यनिष्ठ भव्य मानव मूर्ति के सामने स्थित होकर कहता है—

सकलज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्दरसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस-विहीन॥[1]

हे भगवन्! आप जगत् के सकल पदार्थों के ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञ होने पर भी उन पदार्थों के प्रति मोह, राग, द्वेष, तृष्णा आदि दोषों से लिप्त नहीं हैं किन्तु आत्म-शान्ति, ज्ञान, दर्शन रूप रस में लीन हैं, आप मोहनीय कर्म ज्ञानवरण कर्म, दर्शनावरण कर्म, अन्तरायकर्म—इन चार घातक कर्मों से रहित होकर, अक्षय ज्ञान, दर्शन, सुख-वीर्य (बल) गुणों से विभूषित हैं, आप इस जगत् में सर्वदा जयवन्त रहें।

संस्कृत दर्शन स्तोत्र के कर्ता मूर्ति के समक्ष भक्ति व्यक्त करते हैं—

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्॥[2]

इस कथन से यथार्थ मूर्तिपूजा का रूप अनुभव से सिद्ध होता है। यह

1. बृहत् महावीर कीर्तन : सं. पं. मंगलसेन विशारद, प्र.—वीर पुस्तकालय श्री महावीर जी, सन् 1971, पृ. 4.
2. यही ग्रन्थ, पृ. 7.

विशेषवार्ता अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जहाँ कहीं पर भौतिक प्रतिमा का वर्णन किया गया है वह अलंकार साहित्य की दृष्टि से तथा भारतीय मूर्तिकला की दृष्टि से किया गया है। जो पुरातत्त्व–इतिहास तथा संस्कृति का विषय है। परन्तु इन विषयों में वीतरागमूर्ति का ही ध्येय स्थिर तथा प्रमुख रहना जरूरी है।

मूर्ति पूजा के विधान से अनेक प्रयोजनों की सिद्ध होती है—अर्हन्त की प्रतिमा, चैत्यालय आदि नवदेव धर्म के आयतन (अधिष्ठान = विशेष आधार) कहे गये हैं, इनकी उपासना से जीवन में धर्म-साधना का शुभारम्भ, लोक-प्रचलित धर्म या स्वयं प्राप्त धर्म की रक्षा और सुरक्षित धर्म की उन्नति होती है। देश में, समाज में और कुटुम्ब में धर्म की परम्परा चलती रहती है, न्यायपूर्वक उपार्जन किये गये धनसम्पत्ति के द्वारा उत्साहपूर्वक मन्दिर प्रतिमा आदि धर्मस्थानों के निर्माण कराने से श्रावक या गृहस्थ मानव को आत्मगौरव का अनुभव होता है, देश तथा समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है, परोपकार की भावना जागृत होती है, गृहस्थाश्रम के निमित्त से होनेवाले हिंसा असत्य आदि पापों का नाश होकर श्रेष्ठ पुण्य का बन्ध होता है। मन्दिर में प्रतिमा के दर्शन-पूजन करने से अच्छे विचारों का विकास होता है, दैनिक जीवन में एक नवीन चेतना का उद्भव होता है।

जैसे स्वाध्याय या ज्ञान की वृद्धि के लिए शास्त्र (ग्रन्थ) एक महान् आश्रय है उसी प्रकार परमात्मा की भक्ति-पूजन करने के लिए प्रतिमा (मूर्ति) एक महान् आधार है। यद्यपि मूर्ति के बिना अनेक व्यक्ति परमात्मा की भक्ति-कीर्तन का प्रयास करते हैं पर उस भक्ति में क्षणिकता रहती है, वह भक्ति अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती। अधिक अध्ययन के लिए ग्रन्थ (शास्त्र) का और अधिक भक्ति-पूजन के लिए मूर्ति का आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है। जब उपासक भक्ति-कीर्तन करते समय समक्ष में मूर्ति के रूप को देखता है तो शीघ्र सावधान हो जाता है कि मैं किसी महान् पूज्य महात्मा के सामने खड़ा हूँ। कोई त्रुटि न हो जाए। इसी लक्ष्य को लेकर श्री पण्डितप्रवर आशाधर महोदय का प्रमाण है—

धिग्दुष्षमाकालरात्रिं यत्र शास्त्रदृशामपि।
चैत्यालोकादृ ऋते न स्यात् प्रायो देवविशा मतिः॥[1]

तात्पर्य—कालरात्रि (मरणरात्रि) के समान, इस दुःषमा नामक कलिकाल को या उसके वातावरण को धिक्कार है कि जिस कलिकाल में, ज्ञानी पुरुषों की भी बुद्धि प्रतिमादर्शन के बिना प्रायः परमात्मा की भक्ति करने में स्थिर लीन नहीं होती। इसका स्पष्टीकरण यह है कि बुद्धिमान मानव ज्ञानाभ्यास तथा ध्यानाभ्यास में बहुत समय तक लीन रह सकता है परन्तु भक्ति-पाठ या स्तुति में प्रतिमा के बिना प्रायः

1. पण्डितप्रवर आशाधर : सागार-धर्मामृत : सं.पं. देवकीनन्दन शास्त्री, प्र.- गांधी चौक जैन प्रेस सूरत, सन् 1940, पृ. 65, अ. 2, पद्य 36.

अधिक समय तक संलग्न नहीं रह सकता। मूर्ति का यह सबसे महान् प्रभाव है।

स्थापना निक्षेप की पद्धति प्रतिनिधि पद्धति है। इसी प्रतिनिधि पद्धति का अनुकरण सर्वत्र प्रचलित है। राज्य-परिषद्, लोक सभा तथा अन्य अ.भा सामाजिक स्तर की महासभाओं के निर्माण में प्रतिनिधि निर्वाचित कर भेजने की व्यवस्था है, इसका तात्पर्य यही है कि जिस क्षेत्र के दशलाख व्यक्तियों के स्थान पर जो व्यक्ति प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ है, उस व्यक्ति का दश लाख व्यक्तियों के बराबर गौरव है, सभा में उसकी उपस्थिति, दशलक्ष व्यक्तियों की उपस्थिति मानी जाती है, उसके वचन दशलक्ष व्यक्तियों के वचन माने जाते हैं, उसकी शक्ति दशलक्ष व्यक्तियों की शक्ति मानी जाती है। यह प्रतिनिधित्व स्थापना निक्षेप के बल पर ही माना जाता है। इसी प्रकार शास्त्रविधि के अनुसार बनायी गयी मूर्ति जो कि तदाकार = मूर्तमान जैसी आकारवाली हो, वह मूर्ति (प्रतिमा), सर्वज्ञ परमात्मा का प्रतिनिधित्व करती है, परमात्मा जैसी पूज्यता, वीतरागता तथा उपस्थिति उस मूर्ति की मानी जाती है, उसमें भी विशेषता यह है कि मन्त्रों द्वारा उसमें मूल पदार्थ की स्थापना की जाती है। इसी प्रतिनिधित्व पद्धति को समयसार की आत्मख्याति टीका में श्री अमृतचन्द्र जी आचार्य ने दर्शाया है—

"सोऽयमित्यन्यत्र प्रतिनिधिव्यवस्थापनं-स्थापना"

सारांश यह है कि 'यह वही है' इस प्रकार मूर्ति आदि में, आदर्श परमात्मा की प्रतिनिधि रूप से व्यवस्था करना—स्थापना निक्षेप है। जैसे शान्तिनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा में 'ये वही शान्तिनाथ भगवान् हैं। इस प्रकार शान्तिनाथ की प्रतिनिधिरूप में स्थापना करना।

इस विलक्षण स्थापना निक्षेप की शक्ति से मूर्ति का आकार दो प्रकार से बनाया जाता है—1. कायोत्सर्गासन, 2. पद्मासन। धर्मध्यान से भी उत्कृष्ट शुक्लध्यान, इन दोनों आसनों में से किसी एक आसन से किया जाता है, इस ध्यान का तीसरा कोई आसन नहीं है। यह मानव आत्म-कल्याण के लिए सर्वप्रथम गृहस्थाश्रम का त्याग कर नैष्ठिक श्रावक की दीक्षा लेता है, इस दीक्षा-तप में निष्णात हो जाने पर आवश्यकता के अनुसार वह नैष्ठिक श्रावक, ग्यारहवीं चारित्र श्रेणी के बाद दिगम्बर मुनि की दीक्षा धारण करता है। दि. साधु धर्म-ध्यान के द्वारा मिथ्या श्रद्धान, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारों का अभाव कर शुक्ल ध्यान की दशा को अपनाते हैं। उत्कृष्ट तृतीय शुक्लध्यान के द्वारा ज्ञानावरण-दर्शनावरण, मोह-अन्तराय इन चार घातक कर्मों का नाश कर अर्हन्तपद को वे साधु प्राप्त करते हैं। दिगम्बर साधु जब पद्मासन से ध्यान करता है तब मूर्ति पद्मासन दशा की बनायी जाती है, इस पद्मासन में शरीर का आकार होता है कि दोनों चरण जंघाओं के ऊपर रहते हैं, कमर सीधी रहती है, वाम हस्त की हथेली के ऊपर सीधी दक्षिण

हस्त की हथेली रहती है, दृष्टि नासाग्र पर रहती है, गर्दन सीधी रहती है, मूर्ति इसी आकार की बनायी जाती है।

मुक्ति प्राप्त करने के योग्य शुक्लध्यान का दूसरा आसन कायोत्सर्गासन होता है। इसमें शरीर की दशा रहती है लाठी की तरह, शरीर सीधा रहता है, दोनों पंजे बराबर कुछ अन्तर से रहते हैं, हाथ लटके हुए रहते हैं, हाथ तथा चरणों की अँगुलियाँ मिली हुई रहती हैं। गर्दन सीधी और दृष्टि नासाग्र रहती है, ध्यान करते समय दोनों आसनें अचल रहती हैं, डाँस, मच्छर, मक्खी आदि जानवरों की बाधा को सहन किया जाता है, कष्टों को शान्त भाव से सहन किया जाता है, इसी कायोत्सर्गासन के आकार की मूर्ति बनायी जाती है। जैनमूर्तियों का आकार इन दोनों आसनों के समान ही होता है। जैन तीर्थ क्षेत्रों में गुफ़ाओं में, पर्वतों पर और मन्दिरों में इन ही दो आसनों वाली मूर्तियाँ विराजमान रहती हैं।

इन मूर्तियों का परिचय प्राप्त करने के लिए प्रतिष्ठाग्रन्थों के आधार इनके चिह्न भी निश्चित किये गये हैं, इन चिह्नों से निश्चित की गयी प्रतिमाओं को शिक्षित, अशिक्षित, बाल, वृद्ध, नर, नारी, देशीय, विदेशीय सभी जान सकते हैं कि ये प्रतिमा किस तीर्थंकर की और किस परमेष्ठी की है—तीर्थंकर अर्हन्त चौबीस में वृषभ (बैल), हाथी आदि चौबीस लक्षण पूर्व रेखाचित्र में कहे गये हैं। सामान्य अर्हन्त की प्रतिमा का कोई चिह्न निश्चित नहीं, सिद्ध प्रतिमा का कोई लक्षण नहीं, आचार्य परमेष्ठी की प्रतिमा का लक्षण (चिह्न) दक्षिण हस्त से आशीर्वाद प्रदान, उपाध्याय परमेष्ठी की प्रतिमा का लक्षण शास्त्र (ग्रन्थ), साधु परमेष्ठी की प्रतिमा का लक्षण पीछी—कमण्डलु निश्चित है।

जिस प्रकार तीर्थंकर अर्हन्त आदि पंचपरमेष्ठी देवों की मूर्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार अर्हन्त भगवान् की दिव्य ध्वनि (दिव्यवाणी) जो सकल जगत् के पदार्थों का उपदेश करती है, उसको भी मूर्ति शब्द (अक्षर) रूप होती है, अक्षरों के समूह से पदों (शब्दों) का निर्माण होता है, पदों से वाक्य की रचना होती है, वाक्यों से श्लोक की रचना होती है और श्लोक समूह से ग्रन्थ या शास्त्र का उदय होता है। इस कारण कार्य सम्बन्ध की परम्परा से यह सिद्ध हो जाता है कि तीर्थंकर अर्हन्त भगवान् के धर्मोपदेश की मूर्ति शास्त्र है। इसी को वृत्तान्त, आगम, सिद्धान्त, ग्रन्थ, शास्त्र और पुस्तक कहते हैं। दोनों मूर्तियों में अन्तर इतना रहता है कि मूल या मूर्तमान पदार्थ का प्रतिनिधित्व करनेवाली मूर्ति, पाषाण, धातु आदि की बनी हुई साकार होती है और तीर्थंकर महावीर, महात्मा-बुद्ध इत्यादि महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट वाणी की मूर्ति, काग़ज़ की बनी हुई तथा उसमें अक्षरों का आकार होता है। महात्मा की मूर्ति और उनकी वाणी की मूर्ति शास्त्र या ग्रन्थ इन दोनों मूर्तियों की समान रूप से पूज्यता होना परम आवश्यक है। पर यह आश्चर्य का विषय है कि विश्व के अनेक मानव महात्मा गुरुओं के उपदेश की मूर्ति ग्रन्थ (शास्त्र) को तो मानते हैं परन्तु महात्मा

गुरु की मूर्ति को नहीं मानते। मानव के सामने दोनों ही पक्ष उपस्थित होते हैं कि या तो वाणी की मूर्ति के समान महात्मा की मूर्ति को मान्यता दो अथवा महात्मा गुरु की मूर्ति के समान, वाणी की मूर्ति को भी मान्यता मत दो। एक कोई मूर्ति को मान्यता देना और एक कोई मूर्ति को मान्यता नहीं देना—यह युक्तिपूर्ण मान्यता नहीं है। यदि बुद्धिमान् मानव शास्त्र (ग्रन्थ) को मूर्तिरूप नहीं मानते हैं तो किस रूप से मानते हैं। यदि किसी चिह्न, आकार, मुद्रा या प्रतिनिधि रूप लक्षण से मानते हैं तो वही मूर्ति की मान्यता अनिवार्यरूप से ही सिद्ध हो जाती है।

द्वितीय युक्ति यह भी है कि यदि आप शास्त्र को मूर्ति रूप से नहीं मानते हैं तो उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, न आरती करनी चाहिए और न नमस्कार करना चाहिए। तृतीय युक्ति यह है कि यदि शास्त्र को मूर्ति नहीं मानते हैं तो उसका अपमान, अविनय या निन्दा करने पर, शास्त्रपूजक के चित्त में दुःख, दण्ड देने की भावना और प्रतिक्रिया (बदला लेना) के विचार नहीं उठना चाहिए। पर विश्व में सर्वत्र देखा यह जाता है कि किसी भी सम्प्रदाय, समाज, दर्शन अथवा वर्ग के धर्म ग्रन्थ (शास्त्र) जो कि कागज आदि का बना हुआ, अक्षरों में मुद्रित, वस्त्र से वेष्टित है, उसकी निन्दा, अपमान या अविनय करने पर, साम्प्रदायिक द्रोह, मारपीट, अग्निकाण्ड तथा प्रतिक्रिया के काण्ड देखे जाते हैं, अपने से अन्य धर्मों के ग्रन्थ, मूर्तियाँ, मन्दिर आदि का विध्वंस किया जाता है और अपने धर्म एवं संस्कृति का प्रचार किया जाता है।

विज्ञान की दृष्टि से मूर्ति का प्रभाव

आधुनिक भौतिक विज्ञान की दृष्टि में मूर्ति की मान्यता सिद्ध होती है और उस मूर्ति का मानव के हृदय पर तथा अन्य पदार्थों पर बहुत प्रभाव सिद्ध होता है। जैसे एक्सरे विज्ञान का एक आविष्कार है। वह शरीर के अन्दर स्थित हड्डी आदि वस्तुओं का दिग्दर्शन कराता है वह एक प्रकार की मूर्ति ही है जिससे अनेक प्रकार के ज्ञान (शारीरिक) होते हैं, उसका प्रभाव मानस-पटल पर बहुत स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।

दूसरा वैज्ञानिक आविष्कार—छवि-अंकन (छायाचित्र) होता है। कैमरा से जिस पदार्थ की छाया (कान्ति) ली जाती है, उसे छायाचित्र कहते हैं, इसमें पदार्थों का चित्रण स्थिर रूप से होता है जो पदार्थ के अनुकूल सदा एक-सा बना रहता है, इस चित्र का चित्त पर अधिक प्रभाव होता है। जैसे वीर पुरुष, महात्मा का प्रभाव वीरतापूर्ण होता है। शृंगार मय मूर्ति (चित्र) से शृंगार का प्रभाव, विरागतापूर्ण मूर्ति से वैराग्य का प्रभाव, हास्यमय मूर्ति से हास्य का प्रभाव, भयानक चित्र से भय का प्रभाव, और शान्त चित्र से शान्ति का प्रभाव होता है, इत्यादि।

तृतीय वैज्ञानिक आविष्कार—चलचित्र प्रसिद्ध है, इसमें पदार्थों के चित्र चलने

के साथ ही बोलते भी हैं। यह चित्रावली भी एक प्रकार की मूर्ति है, जिसका मानवों पर बहुत प्रभाव होता है। वर्तमान युग में इस सिनेमा रूप मूर्ति का अधिक प्रभाव हो रहा है, बाल-वृद्ध, नर-नारी, युवक-युवती सभी इसके वशीभूत हो रहे हैं। वर्तमान में मानव, सिनेमा के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हें भोजन न मिले तो कोई हानि नहीं, पर सिनेमा के दर्शन अवश्य होना चाहिए। यह सब चलचित्र रूपी मूर्ति का प्रभाव है।

चतुर्थ वैज्ञानिक आविष्कार—हस्तकला सम्बन्धी है, हस्तकला में विज्ञकलाकार जो सुन्दर चित्र कागज़ पर, पत्थर पर, मिट्टी पर, वस्त्र पर आदि परचित्रित करते हैं उनका चित्र पर यथायोग्य अत्यन्त प्रभाव मुद्रित होता है। जैसे सुन्दर वेश्या का चित्र हो तो विषय-सेवन की इच्छा होती है। द्यूत क्रीड़ा (जुआ) करनेवाले का चित्र हो तो जुआ खेलने की इच्छा होती है, हिंसक का चित्र हो तो हिंसा करने की इच्छा होती है, महाराणा प्रताप का चित्र हो शरीर में रक्त उबलने लगता है, दिगम्बर मुनिराज का चित्र देखते ही वैराग्य की भावना उछलने लगती है।

सारांश यह है कि हस्तकला के चित्र रूप मूर्ति का प्रभाव अनुभव से सिद्ध होता है।

जैनमूर्ति और मूर्ति-पूजन का ऐतिहासिक सन्दर्भ—"मोहन-जो-दड़ो से प्राप्त मुहर (खड़ियामिट्टी की मुद्रा) पर उकेरी कायोत्सर्ग मूर्ति पर यदि हम अभी विचार न करें तो भी लोहानीपुर की मौर्ययुगीन तीर्थंकर प्रतिमाएँ यह सूचित करती हैं कि इस बात की सर्वाधिक सम्भावना है कि जैनधर्म पूजा हेतु प्रतिमाओं के निर्माण में बौद्ध और ब्राह्मण धर्म से आगे था। बौद्ध या ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित धर्म की देवताओं से सम्बन्धित इतनी प्राचीन प्रतिमाएँ अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं। यद्यपि इन धर्मों की समकालीन या लगभग समकालीन यक्षमूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनकी शैली पर लोहानीपुर की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। महावीर के समय में इस प्रकार की मूर्तियाँ बनाने की प्रथा थी, इसका प्रमाण नहीं मिल सका है। स्वयं महावीर के समकालीन वीतभयपत्तन के नृपति उद्दायन की रानी चन्दन-काष्ठ से निर्मित तीर्थंकर मूर्ति की पूजा करती थी। इस आख्यान का प्रतिरूप बुद्ध के समकालीन कौशाम्बी के उदयन सम्बन्धी आख्यान में मिलता है कि उसने इसी सामग्री से निर्मित बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की थी। यहाँ तक कि दोनों शासकों के नामों की समता भी सम्भवतः आकस्मिक न हो।"[1]

पंचम वैज्ञानिक आविष्कार—रेखाचित्र विषयक है। इस कला के कलाकार जैसा भावपूर्ण चित्र अंकित करते हैं वैसा ही मानस-पटल प्रभावित होता है—देश के रेखाचित्र से देश का ज्ञान, मनुष्य के रेखा चित्र से मनुष्य का ज्ञान होता है। वर्तमान समाचार पत्रों में भावपूर्ण रेखाचित्र या व्यंग्यचित्र बहुत मुद्रित होते हैं। उनको देखकर

---

1. अमलानन्द घोष : जैनकला एवं स्थापत्य-खण्ड-1, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, सन् 1975, अध्याय-1, पृ. 5।

पाठक बहुत हास्य करते हैं, कई जन दुःखी होते हैं और कई हर्षित होते हैं। रेखाचित्रों के द्वारा कहानी भी लिखी जाती है, रेखाचित्रों के द्वारा भाषा का ज्ञान होता है।

सारांश यह है कि रेखाचित्र भी एक प्रकार की मूर्ति है जिसका प्रभाव अपना हृदय जानता है। लोक में रेखाचित्रों के द्वारा शिक्षण, गणित, भूगोल आदि विषयों का ज्ञान हो जाता है।

इतिहास के आलोक में मूर्ति का महत्त्व

ज्ञान का विकास गुरु-शिष्य की परम्परा से होता है। जिस प्रकार वंश का प्रवाह पिता-पुत्र की परम्परा से अक्षुण्ण रहता है। योग्य गुरु के बिना शिष्य के ज्ञान का विकास नहीं होता। साक्षात् गुरु के शिक्षा प्रदान करने पर तो शिष्य शिक्षित होता ही है, पर आश्चर्य यह है कि गुरु की प्रत्यक्ष संगति न भी हो, अपितु गुरु की केवल मूर्ति ही अथवा मात्र स्मृति हो तो भी शिष्य को गुरुभक्ति के बल पर अभीष्ट विषय की शिक्षा प्राप्त हो जाती है।

भारत के प्राचीन इतिहास में इस विषय का एक ज्वलन्त उदाहरण पाठकों को आश्चर्यान्वित कर देता है। एकलव्य हिरण्यधनु का पुत्र था, हिरण्यधनु निषादों का सरदार था। धनुर्विद्या की शिक्षा लेने में उत्साही एकलव्य द्रोणाचार्य के पास गया। उस समय द्रोणाचार्य कौरवों-पाण्डवों को धनुर्विद्या का अभ्यास करा रहे थे।

यद्यपि द्रोणाचार्य ने उसे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया, इसलिए उसने जंगल में एक कुटी बनायी। उसमें द्रोणाचार्य की सुन्दर मूर्ति मिट्टी की बनाकर स्थापित की। श्रद्धा के साथ उसका पूजन किया और आत्मबल से धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा।

एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को धनुर्विद्या का व्यावहारिक ज्ञान कराने के लिए जंगल में यत्र-तत्र विचरण कर रहे थे। द्रोणाचार्य का अनुचर उनके कुत्ते के साथ गुरुजी की खोज करता हुआ अकस्मात् एकलव्य के स्थान पर प्राप्त हुआ। उस समय तेज़ी से एकलव्य धनुर्विद्या के अभ्यास में मग्न था। द्रोणाचार्य के कुक्कुर (कुत्ते) ने एकलव्य का भयंकर शरीर देखकर तेज़ी के साथ भौंकना शुरू कर दिया। इससे एकलव्य का एकाग्र चित्त विचलित हो गया। वह कुत्ते को जान से मारना भी नहीं चाहता था और कोई द्रोह भी नहीं करना चाहता था। इसलिए एकलव्य ने कुत्ते का भौंकना मात्र रोकने के लिए उसके मुख में क्रमशः सात बाण चतुराई से छोड़ दिये। उसके मुख में सात बाण भर जाने से भौंकना बन्द हो गया और कुत्ता ज़रा भी घायल नहीं हुआ। एकलव्य की परीक्षा का महान् अवसर था।

कुत्ता अनुचर के साथ दौड़ता हुआ वहाँ आया जहाँ द्रोणाचार्य धनुर्विद्या की शिक्षा कौरवों-पाण्डवों को दे रहे थे। गुरु के पूँछने पर अनुचर ने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। सभी व्यक्ति अति उत्कण्ठापूर्वक अनुचर को साथ लेकर एकलव्य की

कुटी पर गये। गुरुजी ने एकलव्य से प्रश्न किया कि तुमने प्रखर बाण-विद्या का अभ्यास किस गुरु से किया! तब एकलव्य ने उत्तर दिया कि जब आपने मुझे धनुर्विद्या सिखाने का निषेध कर दिया, तब मैंने कुटी में आपकी मूर्ति बनाकर प्रतिदिन पूजा करते हुए, बाण विद्या का अभ्यास किया और उसमें दक्षता भी प्राप्त हो गयी। उस समय गुरुजी और शिष्यों को आश्चर्य यह विशेष वार्ता समझ में आ गयी कि साक्षात् गुरु के बिना भी, उनकी मूर्ति का ध्यान करके अथवा उनके गुणों का स्मरण करके कला का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, इस घटना से गुरुजी और शिष्य-कौरव एवं पाण्डव बड़े प्रभावित हुए।[1]

इतिहास के इस कथानक से मूर्तिपूजा का महत्त्व सिद्ध होता है।

भारत के ओजस्वी नेता स्वामी विवेकानन्द श्री अलवरनरेश से मिलने गये। कारण कि स्वामी जी ने यह जान लिया था कि अलवरनरेश ने अँग्रेजों और योरोपीय सभ्यता से प्रभावित हो मूर्तिपूजा और ईश्वर-आराधना छोड़ दी है।

स्वामी जी ने कहा—हमारा अभिप्राय यही है कि यदि आप चित्र, रेखाचित्र या फ़ोटो का महत्त्व समझते हैं तो आपको उसी प्रकार मूर्ति का भी महत्त्व समझना चाहिए। चित्र केवल आकार है और मूर्ति, मूल पदार्थ की तरह अंगोपांग वाली होती है, चित्र से भी अधिक महत्त्व इस मूर्ति का होता है। इसी प्रकार परमात्मा का चित्र या मूर्ति का भी वही महत्त्व या पूज्यता होती है जो साक्षात्-परमात्मा की होती है इसलिए आप सबको परमात्मा की मूर्ति को परमात्मा की तरह पूज्य मानकर उसका सम्मान, पूजा या दर्शन करना चाहिए, उसका अपमान नहीं करना चाहिए। इस मूर्ति का भी हृदय पर बहुत प्रभाव होता है, वह सदैव पूज्य होती है। परमात्मा तो अदृश्य और अमूर्तिक होता है उसका दर्शन तो मूर्ति के माध्यम से किया जा सकता है। लोक में भी यह प्रथा देखी जाती है कि जब अर्हन्त परमात्मा या किसी देवी देवता के साक्षात् दर्शन न हों तो मूर्ति या चित्र की रचना कर उस मूल पदार्थ के दर्शन किये जाते हैं अतः मूर्ति के माध्यम से परमात्म देव के दर्शन करना मानव के लिए उपयोगी है। यदि इस चित्र या मूर्ति पर थूकने से राजा का अपमान और आदर या दर्शन करने से राजा का सम्मान होता है तो इससे सिद्ध होता है कि मूर्ति की स्थापना करना आवश्यक है।

महमूद गज़नवी अपने साथियों के साथ अनेक स्थानों की मूर्तियों और मन्दिरों को तोड़ता हुआ कुण्डलपुर आया। उसके साथियों ने पर्वत पर जाकर भगवान बड़े बाबा की मूर्ति पर प्रहार किया तो उसमें से दूध की धारा निकल पड़ी। यह चमत्कार देख वे डर गये। क्रोध के आवेग से गज़नवी पर्वत की ओर तेज़ी से बढ़ा ही था कि हज़ारों मधुमक्खियों ने उसे काटना प्रारम्भ कर दिया। सिपाहियों ने अनेक उपायों

1. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : प्राचीन भारत की गौरवगाथा, प्र.—चौखम्भा सं.सी. वाराणसी, प्र.पृ. 54.

से गज़नवी की रक्षा की। गज़नवी ने कहा कि यहाँ से जल्दी चलो, उस अतिशय वाली मूर्ति को तोड़कर अपनी जान नहीं खोना है।

यह भगवान बड़े बाबा (आदिनाथ) की प्राचीन मूर्ति का परम अतिशय सिद्ध होता है।

सन् 1755 के आस-पास की घटना है। हैदरअली ने दक्षिण भारत को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। उसने एक विशेष वार्ता सुनी कि श्रवणबेलगोल नामक तीर्थस्थान में एक विशाल सुन्दर मूर्ति है। उसने उसको तोड़ने का विचार किया। वह पर्वत पर विशाल मूर्ति के निकट आया। विन्ध्यगिरि पर निराधार खड़े हुए, विश्वविजयी मनोज्ञ विशाल श्री बाहुबलि स्वामी को ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर की ओर पुनः-पुनः देखता हुआ वह अवाक् खड़ा रह गया। वैराग्यपूर्ण, त्याग एवं शान्ति का आदर्श उस मनोज्ञ ज्योति ने, बातचीत के बिना ही हैदर के हृदय को जीत लिया, उसकी विध्वंस की भावना विकास के रूप में बदल गयी। उसका घमण्ड भी बाहुबलि की वीरता के सामने चूर-चूर हो गया। उसका अकड़ा मस्तक उन्नत मस्तक के सामने झुक गया।

"जब टाटा कम्पनी का इंजीनियर बाहुबलि की विशालमूर्ति के सम्मुख पहुँचा तो आश्चर्यचकित हो उस मूर्ति को ऊपर से नीचे की ओर तथा नीचे से ऊपर की ओर निहारने में घण्टों तक तल्लीन खड़ा रहा, कुछ कह नहीं पाया।"

भारतीय गणराज्य के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने जब गोम्मटेश बाहुबलि के दर्शन किये तो वे एकाग्र-दृष्टि एवं अवाक् रह गये, बहुत देर तक खड़े रहकर कहने लगे कि "यदि इस मूर्ति में दैविक शक्ति नहीं होती तो एक हज़ार वर्ष पर्यन्त सुरक्षित रहना असम्भव था" (अहिंसावाणी वर्ष, 2 जनवरी 1959)।

इन उक्त ऐतिहासिक घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि वीतराग (आडम्बर हीन) मूर्ति, मौन रहकर भी शान्ति का सन्देश देती है। वीरता एवं परोपकार का पाठ पढ़ाती है, मूर्ति को देखकर मूल वस्तु (मूर्तमान) के स्मरण से भक्तों के मन प्रभावित होते हैं।

दिगम्बर (वीतराग) मूर्ति का प्रभाव

नो किञ्चित्करकार्यमस्ति गमनप्राप्यं न किञ्चिद् दृशोः
दृश्यं यस्य न कर्णयोः किमपिहि श्रोतव्यमप्यस्ति न।
तेनालम्बितपाणिरुज्झितगतिः नासाग्रदृष्टिरहः
सम्प्राप्तोऽतिनिराकुलो विजयते ध्यानैकतानो जिनः॥[1]

1. श्रीपद्मनन्दि : श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका : सं. जवाहरलाल सि. शास्त्री, प्र.—दि. जैन समाज भीण्डर (राजस्थान), सन् 1983, पृ. 5, पद्य 2.

सारांश—करने के लिए कोई कार्य शेष नहीं रह गया इसलिए हाथ नीचे को लटका दिये हैं अर्थात् सब पुरुषार्थ पूर्ण हो गये हैं। गमन के द्वारा प्राप्त करने के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह गया है इसलिए एक स्थान पर ही खड़े हो गये हैं अर्थात् तीन लोक में पर्यटन कर लिया है। नेत्रों द्वारा देखने के लिए कोई पदार्थ शेष नहीं रह गया है इसलिए नासाग्रदृष्टि को कर लिया है अर्थात् समस्त विश्व को देख लिया है। कर्णों द्वारा सुनने के लिए कोई पदार्थ शेष नहीं रह गया है इसलिए एकान्त स्थान को प्राप्त कर लिया है अर्थात् एकान्त प्रदेश में ध्यान लगाया है। खाने-पीने की इच्छा नहीं है इसलिए रसना को अन्दर कर लिया है या वश में कर लिया है। कहने के लिए कुछ शेष नहीं रह गया है इसलिए मौनव्रत धारण कर लिया है। धन-सम्पत्ति आदि की कोई इच्छा नहीं है इसलिए नग्नता (दिगम्बरत्व) को धारण कर लिया है।

जीवन्मुक्त (अर्हन्त) अवस्था में स्वाभाविक सौन्दर्य होने से आभूषण तथा वस्त्रों की आवश्यकता नहीं है। आप के सर्वांगों में साम्यरूप होने से फूल-माला या फूलों की आवश्यकता नहीं है। शत्रुओं एवं विरोधियों द्वारा आक्रमण या पराजय की शंका न होने से शस्त्र तथा अस्त्र की आवश्यकता नहीं है। स्वाभाविक कान्ति होने से कोई रंग की आवश्यकता नहीं है।

सारांश यह है कि दिगम्बरत्व (भौतिक हीनता) होने से मूर्ति में किसी भी भौतिक पदार्थ की किसी भी प्रकार से आवश्यकता नहीं है। यद्यपि वह मूर्ति बोलती नहीं है तथापि आत्म-कल्याण और त्यागपूर्वक विश्व-शान्ति का शुभ सन्देश प्रदान करती है। इस प्रकार इतिहास से मूर्तिपूजा का महत्त्व सिद्ध होता है।

पुरातत्त्व की दृष्टि से मूर्तिपूजा का महत्त्व

भारतीय पुरातत्त्व से वास्तुकला एवं स्थापत्य कला का महत्त्व पुरातत्त्वग्रन्थों से प्रसिद्ध ही है। भारतीय पुरातत्त्व का प्रमुख अंग जैन पुरातत्त्व से भी उक्त कलाओं का महत्त्व सिद्ध होता है। गुफ़ा निर्माणकला, मन्दिरकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला—इनके भेद से वास्तुकला पाँच प्रकार की होती है। मन्दिरकला तथा मूर्तिकला को स्थापत्यकला भी कहते हैं। भारतीय स्थापत्यकला के विकास में जैन स्थापत्यकला ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। उदाहरण के लिए भारतीय जैन मूर्तिकला के विषय में यहाँ पर वर्णन संक्षिप्त रीति से किया जाता है—भारत में चौबीस तीर्थंकरों की ध्यानस्थ सुन्दर मूर्तियाँ अधिकांश पायी जाती हैं जो खड्गासन तथा पद्मासन अवस्था में स्थित होकर वीतरागता तथा शान्ति का सन्देश देती हैं। ये मूर्तियाँ पाषाण एवं धातुओं से कलापूर्ण निर्मित की गयी हैं। दक्षिण भारत में ऋषभदेव के सुपुत्र भरत चक्रवर्ती तथा बाहुबलि स्वामी की बहुत प्राचीन मूर्तियाँ विद्यमान हैं। श्री बाहुबलि स्वामी की मूर्ति का वर्णन इतिहास के प्रकरण में किया

जा चुका है। विक्रम की दसवीं शती में इसकी प्रतिष्ठा, महाराज चामुण्डराय द्वारा करायी गयी थी। यद्यपि इस प्रतिमा को विन्ध्यगिरि पर खड्गासन से स्थित एक हज़ार वर्ष हो गये हैं, तीनों ऋतुओं के ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत गुणों का प्रभाव होने पर भी उसकी कान्ति तथा पालिश में अल्प भी परिवर्तन नहीं हुआ है अपितु नवीनता छलकती है। इसकी गणना संसार के आश्चर्यों में की जाती है, इसके अतिरिक्त 41 फीट ऊँची श्री बाहुबलि की कायोत्सर्गासन प्रतिमा दक्षिण के कारकल, वेणूर, धर्मस्थल में है और 35 फीट ऊँची प्रतिमा वेरपुर में है।

उड़ीसा प्रान्त के खण्ड गिरि पर्वत की हाथी गुफ़ा के शिलालेख (द्वितीय शती ईशा पूर्व) से स्पष्ट है कि भगवान महावीर के निर्वाण से पूर्व तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई के अवशेषों एवं शिलालेखों से भी प्रमाणित होता है कि जैन मूर्तियाँ भगवान महावीर के समय से पहिले बनती रही हैं। मोहनजोदड़ों की खुदाई से निकली हुई मूर्तियाँ, योगियों की मूर्तियाँ, मूर्ति निर्माणकाल को, ईशा से हज़ारों वर्ष पहिले ले जाती हैं। इसके अतिरिक्त सरस्वती, पद्मावती, अम्बिका आदि, तीर्थंकर-भक्त देवियों की मूर्तियाँ भी जैन मन्दिरों में पायी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त देवगढ़ क्षेत्र, एलोरा की गुफ़ाओं, खजुराहो क्षेत्र बूढ़ी चन्देरी, आहारक्षेत्र, पपौरा क्षेत्र, आबू पर्वत, गिरनार, राजगिरि, इन प्राचीन तीर्थक्षेत्रों में हजारों मूर्तियाँ खण्डित तथा अखण्डित हैं।

पूजा के उपकरण या आवश्यक साधन

अब पूजा के उपकरण (साधन) पर विचार किया जाता है। पूजा के साधन दो प्रकार के होते हैं—(1) अन्तरंग साधन या निश्चय साधन, (2) व्यवहार साधन या बहिरंग साधन।

भौतिक पदार्थों से मोह या तृष्णा को दूर कर तीर्थंकर, सिद्ध, अर्हन्त आदि पूज्य आत्माओं के गुणों में श्रद्धापूर्वक अनुराग या चिन्तन करना अन्तरंग साधन है, दूसरे शब्दों में विशुद्ध (भाव या विचारों को) अन्तरंग साधन कहते हैं। अन्तरंग साधन पूर्वक बाह्य आवश्यक साधनों का प्रयोग करना बाह्य साधन है। इसी विषय को जैनाचार्यों ने पूजा-ग्रन्थों में किसी भी पूजन या विधान के आदि में अनिवार्य रूप से कहा है—

> विधिं विधातुं यजनोत्सवेऽहं, गेहादिमूर्च्छामपनोदयामि।
> अनन्यचित्ताकृतिमादधामि, स्वर्गादिलक्ष्मीमपि हापयामि॥[1]

---

1. भक्तामरमण्डल पूजा : सं. मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर, सन् 1970, सं.7, पृ.-14.

इसका सारांश यह है कि पूजन विधान आदि रूप उत्सवों में विधि करने के लिए तत्पर हम गृह सम्पत्ति आदि वस्तुओं में मोह-माया का त्याग करते हैं, सब वस्तुओं से चित्त को हटाकर केवल परमात्मा के स्तवन में लगा रहे हैं, पूजा के फलस्वरूप स्वर्ग आदि की लक्ष्मी को भी नहीं चाहते हैं। पूजन के प्रारम्भ में सकलीकरण करते हुए याजक को आचार्यों ने सूचित किया है कि यद्यपि आप सब पूजन की सम्पूर्ण बाह्य सामग्री एकत्रित करते हैं तथापि अन्तरंग भावशुद्धि के बिना सब सामग्री विफल हो जाती है।

पूजा के बाह्य साधन—सामान्य रूप से योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये चार साधन हैं। विशेष रूप से साधन-योग्य क्षेत्र में स्थित मन्दिर, योग्य वेदी, योग्य मूर्ति, टेबिल आदि योग्य फर्नीचर, पूजन के सम्पूर्ण वर्तन, स्नान कर शुद्ध वस्त्र धोती, दुपट्टा, बनियान आदि धारण करना, चर्म आदि अशुद्ध वस्तुओं का तथा अशुद्ध वस्त्रों का उपयोग न करना, मन्दिर में कोई भी वस्तु नहीं खाना, शुद्ध आठ द्रव्यों का उपयोग करना। आठ द्रव्य हैं—जल (कुआँ का), चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य (गरी), दीप (पीलीगरी या दीपक), धूप (दशांगी या चन्दन की शुद्ध), सुपारी, बादाम, लौंग इलायची आदि प्रासुक फल, अक्षत अर्थात् सफेद चावल। पुष्प = केशर से रंगे पीले चावल। शुद्ध घृत का प्रज्वलित दीपक। शुद्ध धूप का अग्नि में क्षेपण करना। अग्नि रखने का पात्र होना आवश्यक है।

कुछ व्यक्ति सामूहिक रूप से विशेष पूजा या विधान करते हैं। उस समय विशेष अष्ट द्रव्य, श्रीफल तथा गरी का गोला, कपूर की बाती को अर्घ, महार्घ, पूर्णार्घ के समय अर्पित करते हैं। आठ द्रव्यों के समूह को अर्घ कहते हैं। गरी का गोला तथा श्रीफल आदि विशेष वस्तु, महार्घ तथा अन्त में पूर्णार्घ के समय अर्पित करते हैं। अतः विशेष वस्तु के साथ अर्घ को महार्घ या पूर्णार्घ कहते हैं। पूजन की आठ द्रव्यों के भिन्न-भिन्न प्रयोजन (लक्षण) होते हैं। इसलिए वे सार्थक हैं, व्यर्थ नहीं हैं। प्रयोजन दो प्रकार के होते हैं—1. लौकिक प्रयोजन, 2. अलौकिक (आध्यात्मिक) प्रयोजन। शुद्ध भावपूर्वक पूजन से दोनों प्रकार के मनोरथ सिद्ध होते हैं।

क्रम	द्रव्य	लौकिक मनोरथ	आध्यात्मिक मनोरथ
1.	जल	पापों तथा दुःखों की शान्ति	जन्म-जरा-मरण के विनाशार्थ
2.	चन्दन	सुगन्ध शरीर की प्राप्ति	संसार-सन्ताप के विनाशार्थ
3.	अक्षत	इस लोक में सम्पत्ति की प्राप्ति	अक्षय पद (परमात्मा) के लिए
4.	पुष्प	स्वर्गीय मन्दारमाला प्राप्ति	काम एवं इन्द्रियों के विजयार्थ
5.	नैवेद्य	परलोक में लक्ष्मी की प्राप्ति	भूख-प्यास के पूर्ण विनाशार्थ
6.	दीप	शारीरिक कान्ति की प्राप्ति	अज्ञानतम के विनाशार्थ

7.	धूप	उत्कृष्ट सौभाग्य प्राप्ति	अष्ट कर्म के विनाशार्थ
8.	फल	इष्ट पदार्थ की प्राप्ति	मोक्ष पद की प्राप्ति के लिए
9.	अर्घ	उत्तम पद की प्राप्ति	अर्हन्त पद की प्राप्ति हेतु
10.	महार्घ	अमूल्य पद की प्राप्ति	सिद्ध पद की प्राप्ति हेतु
11.	पूर्णार्घ	इन्द्र पद की प्राप्ति	निर्वाणकल्याण की प्राप्ति हेतु

विशेष—आचार्यकल्प पं. आशाधर जी आदि ने द्रव्य अर्पण करने के लौकिक प्रयोजन और जयसेन, पद्मनन्दी आदि आचार्यों ने आध्यात्मिक प्रयोजन निर्दिष्ट किये हैं।

पूजा के प्रकार

पूजा मूलतः दो प्रकार की होती है—भावपूजा, और द्रव्यपूजा। तीर्थंकर, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु (मुनि-ऋषि)—इन महान् आत्माओं के गुणों के स्तवन कीर्तन से भावों या मन के विचारों को शुद्ध करना भावपूजा है और शुद्ध भावों के साथ शब्दों द्वारा गुण-कीर्तन करते हुए आठ द्रव्यों का विनय के साथ समर्पण करना द्रव्यपूजा कही जाती है। भावपूजा के साथ द्रव्यपूजा करना जीवन में उपयोगी है। शुद्ध भावों के बिना द्रव्यपूजा की क्रिया निष्फल है।[1]

अष्ट द्रव्यों के प्राचीन नाम

(1) दिव्वेण ण्हाणेण, शुद्ध प्रासुक जल एवं जलाभिषेक;
(2) दिव्वेण गंधेण, श्रेष्ठ सुगन्धित चन्दन;
(3) दिव्वेण अक्खेण, श्रेष्ठ अखण्ड अक्षत;
(4) दिव्वेण पुप्फेण, श्रेष्ठ लवंग आदि पुष्प;
(5) दिव्वेण चुण्णेण, दिव्य चरु (नैवेद्य);
(6) दिव्वेण दीव्वेण, दिव्य दीपक;
(7) दिव्वेण धूवेण, सुगन्धित धूप;
(8) दिव्वेण वासेण, श्रेष्ठ फल।

(आ. कुन्दकुन्द कृत एवं पूज्यपादकृत दशभक्ति : सं. ए शान्ति-राजशास्त्री, मैसूर, 1934, पृ. 158)।

'यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः' यही नीति प्रसिद्ध है।

पूजा के विशेष रूप से पाँच प्रकार होते हैं—(1) नित्य पूजा, (2) आष्टाह्निक पूजा (नन्दीश्वर पूजा), (3) चतुर्मुखपूजन, सर्वतोभद्र, महामह, (4) कल्पद्रुमपूजन, (5) इन्द्रध्वज पूजन।

---

1. आ. कुमुदचन्द्र, कल्याण मन्दिर स्तोत्र, पृ. 44, पद्य 38.

(1) नित्य पूजा—अपने घर से लाये गये जल-चन्दन आदि अष्ट द्रव्यों के द्वारा जिन-मन्दिर में अर्हन्त आदि नव देवों का प्रतिदिन भावपूर्वक पूजन करना, अपने धन द्वारा यथाशक्ति जिन प्रतिमा, मन्दिर आदि का निर्माण कराना, शासन विधि के द्वारा भक्तिपूर्वक अपने ग्राम-घर आदि के परोपकार के लिए दान करना, जिन-मन्दिर में या अपने घर में भी तीनों सन्ध्याओं में अर्हन्त आदि देवों की आराधना करना, अपने घर पर पधारे हुए आचार्य, उपाध्याय, मुनियों की पूजा करके आहार-दान आदि को करना। यह सब नित्य पूजा कहलाती है।

(2) नन्दीश्वर पूजा—नन्दीश्वर पर्व में अर्थात् कार्तिक-फाल्गुन-आषाढ़ मासों की शुक्ल-पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक आठ दिनों में भव्य मानवों द्वारा जो जिनेन्द्र देव का पूजन किया जाता है जो कि नित्य पूजा से विशेष रूप से किया जाता है, नन्दीश्वर पूजा है।

(3) चतुर्मुख पूजन—भक्तिपूर्वक मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर राजाओं के द्वारा जिनेन्द्र भगवान का जो पूजन किया जाता है, उसे चतुर्मुख पूजन कहते हैं। इस पूजन के तीन नाम प्रसिद्ध हैं—(1) सब प्राणियों के कल्याण करने के लिए यह पूजन महोत्सव के साथ किया जाता है अतः इसका नाम 'सर्वतोभद्र' प्रसिद्ध है। (2) मण्डप में चतुर्मुख प्रतिमा विराजमान करके चारों ही दिशा में राजा-महाराजा जैसे महान् व्यक्ति खड़े होकर इस पूजन को करते हैं अतः इसका नाम 'चतुर्मुखमह' निश्चित किया गया है। (3) नन्दीश्वर पूजन से यह पूजन विशाल होता है अतः इसका नाम 'महामह' लोक विख्यात है। इसको राजागण अपने देश में अखण्ड साम्राज्यपद प्राप्त करने के समय करते हैं।

(4) कल्पद्रुम पूजन—भारत क्षेत्र में षट्खण्डभूमि पर दिग्विजय प्राप्त करने के पश्चात् साम्राज्यपद का अभिषेक करते समय चक्रवर्ती के द्वारा जो जिनेन्द्र देव का पूजन महोत्सव के साथ किया जाता है, वह कल्पद्रुम पूजन कहा जाता है। इस पूजन में किमिच्छक दान किया जाता है। तुम क्या चाहते हो! इस प्रकार के प्रश्नपूर्वक याचकों के मनोरथों को पूर्ण कर जो दान किया जाता है, उसे किमिच्छक दान कहते हैं। इसी विषय को आचार्य कल्प पण्डितप्रवर आशाधर जी ने कहा है—

किमिच्छिकेन दानेन जगदाशाः प्रपूर्य यः।
चक्रिभिः क्रियते सोऽर्हद्यज्ञः कल्पद्रुमो मतः॥[1]

(5) ऐन्द्रध्वज पूजन—अर्हन्त जिनेन्द्र देव का जो पूजन इन्द्र आदिक देवों के द्वारा समारोह के साथ किया जाता है वह 'ऐन्द्रध्वजपूजन' कहा गया है। इन पाँच पूजाओं को यथा समय गृहस्थ श्रावक या देवगण करते हैं। इन पंच पूजनों

---

1. सागारधर्मामृत, अ. 2, पद्य 28

के भी द्रव्यपूजा, भावपूजा के भेद से दो-दो भेद होते हैं। अन्य प्रकार से भी पूजा के चार भेद होते हैं—(1) द्रव्यपूजा, (2) क्षेत्रपूजा (3) कालपूजा, (5) भावपूजा।

(1) **द्रव्यपूजा**—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, चैत्य (प्रतिमा), चैत्यालय (मन्दिर), आगम (श्रद्धात्मक शास्त्र)—इन आठ देवों का मन-वचन-काय से अष्ट द्रव्यों से पूजन करना द्रव्यपूजा कही जाती है।

(2) **क्षेत्रपूजा**—सम्मेदशिखर, गिरनार, चम्पापुर, पावापुर आदि तीर्थक्षेत्रों का पूजन करना अथवा अर्हन्त सिद्ध आदि देवों के द्वारा व्याप्त आकाश-प्रदेशों (आकाश क्षेत्र) के पूजन करने को क्षेत्रपूजा कहा जाता है। कल्याणक क्षेत्रों की पूजा भी क्षेत्र पूजा है।

(3) **कालपूजा**—जिस काल में तीर्थंकरों के पंच कल्याणक होते हैं, उस काल में उन-उन तीर्थंकरों का पूजन करना कालपूजा है। जैसे दीक्षा कल्याणक दिवस, दीपावली अर्थात् महावीर निर्वाण दिवस, महावीर जयन्ती, ऋषभ निर्वाण दिवस, अक्षय तृतीया इत्यादि। अथवा जिन महिमा से सम्बन्धित काल में जिनेन्द्र देव का पूजन करना कालपूजा कही जाती है। जैसे नन्दीश्वर पर्व पूजन, अक्षय तृतीया पर्व पूजा, वीर शासन जयन्ती पर्व पूजन, रक्षाबन्धन पर्व पूजा, दशलक्षण पर्व पूजा इत्यादि।

(4) **भावपूजा**—अर्हन्त आदि नवदेवों के गुणों का अर्चन करना भावपूजा है अथवा पूजा सम्बन्धी शास्त्र का ज्ञाता कोई मानव जब वर्तमान में पूजा सम्बन्धी उपयोग से विशिष्ट होता है तब वह भाव पूजा कही जाती है।

शिक्षित जगत् में किसी दृष्टि विशेष से प्रचलित लौकिक व्यवहार की अपेक्षा पूजा के छह प्रकार भी कहे गये हैं—(1) नामपूजा, (2) स्थापनापूजा, (3) द्रव्यपूजा, (4) क्षेत्रपूजा, (5) कालपूजा, (6) भावपूजा।

(1) अर्हन्त, सिद्ध आदि देवों का नाम उच्चारण करके विशुद्ध प्रदेश में जो पुष्पक्षेपण किये जाते हैं वह नामपूजा कही जाती है। (2) धातु-काष्ठ-पाषाण आदि की प्रतिमा में अर्हन्त आदि के गुणों का आरोपण करके उसकी पूजा करना स्थापना पूजा कही जाती है। इसके दो भेद हैं, (1) साकार स्थापना पूजा, (2) निराकार स्थापना पूजा। 1. मूलवस्तु के आकार वाली वस्तु में मूलवस्तु के गुणों का आरोपण करना साकार स्थापना पूजा या सद्भाव स्थापना पूजा कही जाती है। जैसे भगवान महावीर की प्रतिमा में भगवान महावीर की स्थापना कर पूजा करना। 2. मूलवस्तु से भिन्न आकार वाली वस्तु अक्षत, पुष्प, गोट आदि में भिन्न आकार वाली वस्तु की कल्पना कर उसका नाम लेते हुए आदर करना निराकार स्थापना पूजा कही जाती है। जैसे पुष्प में भगवान महावीर की स्थापना करना अथवा शतरंज की गोट आदि में बादशाह, बेगम आदि की कल्पना करना। कागज़ की बनी पुस्तक आदि में यदि धर्म का वर्णन किया गया हो तो उसमें जिनवाणी, श्रुतदेवी, सरस्वती माता की

स्थापना करना भी निराकार स्थापना (असद्भाव स्थापना) पूजा कही जाती है। शेष चार पूजा की व्याख्या पूर्वकथित चार की तरह जानना चाहिए।

मानव जीवन के फल

देवपूजा दया दानं, तीर्थयात्रा जपस्तपः।
शास्त्रं परोपकारत्वं, मर्त्यजन्मफलाष्टकम्॥

भावार्थ (1) देवपूजा, (2) दया, (3) दान, (4) तीर्थयात्रा, (5) जप, (6) तप (इच्छा निरोध), (7) शास्त्र-अध्ययन, (8) परोपकार—ये आठ मनुष्य-जन्म के उत्तम फल हैं।

द्वितीय अध्याय

जैन पूजा-काव्य के विविध रूप

इस अध्याय में पूजा-काव्य के अन्तर्भेद और उनकी रूपरेखा का वर्णन किया गया है। पूजा-काव्य के मुख्य चार अन्तर्भेद होते हैं—(1) स्तव एवं स्तोत्रकाव्य, (2) मंगलकाव्य, (3) विनयकाव्य एवं भक्तिकाव्य, (4) कीर्तन साहित्य एवं आरती साहित्य।

(1) संस्कृत व्याकरण के कृदन्त प्रकरण में स्तुति अर्थक स्तु धातु से भाव में अप् प्रत्यय करने पर स्तव शब्द सिद्ध होता है। एवं स्तु धातु से ल्युट् (यु-अन) प्रत्ययन जोड़ने पर स्तवन शब्द सिद्ध होता है इन दोनों शब्दों का सामान्य अर्थ स्तवन (गुणों का कीर्तन) होता है। स्तुति अर्थवाली स्तु धातु से ति प्रत्यय जोड़ने पर स्तुति शब्द और स्तु धातु से त्र प्रत्यय जोड़ने पर स्तोत्र यह शब्द निष्पन्न होता है। इन दोनों का सामान्य अर्थ स्तुति करना होता है। जैन दर्शन की दृष्टि से विचार करने पर स्तव और स्तुति में विशेष अन्तर इस प्रकार है—अनेक पूज्य आत्मा के गुणों की संक्षेप से या विस्तार से प्रशंसा करना स्तव अथवा स्तवन कहा जाता है और एक पूज्य आत्मा या महात्मा के गुणों का संक्षेप या विस्तार से वर्णन करना स्तुति या स्तोत्र कहा जाता है।

> सयलं गेक्कं गेक्कं गहिवार सवित्थरं ससंखेवं।
> वण्णणसत्थंथयथुइ धम्मकहा होइ णियमेण॥[1]

तात्पर्य—जिसमें सर्ववस्तुओं का अर्थ अथवा सर्व महात्माओं का गुणवर्णन विस्तार से या संक्षेप से किया जाए उसको स्तव या स्तवन कहते हैं। जिसमें एक अंग, एक वस्तु या एक महात्मा का वर्णन विस्तार से या संक्षेप से किया जाए उसको स्तुति या स्तोत्र कहते हैं।

जहाँ श्रुतज्ञान के एक अंग के एक अधिकार का अर्थ (वर्णन) विस्तार से या संक्षेप से कहा जाए उसे वस्तु कहते हैं। जिसमें प्रथमानुयोग (कथाशास्त्र) आदि

1. नेमिचन्द्राचार्य : गो. कर्मकाण्ड : सं. आर्यिका आदिमती, प्र.—दि. जैन ग्रन्थमाला श्री महावीर जी (राजस्थान), 1980, पृ. 49

शास्त्रों का व्याख्यान हो उसे धर्मकथा कहते हैं। जैनदर्शन में सैकड़ों स्तव (स्तवन) काव्य हैं—

> श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोऽथ धर्मो
> हर्यंकः पुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः।
> शान्तिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौवर्द्धमानोप्यजाङ्को
> मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम्॥[1]

सन्दर्भ—दक्षिणभारत में वि.सं. 1699 में श्रीभट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के परम शिष्य महाकवि श्री जगन्नाथ महोदय ने 'चतुर्विंशतिसन्धान' नामक ग्रन्थ की रचना कर संस्कृत साहित्य का गौरव बढ़ाया है। इस ग्रन्थ में स्रग्धरा छन्द में रचित संस्कृतभाषा का ऊपर लिखा एक ही श्लोक है। इस एक ही श्लोक में चौबीस तीर्थंकर महात्माओं का गुणगान किया गया है। उक्त श्लोक के पच्चीस अर्थ व्यक्त होते हैं—चौबीस तीर्थंकरों की गौरवगाथा के द्योतक 24 अर्थ तथा समुच्चय चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति का द्योतक एक अर्थ—इस तरह पच्चीस अर्थ द्योतित होने से इस ग्रन्थ का नाम 'चतुर्विंशतिसन्धान' सार्थक रखा गया है। इसमें शब्दश्लेष तथा अर्थश्लेष दोनों अलंकार हैं। यह शान्तरस से परिपूर्ण है। इस श्लोक को स्तव या स्तवन कहा जाता है। संस्कृत श्लोक है।

प्राकृतभाषा में स्तव का उदाहरण

> सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिन्दवरणेमिचन्दमकलंकं।
> गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं॥[2]

इस प्राकृतगाथा में नव व्यक्तियों को नमस्कार किया गया है—(1) चौबीस तीर्थंकर, (2) भगवान महावीर, (3) सिद्धभगवान्, (4) आत्मा, (5) सिद्धचक्र, (6) पंचपरमेष्ठीदेव, (7) भगवान नेमिनाथ, (8) जीवकाण्डग्रन्थ, (9) नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। इसमें 9 देवों के गुणों का वर्णन है।

(1) प्रथम अर्थ—जो द्रव्य कर्म के अभाव से शुद्ध, भावकर्म के अभाव से निष्कलंक, अर्हन्तदेव से भी श्रेष्ठ, केवलज्ञानरूपी चन्द्र से शोभित और सम्यग्दर्शन आदि श्रेष्ठ गुणरूप आभूषणों से सुशोभित है ऐसे सिद्धों को नमस्कार कर जीव का निरूपण करनेवाले जीवकाण्डग्रन्थ को, मैं नेमिचन्द्र आचार्य रचता हूँ।

---

1. कवि जगन्नाथ-चतुर्विंशतिसन्धानकाव्यम् : सं. लालाराम शास्त्री, प्र.—वंशीधर उदयराजपण्डित, सोलापुर, सन् 1929, पृ. 9
2. नेमिचन्द्राचार्य गोम्मटसारजीवकाण्ड : सं. पं. खूबचन्द्रशास्त्री, प्र.—श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास, सन् 1977, पृ. 1, मंगलाचरण।

(2) **द्वितीय अर्थ**—जो सिद्ध दशा को प्राप्त हैं, द्रव्यकर्म विकार के नाश से शुद्ध, भाव विकार के अभाव से निष्कलंक, सम्यग्दर्शन आदि श्रेष्ठगुण रूप आभूषणों से सुशोभित हैं, ऐसे जिनेन्द्रश्रेष्ठ नेमिनाथ तीर्थंकर रूप चन्द्र को प्रणाम कर, पूर्वाचार्य परम्परा से प्रसिद्ध, संशय आदि दोषों से रहित, हिंसा आदि पापों से विहीन, रत्नत्रयगुण के विकास को करनेवाले, जीवतत्त्व का वर्णन करने में समर्थ ऐसे जीवकाण्डग्रन्थ को मैं नेमिचन्द्र आचार्य कहता हूँ। इत्यादि नव तरह के अर्थ उक्त गाथा से निकलते हैं, अतः यह स्तव-काव्य है।

हिन्दी भाषा में स्तव का उदाहरण

अर्हन्तसिद्ध आचार्यनमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जयपंचपरमपरमेष्ठी जय, भवसागरतारणहार नमन॥
मन वच कायापूर्वक करता, शुद्ध हृदय से मैं आह्वान।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवान॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्धरूप का हो दर्शन॥[1]

उक्त पद्य में संक्षेप में पंचपरमेष्ठी देवों का गुणवर्णन होने से स्तव-काव्य है। अनेक पूज्य आत्मा या महापुरुषों का विस्तार से गुणकीर्तन करना भी स्तव या स्तवन कहलाता है।

संस्कृत में इसका उदाहरण

स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले, समंजसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः।[2]

सारांश—जो स्वयं ज्ञानादि गुणों को पूर्ण रीति से प्राप्त हुए, प्राणियों के हितैषी, समीचीन ज्ञानरूप नेत्र से शोभित, गुणों से उज्ज्वल वचनों से संयुक्त, ज्ञानावरण आदि कर्मरूप अज्ञान को नष्ट करते हुए जो पृथ्वीतल पर, अर्थप्रकाशकत्व आदि गुणों से शोभित, किरणों के द्वारा लोक में अन्धकार को ध्वस्त करते हुए चन्द्रमा के समान जो ऋषभदेव शोभित होते थे।

बहुगुणसम्पदसकलं, परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम्[3]

---

1. सुभाषचन्द्र : धर्मात्मपूजासंग्रह, प्र.—जैन साहित्य प्रचार समिति ग्वालियर, षष्ठसंस्करण, पृ. 27
2. समन्तभद्राचार्य : वृहत्स्वयंभूस्तोत्र : सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.—दि. जैन संस्थान महावीर जी, 1969, पृ. 5
3. उक्त ग्रन्थ, पृ. 133

हे महावीर! अन्य एकान्तवादियों का शासन, कर्णप्रिय वचनों से मनोज्ञ होता हुआ भी, अधिक गुणरूप सम्पत्ति से हीन है। परन्तु आपका शासन नयरूप आभूषणों से मनोज्ञ है, सब प्रकार से कल्याणकारक है और सम्पूर्ण है।

प्रथम उक्त श्लोक 'बृहत्स्वयंभूस्तवन' का प्रथम श्लोक है और द्वितीय श्लोक 'बृहत्स्वयंभूस्तवन' का 144वाँ श्लोक है, इसकी रचना आचार्य समन्तभद्र ने विक्रम की तृतीय-चतुर्थ शती के मध्य की। इस स्तवन में चौबीस तीर्थंकरों का विस्तार से गुणानुवाद है इसलिए यह काव्य स्तव अथवा स्तवन कहा जाता है।

प्राकृतभाषा में विस्तृत स्तव का उदाहरण

असरीरा जीवघना उपजुत्ता दंसणेय णाणेय।
सायारमणायारा लक्खणमेयं तु सिद्धाणं॥
तव सिद्धे णयसिद्धे संजयसिद्धे चरित्तसिद्धेय।
णाणम्मि दंसणम्मिय सिद्धे सिरसा णमस्सामि॥[1]

सारांश—शरीररहित, चैतन्यपिण्ड, ज्ञानदर्शनरूप उपयोग से सम्पन्न, साकार निराकार स्वरूप आदि अनेक लक्षणों से परिपूर्ण सिद्धपरमात्माओं को हम प्रणाम करते हैं। तपसिद्ध, नयसिद्ध, संयमसिद्ध, उत्तमचारित्रसिद्ध, केवलज्ञानसिद्ध, केवलदर्शनसिद्ध इन गुणों से सुशोभित सिद्धपरमात्मा समूह को हम मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं।

प्रथम शताब्दी के आध्यात्मिक ऋषि कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्राकृत में सिद्धभक्ति की रचना की गयी है जिसके प्रथम और अष्टम (अन्तिम) गाथाएँ ऊपर कही गयी हैं, इस भक्ति में सिद्धचक्र को नमस्कारपूर्वक गुणवर्णन किये गये हैं विस्तार से। अतः यह स्तव-काव्य है।

हिन्दी भाषा में स्तव-काव्य का उदाहरण

परमदेव परनाम कर, गुरु को करहुं प्रणाम।
बुधिबल वरणों ब्रह्म के, सहस अठोत्तर नाम॥
केवल पदमहिमा कहों, कहों सिद्ध गुनगान।
भाषा प्राकृत संस्कृत, त्रिविध शब्द परमान॥
एकारथवाची शबद, अरु द्विरुक्ति जो होय।
नाम कथन के कवित में, दोष न लागे कोय॥

1. ब्र. शीतलप्रसाद : प्रतिष्ठासारसंग्रह-सिद्धभक्ति : प्रणेता पूज्यपादाचार्य, प्र. : दि. जैन पुस्तकालय गाँधीचौक सूरत, 1962, पृ. 199

चौपाई 15 मात्रा

प्रथमोंकाररूप ईशान, करुणासागर कृपानिधान।
त्रिभुवननाथ ईश गुणवृन्द, गिरातीत गुणमूल अनन्द॥
गुणी गुप्त गुणग्राहक बली, जगतदिवाकर कौतूहली।
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी, दशावतारी दीरघ दमी॥

स्तवकाव्य के अतिरिक्त द्वितीय स्तोत्र (स्तुति) काव्य के उदाहरण रूप में कुछ रचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जिसकी परिभाषा पहले कही गयी है। संस्कृत में संक्षिप्त स्तुतिकाव्य—एक तीर्थंकर महावीर सम्बन्धी—

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयः, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्तिधृतयो, हे वीर भद्रं त्वयि॥[1]

सारांश—भगवान महावीर सब सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रों द्वारा पूजित हैं। श्री गणधर मुनिगण आदि विद्वज्जन, श्रीमहावीर को आश्रित होते हैं। श्री वीर के द्वारा आठकर्मों का समूह विनष्ट किया गया है। हम भक्ति से महावीर के लिए प्रणाम करते हैं। भगवान महावीर से यह सर्वोदय धर्मतीर्थ उदय को प्राप्त हुआ है। भगवान वर्धमान का अखण्ड तप बहुत कठोर था। भगवान महावीर में अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी, ज्ञानज्योति, कायकान्ति, यश और धैर्य आदि सभी श्रेष्ठ गुणविद्यमान थे। हे तीर्थंकर सन्मति! आपके विद्यमान रहने पर ही अखिल विश्व का कल्याण हो सकता है। इस श्लोक में संक्षेप से भगवान महावीर के गुणों का स्मरण किया गया है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक अक्षर गुरु होता है, वीर शब्द का संस्कृत की आठ विभक्तियों में निर्देश है।

इस श्लोक में वीररस तथा तद्गुण अलंकार है।

संस्कृत में संक्षिप्त भगवान महावीर का स्तोत्र (स्तुति)—

वचनरचनधीरः पापधूलीसमीरः, कनक निकरगौरः क्रूरकर्मारिशूरः।
कलुषदहननीरः पातितानंगवीरो, जयति जगति चन्द्रोवर्धमानो जिनेन्द्रः॥[2]

इस श्लोक में मालिनी छन्द में रूपकालंकार और उपमालंकार का संकर (मिश्रण) है एवं वीररस का प्रवाह है।

---

1. श्री विमलभक्तिसंग्रह : सं. मु. सन्मतिसागर, प्र.—स्याद्वाद विमल ज्ञानपीठ सिद्धक्षेत्र सोनागिर (दतिया) म.प्र., सन् 1985, पृ. 355
2. दयाचन्द्रसाहित्याचार्य : भगवान महावीर (पुष्पकस्तवन) : सम्पादक वही, प्र.—शास्त्रिपरिषद् बड़ौत (मेरठ), 1977, पृ. 17

प्राकृतभाषा में संक्षिप्त भगवान महावीर की स्तुति—

> जयइ जगजीवजोणी विहाय ओ जगगुरु जगाणन्दो।
> जगणाहो जगबन्धु जयइ जगपिया महाभयवं॥
> जयइ सुयाणयभवो तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
> जयइ गरु लोयाणं, जयइ महप्पा महावीरो॥[1]

सारांश—जगत् के सम्पूर्ण चराचर जीवों को जाननेवाले भगवान महावीर जो कि जगत्गुरु, जगन्नाथ, जगहितैषी और अक्षयआनन्दमय हैं, उन जगतपितामह भगवान महावीर की जय हो! जय हो!!

हिन्दी में संक्षिप्त तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति (स्तोत्र)—

> ज्ञान पूज्य है, अमर आप का, इसीलिए कहलाते बुद्ध
> भुवनत्रय के सुखसंवर्धक, अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध।
> मोक्षमार्ग के आद्यप्रवर्तक, अतः विधाता कहें गणेश
> तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश॥[2]

संस्कृत में विस्तृत स्तोत्रकाव्य

भक्तामरस्तोत्र—इस स्तोत्र की रचना ई. की 7वीं शती के मध्य में श्री मानतुंगाचार्य द्वारा धारानगरी में की गयी। इसमें 48 श्लोक वसन्ततिलका छन्द में रचित हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में एक तगण-भगण, 2 जगण, दो अक्षर गुरु इस तरह 14 अक्षर होते हैं। इस स्तोत्र में अनेक अलंकारों के प्रयोग से श्री ऋषभदेव के विषय में भक्तिरस प्रवाहित हुआ है जो अन्तःकरण को आनन्दित करता है, शब्द सौन्दर्य भी प्रभावक है। उदाहरण के लिए कुछ काव्यों का परिचय—

> सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान् मुनीश
> कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
> प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
> नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्॥

इस काव्य में दृष्टान्त अलंकार से भक्तजन आनन्दित हो जाते हैं।

> त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं, पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां।
> आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्॥

---

1. पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. 47
2. कमलकुमार शास्त्री : भक्तामरस्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद : सं.पं. मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर, वी. सं. 2503, पृ. 65

इस श्लोक में आचार्यप्रवर ने उपमा अलंकार के द्वारा भगवद्भक्ति का महत्त्व दर्शाया है।

> वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि, निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
> बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम्॥

इस काव्य में काकुध्वनि के साथ विषमालंकार भक्तिरस को प्रवाहित कर रहा है।

> बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
> धातासि धीर! शिवमार्गविधेः विधानाद्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि॥

इस काव्य में हेतुपूर्वक परिकर अलंकार की छटा भक्तिरस को अतिमधुर बना रही है। श्रीऋषभदेव को चार हेतुपूर्वक क्रमशः बुद्ध-शंकर-ब्रह्मा और नारायण रूप सिद्ध कर दिया है।

> उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
> शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
> त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहाः
> मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः॥

इस श्लोक में साहित्यमर्मज्ञ आचार्य ने रूपक और उपमा अलंकार के संकर से मानवों को आकर्षित कर दिया है। इस काव्य के मन्त्र तथा यन्त्र की साधना से भयंकर रोग भी दूर हो जाते हैं, शारीरिक और आध्यात्मिक स्वस्थता प्राप्त कर लेते हैं।

> मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहिः संग्रामवारिधि महोदरबन्धनोत्थम्।
> तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥
> स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्रगुणैर्निबद्धां, भक्त्या मयारुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्।
> धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः॥[1]

तात्पर्यचारुता—हे जिनेन्द्रदेव! इस विश्व में जो मानव, मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक, प्रसाद-माधुर्य-ओज आदि गुणों से रची गयी, अनेक मनोहर अक्षरों (स्वर-व्यंजनों) से सुशोभित आपकी स्तोत्ररूप माला को सदा कण्ठगत करता है अर्थात् पाठ करता है, सम्मान से उन्नत उस पुरुष को स्वर्ग मोक्ष आदि की लक्ष्मी (विभूति) स्वतन्त्र रूप से प्राप्त होती है।

मालापक्ष में द्वितीय अर्थ—किसी चतुर पुरुष के द्वारा विश्वासपूर्वक धागे से रची गयी या गूँथी गयी, अच्छे रंगबिरंगे अनेक प्रकार के फूलों के सहित फूलमाला

---

1. पूर्वोक्त पुस्तक : पृ. 21

को हमेशा गले में जो पहिनता है वह पुरुष सभा में सम्मान से उन्नत होता हुआ स्वतन्त्र रूप से स्वयं शोभा को प्राप्त होता है।

तृतीयार्थ—श्री मानतुंग आचार्य विरचित भक्तामरस्तोत्र का जो मानव नित्य पाठ करता है वह अन्तरंग लक्ष्मी ज्ञानादिकों तथा बहिरंग लक्ष्मी सम्पत्ति तथा अच्छी गति को प्राप्त होता है।

इस काव्य में रूपक, श्लेष, अनुप्रास अलंकारों के मिश्रण से संकर अलंकार भक्ति में विभोर कर देता है। इसके मन्त्र-यन्त्र की साधना करने से सर्व-कार्यों की सिद्धि होती है। यह सम्पूर्ण मन्त्र शास्त्र का कार्य करता है। इसी प्रकार अन्य श्लोकों में भी अर्थालंकारों की पुट की गयी है। यथा श्लोक नं. 16, 17, 18 में व्यतिरेकालंकार, श्लोक नं. 30 में पूर्णोपमालंकार, काव्य नं. 40 में अनुप्रास-उपमा-रूपक और फलोत्प्रेक्षा के मिश्रण से संकर अलंकार, श्लोक नं. 3 में भ्रान्तिमान् अलंकार। इनके अतिरिक्त अन्य श्लोकों में भी यथासम्भव अतिशयोक्ति, आक्षेप, दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा और समासोक्ति इन अलंकारों की पुट देकर इस भक्तामरस्तोत्र को अलंकृत किया गया है, इसलिए यह लघुस्तोत्र सब स्तोत्रों में प्रधान समझा जाता है। शब्दालंकार भी इस स्तोत्र की पर्याप्त सजावट कर रहे हैं। इस स्तोत्र का प्रत्येक पद्य अपना मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र से विभूषित है, इन मन्त्रों का जप साधन करने से अनेक विद्याओं की सिद्धि होती है, विविध इष्टकार्य सिद्ध होते हैं।

कल्याणमन्दिरस्तोत्र

इस स्तोत्र की रचना विक्रम सं. 625 में उत्तरभारत को अलंकृत करनेवाले श्री सिद्धसेन आचार्य, द्वितीय दीक्षा नाम श्री कुमुदचन्द्र आचार्य द्वारा की गयी है। ये संस्कृत कवि और दार्शनिक विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हैं तथा दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराएँ इनको अपना पूज्य आचार्य मानती हैं।

इस स्तोत्र में सरस एवं अलंकृत 44 श्लोकों द्वारा तेईसवें तीर्थंकर भ. पार्श्वनाथ की गौरवगाथा का कीर्तन किया गया है। सम्पूर्ण स्तोत्र में वसन्ततिलका छन्द शोभित होता है परन्तु अन्तिम छन्द आर्या के नाम से चमक रहा है। इस स्तोत्र के कुछ श्लोकों में उदाहरणार्थ अलंकारों की छटा को देखिए—

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।

सद्यो भुजंगममया इव मध्यभाग-
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य॥

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी॥

त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि
यत् तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः॥

इस काव्य में व्यतिरेक, आश्चर्य एवं श्लेष अलंकारों के संकर से काव्य का सौन्दर्य अधिक ऊँचा हो गया है जो विज्ञजनों को भक्तिरस का मधुरपान कराता है।

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वम्
किं वाक्षर प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतु॥

इस प्रकार शब्द श्लेष अलंकार द्वारा विरोधाभास अलंकार का चमत्कार इस काव्य में शोभित हो रहा है।

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥[1]

इस अलंकृत श्लोक में उत्प्रेक्षा तथा अर्थान्तरन्यास अलंकारों ने भक्तिरस की नदी के प्रवाह को वृद्धिंगत कर दिया है। साथ ही नीति द्वारा भगवान् के भक्तों को सावधान किया गया है कि आप भावपूर्वक पूजन-भजन करें।

विषापहारस्तोत्र

संस्कृत के महाकवि धनञ्जय ने ईशा सन् की आठवीं शती में भारतीय संस्कृत साहित्य के विकास में योगदान दिया। एक समय आप मन्दिर में शुद्ध भावों से पूजन करते हुए भक्तिरस में लीन हो रहे थे। इसी समय आप के इकलौते पुत्र को सर्प

1. उक्त पुस्तक, पृ. क्रमशः 133, 135, 138, 139, 140

ने डस लिया। घर पर पुत्र की माता रोने लगी। किसी व्यक्ति ने मन्दिर में जाकर श्री धनञ्जय को यह दुःख प्रदवार्ता कही, तो कविवर ने कुछ भी ध्यान इस ओर नहीं दिया, ज्यों के त्यों पूजन करने में ही लीन रहे। पूजन करने के पश्चात् कविवर ने मन्दिर में ही विषापहार स्तोत्र की मौखिक रचना कर हृदय से उसका चिन्तन किया, उसी समय पुत्र विष रहित हो गया। इसी कारण इस स्तोत्र का नाम भी 'विषापहारस्तोत्र' प्रसिद्ध हो गया। इसमें उपजाति छन्द में निबद्ध 39 श्लोक हैं और अन्त का एक चालीसवाँ श्लोक पुष्पिताग्रा छन्द में रचित है, इसमें भक्तिरस भरा हुआ है, कहीं-कहीं अलंकार भी इसकी सजावट कर रहे हैं। इस स्तोत्र में सामान्य रूप से जिनेन्द्रदेव का गुणस्मरण किया गया है। अलंकार और भक्तिरस के कुछ उदाहरण पठनीय हैं—

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसंगः।
प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥

इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है, कारण कि शब्दों के एक अर्थ से तो विरोध की झलक होती है और दूसरे अर्थ से विरोध दूर हो जाता है।

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्, धर्माय पापानि समाचरन्ति।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं, निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः॥

भावरम्यता—जिस प्रकार बालक तेल के लिए धूली के समूह को पेलते हैं उसी प्रकार अज्ञानी मानव सुख के लिए दुःखों का, गुणों की प्राप्ति के लिए दोषों का और धर्म की प्राप्ति के लिए स्पष्ट रूप से पाप कार्यों का आचरण करते हैं। इस छन्द में उपमालंकार की चमक हो रही है। यह ध्वनि भी निकलती है कि मानव अज्ञानता से, स्वर्ग तथा मोक्ष के सुखों को प्राप्त करने के लिए अन्याय, अधर्म आदि का आचरण करके नरक जाने का प्रयत्न करते हैं, इत्यादि।

विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्रमन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्यायनामानि तवैव तानि॥

अर्थसार—आश्चर्य का विषय है कि जगत के मानव विष को दूर करनेवाले मणि को, औषधियों को, मन्त्र को और रसायन आदि को यत्र-तत्र खोजते फिरते हैं परन्तु उनको यह ध्यान नहीं है कि मणि, मन्त्र, तन्त्र, औषधि एवं रसायन आप ही हैं। कारण कि ये सब मणि आदि पदार्थ आपके ही दूसरे नाम हैं। कोई अन्य पदार्थ नहीं है। इस श्लोक में आश्चर्य झलक रहा है कारण कि भक्तिरस में आश्चर्य हो रहा है। इस श्लोक में यह भी ध्वनि निकलती है कि श्री धनञ्जय के पुत्र को सर्प ने डस लिया था शरीर में विष की वेदना थी, कविवर इस विषय की दवा और कुछ भी नहीं समझ रहे थे, केवल भगवद् भक्ति को ही सब कुछ दवा के रूप में

श्रद्धान कर रहे थे और इसी विषापहारस्तोत्र रूप भक्ति के प्रभाव से पुत्र का विष भी दूर हो गया था।

तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च, प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेः नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः॥[1]

एकीभावस्तोत्र

श्रीवादिराज द्रविड़ ऋषिसंघ के आचार्य थे। ये उच्च कोटि के दार्शनिक तथा महाकवि होने के साथ संस्कृत महाकाव्य के प्रणेता भी कहे गये हैं।[2] इनकी बुद्धिरूपी गाय ने जीवन पर्यन्त शुष्क तर्करूपी घास खाकर काव्यरूपी दुग्ध से सहृदय मानवों को तृप्त किया है, ऐसा साहित्यकारों द्वारा इनकी अभिशंसा में कहा गया है।

'श्रीवादिराजसूरि'[3] (आचार्य) के विषय में एक कथा प्रचलित है कि इन्हें कुष्ठरोग साधुदशा में ही हो गया था। एक बार राजा की सभा में इस रोग की चर्चा हुई, तो इनके एक परम भक्त ने अपने गुरु की निन्दा के भय से झूठ ही कह दिया कि उन्हें कोई रोग नहीं है, इस पर वाद-विवाद हुआ और अन्त में राजा ने स्वयं ही परीक्षा करने का निश्चय किया। वह भक्त घबराया हुआ वादिराज सूरि के पास शीघ्र पहुँचा और समस्त घटना मुनिराज को कह सुनायी। गुरुवर ने भक्त को आश्वासन देते हुए कहा—"धर्म के प्रसाद से सब ठीक होगा, चिन्ता मत करो।" अनन्तर एकीभावस्तोत्र की रचना कर अपनी व्याधि दूर की।

इस स्तोत्र के चमत्कार को देख राजा बहुत प्रभावित हुआ। ई.सन् 11वीं शती के मध्य में आपने मद्रास प्रान्त को गौरवशाली बनाया था। एकीभावस्तोत्र भक्तिरसपूर्ण आध्यात्मिक स्तुति है जिसमें मन्दाक्रान्ता छन्द में 24 श्लोक, शार्दूलविक्रीडित छन्द में एक श्लोक और स्वागताछन्द में अन्त का एक श्लोक, इस प्रकार कुल 26 श्लोक संस्कृत में रचे गये हैं। इस स्तोत्र के भक्तिरसपूर्ण नवीन कल्पना के साकार उदाहरण देखिए—

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्
पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टः
तत् किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि॥

यहाँ श्लेष अलंकार के द्वारा अतिशयपूर्ण कथन किया गया है।

---

1. वही पुस्तक, पृ. क्रमशः 147, 150, 151
2. डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-3, पृ. 88
3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-3, प्र.—विद्वत्परिषद् सागर, पृ. 90

प्रापद्दैवं तव नुतिपदैः जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वम्
जल्पञ्जाप्यैः मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥

कथांश—गद्यचिन्तामणि में कथा का निर्देश है—भरत क्षेत्र के हेमाँगढ़ देश की राजधानी राजपुरी नगरी के क्षत्रिय राजा सत्यन्धर के पुत्र जीवन्धर कुमार के नाम से प्रसिद्ध थे। एक दिन ये अपने मित्रों के साथ वसन्तऋतु की प्राकृतिक शोभा देखने के लिए वन में जा रहे थे। वहाँ एक जगह इनकी दृष्टि सहसा एक चिल्लाते हुए कुत्ते पर गयी, कारण कि कुछ मनुष्यों ने उस कुत्ते को पीटकर अत्यन्त घायल कर दिया था। उन्होंने दयाभाव से कुत्ते की रक्षा करने का बहुत प्रयत्न किया, पर जब कुत्ते के जीवित रहने की कोई आशा न रही, तब शीघ्र ही जीवन्धर ने उसके कान में नमस्कार मन्त्र को सुनाया, मन्त्र के सुनने से उसके चित्त में शान्ति आयी और वह कुत्ता मन्त्र के प्रभाव से मरकर चन्द्रोदय पर्वत पर यक्षजाति के देवों का इन्द्र हुआ, जो सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध हो गया।

श्री वादिराज ने उक्त श्लोक में इसी कथा का संकेत किया है। उससे यह भाव दर्शाया है कि आपके नाम का (परमात्मा के नाम का) श्रवण करने मात्र से यदि पशु कुत्ता देव हो सकता है तो जो मानव शुद्ध हृदय से आपकी पूर्ण रूप से स्तुति करे अथवा माला हाथ में लेकर आपके नाम रूप मन्त्र का जाप करे, वह अवश्य ही देवेन्द्र पद प्राप्त कर सकता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह भक्तिरस की महिमा है।

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं, यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्रग्राही भवति सततं, वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषाम्
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥[1]

तात्पर्य यह है कि आपके राग-द्वेष-मोह आदि नहीं है इसलिए आपका कोई शत्रु नहीं हो सकता और स्वभाव से एवं गुणों से सुन्दर हैं, इसलिए कोई वस्तु की भी चाह नहीं है, इससे सिद्ध होता है कि आप वीतराग, दिगम्बर परमात्मा हैं। यह तद्गुण अलंकार का चमत्कार है जिससे भक्तिरस साहित्यरसिकों को आनन्द प्रदान करता है।

---

1. श्री विमल भक्ति संग्रह : सं. क्षु. सन्मतिसागर, प्र.—स्या. शि. प. सोनागिर, सन् 1985, पृ. क्रमशः 142, 144, 145

स्तोत्रों के पाठ करने का यथार्थ फल

स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या, स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं, केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्॥[1]

हे परमात्मन्! केवल स्तुति के कारण ही मनोरथ की सिद्धि नहीं होती, किन्तु भक्ति से (पूजन से), स्मृति से, ध्यान से, नमस्कार करने से भी इष्ट फल की सिद्धि होती है इसलिए मैं सर्वदा आपकी भक्ति करता हूँ, स्मरण करता हूँ, प्रणाम करता हूँ और ध्यान करता हूँ, कारण कि इच्छित फल को किसी भी उपाय से सिद्ध कर लेना चाहिए।

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य, पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येनं, सः स्यात् कल्याणभाजनम्॥[2]

जो भक्तजन इस स्तोत्र का स्मरण करके पवित्र होता है तथा इस स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, सदा शुद्ध उच्चारण करता है, वह मानव अपने जीवन में कल्याण का पात्र होता है।

इस प्रकार जैनदर्शन में संस्कृत के बहुसंख्यक स्तोत्र हैं।

लघुतत्त्वस्फोट

अध्यात्मशैली में विरचित यह एक स्तुतिपरककाव्य ग्रन्थ है। इसका द्वितीय नाम 'शक्तिमणितकोष' अथवा 'शक्तिभणितकोष' है। 'लघुतत्त्वस्फोट' का अर्थ है--तत्त्वों का लघु प्रकाश अर्थात् संक्षेप में या शीघ्र, तत्त्वों का स्फोट-स्फुटन-प्रकाश जिससे होता है। 'शक्तिमणितकोष' का तात्पर्य—आत्मशक्तियों के कथन का कोष अथवा आत्मशक्ति रूपी मणियों से युक्त खज़ाना।

आ. अमृतचन्द्रसूरि को 'शक्तिमणितकोष' यह नाम अभीष्ट है, कारण कि उन्होंने इस नाम का उल्लेख ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक एवं पुष्पिकावाक्य दोनों में किया है।[3]

---

1. पूर्वकथित पुस्तक, पृ. 155
2. पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. 232
3. (1) अस्याः स्वयं रभसि गाढनिपीडितायाः
संविद्विकासरसवीचिभिरुल्लसन्त्याः।
आस्वादयत्वमृतचन्द्रकवीन्द्र एष
हृष्यन् बहूनि मणितानि मुहुः स्वशक्तेः॥
आ. अमृतचन्द्र : लघुतत्त्वस्फोट, कारिका नं. 1, पृ. 289
(2) इस ग्रन्थ के पुष्पिकावाक्य में भी 'इत्यमृतचन्द्रसूरीणां कृतिः शक्तिमणितकोषो नाम लघुतत्त्वस्फोटः समाप्तः' यह स्पष्ट निर्देश है।

लघुतत्त्वस्फोट में कुल 627 श्लोक हैं। इन श्लोकों का 25 पंचविंशतिकाओं में विभाजन किया गया है। प्रत्येक पंचविंशतिका में 25-25 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की प्रथम स्तुति में चौबीस तीर्थंकरों की 24 स्तुतियाँ हैं। उदाहरणार्थ प्रथम आदिनाथ (ऋषभदेव) तीर्थंकर की स्तुति का उद्धरण इस प्रकार है—

स्वयम्भुवं मह इहोच्छलदच्छमाण्डे,
येनादिदेवभगवानभवत् स्वयम्भूः।
ॐ भूर्भुवः प्रभृतिसन्मननैकरूप,-
मात्मप्रमातृ परमातृ न मातृ मातृ॥[1]

तात्पर्य—प्रथमतीर्थंकर आदिनाथ स्वामी की स्तुति में आ. अमृतचन्द्रसूरि ने उस स्वायम्भुव = स्वयं व्यक्त होनेवाली ज्ञान ज्योति की ही स्तुति की है, जिससे आदिदेव भगवान् स्वयम्भू हो गये। जो ज्ञानज्योति, आदिशान्तिमन्त्र के द्वारा सम्यक् अद्वितीय चिन्तन रूप हैं, जो तेज स्व-पर-प्रकाशक हैं, समस्त पदार्थों का ज्ञायक है।

नामावली स्तोत्र, उपसंहार और स्तुति का फल—

ये भावयन्त्यविकलार्थवतीं जिनानां
नामावलीममृतचन्द्रचिदेक पीताम्।
विश्वं पिबन्ति सकलं किकलीलयैव
पीयन्त एव न कदाचन ते परेण॥[2]

इस प्रकार वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्रों की स्तुति का फल स्वयं वीतराग एवं सर्वज्ञ बन जाना है। इस प्रथम स्तोत्र में ऋषभ आदि 24 तीर्थंकरों के स्तोत्र को 'नामावली-स्तोत्र' कहा गया है।

श्रीसमन्तभद्रभारती स्तोत्र[3]

'उभयकवितविलास' की उपाधि से विभूषित कवि नागराज ने यह स्तोत्र शक संवत् 1253 (सन् 1332) में आचार्य समन्तभद्र के ग्रन्थों, शास्त्रार्थों, भाषणों, प्रवचनों और विद्वत्ता के दिग्दर्शन में रचा है।

समन्तभद्रभारतीस्तोत्र—पंचचामरवृत्तम्

---

1. आ. अमृतचन्द्र : ल. त. स्फो. : सं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.—ग्रन्थ प्रकाशन समिति फलटण (महाराष्ट्र), सन् 1981, पृ. 1, पद्य 1
2. तथैव, पृ. 17, पद्य 25
3. पण्डिताचार्य भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी महाराज, अधिपति श्री दि. जैन मठ मूडबिद्री, (दक्षिण कनाडा डिस्ट्रिक्ट)
(स्वामी जी के सौजन्य से प्राप्त)

संस्मरीमि तोष्टवीमि नंनमीमि भारतीं
तंतनीमि पंपटीमि बंभणीमि तेऽमिताम्।
देवराज नागराजमर्त्यराजपूजितां
श्रीसमन्तभद्रवादभासुरात्मगोचराम्॥

भाव सौन्दर्य—हे समन्तभद्र! देवेन्द्र, नागेन्द्र एवं चक्रवर्ती से पूजित, समन्तभद्रसिद्धान्त से देदीप्यमान आत्मा के द्वारा परिज्ञात, आपकी अपारवाणी को मैं पुनः-पुनः स्मरण करता हूँ, पुनः-पुनः स्तवन करता हूँ, पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः-पुनः विस्तृत करता हूँ, पुनः-पुनः समृद्ध करता हूँ, पुनः-पुनः उपदेश करता हूँ।

मातृमानमेयसिद्धिवस्तुगोचरां स्तुवे
सप्तभंगसप्तनीतिगम्यतत्त्वगोचराम्।
मोक्षमार्गतद्विपक्षभूरिधर्मगोचरा-
माप्ततत्त्वगोचरां समन्तभद्र भारतीम्॥

प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय की सिद्धि से पदार्थ को विषय करनेवाली, सप्तभंग, सप्तनय के द्वारा गम्य तत्त्व को जाननेवाली, मोक्षमार्ग और संसारमार्ग के महान् तत्त्व को ज्ञात करनेवाली, आप्त-अर्हत् द्वारा कथित तत्त्व का आलोडन करनेवाली, विश्व का कल्याण करनेवाली, विशाल समन्तभद्रवाणी का मैं स्तवन करता हूँ।

सूरिसूक्तिवन्दितामुपेयतत्त्वभाषिणीं
चारुकीर्तिभासुरामुपायतत्त्वसाधनीम्।
पूर्वपक्षखण्डनप्रचण्डवाग्विलासिनीम्
संस्तुवे जगद्धितां समन्तभद्रभारतीम्॥

आचार्यों की श्रेष्ठ उक्तियों से वन्दित, ग्राह्यतत्त्वों का कथन करनेवाली, विश्व में रमणीय कीर्ति से प्रदीप्त, मुक्ति से उपायभूततत्त्वों को सिद्ध करनेवाली, प्रतिवादियों के पूर्व पक्ष के खण्डन में प्रखर वाक्यों से विभूषित, जगत की हितकारिणी, आचार्यसमन्तभद्र की वाणी का मैं नागराज सम्यक् स्तवन करता हूँ।

पात्रकेसरिप्रभावसिद्धिकारिणीं स्तुवे
भाष्यकारपोषितामलंकृतां मुनीश्वरैः।
गृध्रपिच्छभाषितप्रकृष्टमंगलार्थिकां
सिद्धिसौख्यसाधनीं समन्तभद्रभारतीम्॥

आचार्य विद्यानन्द की प्रतिभा को सिद्ध करनेवाली, भाष्यकार अकलंक देव के द्वारा समर्पित, पूज्यपाद आदि मुनीश्वरों के द्वारा अलंकृत, उमास्वामी के वचनों द्वारा श्रेष्ठ मंगल को सिद्ध करनेवाली, आत्मतत्त्व की सिद्धि एवं अक्षय सुख का साधन स्वरूप समन्तभद्रवाणी का मैं नागराज स्तवन करता हूँ।

इन्द्रभूतिभाषितप्रमेयजालगोचराम्
वर्धमानदेवबोधबुद्धचिद्विलासिनीम्।
योगसौगलादिगर्वपर्वताशनिं स्तुवे
क्षीरवार्धिसन्निभां समन्तभद्रभारतीम्॥

इन्द्रभूति (गौतम) गणधर के द्वारा भाषित पदार्थों के समूह का विषय करनेवाली, भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित ज्ञान से सम्पन्न चैतन्य गुण का भोग करनेवाली नैयायिक, वैशेषिक, बुद्ध आदि प्रतिवादियों के गर्वरूप पर्वत को खण्डित करने के लिए वज्र के समान, क्षीरसागर के समान निर्मलयश से विभूषित श्री समन्तभद्र भारती का मैं कवि नागराज स्तवन करता हूँ।

माननीतिवाक्यसिद्ध वस्तुधर्मगोचराम्
मानितप्रभावसिद्धसिद्धिसिद्धसाधनीम्।
घोरभूरिदुःखवार्धितारणक्षमामिमाम्
चारुचेतसा स्तुवे समन्तभद्रभारतीम्॥

प्रमाण तथा नीति के वाक्यों से सिद्ध वस्तुधर्म को जाननेवाली, प्रमाणित प्रभाव (प्रतिभा) से सिद्ध जो आत्मसिद्धि, उसको सिद्ध करने का साधनरूप, घोर तथा अपार दुःख रूपी सागर को पार करने में समर्थ (सक्षम), इस प्रकार की समन्तभद्रवाणी का मैं नागराज शुद्ध मानस से स्तवन करता हूँ।

सान्तसाद्यनाद्यनन्तमध्ययुक्तमध्यमां
शून्यभावसर्ववेदितत्त्वसिद्धिसाधनीम्।
हेत्वहेतुवादसिद्धवाक्यजालभासुराम्
मोक्षसिद्धयेस्तुवे समन्तभद्रभारतीम्॥

नयों की अपेक्षा सान्त, आदि, अनादि, अनन्त और मध्य काल से युक्त मध्यमरूपवाली, रागद्वेष मोह से शून्य भाव अर्थात् वीतरागभाव से परिपूर्ण सर्वज्ञ अर्हन्त द्वारा कथित आत्मतत्त्व की सिद्धि को सिद्ध करनेवाली अर्थात् मुक्ति का साधन स्वरूप, कार्य कारणभाव की अपेक्षा से सिद्ध जो स्याद्वादमय वाक्य समुदाय, उससे कान्तिमती—इस प्रकार की समन्तभद्र की सरस्वती को मैं नागराज मोक्ष की सिद्धि के लिए संस्तुत करता हूँ।

व्यापकद्वयाप्तमार्गतत्त्वयुग्मगोचराम्
पापहारि-वाग्विलासिभूषणांशुकां स्तुवे।
श्रीकरीं च धीकरीं च सर्वसौख्यदायिनीम्
'नागराज' पूजितां समन्तभद्रभारतीम्॥

विश्वव्यापक एवं आप्त-अर्हन्तदेव कथित जो निश्चय मोक्षमार्ग और

व्यवहारमोक्षमार्ग, उनमें प्रयोजनभूत जो जीव-अजीव दो तत्त्व, उनको विषय करनेवाली (जाननेवाली), मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र को हरण करनेवाली, श्रेष्ठ वचन विन्यासरूप आभूषण एवं वस्त्रों से सुसज्जित, अन्तरंग-बहिरंग रूप लक्ष्मी को सिद्ध करनेवाली, सद्बुद्धि से सम्पन्न करनेवाली, अक्षयसुख को प्रदान करनेवाली और नागराज के द्वारा पूजित, विश्व कल्याणकारिणी समन्तभद्रवाणी की मैं नागराज स्तुति करता हूँ।

श्रीमहावीरयमकाष्टकस्तोत्र (इन्द्रवंशाछन्द)

विद्यास्पदार्हन्त्यपदंपदंपदं, प्रत्यग्रसत्पद्मपरं परंपरम्।
हेयेतराकार-बुधं बुधं बुधं, वीरंस्तुवे विश्वहितं हितंहितम्॥

भाव सौन्दर्य—मैं निश्चय से उन महावीर भगवान् की स्तुति करता हूँ जो कि समस्त विद्याओं के आधारभूत अर्हन्तपद के स्थान हैं, जिनके पद-पद पर नवीन एवं मनोहर कमलों की श्रेष्ठ परम्परा विद्यमान थी, जो हेय तथा उपादेय स्वरूप पदार्थ को दर्शानेवाले थे, जो केवलज्ञानी थे, जो सौम्य, विश्व के हितकारी और परमपद को प्राप्त हुए थे।

दिव्यं वचोयस्य सभा सभाऽसभा, निपीय पीयूषमितं मितं मितम्।
बभूवतुष्टा ससुरासुरा सुरा, वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

मैं उन विश्वहितकारी, ज्ञानवृद्ध अथवा पदमपद को प्राप्त महावीर स्वामी की निश्चय से स्तुति करता हूँ जिनके कि अमृततुल्य, परिमित एवं प्रमाणसंयत दिव्यवचन को सुनकर, सभा-आदर से सहित, सभा-कान्ति से सहित, सुर और असुरों से सहित तथा अत्यन्त शोभायमान देव तथा प्राणियों के रक्षक, सभा-समवसरणभूमि भोगाकांक्षा से रहित सन्तुष्ट हो गयी थी।

शत्रुप्रमाणैरजिताजिताजिता, गुणावलीयेन धृता धृता धृता।
संवादिनं तीर्थकरं करं करं, वीरं स्तुवेविश्वहितंहितं हितम्॥

मैं अमरकीर्ति उन विश्वहितकारी, परमपद को प्राप्त महावीर भगवान् की निश्चयतः स्तुति करता हूँ जो समीचीन वक्ता हैं, तीर्थंकर हैं, कर-अनन्तसुखप्रद हैं, कर-उदितसूर्यसदृश तेजस्वी हैं, साथ ही जिन्होंने उस गुणावली को धारण किया था जो प्रतिवादियों के प्रमाणों से अपराजित थी, ताजिता-तपरूपलक्ष्मी के द्वारा प्राप्त थी, अथवा संग्रामता से जिता-सिद्ध थी तथा धृताधृता-कामादिपिशाच से गृहीत (बद्ध) मनुष्य जिस गुणावली को धारण नहीं कर सकते थे।

मयूखमालीवमहामहामहा, लोकोपकारं सविता विता विता।
विभातिवोगन्धकुटीकुटीकुटी, वरंस्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

मैं अमरकीर्ति भट्टारक उन विश्वहितकारी, ज्ञानवृद्ध अथवा परमपद को प्राप्त महावीर स्वामी की निश्चय से स्तुति करता हूँ, जो कि सूर्य के समान तेजस्वी हैं, महाओजस्वी हैं, महाकर्मों के नाशक हैं, लोकोपकार के प्रणेता हैं, वितावितानिर्ग्रन्थ मुनियों के रक्षक हैं, गन्धकुटी—जिनका निवास स्थान गन्धलोकोत्तर सुवास से शोभित हैं, जो कुटी-मंगलमय घटचिह्न से सहित हैं तथा कुटी-कूर्म के समान संकोचशील हैं अर्थात् सांसारिक सुख से विमुख हैं।

सारागसंस्तुत्यगुणंगुणंगुणं
सभाजयिष्णुं सं शिवं शिवं शिवम्।
लक्ष्मीवतां पूज्यतमं तमं तमं
वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

मैं (अमरकीर्ति) उन विश्वहितकारी, परमपद को प्राप्त भगवान महावीर की निश्चय से स्तुति करता हूँ, जो कि श्रेष्ठ मेरुपर्वत पर गुणों की स्तुति करने योग्य हैं, अथवा लक्ष्मी में रागरहित गणधर आदि के द्वारा जिनके गुण स्तुत्य हैं, जो गुण हैं = त्रिभुवनहितकारी मन्त्रणा में समर्थ हैं, गुण हैं—ज्ञान-सत्त्व आदि अनेक गुणों से सहित हैं, सभाजयिष्णु = प्रीतिशील हैं, सशिवं = कुशल सहित हैं, शिव-मुक्तिप्राप्त हैं, शिव = अक्षयसुखस्वरूप हैं, जिनका मत लक्ष्मीवान् मानवों के द्वारा अत्यन्त पूज्य हैं, जो तम = अज्ञानी प्राणियों की अपेक्षा मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं, जो तम = ज्ञान के द्वारा चन्द्ररूप हैं।

सिद्धार्थ-सन्नन्दनमान मानमा-
नन्दा ववर्षे द्युसदासदा सदा।
यस्योपरिष्टात् कुसुमं सुमं सुमं
वीरंस्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

मैं (अमरकीर्ति) उन विश्वहितैषी, ज्ञानवृद्ध अथवा परमपद को प्राप्त महावीर तीर्थंकर की निश्चयतः स्तुति करता हूँ, जो कि महाराजा सिद्धार्थ के श्रेष्ठ पुत्र थे, आनमानम्-जीवनपर्यन्त जिनको सम्मान प्राप्त होता रहा, जिनके ऊपर आनन्दा = आनन्द से सहित, आसदा—सब दिशाओं से उपस्थित होनेवाले, द्युसदादेव एवं विद्याधरों ने, सदा-सर्वदा पुष्प वरषाये थे, जो सुमं = श्रेष्ठ लक्ष्मी से सम्पन्न थे, तथा सुमं—श्रेष्ठ प्रमाण से संयुक्त थे।

प्रत्यक्षमध्यैदचितं चितं चितम्।
योऽमयेमर्थं सकलं कलं कलम्।
व्यपेतदोषावरणं रणं रणं
वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

मैं (अमरकीर्ति) उन विश्वहितकारी ज्ञानवृद्ध अथवा परमपद को प्राप्त महावीर तीर्थंकर की स्तुति करता हूँ, जो कि अचेतन-पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य को, चेतनद्रव्य को, चितं-सर्वलोक में व्याप्त, अमेय-अनन्त, समस्त, कलं-सुखदायक कलं-दुःखदायक, अर्थ-पदार्थ को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जानते हैं जिनके राग-द्वेष-मोह आदि भावकर्म और ज्ञानावरणादि द्रव्य आवरण नष्ट हो चुके हैं, जो रुण-कर्मरूप शत्रुओं को बहिष्कृत करने के लिए, रण-यद्धरूप हैं तथा रणम्—स्पष्ट दिव्य ध्वनि से सहित हैं।

युक्त्यागमाबाधगिरं गिरं गिरम्
चित्रां पिताख्येयभर भरं भरम्।
संख्यावतां चित्तहरं हरं हरम्
वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

मैं (अमरकीर्ति) उन विश्वहितकारी, ज्ञानवृद्ध अथवा परमपद को प्राप्त तीर्थ महावीर की निश्चय से स्तुति करता हूँ, जिनकी वाणी, युक्ति और आगम से अबाधित है, जो गिरं-पाप को निगलनेवाले हैं, गिरं = सरस्वती के उद्भव के लिए, अ = ब्रह्मस्वरूप हैं, जिनके पूर्व जन्म की कथाओं का समूह आश्चर्य को उत्पन्न करनेवाला है, जो भरं = जगत का भरण-पोषण करनेवाले हैं, भरं = जो स्वशरीर की गन्ध से भ्रमरों को आकर्षित करनेवाले हैं, संख्यावान्—जो विज्ञों के चित्त को हरनेवाले हैं, हरं-कर्मों का हरण करनेवाले हैं, तथा हरं—दिन को करनेवाले हैं अर्थात् ज्ञान-प्रकाश को करनेवाले हैं।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

अध्यैष्टागममध्यगीष्टपरमं शब्दं च युक्तिं विदा-
-चक्रे यः परिशीलितारिमदभिद्देवागमालंकृतिः।
विद्यानन्दिभुवाभरादियशसा तेनामुना निर्मितम्
वीरार्हत्परमेश्वरीय-यमकस्तोत्राष्टकं मंगलम्॥

भाव सौन्दर्य—जिसने सिद्धान्तग्रन्थों का अध्ययन किया है, उत्कृष्ट व्याकरण का पठन किया है, न्यायशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया है तथा प्रतिवादियों के मदविदारक देवागमस्तोत्र के अलंकार स्वरूप अष्टसहस्रीग्रन्थ का परिशीलन किया है, उन विद्यानन्दिभट्टारक के शिष्य, अमरकीर्ति भट्टारक ने, श्री महावीर अरिहन्त भगवान का यह यमकालंकार से अलंकृत, आठ श्लोकों का मंगलमय स्तोत्र का सृजन किया है।

(अनुष्टुप् छन्द)

भट्टारककृतं स्तोत्रं, यः पठेद्यमकाष्टकम्।
सर्वदा स भवेद् भव्यो, भारतीमुखदर्पणः॥[1]

भावार्थ—भट्टारक अमरकीर्ति के द्वारा विरचित यमकाष्टकमय इस महावीरस्तोत्र का जो भव्य मानव निरन्तर पाठ करता है, वह सरस्वती के मुख का दर्पण होता है अर्थात् उसको समस्त विद्या अनायास सिद्ध हो जाती है।

श्रीपार्श्वनाथ जिनाष्टक अथवा महालक्ष्मी स्तोत्र

(इन्द्रवंशा छन्द)

लक्ष्मीर्महस्तुल्यसती सती सती
प्रवृद्धकालो विरतोऽरतो रतो।
जयरुजापन्महताऽहता हता
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

अर्चेयमाद्यं भुवि नाविना विना
यत्सर्व देशे सुमना मना मना।
समस्तविज्ञानमयो मयो मयो
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

अज्ञानसत्कामलता लता लता
यदीयसद्भावनतानता नता।
निर्वाणसौख्यं सुगता गता गता
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

व्यनेष्ट जन्तोः शरणं रणं रणं
क्षमादितो यः कमठं मठं मठं।
नरामराऽऽरामक्रमं क्रमं क्रमं
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

यद्विश्वलोकैकगुरुं गुरुं गुरुं
विराजिताये न वरं वरं वरं।
तमालनीलांगभरं भरं भरं
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

---

1. आचार्य शिवसागरस्मृतिग्रन्थ : सं.पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.--कमल प्रिण्टर्स मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान), वी. नि. सं. 2500, पृ. 588-592 : अमरकीर्तिकृतः महावीरयमकाष्टकस्तोत्रम्।

विवादिसाशेषविधिर्विधिर्विधिर्
बभूव सर्पावहरी हरी हरी।
त्रिज्ञानसंज्ञानमयो मयो मयो
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

संरक्षतो दिग्भवनं वनं वनं
विराजितायेषु दिवै दिवै दिवै।
पादद्वये नूतसुराऽसुराऽऽसुरा
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

रराज नित्यं सकलाकलाऽकला
ममारकृष्णोऽवृजिनो जिनो जिनो।
सहारपूज्यं वृषभासभासभा
पार्श्वं फणे रामगिरौ गिरौ गिरौ॥

(शार्दूलविक्रीडितमवृत्तम्)

तर्के व्याकरणे च नाटकचये काव्याकुले कौशले,
विख्यातो भुवि पद्मनन्दिमुनिपस्तत्त्वस्य कोशं निधिः।
गम्भीरं यमकाष्टकं भणति यः शम्भूयसा लभ्यते,
श्रीपद्मप्रभदेव निर्मितमिदं स्तोत्रं जगन्मंगलम्॥[1]

इस स्तोत्र श्री पार्श्वनाथ यमकाष्टक का सृजन श्री पद्मप्रभदेव ने विद्वत्ता के साथ किया है। इसकी संस्कृत टीका श्री मुनिशेखर ने सम्पादित की है। इसका नित्य पाठ करने से जगत् का कल्याण होता है। इसमें 23वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ का वर्णन एवं नमस्कार किया गया है। जिनमें अलंकारों की सजावट है, गुणों से निर्मलता है, विधि छन्दों में भक्तिरस का प्रवाह है। उनके उदाहरण देने में लेख का विस्तार होता है इसलिए उनकी सूचिका यहाँ लिखी जाती है।

क्रम	संस्कृतस्तोत्रनाम	रचयिता
1.	लघुतत्त्वस्फोट	अमृतचन्द्र आचार्य
2.	जिनसहस्रनामस्तोत्र	श्री जिनसेन आचार्य
3.	बृहत्स्वयंभूस्तोत्र	श्री समन्तभद्र आचार्य
4.	लघुस्वयंभूस्तोत्र	

1. श्री जैनस्तोत्रसंग्रह–द्वि. भाग : सं. श्रीयशोविजयमुनि, प्र.–चन्द्रप्रभायंत्रालय काशी, वी. सं. 2432, पृ. 60-69, श्री पार्श्वनाथजिनाष्टकम्

क्रम	संस्कृतस्तोत्रनाम	रचयिता
5.	भक्तामरस्तोत्र	श्री मानतुंग आचार्य
6.	कल्याणमन्दिर	श्री कुमुदचन्द्र
7.	एकीभावस्तोत्र	श्री वादिराजसूरि
8.	विषापहारस्तोत्र	श्री धनञ्जय महाकवि
9.	जिनचतुर्विंशतिका	श्री भूपालकवि
10.	लघुसुप्रभातस्तोत्र	अज्ञात
11.	चैत्यालयाष्टकस्तोत्र	अज्ञात
12.	परमानन्दस्तोत्र	अज्ञात
13.	सामायिकस्तोत्र	अमितिगति आचार्य
14.	लघु सामायिकस्तोत्र	
15.	श्री पार्श्वनाथस्तोत्र	अकलंकदेव/पद्मप्रभदेव
16.	महावीराष्टकस्तोत्र	पं. भागचन्द्र कवि
17.	अकलंकस्तोत्र	श्री अकलंकदेव
18.	बाहुबलि स्तोत्र 1-2	सुरेन्द्रनाथ श्रीपाल कवि
19.	पात्रकेसरिस्तोत्र	श्री विद्यानन्द स्वामी
20.	चिन्तामणिपार्श्वनाथस्तोत्र	श्री सोमसेन आचार्य
21.	श्रीपार्श्वनाथयमकाष्टक	श्री पद्मनन्दि आचार्य
22.	समन्तभद्रभारतीस्तोत्र	नागराजकवि करनाटक
23.	नवग्रह शान्तिस्तोत्र	भद्रबाहु आचार्य
24.	करुणाष्टकस्तोत्र	श्री पद्मनन्दि आचार्य
25.	बाहुबलि स्तुति-2	श्री ब्रह्मसूरि शास्त्रीं
26.	ज्वालामालिनीस्तोत्र	
27.	गोमटेश्वर पंचरत्नम्	
28.	लघु आचार्यभक्ति	पूज्यपादाचार्य
29.	अध्यात्माष्टकस्तोत्र	श्री वादिराज मुनिराज
30.	दृष्टाष्टकस्तोत्र	
31.	दर्शनस्तोत्र	
32.	वीतरागस्तोत्र	
33.	मन्त्रस्तोत्र	
34.	जैनपंजरस्तोत्र	श्री भद्रबाहु स्वामी
35.	निर्वाणकाण्डस्तोत्र	
36.	दर्शनपाठ (बृहत्)	अज्ञात

क्रम	संस्कृतस्तोत्रनाम	रचयिता
37.	वीतरागस्तवनम्	श्री अमरेन्द्रयति
38.	श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रम्	श्री राजसेन भट्टारक
39.	श्रीपार्श्वनाथजिनस्तोत्रम् (शृंखलायमकाष्टकम्)	अज्ञात
40.	महावीरयमकाष्टकस्तोत्र	श्री अमरकीर्ति भट्टारक
41.	सरस्वतीस्तोत्र	अज्ञात
42.	शारदा (सरस्वती) स्तुति	श्री ज्ञानभूषण मुनि
43.	सरस्वतीनामस्तोत्र	अज्ञात
44.	कल्याणमन्दिरस्तोत्र (सम. पू.)	श्री लक्ष्मीसेन मुनि
45.	चतुर्थपादपूर्ति वीरस्तव	
46.	श्री जिनस्तुति	श्री साधुराजगणि
47.	श्रीसीमन्धरस्वामिस्तवन	श्री जिनसुन्दरसूरि
48.	श्रीपार्श्वनाथस्तवन	"
49.	श्रीऋषभस्तव	"
50.	साधारण जिनस्तव	"
51.	सर्वसाधारण जिनस्तवन	"
52.	सर्वजिनस्तव	"
53.	सर्वज्ञस्तोत्र	सोमतिलकसूरि
54.	श्रीगौतमाष्टक	
55.	पुद्गलसंख्यास्तवन	
56.	जिनस्तोत्ररत्नकोष	मुनिसुन्दरसूरि
57.	चतुर्विंशतिभवजिनस्तव	श्री गुणविजयगणी
58.	श्री महावीरजिनस्तव	"
59.	द्वीपमन्दिरनवमजिनस्तवन	"
60.	नवदेवतास्तोत्र	श्री सुधर्मसागर मुनिराज
61.	वज्रपंजरस्तोत्र	
62.	प्रथमपार्श्वनाथाष्टक	श्री मद्धर्मविजय
63.	शंखेश्वरपार्श्वनाथाष्टक	"
64.	देवागमस्तोत्र	श्रीसमन्तभद्रआचार्य
65.	गणधरस्तोत्र	
66.	बाहुबलिअष्टक	श्री ज्ञानमती माताजी
67.	शारदा स्तुति	श्री आचार्य विद्यासागर जी
68.	जैनरक्षास्तोत्र	

प्राकृतभाषा के स्तोत्र

क्रम	संस्कृतस्तोत्रनाम	रचयिता
69.	श्रीबाहुबलि स्तोत्र	नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती
70.	निर्वाणकाण्ड स्तोत्र	
71.	श्रीगोमटेश्वर बाहुबलि जिनंदशुदि	श्री देवेन्द्रकुमार शास्त्री
72.	श्री लघुसिद्धभक्ति (स्तोत्र)	आचार्य कुन्दकुन्द
73.	तीर्थंकरस्तोत्र	आचार्य कुन्दकुन्द
74.	प्राकृतचूलिका	"
75.	कल्याणालोचनास्तोत्र	पूज्यकुन्दकुन्दाचार्य
76.	उपसर्गहर पार्श्वनाथस्तोत्र	
77.	मंगलाष्टकस्तोत्र	सिंहनन्दि आ.
78.	सिद्धप्रियस्तोत्र	देवनन्दिकृत

प्राकृतस्तोत्रों का संक्षिप्त विवरण

आचार्य श्रीनेमिचन्द्र दि. जैनमार्ग के नन्दिसंघ में कर्णाटक प्रान्तीय देशीयगण के मुनीश्वर थे। द्रविडदेशीय प्रतापी नृप महाराज चामुण्डराय शिष्य और आचार्य नेमिचन्द्र इनके गुरु थे। महाराज चामुण्डराय ने, कर्णाटक प्रान्तीय श्रमणवेलगोलक्षेत्र के विन्ध्यगिरि पर, प्रथम कामदेव श्री बाहुबलि स्वामी (गोमटेश्वर) की 57 फीट ऊँची विशाल प्रतिमा का निर्माण कराया था, जिसकी प्रतिष्ठा श्री नेमिचन्द्र जी प्रतिष्ठाचार्य द्वारा शक सं. 600 में, वि.सं. 735 में करायी गयी थी। आप संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के प्रखर विद्वान् थे। उसी समय प्रतिष्ठाचार्य जी ने श्री बाहुबलिस्तोत्र की रचना प्राकृतभाषा में की थी, जिसका हिन्दी अनुवाद श्री 108 आचार्य विद्यासागर जी द्वारा किया गया है, जो भावपूर्ण एवं पठनीय है।

> कल्क्यब्दे षट्शताख्ये विनुतविभवसंवत्सरे मासिचैत्रे,
> पंचम्यां शुक्लपक्षे दिनमणिदिवसे कुम्भलग्ने सुयोगे।
> सौभाग्ये हस्तनाम्नि प्रकटितभगणे सुप्रशस्तां चकार,
> श्री मच्चामुण्डराजो वैल्गुलनगरे गोमटेशप्रतिष्ठाम्॥[1]

तात्पर्य—कल्की सं. (शक सं.) 600 में, विभवनामक वर्ष में, चैत्रमास शुक्ला पंचमी रविवार के दिन कुम्भलग्न, सौभाग्ययोग में हस्तनक्षत्र के उदय में श्रीमान्

1. नेमिचन्द्राचार्य : गोमटसार जीवकाण्ड : सं. पं. गोपालदास, प्र.—परमश्रुतप्रभावक मण्डल अगास, सन् 1977, प्रस्तावना, पृ. 15

चामुण्डराय ने श्रमणबेलगोल नगर में श्री गोमटस्वामी (बाहुबलिस्वामी) की प्रतिष्ठा को किया था, जिसके प्रतिष्ठाचार्य श्री नेमिचन्द्राचार्य थे।

श्रीबाहुबलिस्तोत्र (हिन्दी अनुवाद सहित)

विसट्ट कन्दोट्टदलाणुयारं, सुलोयणं, चंदसमाण तुण्डं।
घोणाजियं चम्पयपुप्फसोहं, तं गोमट्टेशंपणमाणि णिच्चं॥

नीलकमल के दलसम जिनके, युगल सुलोचन विकसित हैं,
शशिसममनहर सुखकर जिनको मुखमण्डल मृदु प्रमुदित है।
चम्पक की छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती,
गोमटेश जिनपादपद्म की पराग नित ममगति पीती॥

अच्छायसच्छंजलकंतगंडं, आबाहुदोलंत सुकण्णपासं।
गइंदसुण्डुज्जलं बाहुदण्डं, तं गोमटेसं पणमाणि णिच्चं॥

गोलगोल दो कपोल जिनके उज्ज्वल जल सम छवि धारे
ऐरावतगज की शुण्डासम, बाहुदण्ड उज्ज्वल प्यारे।
कन्धों पर आ, कर्णपाश वे नर्तन करते नन्दन हैं
निरालम्ब वे नभसम शुचिमम गोमटेश को वन्दन है॥

सुकण्ठसोहा जियदिव्वसोक्खं, हिमालयुद्दाम विसालकंधं।
सुपेक्खणिज्जायल सुठ्ठुमज्झं, तं गोमटेशं पणमामि णिच्चं॥

दर्शनीय तव मध्यभाग है, गिरिसम निश्चल अचल रहा,
दिव्यशंख भी आप कण्ठ से, हार गया वह विफल रहा।
उन्नत विस्तृत हिमगिरिसम है स्कन्ध आप का विलस रहा,
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मम निलस रहा॥

विज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिंहामणिं सव्व सुचेदियाणं।
तिलोयसंतोसयपुण्णचंदं, तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं॥

विन्ध्याचल पर चढ़कर खरतर तप में तत्पर हो बसते
सकलविश्व के मुमुक्षुजन के शिखामणी तुम ही लसते।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मनवशि हो॥

लयासमक्कंत महासरीरं, भव्वावलीलद्ध सुकप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चियपायपोम्मं, तं गोमटेशं पणमामि णिच्चं॥

मृदुलमवेंललताएं लिपटीं, पग से उर तक तुम तन में
कल्पवृक्ष हो, अनल्प फल दो भविजन को तुम त्रिभुवन में

तुम पदपंकज में अलि बन सुरपतिगण करता गुनगुन है
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तनमन है॥

दियंबरो जोण च भोइजुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं॥

अम्बर तज अम्बर तल थित हो, दिगअम्बर नहिं भीत रहे
अम्बर आदिक विषयन से अति विरत रहे, भवभीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे,
गोमटेश स्वीकार नमन हो, धुलता मन का मैल रहे॥

आसा ण ये पोक्खा दि सच्छदिट्ठि, सोक्खेण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं॥

आशा तुमको छू नहिं सकती, समदर्शन के शासक हो,
जग के विषयन में वांछा नहिं, दोषमूल के नाशक हो।
भरतभ्रात में शल्य नहीं, अब विगतराग हो रोष जला,
गोमटेश तुममें मम इस विधि सतत राग हो, होत चला॥

उपाहिमुत्तं धणधाम वज्जियं, सुमम्मजुत्तं मदमोहहारयं।
वस्सेय पज्जन्तमुववास जुत्तं, तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं॥

काम धाम से धनकंचन से, सकलसंग से दूर हुए,
शूर हुए मदमोह मारकर, समता से भरपूर हुए।
एक वर्ष तक एक थान थित, निराहर उपवास किये,
इसीलिए बस गोमटेश जिन, मनमन में अब वास किये॥[1]

इसी प्राकृत तथा हिन्दी स्तोत्र में श्रीबाहुबलिस्वामी के शरीर-सौन्दर्य, शक्ति, वैराग्य और तपस्या का वर्णन रम्यशब्दों में किया गया है। इसमें उपमा, रूपक, स्वभावोक्ति, परिकर, अनुप्रास अलंकारों की छटा से शान्तरस एवं वीररस का पोषण हुआ है।

प्राकृत के कतिपय भक्तिस्तोत्र एवं गीतिकाव्य

1. धम्मरसायण	आचार्य पद्मनन्दि
2. ऋषभपंचासिका	श्री पं. धनपाल
3. उवसग्गहरस्तोत्र	स्वामी भद्रबाहु
4 अजिय संतिथय	नन्दिषेण

1. स्याद्वादज्ञानगंगा : सं. गुलाबचन्द्रदर्शनाचार्य, प्र.—सुमतिचन्द्र शास्त्री मुरैना, सन् 1981, पृ. 2-3

5.	शाश्वतचैत्यस्तव	देवेन्द्रसूरि
6.	भवस्तोत्राणि	धर्मघोषसूरि
7.	लघ्वजितशान्तिस्तवन	जिनवल्लभसूरि
8.	निजात्माष्टक	योगेन्द्रदेव आचार्य
9.	अरहन्त स्तवन	समन्तभद्र आचार्य
10.	नमुक्कार फलपगरण	जिनचन्द्रसूरि

कविवर बनारसीदास ने परमात्मा का स्तवन हिन्दी सहस्रनामस्तोत्र में 1008 नामों द्वारा किया है जिसके कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

मायावेलिगयन्द, सम्मोहतिमिरहरचन्द्र।
कुमतिनिकन्दनकाज, दुखगजभजन मृगराज॥
भवकान्तार कुठार, संशयमृणाल असिधार।
लोभशिखरनिर्घात, विपदानिशिहरणप्रभात॥

उक्त कवि द्वारा रचित शारदाष्टकस्तोत्र के कुछ पद्य छन्द भुजंगप्रयात में—

जिनादेशजाता जिनेन्द्राविख्याता, विशुद्धा प्रबुद्धा नमो लोकमाता।
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी॥

सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला, क्षुधातापनिर्नाशनी मेघमाला।
महामोहविध्वंसिनी मोक्षदानी, मनो देवि वागेश्वरी जैन वाणी॥

अगाधा अनाधा निरन्धा निराशा, अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा।
निशंका निरंका चिदंका भवानी, नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी॥

उक्त कविवर द्वारा रचित शान्तिनाथ जिन स्तुति के कुछ पद्य त्रिभंगी छन्द में—

गजपुर अवतारं, शान्तिकुमारं, शिवदातारं सुखकारं,
निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं, जितमारं।
कृत प्रतिसंहारं, महिमापारं, विगतविकारं जगसारं,
परहितसंसारं, गुणविस्तारं, जगनिस्तारं शिवधारं॥

श्रीशान्तिजिनेशं, जगतमहेशं, विगतकलेशं भद्रेशं,
भविकमल जिनेशं, मतिमहिशेषं, मदनमहेशं परमेशं।
जनकुमुदनिशेशं, रुचिरादेशं, धर्मधरेशं चक्रेशं,
भवजलपोतेशं, महिमनगेशं, निरुपमवेशं तीर्थेशं

भंजितभवजालं, जितकलिकालं, कीर्ति विशालं जनपालं,
गतिविजितमरालं, अरिकुलकालं, वचनरसालं वरमालं।

मुनिजलजमृणालं, भवभयशालं, शिवउरमालं सुकुमालं,
भविलरुषतमालं, त्रिभवनपालं, नयनविशालं गुणमालं॥[1]

कवि द्यानतरायकृत श्रीपार्श्वनाथ स्तोत्र—कुछ रम्य छन्द

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं, शतेन्द्रं सु पूजैं नमैं नाय शीशं।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमौं जोड़ हाथं, नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं॥
महामोह अन्धेर को ज्ञानभानुं, महाकर्मकान्तार को दवप्रधानं।
किये नागनागिन अधोलोकस्वामी, हरी मान तुम दैत्यको हो अकामी॥
तुम्हीं कल्पवृक्षं तुम्हीं कामधेनुं, तुम्हीं दिव्यचिन्तामणिं नाग एनं।
पशूनर्क के दुःख तें तू छुड़ावे, महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावे॥
महाचोर को वज्र को भय निवारै, महापौन के पुंजतें तू उबारै।
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा, महालोभ-शैलेश को वज्र भारा॥

श्रीवृन्दावनकवि रचित नामावलीस्तोत्र के कुछ रम्य छन्द

नयमालिनी छन्द—16 मात्रा

शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नमस्ते, रिद्धिसिद्धिवरवृद्ध नमस्ते।
वीतराग विज्ञान नमस्ते, चिद्विलास धृतध्यान नमस्ते॥
भव्यभवोदधितार नमस्ते, शर्मामृत सित सार नमस्ते।
दरशज्ञानसुखवीर्य नमस्ते, चतुराननधर धीर नमस्ते॥
(कल्लमल्ल जिनछल्ल)

श्रीकमलकुमार शास्त्री द्वारा रचित भक्तामरस्तोत्र के कुछ रम्य काव्य

सौ सौ नारी सौ सौ सुत को जनती रहती सौ सौ ठौर
तुम-से सुत को जनने वाली जननी महती क्या है और।
तारागण को सर्वदिशाएँ धरैं नहीं कोई खाली,
पूर्वदिशा ही पूर्णप्रतापी दिनपति को जनने वाली॥

ज्ञान पूज्य है अमर आप का इसीलिए कहलाते बुद्ध
भुवनत्रय के सुखसंवर्धक अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध
मोक्षमार्ग के आद्यप्रवर्तक, अतः विधाता कहें गणेश
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम और कौन होगा अखिलेश॥

---

1. बनारसीविलास, बम्बई : प्र. सं., सम्पादक : नाथूराम प्रेमी, पृ. क्रमशः 15-170-195

कविराज श्री गिरिधर शर्मा कृत कल्याणमन्दिर स्तोत्र का पद्य

मैने सुदर्शन किये, गुण भी सुनै, की—
पूजा, तथापि हिय में न तुझे बिठाया।
हूँ, दुःखपात्र जनबान्धव ! मैं इसी से
होती नहीं सफल, भाव विना क्रियाएँ॥

विषापहार स्तोत्र के कुछ मनोहर पद्य

सिद्ध साधु सतगुरु आधार, करूँ कवित्त आत्म उपकार।
विषापहार स्तवन उद्धार, सुखी औषधी अमृतसार॥
जैसे वज्र पर्वत परिहार, त्यों तुम नामहि विषापहार।
नागदमन तुम नाम सहाय, विषहर विषनाशक क्षणमाय॥
तुमगुणमणि चिन्तामणि राशि, चित्रबेलि चितहरणचितास।
विघ्नहरण तुम नाम अनूप, मन्त्र यन्त्र तुम ही मणि रूप॥

कवि द्यानतराय रचित स्वयंभूस्तोत्र के कतिपय सुन्दर पद्य

चौपाई— इन्द्र फणिन्द्रनरिन्द्रत्रिकाल, वाणी सुन सुन होंहि खुशाल।
द्वादशसभा ज्ञानदातार, नमों सुपारशनाथ निहार॥
समतासुधा कोपविषनाश, द्वादशांगवाणी परकाश।
चारसंघ आनन्ददातार, नमों श्रेयांस जिनेश्वरसार॥

अन्तर बाहर परिग्रहटार, परम दिगम्बरव्रत को धार।
सर्वजीवहितराह दिखाय, नमों अनन्त वचन मन काय॥
भवसागर से जीव अपार, धरमपोत में धरै निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्धमान बन्दौं बहुवार॥

कतिपय प्रसिद्ध हिन्दी जैन स्तोत्र

1.	जिनसहस्रनामस्तोत्र	कविवर बनारसीदास जी
2.	स्वयंभूस्तोत्र	कविवर द्यानतराय जी
3.	भक्तामरस्तोत्र	पं. कमलकुमार शास्त्री
4.	कल्याणमन्दिरस्तोत्र	कवि गिरिधर शर्मा, पं. कमलकुमार
5.	विषापहारस्तोत्र	अज्ञात
6.	भाषास्तुति	अज्ञात
7.	दर्शनस्तोत्र	कवि बुधजन
8.	दर्शनपाठ (स्तुति)	पं. दौलतराम

9.	जिनस्तुति	कवि भूधरदास
10.	श्रीपार्श्वनाथस्तोत्र	कवि द्यानतराय
11.	श्रीशान्तिनाथस्तवन	
12.	श्री पार्श्वनाथस्तवन	
13.	बृहत् महावीरस्तवन	श्री विद्यावती
14.	नमस्कारस्तोत्र	वृन्दावन कविवर
15.	श्रीवीरस्तवन	मुन्नालाल कवि
16.	नामावलीस्तोत्र	कवि वृन्दावन
17.	निर्वाणकाण्ड	भैया भगवतीदास
18.	महावीराष्टक	पं. गजाधरलाल शास्त्री
19.	मेरी भावना	ज्योतिप्रसाद, जुगलकिशोर (युगवीर)
20.	महावीर सन्देश	जुगलकिशोर (युगवीर)
21.	दुःखहरणस्तुति	कवि वृन्दावन
22.	सामायिक पाठ	रामचरित उपाध्याय
23.	सामायिक पाठ (कृतिकर्म)	महाचन्द्र कवि
24.	पद्मावतीस्तोत्र	
25.	चिन्तामणिपार्श्वनाथस्तोत्र	चेतनदास कवि
26.	जिनवाणी स्तुति	अज्ञात
27.	सरस्वतीस्तवन	अज्ञात
28.	गुरुस्तुति	
29.	जिनवाणीप्रार्थना	चंचलकवि
30.	आत्म प्रार्थना	श्रीकिरण
31.	प्रातःजिनवाणी प्रार्थना	कवि अमृतलाल 'चंचल'
32.	प्रातःकाल की स्तुति	
33.	सायंकाल की स्तुति	
34.	श्रीमहावीर प्रार्थना	श्री लाल कवि
35.	गुरुप्रार्थना 1-2	कवि चंचल
36.	प्रार्थना आतमराम	
37.	ईशप्रार्थना	कवि चंचल
38.	शारदास्तवन	ब्र. ज्ञानानन्द जी
39.	आराधना पाठ	कवि द्यानतराय
40.	दर्शनस्तोत्र	ब्र. ज्ञानानन्द जी
41.	दर्शनपच्चीसी	कवि बुधजन
42.	शारदास्तवन-प्रभाती	ब्र. ज्ञानानन्द

43.	साधुवन्दना	कवि बनारसीदास
44.	गुरुस्तुति	कवि भूधरदास
45.	गुर्वावलीस्तोत्र	-
46.	पुकारपच्चीसी	कवि देवीदास
47.	गुरुवाणी	मुक्ति श्री
48.	सर्वज्ञवाणी	मुक्ति श्री
49.	देव अर्चना	-
50.	ज्ञानपच्चीसी	कवि बनारसीदास
51.	धर्मपच्चीसी	कवि द्यानतराय
52.	सिद्धभक्ति	क्षुल्लक सिद्धसागर
53.	श्रुतभक्ति	क्षु. सिद्धसागर
54.	संकटहरणस्तुति	
55.	महावीर चालीसा	कवि रामचन्द्र
56.	पद्मप्रभ चालीसा	कवि [illegible]
57.	चन्द्रप्रभ चालीसा	कवि सुरेशचन्द्र
58.	शारदाष्टक	कविवर बनारसीदास

मंगलकाव्य

पूजा-काव्य के अन्तर्गत मंगलकाव्य भी माना गया है कारण कि जिस प्रकार पूजा में परमात्मा या महात्मा के गुणों का स्तवन या स्तुति की जाती है, उसी प्रकार मंगल के आचरण में भी परमात्मा के गुणों की स्तुति की जाती है। अन्तर केवल इतना है कि पूजा में शुद्धभावपूर्वक द्रव्यों का अर्पण किया जाता है और मंगल आचरणों में परमात्मा के गुणों का स्मरण करते हुए मन, वचन और काय से नमस्कार किया जाता है। यह मंगल किसी ग्रन्थरचना के आदि में, मध्य में अथवा अन्त में किया जाता है अथवा किसी शुभ कार्य के आदि में, मध्य में या अन्त में किया जाता है। इसलिए मंगल आचरण की महती आवश्यकता लोक में प्रतीत होती है। इसी विषय को श्री पुष्पदन्त एवं श्री भूतबलि आचार्य ने षट्खण्डागमग्रन्थ में स्पष्ट कहा है—

मंगल णिमित्त हेऊ, परिमाणं णाम तहय कत्तारं।
वागरिय छप्पि पच्छा, वक्खाणउ सत्थमाइरियो॥[1]

---

1. षट्खण्डागम : प्र.ख. सत्प्ररूपणा, सं—डॉ. हीरालाल जैन, संशोधित संस्करण, पृ. 8, जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर, 1973

सारांश—मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता—इन छह अधिकारों का वर्णन करने के पश्चात् आचार्य (गुरु) शास्त्र की रचना या व्याख्यान करे अथवा शुभकार्य में इनका उपयोग करे। इन छह अधिकारों में मंगल की प्रथम आवश्यकता कही गयी है।

मंगल शब्द का अर्थ व्याकरण की व्युत्पत्ति से विचारने योग्य है। वह इस प्रकार है—संस्कृत व्याकरण में मगि (गत्यर्थक) धातु से अलच् प्रत्यय के जोड़ने पर मंगल शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ होता है—परमात्मा के गुणों का स्मरण कर आत्मा या परमात्मा की ओर जाना अर्थात् उनमें लीन होकर नमस्कार करना।

मंगल शब्द का दूसरा अर्थ—मंगं = अक्षयसुखं, लाति = ददाति इति मंगलं अर्थात्—जो आत्मा के अक्षय सुख आदि गुणों को देता है उसे मंगल कहते हैं यह मंगपूर्वक ला धतु से सिद्ध होता है।

मंगल शब्द का तीसरा अर्थ—मं = पापं विकारं वा गालयति इति मंगलं अर्थात् जो आचरण पाप या विकार को गलावे या नष्ट करे उसे मंगल कहते हैं, यह शब्द मं पूर्वक गल धातु से सिद्ध होता है।

मंगल की सामान्य व्याख्या यह है कि अशुभ, विकारभाव या पापों को नष्ट करने के ध्येय से पुण्यप्राप्ति या आत्मशुद्धि के लिए जो गुणस्मरणपूर्वक नमस्कारविधि की जाती है उसे मंगल कहा जाता है।

मंगल आचरण के प्रयोजन सात प्रकार के होते हैं—(1) तद्गुणलब्धि = आत्मा के गुणों की प्राप्ति, परमात्मा के गुणों को नमस्कार तथा स्मरण करने से होती है। (2) श्रेयोमार्गसिद्धि = आत्म-कल्याण तथा मुक्तिमार्ग की सिद्धि मंगल से होती है। (3) नास्तिकता का परिहार = नमस्कार करनेवाला भक्त परमात्मा, आत्मा, पुनर्जन्म, स्वर्ग, मोक्ष, धर्म आदि को विश्वासपूर्वक जानता तथा आचरण करता है। वह आस्तिक है नास्तिक नहीं है। (4) निर्विघ्नकार्यसिद्धि = मंगल आचरण करने से निर्विघ्न कार्य की या ग्रन्थ आदि की समाप्ति होती है। (5) कृतज्ञताप्रकाशन = जिन परमात्मा अर्हन्त की कृपा से श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र आदि गुण प्राप्त हुए हैं, मंगल विधि द्वारा उनके प्रति कृतज्ञता को प्रकाशित करना यह शिक्षित पुरुषों का कार्य है। (6) शिष्टाचारपालन = भारतीय संस्कृति के अनुसार सहृदय एवं सन्तमानवों की यह परम्परा चली आ रही है कि वे प्रत्येक पुण्यकार्य या ग्रन्थ के प्रारम्भ में इष्ट-परमात्मा को नमस्कार करते हैं, अतः मंगलाचरण के द्वारा इस पद्धति को अखण्ड रूप से चलाया जाता है। (7) शिष्य को शिक्षा प्रदान = मंगलाचरण की पद्धति से शिष्य को अपने जीवन में शिक्षा प्राप्त होती है कि मंगलाचरण किस समय, किसका, कैसा, कहाँ और क्यों किया जाता है, इससे छात्र जीवन में ज्ञान आदि के अभ्यास करने की बड़ी प्रेरणा मिलती है। इन सात प्रयोजनों से मंगलाचरण किया जाता है। मंगलाचरण करना मानव का अनिवार्य कर्तव्य है।

मंगल के भेद-प्रभेद

मंगल के सामान्यतः दो भेद हैं—(1) द्रव्यमंगल, (2) भावमंगल। नमस्कार रूप वचन कहते हुए जो मन-वचन-काय से, हस्तयुगल की अंजलि बाँधकर मस्तक से लगाकर, मस्तक झुकाते हुए प्रणाम करना द्रव्यमंगल है और मान कषाय का त्याग करते हुए नम्र भाव से परमात्मा के गुणों का स्मरण करना भावमंगल है।

मंगल के दूसरी शैली से चार भेद हैं—(1) अकृत्रिमचैत्यालय, निर्मित मन्दिर, ग्रन्थ, गुरु को नमस्कार करना द्रव्यमंगल है। (2) गिरनार, सम्मेदशिखर, राजगृह, चम्पापुर आदि तीर्थक्षेत्रों को नमस्कार करना क्षेत्रमंगल कहा जाता है। (3) कालमंगल—जिस काल में तीर्थंकर या महान् आत्मा कल्याणक-महोत्सव, पूर्णज्ञान तथा मुक्ति आदि उच्च पदों को प्राप्त होता है उस काल में उनको नमस्कार करना कालमंगल कहा जाता है। (4) भावमंगल—मंगलशास्त्र को जाननेवाला कोई पुरुष परमात्मा के गुणों का स्मरण करते हुए जिस समय नमस्कार, शुद्ध भावपूर्वक करता है वह भावमंगल कहा जाता है। ये व्यवहार-दृष्टि से मंगल के चार प्रकार कहे गये हैं।

प्रचलित लोक-व्यवहार (निक्षेप) की दृष्टि से मंगल के अन्य चार प्रकार भी होते हैं—(1) नाममंगल—जाति द्रव्य गुण और क्रिया के बिना किसी वस्तु का या मनुष्य का 'मंगल' इस नाम के निश्चित करने को नाममंगल कहते हैं, जैसे किसी बालक का नाम मंगलराम या मंगलदास रख दिया जाए तो वह नाममंगल है। (2) स्थापनामंगल—लेखनी आदि से लिखित चित्र में, निर्मित मूर्ति में अथवा अन्य किसी वस्तु में बुद्धि से उसमें मंगलरूप जीव के, महात्मा या परमात्मा की 'यह वही है' इस प्रकार की स्थापना करना स्थापनामंगल है, जैसे महावीर की मूर्ति में महावीर की स्थापना और रामचन्द्र की मूर्ति में रामचन्द्र की स्थापना कर उसको नमस्कार करना। (3) द्रव्य निक्षेपमंगल—भविष्य में पूर्ण ज्ञान के अतिशय को या मुक्तिदशा को प्राप्त होने के लिए सम्मुख महात्मा को अथवा भूतकाल में मुक्ति प्राप्त जीव को या पूर्ण ज्ञान प्राप्त पुरुष महात्मा को वर्तमान में नमस्कार करना द्रव्यमंगल कहा जाता है। इस भेद में भूतकाल और भविष्यकाल की मुख्यता लेकर उस पूज्य आत्मा को नमस्कार किया जाता है। (4) भावनिक्षेपमंगल—केवलज्ञान प्राप्त अथवा मुक्ति दशा को प्राप्त वर्तमान पर्याय के सहित अरहन्त एवं सिद्ध भगवान की आत्मा को भावनिक्षेपमंगल कहते हैं।

इस प्रकार निक्षेप (प्रचलित लोक-व्यवहार) की अपेक्षा से भी मंगल के चार भेद कहे गये हैं।

संस्कृत मंगलकाव्यों का दिग्दर्शन

जैनदर्शन में जिस प्रकार स्तोत्र या स्तवन-काव्य प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं

उसी प्रकार मंगलकाव्य भी बहुत संख्या में प्राप्त होते हैं जिनमें अनेक प्रकार के छन्द रीति और अलंकार के प्रयोग किये गये हैं। उदाहरणस्वरूप संस्कृत में कुछ प्रमुख मंगलकाव्यों का दिग्दर्शन है—

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

अर्थ—चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर मंगलस्वरूप हैं तथा मंगलकारी हैं, भगवान महावीर के प्रधानगणधर इन्द्रभूति गौतम मंगलमय तथा मंगल करनेवाले हैं, कुन्दकुन्द आदि अनेक आचार्य, उपाध्याय एवं साधु मंगलमय और मंगलविधायक हैं, जैनधर्म मंगलमय है और विश्व का मंगल (कल्याण) करनेवाला है। यह अनुष्टुप् छन्द है, प्रसादगुण है। लघुसुप्रभातस्तोत्र में श्रेष्ठमंगल—

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमंगलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनम्॥

सारांश—तीन लोक के प्राणियों का हित करनेवाले तीर्थंकरों का शासन (दिव्य उपदेश) निश्चय से उत्तम प्रभातकाल, उत्तम नक्षत्र, उत्तम कल्याण है और उत्तम मंगलमय एवं मंगलकारी है। यह श्लोक छन्द है, रूपकमाला अलंकार से शोभित है। लघु सामायिक पाठ में मंगल का महत्त्व—

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेसरम्।
प्रणमामि महावीरं, लोकत्रितयमंगलम्॥

तात्पर्य—देवेन्द्रों के मुकुटों से मिले हुए चरणकमलों की किरणें रूपकेसर से शोभित, तीन लोक के प्राणियों के लिए मंगल करनेवाले श्री महावीर तीर्थंकर को मैं प्रणाम करता हूँ। इस श्लोक छन्द में रूपकालंकार तथा स्वभावोक्ति अलंकार है।

भूपालकविरचित जिनचतुर्विंशतिकास्तोत्र में मंगलवस्तु के दर्शन का महत्त्व—

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय, द्रष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं, त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयम्॥[1]

तात्पर्य—शयन करके उठने के बाद नियम से किसी मंगलवस्तु को देखना चाहिए, यदि ऐसा नियम है, तो हे स्वामिन्! अन्य वस्तु से क्या प्रयोजन, तीन लोक के प्राणियों के मंगलकेन्द्र स्वरूप आपका मुख ही देखना चाहिए।

इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द तथा तद्गुण अलंकार शोभित है।

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र में स्तोत्र पाठ का शुभ फल दर्शाकर मंगलरूप सिद्धि को मुख्य कहा गया है—

---

1. पंचस्तोत्रसंग्रह : दि. जैन पुस्तकालय गाँधी चौक, सूरत, प्र.सं., पृ. 136

तत्त्वरूपमिदं स्तोत्रं, सर्वमांगल्यसिद्धिदम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्-नित्यं, नित्यं प्राप्नोति सःश्रियम्॥

सारांश—जो भव्य मानव, भगवान पार्श्वनाथ के गुण स्वरूप, सर्वमंगल कार्यों की सिद्धि को प्रदान करनेवाले इस पार्श्वनाथस्तोत्र का नित्य तीनों सन्ध्याओं में पाठ करता है वह अविनाशी मुक्तिलक्ष्मी को नियम से प्राप्त करता है।

मंगल कामना

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्याः जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

ये पंच परमेष्ठी (परमदेव) प्रतिदिन विश्व के प्राणियों का मंगल करें। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द और तद्गुण अलंकार शोभित है। शान्तरस की धारा बहती है।

नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवनाख्यातश्चतुर्विंशतिः
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पंच ये
ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशला येऽष्टाविधाश्चारणाः।
पंचज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धिऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्यतुग्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतः
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥[1]

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा सम्भावितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पंचसततं कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, प्र.- भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तृ. संस्करण (क्रमशः श्लोक 3-5-6-8-9), पृ. 3

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशंप्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥

श्री सिंहनन्दि आचार्य द्वारा विरचित मंगलाष्टक में विश्व-कल्याण के लिए परमात्मा का स्मरण करते हुए अनेक मंगलकामनाएँ नव संस्कृत श्लोकों द्वारा की गयी हैं। उनमें से एक श्लोक उदाहरणरूप प्रस्तुत किया जाता है—

सद्धर्मामृतपूरतर्जितजगत्पापप्रतापोत्कराः
भव्यप्राणिवितीर्णनिर्मलमहाः स्वर्गापवर्गश्रियः।
त्यक्त्वाऽशेषनिबन्धनानि नितरां प्राप्ताः श्रियं शाश्वतीं
ते श्रीतीर्थकराः प्रणष्टविधुराः कुर्वन्तु वो मंगलम्॥[1]

अन्तिम मंगल

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्करम्
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि॥

धार्मिक परम्परा में शास्त्र प्रवचन, धर्मोपदेश तथा स्वाध्याय के प्रारम्भ में मंगलाचरण किया जाता है—

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमोनमः॥

अर्थ—बिन्दु संयुक्त 'ओं' यह बीजाक्षर मन्त्र है, योगीजन-ज्ञानी-ऋषि इसका सदैव ध्यान करते हैं। यह मन्त्र अभीष्ट फल को तथा मोक्ष पद को प्रदान करनेवाला है, इस मंगलकारी ओं मन्त्र के लिए बारम्बार प्रणाम है।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकल भूतल कलंका।
मुनिभिरुपासित तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

भावार्थ—अधिक शब्द रूप मेघों के द्वारा सकल प्राणियों के अज्ञान तथा पापों को प्रक्षालित करनेवाली तथा महर्षियों एवं ज्ञानियों के द्वारा उपासित (सेवित) तीर्थवाली सरस्वती (जिनवाणी) माता हम सब विश्वप्राणियों के अज्ञान, पाप, व्यसन को हरण करे।

---

1. श्रीस्तोत्रपाठ संग्रह, प्र.—सुन्दरलाल जैन, टोडाराायसिंह जयपुर, 1962 ई., संग्रहकर्ता—क्षु. सिद्धसागर, पृ. 40

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥[1]

तात्पर्य—अज्ञानरूप अन्धकार से अन्धे मानवों के ज्ञानरूप नेत्र को ज्ञानरूप अंजन से लिप्त शलाका के द्वारा, जिन गुरुवरों ने खोल दिया है। उन श्री पूज्य गुरुवरों के लिए सविनय प्रणाम प्रस्तुत है।

उक्त मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में अनुष्टुप छन्द और अनुप्रास अलंकार है। द्वितीय श्लोक में आर्याछन्द और रूपकालंकार स्पष्ट है। तृतीय श्लोक में अनुष्टुप छन्द तथा रूपकालंकार है।

जैन धर्म में ओं की सिद्धि—संस्कृत में जैसे अ को अकार, इ को इकार कहते हैं उसी प्रकार ओं को ओंकार भी कहा जाता है। ओं यह एक अक्षर का मन्त्र है परन्तु यह मन्त्र गम्भीर अर्थ व्यक्त करता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार अरहन्त-अशरीर (सिद्ध) आचार्य-उपाध्याय-मुनि-साधु इन पंच परमदेवों के प्रथम अक्षर को लेकर इसकी सिद्धि होती है, जैसे अरहन्त का अ, अशरीर का अ, यहाँ पर अ + अ के स्थान में आ यह दीर्घ सन्धि हो जाती है। इस आ के साथ आचार्य के आ की, आ + आ = आ इस तरह दीर्घ सन्धि हो जाती है। इस आ की, उपाध्याय के उ के साथ आ + उ = ओ इस तरह गुणसन्धि हो जाती है। इस ओ के साथ मुनि का म् जोड़ने पर ओम् तथा म् को अनुस्वार होकर ओं (ॐ) यह मन्त्र सिद्ध होता है।[2]

वैदिक धर्म में ओं की सिद्धि—जैसे जैनदर्शन में पंचपरमदेवों के प्रथम अक्षरों से ओं सिद्ध होता है उसी प्रकार वैदिक धर्म में भी ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीनों महादेवों के एक-एक अक्षरों में ओं सिद्ध होता है—जैसे ब्रह्मा के अन्त का आ तथा विष्णु के अन्त का उ, यहाँ पर आ + उ = ओ यह व्याकरण के अनुसार गुणसन्धि हो जाती है, इस ओ के साथ महेश का म् संयुक्त करने पर ओम् तथा म् को अनुस्वार करने पर 'ओंकार' यह मन्त्र सिद्ध होता है। जैनदर्शन और वैदिकदर्शन इन दोनों दर्शनों में 'ओं का महामहत्त्व एवं पूज्यत्व माना जाता है और प्रत्येक मन्त्र के आगे तथा प्रत्येक शुभकार्य के आदि में इसका प्रयोग होता है।

श्री समन्तभद्र आचार्य द्वारा 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' नाम ग्रन्थ विरचित हुआ है जिसमें गृहस्थ धर्म का वर्णन है। उसके आदि का मंगलकाव्य—

1. पं. टोडरमल : मोक्षमार्ग प्रकाशक : सं. मगनलाल जैन : प्रा. दि. जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र), प्रारम्भिक पृ. 2, पद्य 1-2-3
2. (1) 'अकः सवर्णे दीर्घः' पाणिनि अष्टाध्यायी, 6, 1, 101। (2) 'आद्गुणः' पूर्वोक्त 6,1, 87। (3) 'मोऽनुस्वारः' पूर्वोक्त 8, 3, 23। 'मध्यसिद्धान्तकौमुदी' के अन्तर्गत।

नमः श्रीवर्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते॥

महाकवि वीरनन्दी के चन्द्रप्रभ महाकाव्य का मंगलकाव्य—

जराजरत्यास्मरणीयमीश्वरं, स्वयंवरीभूतमनश्वरश्रियः।
निरामयं वीतभयं भवच्छिदं, नमामि वीरं नृसुरासुरैः स्तुतम्॥

श्रीमाघनन्दी आचार्य का मंगलकाव्य—

चतुर्विंशतितीर्थेशान्, चतुर्गतिनिवृत्तये।
वृषभादिमहावीरपर्यन्तान् प्रणमाम्यहम्॥

नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति—इन चार गतियों की परम्परा को नष्ट करने के लिए श्रीऋषभदेव से श्रीमहावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर महापुरुषों को हम माघनन्दी प्रणाम करते हैं।

दिव्यं वचो यस्य सभा सभा सभा, निपीय पीयूषमितं मितं मितम्।
बभूव तुष्टासससुरासुरा सुरा, वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम्॥

तात्पर्य—मैं उन विश्वकल्याणकारी, ज्ञानवृद्ध, परमपदनिष्ठ, महावीर स्वामी की निश्चय से स्तुति करता हूँ जिनके अमृततुल्य वचनों को सुनकर, आदरसहित जागृतिपूर्ण सुर असुर मानव तिर्यंचप्राणियों से शोभित अत्यन्त मनोहर प्राणरक्षक दयावन्त सभास्थली (समवशरण) सन्तुष्ट हो गयी। यहाँ पर शान्तरस का आस्वादन होता है।

श्री अमरकीर्ति भट्टारक विरचित उक्त मंगलकाव्य इन्द्रवंशा (1-2) वंशस्थ (3-4 पाद में) तथा यमकालंकार-उपमालंकार से शोभित है।

श्रीशुभचन्द्र आचार्य ने स्वरचित ज्ञानार्णव शास्त्र के प्रारम्भ में यह मंगलकाव्य कहकर भगवान महावीर स्वामी का स्मरण किया है—

वर्धमानो महावीरो वीरः सन्मतिनामभाक्।
स पातु भगवान् विश्वं येन बाल्ये जितस्मरः॥

व्याख्या—जिन्होंने बाल्यकाल में कामदेव को जीत लिया है, वे श्रीवीर, अतिवीर, महावीर, सन्मति नामों से विख्यात वर्धमान भगवान् सर्वजगत का संरक्षण करें। इस काव्य में अनुष्टुप् छन्द एवं भगवान महावीर के विशेषणों को व्यक्त करनेवाला परिकर अलंकार है।

इस प्रकार जैन साहित्य में सैकड़ों (सहस्रों) संस्कृत मंगलकाव्य विद्यमान हैं परन्तु विस्तार के भय से उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

प्राकृत में मंगलकाव्य

णमो अरहंताणं णमोसिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥[1]

पद्यार्थ—लोक के सब अरहन्तों (जीवन्मुक्त परमात्मा) को नमस्कार हो, समस्त सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार हो, समस्त आचार्य परमेष्ठियों को नमस्कार हो, समस्त उपाध्याय परमेष्ठियों को नमस्कार हो, सर्व साधु परमेष्ठियों को नमस्कार हो। अरहन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु—इन पंच को परमेष्ठ (परमपद में विद्यमान) कहते हैं।

उक्त मंगलाचरण का महत्त्व

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं॥

अर्थात्—यह पंचनमस्कार मंगल (मन्त्र) समस्त पापों (दोषों) का नाश करनेवाला है और सर्वमंगलों में प्रथम (अद्वितीय) मंगल है।

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरसहेण जेण णिछिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा॥

उक्त मंगलाचरण को श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव ने द्रव्य संग्रह ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है। इसका भावार्थ—जिस ऋषभनाथ तीर्थंकर ने, विश्व में जीव-अजीव इन दो मूल द्रव्यों का कथन किया है, देव तथा इन्द्र समूह से वन्दनीय उन ऋषभनाथ को मैं (नेमिचन्द्र आचार्य) मस्तक नम्र कर सर्वदा प्रणाम करता हूँ।

प्राकृत साहित्य और सिद्धान्त के तत्त्ववेत्ता श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने स्वरचित समयसार नामक आध्यात्मिक शास्त्र के प्रारम्भ में मंगलकाव्य का सृजन इस प्रकार किया है—

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड मिणमो सुयकेवली भणिदं॥

सारांश—ध्रुव (नित्य), अचल और अनुपम गति को प्राप्त हुए सम्पूर्ण सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार करके श्रुतकेवली (श्रुतज्ञान के पारगामी) द्वारा उपदिष्ट इस समयसार ग्रन्थ को कहूँगा।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्रणीत मंगल सूत्र—

---

1. श्रीपुष्पदन्त-भूतबलि आचार्य : षट्खण्डागम, प्रथमखण्ड-जीवस्थान, सत्प्ररूपणा भाग-1, संशोधित संस्करण, जैन संस्कृति संरक्षक, सोलापुर (महाराष्ट्र) प्रकाशन, 1973, पृ. 8

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं॥

अर्थात्—लोक में चार मंगल स्वरूप हैं एवं मंगलकारी हैं—(1) अरहन्तभगवान् मंगल हैं, (2) सिद्धपरमात्मा मंगल हैं, (3) आचार्य, उपाध्याय, मुनि—ये तीन प्रकार के साधु मंगल हैं और (4) केवलज्ञानी द्वारा कहा गया धर्म मंगल (कल्याणकारी) है।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य प्राकृतसाहित्य, सिद्धान्त और गणित के अधिकारी विद्वान ऋषि थे। उन्होंने स्वरचित गोम्मटसार शास्त्र के प्रारम्भ में मंगलकाव्य का दर्शन इस प्रकार कराया है—

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवरणेमिचन्द्रमकलंकं।
गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं॥

तात्पर्य—जो द्रव्य कर्म के अभाव से शुद्ध, भावकर्म के नाश से निष्कलंक, अर्हन्तदेवों से भी श्रेष्ठ, केवलज्ञानरूपी चन्द्र से शोभित और सम्यक् दर्शन आदि गुणरूपी रत्नों के आभूषणों से शोभित हैं। इस प्रकार के सिद्धपरमात्मा को नमस्कार कर, जीवजाति का निरूपण करने वाले जीवकाण्ड (गोम्मटसार) ग्रन्थ को मैं नेमिचन्द्र रचता हूँ।

इस प्राकृतमंगलकाव्य के नव अर्थ निकलते हैं अर्थात् नवदेवों को नमस्कार किया गया है—(1) चौबीसतीर्थंकर, (2) भगवान महावीर, (3) सिद्धपरमेष्ठी, (4) आत्मा, (5) सिद्धचक्र, (6) पंचपरमेष्ठी, (7) नेमिनाथभगवान्, (8) गो. जीवकाण्डशास्त्र, (9) नेमिचन्द्र आचार्य।

इस काव्य में आर्याछन्द एवं श्लेष-रूपक अलंकार शोभित है।

श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ने स्वरचितभक्तिपाठ में मंगलकाव्य के द्वारा अनेक महापुरुषों को नमस्कार किया है, इस विषय के कुछ उदाहरण—

चउवीसं तित्थयरे, उसहाइवीरपच्छिमे वन्दे।
सव्वेसिं सगणहरे, सिद्धे सिरसा णमस्सामि॥

हम श्रीऋषभनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों को, गौतम आदि चौरासी गणधरों को, आचार्य-उपाध्याय-साधुओं को और परमात्मा सिद्धों को प्रणाम करते हैं।

चंदेहिणिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियं पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु॥

जो चन्द्र से भी अधिक निर्मल हैं, सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान हैं, समुद्र के समान गम्भीर हैं तथा श्रेष्ठ सिद्ध पद को प्राप्त हुए हैं ऐसे ऋषभनाथ से लेकर

वर्धमान पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर हमारे लिए सिद्धि प्रदान करें। इस मंगलकाव्य में आर्याछन्द और उपमा अलंकार झलकता है।

इस प्रकार प्राकृत भाषा में सैकड़ों मंगलकाव्य हैं, प्राकृत भाषा देश की प्राचीन एवं प्राकृतिक भाषा है जो कहने में सरल-सुन्दर ज्ञात होती है। प्राकृत मंगलकाव्यों का पठन करना भी मानव को आवश्यक है।

हिन्दी में जैन मंगलकाव्य

जिस प्रकार जैनदर्शन में संस्कृत तथा प्राकृत मंगलकाव्यों की अधिकता देखी जाती है उसी प्रकार हिन्दी भाषा के मंगलकाव्य भी प्रचुरसंख्या में विद्यमान हैं जिनके स्मरण से मानव अपना कल्याण करते हैं। उदाहरणार्थ कुछ हिन्दी में मंगलकाव्यों का दर्शन कराया जाता है—

ओंकारध्वनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उरधार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥[1]

मंगलमय मंगलकरन वीतराग विज्ञान।
नमों ताहि जातें भये, अरहन्तादि महान॥[2]

धर्म ही उत्कृष्टमंगल है सतत संसार में
धर्म ही अवलम्ब है भवसिन्धु पारावार में।
धर्ममय नित बुद्धि हो यह कामना करते रहें
धर्मनिधि धर्माचरण द्वारा सदा भरते रहें॥[3]

चौपाई छन्द

ओंकार सब अक्षरसारा, पंचपरमेष्ठी तीर्थ अपारा।
ओंकार ध्यावें त्रैलोका, ब्रह्माविष्णु महेश्वर लोका॥

ओंकार ध्वनि अगम अपारा, बावन अक्षर गर्भित सारा।
चारों वेद शक्ति है जाकी, ताकी महिमा जगत्प्रकाशी॥

ओंकार घटघट परवेशा, ध्यावत ब्रह्मा विष्णु महेशा।
नमस्कार ताको नित कीजे, निर्मल होय परमरस पीजे॥[4]

---

1. कवि द्यानतरायकृत।
2. पण्डितप्रवर टोडरमल।
3. पं. अजितकुमार शास्त्री
4. तारणतरणजिनवाणी संग्रह सं. पं. चम्पालाल जैन- तारणतरण ट्रस्ट, सागर, प्र. संस्करण 1980, पृ. 9

उपगीतिका छन्द

ओं रहा है और रहेगा सतत उच्च सद्भावागार।
परमब्रह्म आनन्द ओं है ओं अमूर्त शून्य आकार।
ओं पंचपरमेष्ठीमण्डित ओं ऊर्ध्वगति का धारी।
केवलज्ञान निकुंज ओं है ओं अमर ध्रुव अविकारी॥

ओं ह्रीं के रूप मनोहर करते जिसमें विमलप्रकाश।
अमर ज्ञानदर्शन का है जो एकमात्रतम दिव्य निवास।
वही परम उत्कृष्ट ओं ही है त्रिभुवनमण्डल में सार।
वही देव गुण शास्त्र आचरण वही धर्म सद्भावागार॥[1]

कवित्तछन्द 31 मात्रा

संघसहित श्री कुन्दकुन्दगुरु, वन्दन हेत गये गिरनार।
वाद परो तहँ संशयमति सौं, साक्षी बदी अम्बिकाकार।
'सत्यपन्थ' निरग्रन्थ दिगम्बर, कही पुरी तहँ प्रकट पुकार
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे, विघन हरण मंगल करतार॥[2]

भावार्थ—इस काव्य में श्री कुन्दकुन्द आचार्य (विक्रम की प्रथमशती) के आध्यात्मिक ज्ञान का महत्त्व दर्शाया गया है कि जब वे चतुर्विधसंघ (मुनि-आर्यिकामाता-श्रावक-श्रासिका) के साथ श्री गिरनार क्षेत्र की वन्दना को गये थे तब मार्ग में किसी विषय को लेकर वाद-विवाद हो गया, उसमें आचार्य कुन्दकुन्द ने विजय प्राप्त की और समाज शान्ति की स्थापना का आदर्श उपस्थित किया। वे गुरुदेव मेरे हृदय में विद्यमान हों, वे विघ्नबाधाओं को दूर कर मंगल करनेवाले हैं।

मंगलमूरति परमपद-पंच धरौं नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान्॥
मंगल जिनवर पद नमौं, मंगल अर्हत देव।
मंगलकारी सिद्धपद, सो वन्दौं स्वयमेव॥

मंगल आचारजमुनि, मंगल गुरु उपझाय।
सर्वसाधुमंगल करो, वन्दौं मनवचकाय॥

मंगलसरस्वतिमातका, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगल करो, हरो असाता कर्म॥[3]

---

1. ज्ञा. त. जि., पृष्ठ 40-41
2. कविवर वृन्दावन/संगृहीत ज्ञा.त.जि., पृ. 344
3. कवि नाथूरामकृत, जिनेन्द्र मणिमाला में संगृहीत, पृ. 63-64

इन मंगलकाव्यों में ओं अथवा नमस्कार मन्त्र (णमो हरहंताणं आदि) का गौरव दर्शाया गया है। इस प्रकार जैनग्रन्थों में सहस्रों मंगलकाव्यों का दिग्दर्शन कराया गया है जिनका पठन करना आवश्यक है।

भक्तिकाव्य अथवा विनयकाव्य

भक्ति कर्तव्य पूजा-सामान्य का एक अंग है। इसी प्रकार विनयकृत्य भी पूजा-सामान्य का एक अंग है और भक्तिकाव्य पूजा-काव्य का एक अंग तथा विनय-काव्य भी पूजा-काव्य का एक आवश्यक अंग है। संस्कृत साहित्य में इनका अर्थ स्पष्ट किया गया है—"पूज्येषु गुणेषु वा अनुरागो भक्तिः" अर्थात् पूज्यपुरुषों में अथवा उनके गुणों में अनुराग (मानसिक प्रीति) करना भक्ति कही जाती है।

"मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी"
"स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते"[1]

"पूज्येषु गुणेषु वा आदरो विनयः" अर्थात् पूज्यमहात्माओं में अथवा उनके गुणों में आदर करना विनय कहा जाता है। भक्ति तथा विनय इन दोनों में शब्द की अपेक्षा भेद (अन्तर) अवश्य है परन्तु सामान्य गुण की अपेक्षा कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार सामान्य गृहस्थ (श्रावक) अष्टद्रव्यों से भगवत्पूजन कर अपना कर्तव्य पूर्ण करता है उसी प्रकार मुनिराज, आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक, ब्रह्मचारी आदि उच्च श्रेणी के साधक दैनिक भक्तिपाठ करके अपने भाव-पूजन का कर्तव्य पूर्ण करते हैं। इसलिए जैन आचार्यों ने प्राकृत तथा संस्कृत भाषाओं में भक्ति पाठों की रचना का आदर्श उपस्थित किया है और आधुनिक कवियों ने हिन्दी भक्तिकाव्यों में उनका अनुवाद किया है जो पठनीय है।

आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा प्रणीत प्राकृत भक्तिकाव्यों का अवलोकन सर्वप्रथम कराया जाता है, कारण कि विक्रम की प्रथम शती के पूर्व या पश्चात्काल में भारतीय संस्कृति के अनुरूप, प्राकृत भाषा का प्रभाव प्राकृतिक रूप से भारत में अधिक था। विक्रम की प्रथम शती में महर्षि कुन्दकुन्द ने दक्षिण भारत को गौरवान्वित किया। उस समय भारत में प्रायः धर्म के नाम पर मिथ्या-क्रियाकाण्ड, पुण्य के नाम पर पाप, सदाचार के नाम पर अत्याचार फैल रहा था, उसी समय मानव-समाज को सन्मार्ग पर दीक्षित करने के लिए आचार्य ने आध्यात्मिक सन्देश दिया। जिससे मानव ने जीवन में शान्ति का अनुभव किया। इतना ही नहीं, पुनरपि आचार्यप्रवर ने दैनिक उपासना के लिए प्राकृत में भक्तिकाव्यों की रचना की। जिनका दैनिक पाठ कर मानव आत्मा के शान्तरस में लीन हो सके।

---

1. डॉ. प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैनभक्तिकाव्य और कवि, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, देहली, प्राक्कथन, पृ. 2

ये भक्तिकाव्य प्राकृत भाषा में आठ पद्यरूप और चार गद्यरूप—इस प्रकार बारह लघुकाव्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(1) तीर्थंकर भक्ति, (2) सिद्धभक्ति, (3) श्रुतभक्ति, (4) चारित्रभक्ति, (5) योगिभक्ति, (6) आचार्यभक्ति, (7) निर्वाणभक्ति, (8) पंचगुरुभक्ति—ये आठ पद्यरूप लघुकाव्य हैं। (9) नन्दीश्वर भक्ति, (10) शान्तिभक्ति, (11) समाधिभक्ति, (12) चैत्यभक्ति—ये चार गद्यरूप लघुकाव्य हैं। ये सभी शान्तरस से परिपूर्ण हैं।

ये नवरस स्थायीभावों के अनुसार क्रम से कहे गये हैं। इनमें शान्तरस प्रधान है क्योंकि यह स्व-परकल्याण का कारण है। जब अन्य रसों के सेवन से मानव अशान्त हो जाता है तब अन्त में वह शान्तरस से ही शान्ति को प्राप्त होता है तथा इस लोक और परलोक में स्व-परकल्याण करने का पुरुषार्थ करता है। मुक्तिमार्ग की साधना करता है, अतएव इस रस को अन्त में कहा है।

अब आचार्य कुन्दकुन्द के प्राकृतकाव्यों में शान्तरस का अपूर्व प्रवाह उदाहरण के साथ सर्वप्रथम चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति करते हुए शान्तरस की धारा बहायी गयी है। तीर्थंकर भक्ति का एक काव्य इस प्रकार है—

> कित्तिय वन्दियमहिमा एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
> आरोग्गणाणलाहं दिन्तु समाहिं च मे बोहिं॥

सारांश—जो मेरे द्वारा कीर्तित, वन्दित और पूजित हैं, लोक में उत्तम तथा कृतकृत्य हैं। ऐसे वे चौबीस तीर्थंकर जिन भगवान् मेरे लिए आरोग्य लाभ, ज्ञान, समाधि और बोधि (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र) प्रदान करें। इस काव्य में आर्याछन्द है, आत्मगुणों की विनयपूर्वक कामना से शान्तरस है। सिद्धभक्ति में शान्तरस के प्रवाह का उदाहरण—

> जरमरणजन्मरहिया, ते सिद्धासुभत्तिजुत्तस्य।
> दिंतु वरणाणलाहं, बुहयण परियत्थणं परमशुद्धं॥

तात्पर्य—जरा (वृद्ध दशा) मरण और जन्म से रहित वे सिद्ध भगवान्, समीचीन भक्ति से सहित मुझ कुन्दकुन्द के लिए विद्वानों के द्वारा प्रार्थित तथा परमशुद्ध उत्कृष्ट ज्ञान को प्रदान करें। इस काव्य में आर्याछन्द में भक्तिपूर्वक ज्ञान की इच्छा होने से शान्तरस का प्रवाह है।

श्रुतभक्ति में शान्तरस की शीतल सुधा का उदाहरण—

> एव मए सुदपवरा भत्तीराएण सत्थुया तच्चा।
> सिग्घं मे सुदलाहं जिणवर वसहा पयच्छंतु॥

भावार्थ—इस प्रकार हमने भक्ति के राग से बारह अंग रूप श्रेष्ठ श्रुतज्ञान का स्तवन किया। जिनवर श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर हमें शीघ्र ही श्रुतज्ञान से पवित्र

करें। इस काव्य में आर्याछन्द में भक्ति के साथ श्रुतज्ञान का स्तवन और उससे शीघ्र पवित्र होने की भावना की गयी है अतः शान्तरस की शीतलसुधा का पान होता है।

चारित्रभक्ति में शान्तरस का उदाहरण—

> जहा खादं तु चारित्तं, तहाखादं तु तं पुणो।
> किच्चाहं पंचहाचारं, मंगलं मलसोहणं॥

दोहा छन्द से शोभित इस काव्य में, चारित्र के द्वारा मुक्ति के अक्षय सुख की कामना से शान्तरस के शीतल अमृत कण झलकते हैं।

योगिभक्ति में शान्तरस का सौन्दर्य—

> जियभयउवसग्गे, जियइन्दियपरीसहे जियकसाए।
> जियरायदो समोहे, जियसुहदुःखे णमंसामि॥

इस पद्य में आर्याछन्द की रूपरेखा है एवं निर्दोष तपस्वियों को प्रणाम करने से आत्मा में शान्ति लाभ होता है अतः शान्तरस का प्रभाव है।

आचार्य भक्ति में शान्तरस का उदाहरण—

> उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा।
> कम्मिंधणदहणादो, अगणी वाऊ असंगादो॥

इस काव्य में आर्याछन्द, उपमालंकार, रूपक अलंकारों के द्वारा शान्तरस की गंगा बहती है।

निर्वाणभक्ति में शान्तरस का उदाहरण—

> सेसाणं तु रिसीणं, णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि।
> ते हं वंदे सव्वे, दुक्खक्खयकारणट्ठाए॥

भावार्थ—निर्वाणभक्ति में कथित समस्त मुनिराजों का तथा अवशिष्ट ऋषियों का निर्वाण जिस जिस स्थान से हुआ है उन समस्त निर्वाण क्षेत्रों (मुक्ति स्थानों) को या तीर्थक्षेत्रों को, हम दुःखों का पूर्णक्षय करने के लिए प्रणाम करते हैं। इस गाथा में आर्या छन्द और तीर्थंकरों के निर्वाण क्षेत्रों की भक्ति के साथ नमस्कार करने से शान्तरस का सरोवर शोभित होता है।

पंचगुरुभक्ति में शान्तरस का उदाहरण—

> एणथोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गरुयसंसारघणवेल्लिसो छिंदए।
> लहई सो सिद्धिसोक्खाइ वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंज पज्जालणं॥

सारांश—जो भव्य मानव इस स्तोत्र के द्वारा, अरहन्त-सिद्धपरमात्मा, आचार्य-उपाध्याय-साधु—इन पंच परमगुरुओं की वन्दना करते हैं वे अनन्त संसाररूप

सघन बेल को काट डालते हैं, उत्तम जनों के द्वारा मान्य मुक्ति के सुखों को प्राप्त होते हैं तथा कर्मरूप ईंधन के समूह को समूल जला देते हैं। इस काव्य में लक्ष्मीधरा छन्द और रूपक अलंकारों के द्वारा शान्तरस का शीतल आस्वादन होता है। ये सब पद्यरूप जैन भक्तिकाव्य हैं। इसी प्रकार प्राकृतभाषा में गद्यरूप भक्तिकाव्य हैं जिनमें अलंकारों के द्वारा शान्त रस की गंगा बहती है वे चार संख्यावाले हैं—(1) नन्दीश्वरभक्ति, (2) शान्तिभक्ति, (3) समाधिभक्ति, (4) चैत्यभक्ति।

जिस प्रकार प्राकृत भाषा के जैनभक्तिकाव्यों ने शान्तरस का आस्वादन कराया है उसी प्रकार संस्कृत भाषा के जैनभक्तिकाव्य भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं जिनके अनुशीलन करने से परमात्मा, श्रुत और परमगुरु के गुणों का चिन्तन होता है, ज्ञान की वृद्धि होती है और शान्तरस के पान करने से आत्मा आह्लादित होती है।

इसलिए पूज्यपाद आचार्य ने भक्तिकाव्यों की रचना संस्कृत भाषा में निबद्ध की है। ये भक्तिपाठ तेरह हैं—(1) तीर्थंकरभक्ति, (2) सिद्धभक्ति, (3) श्रुतभक्ति, (4) चारित्रभक्ति, (5) योगिभक्ति, (6) आचार्यभक्ति, (7) पंचगुरुभक्ति, (8) ईर्यापथभक्ति, (9) शान्तिभक्ति, (10) समाधिभक्ति, (11) निर्वाणभक्ति, (12) नन्दीश्वरभक्ति, (13) चैत्यभक्ति।

तीर्थंकरभक्ति के द्वितीय श्लोक में कहा गया है कि जो तीर्थंकर परमदेव एक हज़ार आठ शारीरिक लक्षण धारण करते हैं, जीव आदि सात तत्त्वरूप महासागर के पारंगत हैं, जन्म-मरण के कारण मिथ्यादर्शन आदि दोषों से रहित हैं, जिनके ज्ञान का प्रकाश सूर्य और चन्द्रमा से भी अधिक है, शरीर का प्रकाश सूर्य से भी अतिशयरूप है, लोक तथा अलोक को जिनका ज्ञान जानता है, सहस्रों इन्द्र और असंख्यात देव जिनकी स्तुति तथा प्रणाम करते हैं, पूजा करते हैं, इन लक्षणों से सुशोभित श्रीऋषभदेव से लेकर श्री महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों की हम महती भक्ति के साथ नमस्कार करते हैं।

"ये लोकेष्टसहस्रलक्षणधराः ज्ञेयार्णवान्तर्गताः" इत्यादि।[1]

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द, रूपक तथा अतिशयोक्ति अलंकारों से शान्तरस की धारा बहती है। इस भक्तिपाठ में पंच श्लोक तथा प्राकृत में एक विनय गद्य, मनसा-वाचा-कर्मणा विनयपूर्वक भक्ति को व्यक्त करती है।

सिद्धभक्ति—में सिद्ध परमात्मा के गुणों का स्तवन किया गया है, इसमें दश काव्य संस्कृत के और एक विनय गद्य प्राकृतभाषा की है। अन्तिम श्लोक में कहा गया है कि जो व्यक्ति अत्यन्त निर्मल भावों से, बत्तीस दोष रहित सिद्धदेवों की भक्ति करता है वह शीघ्र ही मुक्ति के अक्षय सुख को प्राप्त करता है। प्रारम्भ के नवकाव्यों

---

1. धर्मध्यानप्रकाश, संपा. पं. विद्याकुमार सेठी, कुचामन सिटी (राजस्थान), प्रथम संस्करण, पृष्ठ 71

में स्रग्धराछन्द तथा अन्तिम श्लोक में आर्याछन्द है, इस भक्तिकाव्य में अनेक अलंकारों के प्रयोग से शान्तरस पुष्ट होता है।

इस भक्ति का अन्तिम काव्य इस प्रकार है—

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम्।
अतिभक्तिसम्प्रयुक्तो, यो वन्दते स लघु लभते परमसुखम्॥[1]

श्रुतभक्तिकाव्य—इस भक्ति में तीस काव्यों के द्वारा, (1) मतिज्ञान, (2) श्रुतज्ञान, (3) अवधिज्ञान, (4) मनःपर्ययज्ञान, (5) केवलज्ञान—इन पंच ज्ञानों का ज्ञेयविषय तथा उनके भेदों का वर्णन किया गया है। इसमें सम्पूर्ण काव्य आर्याछन्दों में रचित है, अन्त में एक विनय गद्य है। इस भक्ति के अन्तिम काव्य में ज्ञान की उपासना का पूर्णफल दर्शाया गया है—ये पाँचों ही ज्ञान लोकाकाश के समस्त पदार्थों को जानने के लिए नेत्र के समान हैं, इसीलिए मैंने इन ज्ञानों की स्तुति की है। इस ज्ञान की स्तुति करने से मुझे एवं ज्ञानीजन को बहुत शीघ्र उस अक्षय सुख की प्राप्ति हो, जो अनन्त सुख ज्ञान से ही प्रकट होता है, इन्द्रियों से विकसित नहीं होता। केवलज्ञान या सम्पूर्णज्ञान आत्मा से ही उदित होता है। जिस सुख में ज्ञान की अनेक ऋद्धियाँ भरी हुई हैं, अनन्तदर्शन तथा भक्ति जिस सुख के साथ है, ऐसा ज्ञानपूर्वक सुख हमको शीघ्र प्राप्त हो। अन्तिम काव्य यह है—

एवमभिष्टुवतो मे, ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि।
लघु भवताद् ज्ञानर्द्धिः, ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम्॥[2]

चारित्रभक्तिकाव्य—इस चारित्रभक्ति में पंच प्रकार के आचारों या आचरणों का वर्णन कर उनकी भक्ति की गयी है। वे पंच आचार इस प्रकार हैं—(1) दर्शनाचार, (2) ज्ञानाचार, (3) चारित्राचार, (4) वीर्याचार, (5) तपाचार, इन पंच प्रकार के आचारों की यथाशक्ति साधना की जाती है। अन्तिम काव्य में आचारों की साधना का परिणाम दर्शाया गया है—

जो भव्य संसार के दुःखों के धक्कों से भयभीत हो गये हैं, जो नित्य मोक्षलक्ष्मी के लाभ की प्रार्थना करते हैं, जो निकटभव्य हैं, जिनकी बुद्धि परमश्रेष्ठ है जिनके पापकर्म का उदय शान्त हो गया है, जो महान् तेजस्वी, मोक्षमार्ग में पुरुषार्थी हैं, ऐसे ज्ञानीमानव, अत्यन्तविशाल और शुद्ध, मुक्तिरूप महल के लिए निर्मित सोपान के समान श्रेष्ठ चारित्र को धारण करें। इस भक्ति के अन्तर्गत शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित दश काव्य हैं, अन्त में एक विनय प्राकृतगद्य है। इस भक्तिकाव्य में उपमा, रूपक और स्वभावोक्ति अलंकारों के द्वारा शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है।

1. तथैव, पृ. 26
2. तथैव, पृ. 47

योगिभक्तिकाव्य—इस भक्ति पाठ में आठ काव्य तथा अन्त में एक प्राकृत विनय गद्य शोभित है। इसमें उन मुनिराजों की स्तुति की गयी है जो मन, वचन, शरीर से, अहिंसा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्यमहाव्रत, ब्रह्मचर्यमहाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत आदि अट्ठाईस मुख्य गुणों की साधना करते हैं। जो मुनिराज वर्षाकाल में जंगली वृक्षों के नीचे, शीतकाल में जंगली नदी के तट पर और ग्रीष्मकाल में पर्वत की चट्टानों पर बैठकर या विविध आसन लगाकर कठोर तपस्या करते हैं इसका वर्णन इस भक्ति पाठ में सुन्दर शैली से किया गया है जो दिगम्बरचर्या का आचरण करते हैं। अन्तिम काव्य में भक्त कुन्दकुन्द आचार्य, मुनिभक्ति के माध्यम से आत्म-कल्याण की कामना करते हैं—

> इतियोगत्रयधारिणः, सकलतपशालिनः, प्रवृद्धपुण्यकायाः।
> परमानन्दसुखैषिणः, समाधिमग्र्यं, दिशन्तु नोभदन्ताः॥[1]

1-3-5-7 नं. के श्लोक दुबई छन्द में तथा 2-4-6-8 नं. के श्लोक भद्रका छन्द में हैं।

आचार्यभक्तिकाव्य—इस भक्तिकाव्य में आर्याछन्द में रचित ग्यारह काव्य हैं। अन्त में एक विनयात्मक गद्य प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इस पाठ में आचार्य गुरुओं के ज्ञान श्रद्धान तपस्या परीषह ध्यान इन्द्रियविजय और महाव्रतों की साधना का वर्णन किया गया है। अन्तिम काव्य में गुणों के स्मरणपूर्वक उनको प्रणाम किया गया है। अन्तिम काव्य का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

> अभिनौमिसकलकालुष, प्रभवोदयजन्मजरामरणबन्धनमुक्तान्।
> शिवमचलमनघमक्षयमव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम्॥[2]

जो आचार्य मन-वच-काय से अनेक उपद्रवों के आ जाने पर भी सदा अचल रहते हैं, सतत उस पद के योग्य गुणों की साधना से संघ में प्रधान हैं, जन्म-जरा-मरण आदि दोषों को नष्ट करने में जो उद्यत हैं, ऐसे आचार्य महान् आत्माओं को हम विधिपूर्वक आचार्यभक्ति करके, करबद्ध, मस्तक नम्रीभूत कर नमस्कार करते हैं, इस नमस्कार का फल परममुक्त दशा को प्राप्त करना है, जो मुक्त दशा हीनाधिकता से रहित, निर्दोष, अविनश्वर और कर्मों की बाधा से हीन, तीन लोक में श्रेष्ठ है।

पंचगुरुभक्तिकाव्य—इस भक्तिकाव्य में आर्याछन्दबद्ध छह काव्य तथा अनुष्टुप छन्दबद्ध पंचकाव्य हैं। कुल ग्यारह काव्यों के अन्त में प्राकृतभाषा निबद्ध एक विनय गद्य है जो विनयपूर्वक खड्गासन या पद्मासन लगाकर भक्तिपाठ के

---

1. धर्मध्यानप्रकाश, पृ. 61
2. तथैव, पृ. 66

अन्त में पढ़ी जाती है। इस पाठ में अरहन्त भगवान्, सिद्ध परमात्मा, आचार्य, उपाध्याय, श्रेष्ठ साधु—इन पंच महात्माओं को गुण-कीर्तन के साथ नमस्कार किया गया है। आठवें काव्य में मंगलकामना की गयी है—

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः।
कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे, निर्वाणपरमश्रियम्॥[1]

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये पंच परमेष्ठी महात्मा मंगलरूप और मंगलकारक हैं अतः ये सब ही हमको मोक्षलक्ष्मी प्रदान करें।

अर्हद्भक्ति या ईर्यापथभक्तिकाव्य—इस भक्तिकाव्य के आदि के सत्रह काव्यों में अर्हन्तभगवान् की स्तुति की गयी है और पश्चात् छह काव्यों में ईर्यापथभक्ति (गमन आदि क्रिया के द्वारा होनेवाली जीवहिंसा की आलोचना) का वर्णन किया गया है। मध्य में प्राकृत भाषा में रचित तीन विनयगद्यकाव्य हैं। सबसे अन्त में प्राकृत के आठ आर्याछन्द हैं जिनमें चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन किया गया है। इस भक्तिकाव्य में विभिन्न छन्दों में निबद्ध संस्कृत श्लोक हैं जिनमें कई अलंकारों की छटा से भक्तिरस झलकता है। उदाहरण के लिए पंचकाव्य प्रस्तुत किया जाता है, इसका काव्य सौन्दर्य ध्यान देने योग्य है—

अद्याभवत्सफलतानयनद्वयस्य, देवत्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्यत्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे, संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम्॥[2]

हे त्रिलोकतिलक देव! आज आपके चरणकमल के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र सफल हुए हैं और आज यह संसाररूपी समुद्र मेरे लिए चुल्लू भर पानी के समान जान पड़ता है। यह देवदर्शन का महत्त्व कहा गया है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द में रूपकालंकार एवं अतिशयोक्ति अलंकार के प्रयोग से शान्तरस की पुष्टि होती है। इसी प्रकार छठाकाव्य देखें।

अद्य मे क्षालितं गात्रं, नेत्रे च विमलीकृते।
स्नातोहं धर्मतीर्थेषु, जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥

हे जिनेन्द्रदेव! आज आपके दर्शन से मेरा शरीर पवित्र हो गया है, मेरे दोनों नेत्र निर्मल हो गये हैं और आज मैंने धर्मरूपी तीर्थ में स्नान करने का अनुभव कर लिया है।

शान्तिभक्तिकाव्य—इस भक्तिकाव्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित आठ श्लोक, दोधक छन्दबद्ध में चार श्लोक, वसन्ततिलका छन्द रचित एक श्लोक, उपजाति छन्दबद्ध एक श्लोक और स्रग्धराछन्दबद्ध एक श्लोक—इस प्रकार कुल

---

1. धर्मध्यान प्रकाश, पृ. 69
2. तथैव, पृ. 3

पन्द्रह श्लोक हैं, अन्त में प्राकृतबद्ध एक विनयगद्य है। इसमें आदि के आठ श्लोक शान्तिनाथ तीर्थंकर के गुणों का कीर्तन करते हैं। पश्चात् सात श्लोक भक्तिपूर्वक विश्वशान्ति की कामना व्यक्त करते हैं—

अपनी किरण रूप परिवार से परिपूर्ण तथा शोभा से सम्पन्न सूर्य, निज परपदार्थों को प्रकाशित करता हुआ जब तक उदित नहीं होता, तब तक कमलों का वन इस लोक में निद्रा के भार से होनेवाले परिश्रम को धारण करता है अर्थात् मुद्रित रहता है परन्तु सूर्य के उदित होते ही कमलवन खिल जाता है। उसी प्रकार हे भगवन्! जब तक आपके दोनों चरण कमलों की प्रसन्नता का उदय नहीं होता, तब तक यह प्राणियों का समूह प्रायः महापापों को धारण करता रहता है अर्थात् आपके चरणकमलों की प्रसन्नता होने पर ही वह समस्त पाप स्वयं ध्वस्त हो जाता है। संस्कृत काव्य इस प्रकार है—

> यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयन्
> तावद् धारयतीह पंकजवनं निद्रातिभारश्रमम्।
> यावत् त्वच्चरणद्वयस्य भगवन् स्यात्प्रसादोदयः
> तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्॥[1]

इस भक्तिकाव्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा स्वभावोक्ति, रूपक एवं अलंकारों के द्वारा शान्तरस सरोवर भरा हुआ है।

समाधिभक्तिकाव्य—इस भक्तिकाव्य में विभिन्न छन्दोबद्ध अठारह श्लोक हैं, अन्त में प्राकृतभाषा में एक विनयगद्यकाव्य है। क्रमांक 9-1 प्राकृत में आर्याछन्दबद्ध दो गाथाएँ हैं। इस भक्तिपाठ में निर्मलज्ञान, देवपूजन, इष्ट प्रार्थना, श्रद्धान और ध्यान का अलंकार भरा हुआ सुन्दरवर्णन आनन्द प्रदान करता है। उदाहरणार्थ एक काव्य का अवलोकन कीजिए—

> आबाल्याद् जिनदेवदेव भवतः श्रीपादयोः सेवया
> सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोद्ययावद्गतः।
> त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे
> त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम॥[2]

निर्वाणभक्तिकाव्य—इस भक्तिकाव्य में कुल छत्तीस श्लोक विभिन्न छन्दों में रचित हैं, अन्त में प्राकृतभाषा में निबद्ध रमणीय विनयगद्यकाव्य है। इस भक्तिकाव्य में चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर के पंचकल्याणकों (गर्भ-जन्म-दीक्षा-ज्ञान-मोक्ष) का वर्णन कर उनको नमस्कार किया गया है। इसके पश्चात् ऋषभदेव से लेकर श्री

---

1. धर्मध्यान प्रकाश, पृ. 78
2. धर्मध्यानप्रकाश, पृ. 81

महावीरपर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक का वर्णन किया गया है। चौबीस तीर्थंकरों ने जिन-जिन स्थानों से मुक्ति प्राप्त की है उन-उन पवित्र स्थानों को निर्वाण क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तीर्थंकरों से अतिरिक्त जो आचार्य, उपाध्याय-ऋषि-महात्मा जिन-जिन स्थानों से मुक्ति को पधारे हैं उन क्षेत्रों को सिद्ध क्षेत्र कहते हैं। और जिन क्षेत्रों में तीर्थंकरों के प्रारम्भ के चार कल्याणकों के उत्सव मनाये गये हैं तथा अन्य तपस्वी ऋषि महात्माओं के अतिशय या चमत्कार हुए हैं वे अतिशय क्षेत्र कहे जाते हैं ये सर्व ही क्षेत्र वर्तमान में तीर्थक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनकी वन्दना यात्रा कर मानव अपने जन्म को सफल करते हैं। चौबीस तीर्थंकरों के वंश तथा चिह्न विशेषों का वर्णन इस भक्ति पाठ में है।

इस निर्वाण भक्ति के रमणीय श्लोकों में से एक सरस श्लोक के तात्पर्य का अनुभव करें और दूसरों को भी करावें—जिस प्रकार इक्षु (ईख) के रस से निर्मित गुड़ के रस में बनाया गया आटे का हलवा या लड्डू अधिक स्वादिष्ट और मधुर होता है। उसी प्रकार तीर्थंकर, गणधर, अरहन्त आदि परमदेव, ऋषि आदि महापुरुष जहाँ-जहाँ तप करते हैं या दैनिकचर्या का आचरण करते हैं वे सब स्थान, इस विश्व के प्राणियों को सदा अधिक पवित्र करनेवाले अथवा कल्याण करनेवाले तीर्थक्षेत्र बन जाते हैं। जैसे कर्मशत्रुओं को जीतनेवाले युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीनों पाण्डव शत्रुंजय पर्वत से मोक्ष पधारे। नकुल तथा सहदेव सबसे उच्च स्वर्ग में गये।

समस्त परिग्रह से रहित बलदेव, लव एवं कुश आदि तुंगीगिरि नामक पर्वत से निर्वाण को प्राप्त हुए। शत्रुकर्म विजेता सुवर्णभद्र आदि ऋषिराज पावागिरि पर्वत के निकट चेलनानद के तट से तपस्या करते हुए मुक्ति पधारे। इसी प्रकार द्रोणगिरि, कुण्डलगिरि, मुक्तागिरि (मेढ़गिर), वैभारपर्वत, सिद्धवरकूट, ऋष्यद्रि, विपुलाचल बलाहक, विन्ध्यपर्वत, सह्याद्रि, हिमवान्, दण्डात्मक, गजपन्थ आदि। इन सब निर्वाण क्षेत्रों का वर्णन इस निर्वाणभक्ति में किया गया है अतः यह नाम सार्थक है। ये सब तीर्थ क्षेत्र विश्व में प्रसिद्ध हैं। श्लोक यह है—

> इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके, पिष्टोऽधिकांमधुरतामुपयाति यद्वत्।
> तद्वच्च्यपुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यं, स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि॥[1]

इस श्लोक में वसन्ततिलकाछन्द और उपमा अलंकार के प्रयोग से शान्तरस की वर्षा होती है।

नन्दीश्वरभक्ति—इस भक्तिकाव्य में आर्याछन्दोबद्ध साठ श्लोक हैं, अन्त में प्राकृतभाषा में रचित एक विनय गद्यकाव्य है। इस भक्तिकाव्य में तीन लोक के अकृत्रिम (स्वाभाविक-अनादिनिधन) मन्दिरों तथा उनमें विराजमान मूर्तियों का वर्णन

1. धर्मध्यान प्रकाश, पृ. 97, श्लोक 31

है। इसके अतिरिक्त मध्यलोक के आठवें नन्दीश्वरद्वीप का एवं उसमें विद्यमान स्वाभाविक मन्दिरों का विशेष रूप से वर्णन है। उनकी प्राकृतिक शोभा के वर्णन से मानस में हर्ष होता है, उदाहरण के लिए इस भक्तिपाठ का एक श्लोक तथा उसका तात्पर्य प्रस्तुत किया जाता है—

आर्याछन्द

मुदितमतिबलमुरारि, प्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जातः।
बृहदूर्जयन्तशिखरे, शिखामणिस्त्रिभुवनस्य नेमिर्भगवान्॥[1]

तात्पर्य—अपने कुटुम्बी भाई बलदेव और कृष्ण के द्वारा सम्मानित, क्रोध-मान-माया-लोभ-हिंसा-मोह आदि अन्तरंग शत्रुता के विजेता, तीनों लोकों में चूड़ामणि ऐसे भगवान् नेमिनाथ स्वामी, विशाल एवं उन्नत गिरनार पर्वत से सिद्ध परमात्मा पद को प्राप्त हुए। हम उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। यहाँ पर रूपक और परिकर अलंकारों के सहयोग से शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है।

चैत्यभक्ति—इस भक्तिकाव्य में छत्तीस श्लोक मौलिक और पंचश्लोकक्षेपक (ग्रन्थान्तर से संगृहीत) हैं। अन्त में प्राकृतभाषाबद्ध एक विनयभावपूर्ण गद्यकाव्य है। प्रथम श्लोक वसन्ततिलका छन्द में, 2-3-4 श्लोक हरिणी छन्द में, 5 से 11 श्लोक तक आर्याछन्द में 12 से 16 तक श्लोक वियोगिनीछन्द में, 17 से 23 श्लोक अनुष्टुपछन्द में, 24 से 31 श्लोक आर्याछन्द में 32 से 36 श्लोक पृथ्वीछन्द में, क्षेपकश्लोकों में प्रथमपद्य स्रग्धराछन्द में, द्वितीय इन्द्रवज्राछन्द में, तृतीय पद्य मालिनी छन्द में, चतुर्थ शार्दूलविक्रीडित छन्द में, पंचम श्लोक स्रग्धराछन्द में निबद्ध है।

आगे चलकर इस भक्ति पाठ के मध्य श्लोक सं. 21 और उसके भाव सौन्दर्य पर दृष्टिपात करें—

अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तर समस्तदुरितं दूरम्।
व्यवहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगम्भीरम्॥[2]

इस भक्तिकाव्य में रूपकालंकार तथा वैदर्भी रीति के प्रयोग से शान्तरस का सरोवर भरा हुआ है जो आत्मा में शान्ति प्रदान करता है।

उक्त समस्त भक्तिपाठों के समान इस भक्तिपाठ के अन्त में भी एक प्राकृतभाषाबद्ध विनय गद्य काव्य है जिसका सारांश हिन्दी भाषा में इस प्रकार है—हे परमात्मन्! मैं चैत्यभक्ति का पाठ करके कायोत्सर्ग को करता हूँ। खड्गासन होकर नवबार नमस्कार मन्त्र पढ़ने के बाद तीन बार प्रणाम करने को कायोत्सर्ग कहते हैं।

---

1. धर्मध्यान दीपक—निर्वाणभक्ति, श्लोक 51, पृ. 109
2. धर्मध्यानप्रकाश—चैत्यभक्ति, श्लोक 31 पृ. 133

इस भक्तिपाठ में होनेवाले दोषों की मैं आलोचना (अपने दोषों को स्वयं कहना) करता हूँ। तीनों लोकों में विद्यमान कृत्रिम तथा अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना, चारों प्रकार के देवों को साथ लेकर इन्द्रपरिवार दिव्य गन्ध, पुष्प, धूप, चूर्ण तथा वस्त्र द्रव्यों से अभिषेक के साथ अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं। मैं भी अपने स्थान पर रहकर विनय के साथ, उसी प्रकार से सदा समस्त चैत्यालयों की अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का नाश हो और दुष्कर्मों का नाश हो। मुझे सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण की प्राप्ति हो। शुभगति की प्राप्ति हो, समाधि मरण की प्राप्ति हो और भगवान् जिनेन्द्रदेव के समान समस्त गुणों रूपी सम्पत्तियों की प्राप्ति हो।

जिस प्राकृतगद्यकाव्य का उपरिकथित सारांश दर्शाया गया है वह प्राकृत विनयगद्यकाव्य इस प्रकार है—इच्छामि भंते, चेइयभत्ति काउस्सग्गो, कओ, तस्सालोचेउं। अहलोय तिरियलोय, उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि, ताणि सव्वाणि, तिसुविलोएसु, भवणवासि वाण विंतर जोइसिय कप्पवासियत्ति-चउविहादेवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइ, णिच्च कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहि लाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउमज्झं इदि।"[1]

इसको प्राकृत आलोचना गद्य भी कहते हैं कारण कि इस गद्य में आलोचनापूर्वक चैत्य (प्रतिमा) तथा चैत्यालयों (मन्दिरों) के प्रति उत्तम द्रव्यों तथा शुद्धभावों के साथ विनयभक्ति प्रदर्शित की गयी है। इसी समय खड्गासन या पद्मासन दशा में नववार नमस्कार मन्त्र पढ़कर तीन बार नमस्कार किया जाता है।

हिन्दीभक्तिकाव्य—जिस प्रकार प्राकृत और संस्कृत साहित्य में जैन भक्तिकाव्यों की परम्परा दृष्टिगत होती है उसी प्रकार हिन्दी साहित्य में भी जैनभक्तिकाव्यों की परम्परा दृष्टिगत होती है। उस भक्ति साहित्य के अध्ययन और मनन से शान्तरस का अनुभव होता है और उसकी शब्दावली मानस-पटल को हर्षित करती है। अब हिन्दी साहित्य में जैनभक्तिकाव्यों का रसपान करें।

सिद्धभक्ति—सबसे प्रथम सिद्धभक्ति में आठ दोहा, छन्दबद्ध हैं। उदाहरण के लिए कुछ दोहे निम्न प्रकार हैं—

अष्टमधरानिविष्ट है, आठ प्रमुख गुणयुक्त।
अनुपम जो कृतकृत्य हैं, वन्दूं सिद्ध प्रमुक्त॥
अनुपम अव्याबाध जो अनुपम सौख्य अनन्त।
अतीन्द्रिय आत्मीय हैं, वन्दूं सिद्ध महन्त॥

1. धर्मध्यान प्रकाश : चैत्यभक्ति, पृ. 139

श्रुतभक्ति—इस पाठ में श्रुतज्ञान अथवा शास्त्रों की भक्ति का वर्णन है। इसमें नवदोहा शान्तरस को प्रवाहित करते हैं, उदाहरणार्थ कुछ दोहे—

चारित्रभक्ति—इस भक्ति पाठ में दश दोहों के माध्यम से चारित्र (सदाचार) के विषय में भक्तिपूर्वक शान्तरस की धारा बहायी गयी है। उदाहरणार्थ दोहा—

तीन लोक के जीव का, हित है धर्म सुजान।
सन्मति कहते हैं उसे, नमो उन्हें धर ध्यान॥

पाँच भाँति चारित्र को, कहते वीर प्रकाश
सर्व कर्म के नाश हित, घाति कर्म का नाश॥

पंच महाव्रत हैं कहे यहाँ अहिंसा आदि।
कही समितियाँ पाँच हैं, पँच अक्षरोधादि॥

अन्याय, अत्याचार तथा पापों से आत्मा की सुरक्षा करना 'गुप्ति' कहा जाता है। इसके तीन प्रकार हैं—(1) मनोगुप्ति (मन को वश में करना या मौन धारण करना), (2) वचनगुप्ति (वचन को वश में करना या हितमितप्रिय सत्यवचनों का प्रयोग करना), (3) कायगुप्ति (शरीर का वशीकरण या स्व-पर उपकार के कार्य करना), इस सब चारित्र या संयम के साधनों से दोष दूर होते हैं, आत्मशुद्धि होती है, स्वर्ग एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है।

योगभक्ति—इस भक्तिपाठ में उन मुनिराजों की भक्ति की गयी जो मनसा वाचा-कर्मणा मुक्ति प्राप्त करने के लिए श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र की समीचीन साधना करते हैं जो अन्तरंग और बहिरंग तप की साधना करते हैं, वर्षा, शीत और ग्रीष्म ऋतु के कष्टों को शान्त भाव से सहन करते हैं। जो अहर्निश धार्मिक कर्तव्यों की प्रतिपालना करते हैं। इसमें रम्य तेईस दोहों के माध्यम से शीतल भावों की सरिता बहती है। उदाहरण के लिए कुछ छन्दों का प्रदर्शन—

तत्त्वभूतगुणयुक्त जो, गुणधर हैं अनगार।[1]
अभिनन्दन उनको करूँ, हाथ जोड़ मनधार॥
आठों मद से रहित हैं, आठ कर्म से मुक्त।
मोक्षपदामृत को पिएँ, नमूँ अष्टगुणयुक्त॥

आचार्यभक्ति—इस भक्ति प्रकरण में साधुसंघ के आचार्य महात्मा के गुणों का अभिनन्दन किया गया है, आचार्य महाराज, संघ के साधुओं को दैनिक चर्या पालन कराने में अनुशासन रखते हैं, आत्मशुद्धि के लिए स्वयं तप की साधना करते और कराते हैं। अनशन आदि बारह प्रकार का तप, उत्तम क्षमा आदि दशधर्म,

1. श्रीस्तोत्रपाठ संग्रह, योगभक्ति, पृ. 28-30

दर्शनाचार आदि पंच आचार, समताभाव आदि छह आवश्यक कर्तव्य और मनोगुप्ति आदि तीन गुप्ति—इन छत्तीस मुख्य गुणों का प्रतिपालन आचार्य महात्मा महती दृढ़ता के साथ करते हैं, दश दोहा छन्दों में इनके यशोगान से समता की सरिता बहायी गयी है। उदाहरणार्थ—

निर्वाणभक्ति—इस भक्ति में प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों के निर्वाणक्षेत्रों (मुक्तिप्राप्त करने के तीर्थ) की वन्दना की गयी है। इनके अतिरिक्त जो भी आचार्य, उपाध्याय, ऋषि जिस तीर्थ से मुक्ति पद को प्राप्त हुए हैं, उन समस्त तीर्थों के नामोच्चारणपूर्वक वन्दना की गयी है। भारतवर्ष में सहस्रों सहस्रों तीर्थों से ऋषि महात्मा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। उन सबका वर्णन इस भक्ति में किया गया है। यह पाठ अट्ठाईस दोहा छन्दों के माध्यम से शान्तरस की वर्षा करके आत्मा में शान्ति का उद्भव करता है। उदाहरण के लिए कुछ सरस छन्दों का प्रदर्शन इस प्रकार है—

> अष्टापद में वृषभ का, हुआ नमूँ निस्तार।
> वासुपूज्य चम्पा नमूँ, नेमि नमूँ गिरनार॥
>
> पावा में महावीर का, क्लेश रहित निर्वाण।
> शेष बीस सुरवँद्य वे, गिरि सम्मेद सुजान॥
>
> जो जन पढ़े त्रिकाल में, निर्वृतिकाण्ड सुभक्ति।
> भोगे नर सुर सौख्य अरु, मुक्त बने वह व्यक्ति॥[1]

पंचगुरुभक्ति—इस भक्ति में अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—इन पंच परमेष्ठी महात्माओं को, अपने-अपने गुणों से पूज्य मानकर प्रणाम किया गया है। ये सभी मुक्ति के मार्ग की उपासना करते हैं, इसमें सात दोहा छन्दों के द्वारा शान्तरस पिलाया गया है, उदाहरणार्थ दोहा—

> मनुज नागसुर इन्द्र से, धरे छत्रत्रय आय।
> पांचों कल्याणों सहित, नमूँ चतुर्गण राय॥[2]
>
> ध्यान अग्नि जर मरण को, तथा जन्म कर नाश।
> प्राप्त किया है सिद्ध पद, लोक अन्त में वास॥
>
> अर्हन्त सिद्ध आचार्य हैं, उपाध्याय अरु साधु।
> बार-बार इनको नमूँ, भव भव में आराधु॥

चैत्य भक्ति—इस भक्ति में तीन लोक में विद्यमान चैत्यालयों (मन्दिरों) के

---

1. श्रीस्तोत्रपाठ संग्रह : नि.भ., पृ. 31, 33, 34
2. श्रीस्तोत्रपाठ संग्रह : पंचगुरुभक्ति, पृ. 36

चैत्य (प्रतिमा) समूह की स्मृतिपूर्वक वन्दना की गयी है, प्रतिमा या मूर्ति नवदेवों में एक देव माना गया है, इस भक्ति के दोहाचतुष्टय द्वारा आत्मशान्ति का मार्ग दर्शाया गया है, उदाहरणार्थ दोहा प्रस्तुत—

चैत्यभक्ति को मैं करूँ, सदा आत्म में देव।
तीन लोक में चैत्य जो, उनको नमें सुदेव॥[1]

दिव्यगन्ध पुष्पादि से, पूजें वे जिनविम्ब।
अर्चन वन्दन आदि में, तत्पर हैं अविलम्ब॥

नन्दीश्वर भक्ति—इस भक्ति में एक ही दोहा द्वारा आठवें नन्दीश्वरद्वीप के अकृत्रिम चैत्य (प्रतिमा) तथा चैत्यालयों (मन्दिरों) की वन्दना की गयी है जिससे आत्मशुद्धि की प्रगति होती है, इसमें स्वाध्याय से विश्वतत्त्वों के ज्ञान की प्राप्ति की कामना निहित है—

बावन चैत्यालय नमूँ, नन्दीश्वर को ध्याय।
विश्वप्रकाशक ज्ञान हो, रहे नित्य स्वाध्याय॥

शान्ति भक्ति—इस भक्ति पाठ में कहा गया है कि चौंतीस अतिशयों (चमत्कारों) से शोभित जीवन्मुक्त अर्थात् अर्हन्त भगवान् आत्मा में और लोक में शान्ति स्थापित करें, कारण कि वे कर्मशत्रुओं को जीतनेवाले जिन कहे जाते हैं और स्वयं शान्तिस्वरूप हैं—

निज पर में शान्ति करें, चौंतिस अतिशय युक्त।
वे जिनवर शान्ति करें, जो हैं जीवन्मुक्त॥

इस भक्ति में एक ही छन्द (दोहा) शान्तिप्रदायक है।

समाधि भक्ति—समीचीन श्रद्धा और ज्ञान के साथ सम्यक् आचरण की साधना करना समाधि कहा जाता है, इस भक्ति में समाधि को मनसा-वाचा-कर्मणा नमस्कार किया गया है, समाधि को ध्यान भी कहते हैं। इससे आत्मशान्ति एक ही छन्द द्वारा व्यक्त की गयी है—

सम्यक् दर्शन ज्ञान जो, सम्यक् जो चारित्र।
सदा समाधि रूप है, नमूँ सदा सुपवित्र॥

चौबीस तीर्थंकर भक्ति—इस सामूहिक भक्ति पाठ में श्री ऋषभदेव से लेकर श्री महावीर तक चौबीस तीर्थंकर देवों की भक्ति तथा उसकी महत्ता दर्शायी गयी है। इसमें छह छन्दों द्वारा विश्वशान्ति का मार्ग प्रकट किया गया है—

1. श्रीस्तोत्रपाठ संग्रह, पृ. 36.

उदाहरणार्थ कुछ छन्दों का दिग्दर्शन—

हैं निर्मल अति चन्द्र से, सागर से गम्भीर।
वीतराग सर्वज्ञ हैं, विश्व-बन्धु वे धीर॥

सिद्धिपद को प्राप्त हैं, अष्ट कर्म से मुक्त।
विश्ववन्द्य जिनवर नमूँ, अनन्त चतुष्टय युक्त॥

चौंतीसों अतिशय लिये, प्रातिहार्य हैं आठ।
तीर्थंकर को मैं नमूँ, वीतमान-मनगाँठ॥[1]

ध्यानसिद्धि—इसमें ध्यान की सिद्धि का उपाय दर्शाया गया है।

इस प्रकार हिन्दी भाषाबद्ध उक्त तेरह भक्ति पाठ हैं जिनका नित्य पाठ करने से आत्मबल बढ़ता है, आत्मशुद्धि होती है, अशुभभाव दूर होकर शुभ परिणामों का विकास होता है।

कीर्तन और आरती

पूजा-काव्य में कीर्तन एवं आरती काव्य का भी अन्तर्भाव हो जाता है, कारण कि कीर्तन एवं आरती क्रिया भी पूजा की एक क्रिया या प्रकार है। कीर्तन का अर्थ यह होता है कि परमात्मा के गुणों का गान करना, स्तुति करना। इसमें सामूहिक रूप से संगीत के साथ करने की प्रधानता रहती है, सभास्थलों, मन्दिरों, उपासना गृहों अथवा अन्यत्र यह कीर्तन की रीति सर्वत्र देश में प्रचलित है। इसी प्रकार आरती का अर्थ होता है कि परमात्मा के गुणों में मन-वचन-शरीर से लीन होना या भक्ति सहित होना। आरती यह शब्द अशुद्ध हो गया है, इसका शुद्ध रूप आरति है, आ = अच्छी तरह से या भक्ति सहित, रति = लीन होना, अनुरत होना, भक्ति करना। इस आरती की क्रिया में दीपक को लेकर संगीत के साथ नृत्य करना अथवा बिना संगीत तथा बिना नृत्य के भी यह क्रिया हो सकती है। पर सांगीत एवं नृत्य के साथ आरती की क्रिया देश में सर्वत्र प्रचलित है।

जैन-दर्शन में कीर्तन तथा आरती साहित्य भी महान् है। संस्कृत भाषा में तथा प्राकृत में यह आरती-कीर्तन का साहित्य प्रायः देखने में नहीं आ रहा है, पर हिन्दी भाषा में अवश्य उपलब्ध होता है। हिन्दू धर्म, जैनधर्म, बौद्ध धर्म, सिक्ख-धर्म आदि की सांस्कृतिक परम्पराओं में यह आरती एवं कीर्तन की क्रिया देखी जाती है। मुस्लिम समाज और क्रिश्चियन समाज में भी यह आरती एवं कीर्तन की क्रिया देखी जाती है। परन्तु मुश्लिम समाज और क्रिश्चियन समाज में भी यह क्रिया अन्य शैली से देखी जाती है।

1. श्रीस्तोत्र पाठ संग्रह : पृ. 40.

जैनदर्शन में कीर्तन का निदर्शन यह है–

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान्, जो मैं हूँ वह हैं भगवान्,
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ रागवितान॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमितशक्ति सुख ज्ञाननिधान।
किन्तु आसवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥

सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग-रुष दुख की खान।
निज को निज पर को परजान, फिर दुख का नहिं लेश निदान॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्माराम, विष्णु बुद्ध हरि जिनके नाम।
राग त्याग पहुँचूँ निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम॥[1]

श्री सिद्धचक्र की आरती

जय सिद्धचक्र देवा, जय सिद्धचक्र देवा।
करत तुम्हारी निशदिन मन से, सुर नर मुनि सेवा। जय सिद्ध....

तुम अशरीर शुद्ध चिन्मूरति, स्वातमरस भोगी।
तुम्हें जपैं आचार्य सुपाठक, सर्वसाधुयोगी॥ जय....

ब्रह्मा विष्णु महेश सुरेश, गणेश तुम्हें ध्यावें।
भविजन तुम चरणाम्बुज सेवत, निर्भयपद पावें॥ जय....

संकट टारन अधम उधारन, भवसागर तरणा।
अष्ट दुष्ट रिपुकर्म नष्ट कर, जन्म मरण हरना॥[2]

---

1. आत्मकीर्तन : क्षु. मनोहरवर्णी न्यायतीर्थ 'सहजानन्द',
ग्रन्थमाला मेरठ, अनुवादक-अँग्रेज़ी भाषा-महेशचन्द्र एम.ए.एल.एल.बी. जर्नलिस्ट (लन्दन), पृ. 7-8 सन् 1953.
2. बृहत्‌महावीर कीर्तन : सं. मंगलसैन विशारद, प्र. श्री दि. जैन वीर पुस्तकालय श्री महावीर जी, 1971, पृ. 1000

अन्तरयामी आरती[1]

ओं. जय अन्तरयामी, स्वामी जय अन्तरयामी।
दुखहारी सुखकारी, त्रिभुवन के स्वामी। ओं. जय अ. (टेक)

नाथ निरंजन सब दुख भंजन, सन्तन आधारा।
पापनिकन्दन भविजन तारन, सम्पति दातारा। ओं. जय.॥

ज्ञान प्रकाशी शिव पुरवासी, अविनाशी अविकार।
अलख अगोचर शिवमय, शिवरमणी भरतार॥ओं. जय॥

'न्यामत' गुणगावे पाप नशावे, चरणन शिर नावे।
पुन पुन अरजसुनावे, कमला शिवलक्ष्मी पावे॥ओं.जय॥

इस आरती में कुल पाँच छन्द हैं जिनमें सरस तीन छन्दों का उद्धरण दिया गया है शेष छन्द भी शान्ति प्रदायक हैं।

महावीरस्वामी आरती[2]

इस आरती में आठ छन्द हैं। इसमें भगवान महावीर स्वामी का गुणस्तवन किया गया है, उदाहरणार्थ कुछ सरस छन्दों का उद्धरण—

ओं. जय सन्मति देवा, स्वामी जय सन्मति देवा।
वीर महा अतिवीर वीरप्रभु, वर्धमान देवा ॥टेक॥
त्रिशलाउर अवतार लिया प्रभु, सुर नर हर्षाये।
पन्द्रह मास रतन कुण्डलपुर, धनपति वर्षाये॥ओं जय॥
शुक्ल त्रयोदशी चैत्रमास की, आनन्द करतारी।
राय सिद्धारथ घर जन्मोत्सव, ठाट रचे भारी॥ओं जय॥

श्री पार्श्वनाथ आरती

इस आरती में तीन नव्य तर्जवाले छन्दों द्वारा भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति दर्शायी गयी है जिसके द्वारा शान्ति एवं श्रद्धा की जागृति होती है, जिसमें मानव जीवन की नश्वरता दिखलाकर श्री पार्श्वनाथ के पुनीत चरणों में लीन होने की प्रेरणा दी गयी है, आरती का उद्धरण देखिए।

1. उक्त पुस्तक, पृ. 1001.
2. बृहत्महावीर कीर्तन, पृ. 1002.

भक्त बेकरार है, आनन्द अपार है
आ जा प्रभु पारश तेरा जय जय कार है॥
मंगल आरती लेकर स्वामी, आया तेरे द्वार जी, आया तेरे द्वार जी।
दर्शन देना पारश प्रभु जी, होवे आतम ज्ञान जी, होवे आतम ज्ञान जी॥

अध्यात्म आरती (निश्चय आरती)

आरती दो प्रकार की होती है (1) निश्चय आरती, (2) व्यवहार आरती। निश्चय आरती में मात्र आत्मगुणों का चिन्तन रहता है, इसमें बाह्यवस्तु दीपक आदि की आवश्यकता अनिवार्य रूप से नहीं होती है। व्यवहार आरती में शुद्धलक्ष्य के साथ बाह्य वातावरण की भी आवश्यकता होती है। इस आरती में आत्मा प्रभु को लक्ष्य बनाकर स्तुति की गयी है। इसके रचयिता श्री दीपचन्द्र कवि हैं, इसमें सात छन्द आत्मगुणों की प्रशंसा में ही निबद्ध हैं—सम्पूर्ण आरती का दर्शन कीजिए—

इह विधि आरती करौं प्रभु तेरी, अमल अबाधित निजगण केरी। टेक
अचल अखण्ड अतुल अविनाशी, लोकालोक सकल परकाशी॥ इह.
ज्ञानदर्श सुख बल गुणधारी, परमातम अविकल अविकारी॥ इह.
क्रोध आदि रागादिक तेरे, जन्म जरा मृतु कर्म न मेरे॥ इह.
अवपु अबन्ध करण सुखनाशी अभय अनाकुल शिवपदवासी॥ इह.
रूप न रस, न भेष न कोई, चिन्मूरति प्रभु तुम ही होई॥ इह.
अलख अनादि अनन्त अरोगी, सिद्ध विशुद्ध सुआतम भोगी॥[1] इह.
गुण अनन्त किमि वचन बतावें, 'दीपचन्द्र' भवि भावना भावे॥ इह.

इस आरती में प्रसिद्ध हिन्दी छन्द में शान्तरस की धारा बहती है—

विषय विस्तार के कारण सम्पूर्ण आरती साहित्य नहीं लिखा जा सकता अतः उसकी सूची यहाँ पर दी जा रही है—

क्रम	आरती का नाम	रचयिता
1.	श्री सिद्धचक्र की आरती	पं. मक्खनलाल जी
2.	अन्तर्यामी आरती	कवि न्यामत सिंह
3.	आरती महावीर स्वामी	शिवराम कवि
4.	महावीर स्वामी की आरती	कवि द्यानतराय
5.	आरती महावीर स्वामी	अज्ञात
6.	आरती पंचकल्याणक	कवि द्यानतराय

1. बृहत्महावीर कीर्तन, पृ. 1012.

क्रम	आरती का नाम	रचयिता
7.	आरती चौबीसी भगवान्	पं. कन्हैयालाल
8.	आरती चाँदनपुरमहावीर स्वामी	कवि हरिप्रसाद
9.	श्री पार्श्वनाथ आरती	अज्ञात
10.	श्रीपार्श्वनाथ भक्ति आरती	अज्ञात
11.	पार्श्वनाथ की आरती	अज्ञात
12.	पार्श्वनाथ की आरती	जियालाल कवि
13.	आरती	कवि जिनदास
14.	आरती शीतलनाथ	कवि ए.एस.
15.	आरती पार्श्वनाथ भगवान्	नवयुवक मण्डल
16.	आरती	कवि द्यानतराय
17.	अर्हन्त आरती	कवि द्यानतराय
18.	मुनिराज आरती	कवि द्यानतराय
19.	आरती चन्द्रप्रभ भगवान्	कवि शिखर चन्द्र
20.	निश्चय आरती	कवि दीपचन्द्र
21.	आरती पद्मप्रभ बाड़ा	मंगलसैन कवि
22.	आरती श्री चन्द्रप्रभ	मंगलसैन कवि
23.	आरती चाँदनपुर महावीर	मंगलसैन कवि
24.	जिनवाणी की आरती	अज्ञात
25.	आरती तारण स्वामी	कुँवर कवि
26.	ओं जय प्रभुजिन देवा	मधुर कवि
27.	आरती श्री गुरुदेव की	अज्ञात
28.	श्री मंगला आरती	अज्ञात
29.	आरती श्री जिनराज की	अज्ञात
30.	आरती श्री मुनिराज की	कवि द्यानतराय
31.	आत्मा की आरती	कवि बिहारीदास
32.	आरती निश्चय आत्मा	कविवर द्यानतराय
33.	आरती सायंकाल	अज्ञात
34.	ज्ञानावरणीनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
35.	दर्शनावरणीनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
36.	वेदनीयनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
37.	मोहनीय नाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
38.	आयुकर्मनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय

क्रम	आरती का नाम	रचयिता
39.	नामकर्मनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
40.	गोत्रकर्मनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
41.	अन्तरायनाशक सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
42.	समुच्चय सिद्ध आरती	कविवर द्यानतराय
43.	वासुपूज्य भगवान की आरती	कविवर द्यानतराय
44.	ओं जय अम्बे वाणी-आरती	अज्ञात
45.	जय जय आरती नवपद जी की	अज्ञात
46.	ओं जय आदिनाथ देवा	अज्ञात
47.	सरस्वती आरती	यतीन्द्र कवि
48.	पंचपरमेष्ठी की आरती	स्व.पं. दीपचन्द्र वर्णी
49.	पंचपरमेष्ठी की आरती	कविवर द्यानतराय
50.	आरती श्री वर्धमान जिन	कविवर द्यानतराय
51.	ओं जय सन्मति देवा	कवि शिवराम
52.	ओं जय अन्तर्यामी	कवि न्यामत सिंह
53.	करों आरती वर्धमान की	कवि द्यानतराय
54.	जय पारसदेवा	कवि सेवक

तृतीय अध्याय

संस्कृत और प्राकृत जैन पूजा-काव्यों में छन्द, रस, अलंकार

जैन पूजा-काव्य से सम्बन्धित अनेक विषयों पर विवेचन के उपरान्त अब उसकी प्रवृत्ति (पद्धति) पर विचार किया जाता है। पहले कथन कर आये हैं कि पूजा दो प्रकार की मुख्यतः होती है—(1) भावपूजा, (2) द्रव्यपूजा। मुनिराज, साधु-महात्माओं के लिए भावपूजा की प्रधानता होती है, अभ्यासरूप में गृहस्थ (श्रावक) भी कर सकते हैं जो कि श्रावक अपनी धार्मिक साधना उच्च बनाना चाहते हैं।

भावपूजा के छह प्रवृत्तिरूप होते हैं—(1) शुद्ध आत्मा, (2) तीन प्रदक्षिणा, (3) कायोत्सर्ग (खड़े होकर चारों दिशाओं में नव-नव बार नमस्कार मन्त्र पढ़ना), (4) तीन निषद्या (बैठकर आलोचना करना), (5) चार शिरोनति (प्रत्येक दिशा में एक-एक नमस्कार करना), (6) आवर्त—(प्रत्येक दिशा में तीन-तीन आवर्त करना)—ये छह कृतिकर्म (पूजा के भावरूप अंग) भी कहे जाते हैं। इन पद्धतियों से मन तथा इन्द्रियों का वशीकरण, आत्मशुद्धि, आसन लगाने में दृढ़ता और ध्यान में दृढ़ता होती है। इसी विषय को आर्यिका श्रीविमलमति माता जी ने अपने संग्रहग्रन्थ में कहा है :

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादशचत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम् ॥[1]

प्राचीनकाल में द्रव्य पूजा की छह पद्धति देखी जाती थी जो शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं—(1) प्रस्तावना—जिनेन्द्रदेव का गुणानुवाद करते हुए अभिषेक विधि करने की प्रस्तावना करना प्रस्तावना है। इसी को प्रारम्भिक क्रिया का संकल्प करना कहते हैं। (2) पुराकर्म—सिंहासन के चारों कोणों पर जल से भरे हुए चार कलशों की स्थापना करना। (3) स्थापना—पूजा शास्त्र विधि के अनुकूल सिंहासन पर श्री जिनेन्द्रदेव को स्थापित करना। (4) सन्निधापन—ये साक्षात् जिनेन्द्रदेव हैं, यह सिंहासन मेरुपर्वत है, जलपूर्ण ये कलश क्षीरसमुद्र के जल से पूर्ण हैं, हम इन्द्र हैं

1. देववन्दनादिसंग्रह, सं. आर्यिका विमलमति, प्र.—श्री महावीर जी, सन् 1961, पृ. 1।

जो अभिषेक कर रहे हैं—ऐसा विचार करना सन्निधापन है। (5) अभिषेकपूर्वक जिनेन्द्रदेव के गुणों का वर्णन करते हुए द्रव्य अर्पण करना पूजा है। (6) पूजाफल—आत्मशुद्धि करना, धर्म प्रभावना, लोक-कल्याण की कामना करना पूजाफल है। इनमें से वर्तमान पूजा विधि में कुछ पद्धति मिलती है और कुछ पद्धति नहीं मिलती है। परन्तु जैन पूजा विधि का लक्ष्य समान है, मूल मान्यता एक है। यह विषय अवश्य सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन पूजा पद्धति का, वर्तमान पूजा पद्धति पर अधिक प्रभाव व्याप्त हुआ है। वर्तमान पूजा साहित्य और तदनुसार प्रचलित पूजा पद्धति इसका प्रमाण है। इस प्रकार देव-पूजन की छह पद्धति का वर्णन श्री सोमदेव आचार्य ने यशस्तिलकचम्पू में विस्तार से किया है जिसका उद्धरण :

प्रस्तावना पुराकर्म, स्थापना सन्निधापनम्।
पूजा पूजाफलं चेति, षड्विधं देवसेवनम् ॥[1]

श्रावक धर्म का विवेचन करते हुए उक्त आचार्यप्रवर ने अन्य दृष्टि से भी देवपूजा की छह पद्धतियाँ घोषित की हैं—(1) अभिषेक, (2) पूजन, (3) स्तवन (गुणों का कीर्तन), (4) शुद्धमन्त्रों का जाप, (5) शुद्ध ध्यान, (6) श्रुतज्ञान की स्तुति। इसी क्रम से प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव की आराधना करना चाहिए। ये सब आत्म-कल्याण की प्राप्ति के साधन हैं।

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं, जपो ध्यानं श्रुतस्तवः।
षोढा क्रियोदिता सद्भिः देवसेवासु गेहिनाम् ॥[2]

श्री सोमदेव, श्री जयसेन आदि आचार्यों द्वारा प्रसारित जैन पूजा-पद्धति का प्रभाव प्रायः वर्तमान पद्धति में भी देखा जाता है, समय के परिवर्तन के अनुसार समाज के भेद से पूजा-पद्धति में भी भेद देखा जाता है। जैन समाज की प्रमुख तीन परम्पराएँ हैं—(1) दिगम्बर परम्परा (जहाँ सम्पूर्ण परिग्रह आडम्बर त्यागकर दिगम्बर मुद्रा धारण करते हुए मुनिराज मुक्ति की साधना करते हैं)। (2) श्वेताम्बर परम्परा (जहाँ पर साधु श्वेत वस्त्र धारण कर जीवन में आत्मशुद्धि के लिए साधना करते हैं)। (3) स्थानकवासी परम्परा (जहाँ पर साधु श्वेतवस्त्र एवं मुख पर वस्त्र पट्टी धारण कर आत्मशुद्धि के लिए ज्ञान की उपासना करते हैं)। इनमें से श्वेताम्बर परम्परा में पूजा की पद्धति इस प्रकार है—(1) अभिषेक, (2) पूजन, (3) आरती, (4) स्तुति के माध्यम से देवपूजा की जाती है। स्थानकवासी परम्परा में शास्त्रों की आरती तथा स्तुति आदि होती है। यही पूजा की मान्यता है, इस समाज में मूर्ति-पूजा की मान्यता नहीं है।

---

1. श्रावकाचारसंग्रह भाग—1, पृ. 180, श्लोक 495, प्रकाशक—जैनसंस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर (महाराष्ट्र), प्र. संस्करण सन् 1976, सं.—पं. हीरालाल सिद्धान्तालंकार।
2. तथैव, पृ. 229, श्लोक 880।

पूजा साहित्य विकास एवं सर्वतः महत्त्वपूर्ण है, पूजा कर्तव्य साधुवर्ग और श्रावकवर्ग दोनों को परम आवश्यक है। यद्यपि साधुसमाज बाह्य आडम्बर तथा विषय कषायों का त्याग करते हुए आत्मशुद्धि की साधना करता है तथापि उसकी चित्तवृत्ति लौकिक विषयों में दूषित न हो और दैनिक चर्या में दोष उत्पन्न न हों इसलिए साधुवर्ग को भावपूजा कर्तव्य आवश्यक है। गृहस्थों को इस कारण से पूजा कर्तव्य करना अनिवार्य है कि वे दिन-रात्रि राग, द्वेष, मोह आदि से भरे हुए अपने व्यापार कृषि, निर्माण आदि कार्यों में निरत रहते हैं। उन दोषों को दूर करने के लिए एवं आत्मशुद्धि के लिए गृहस्थों को भी दैनिक देवपूजन, दर्शन, स्वाध्याय, संयम आदि षट्कर्म आवश्यक होते हैं।[1] उद्धरण :

"जैनशास्त्रों में सेवा–सत्कार को 'वैयावृत्त्य' कहा जाता है। आचार्य समन्तभद्र (वि. द्वितीय शती) ने पूजा को वैयावृत्त्य कहा है, उन्होंने कहा–"देवाधिदेव जिनेन्द्र के चरणों की परिचर्या अर्थात् सेवा करना ही पूजा है।"

उनकी यह सेवा जल, चन्दन और अक्षत आदि रूप न होकर 'गुणों के अनुसरण' तथा 'प्रणामांजलि' तक ही सीमित थी। किन्तु छठी शती के विद्वान् यतिवृषभ आचार्य ने पूजा में जल, गन्ध, तन्दुल, उत्तम भक्ष्य, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों को भी शामिल किया है।"

"वसुनन्दि श्रावकाचार में भी अष्ट मंगल द्रव्यों का उल्लेख हुआ है। उन्होंने कहा–आठ प्रकार के मंगल द्रव्य और अनेक प्रकार के पूजा के उपकरण–द्रव्य तथा धूपदहन आदि जिनपूजन के लिए वितरण करें।"

चौबीस तीर्थंकरों का श्रेष्ठ विनय के साथ पूजन किया जाता है, जिसके माध्यम से पुण्य भाव की प्राप्ति पापकर्म का बहिष्कार किया जाता है। वह विनयकर्म कहा जाता है। इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि पूजन के जैसे नाम कहे गये हैं वैसे ही उनमें गुण एवं क्रिया देखी जाती है।

पूजा के अंग : वर्तमान में दिगम्बर जैन आम्नाय में पूजन-प्रक्रिया के संक्षेप से पाँच अंग या अवयव माने गये हैं–(1) अभिषेक, (2) स्वस्तिवाचन, (3) पूजाकर्म, (4) शान्तिपाठ, (5) विसर्जनपाठ।

अरिहन्त के गुणों का स्मरण करते हुए शुद्ध जल से साक्षात् तीर्थंकर या उनकी मूर्ति को स्नान कराने की क्रिया को 'अभिषेक' कहते हैं। अभिषेक चार प्रकार के होते हैं–(1) जन्माभिषेक, (2) राज्याभिषेक, (3) दीक्षाभिषेक, (4) प्रतिमाभिषेक। साक्षात् तीर्थंकर के आदि के तीन अभिषेक होते हैं, चतुर्थ अभिषेक उनकी प्रतिष्ठित शुद्ध प्रतिमा का होता है। वर्तमान काल में यह अभिषेक अर्हन्तदेव की प्रतिष्ठित शुद्ध प्रतिमा का ही होता है। परन्तु वह अभिषेक उनके गुण स्मरणपूर्वक प्राचीन

1. डॉ. प्रेमसागर जैन : जैनभक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1963, पृ. 24।

जन्माभिषेक का स्मरण करते हुए होता है। चतुर्थ प्रतिमाभिषेक के समर्थन में संस्कृत अभिषेक पाठ का एक श्लोक प्रमाणित किया जाता है :

यं पाण्डुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि।
कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः सम्भावयामि पुर एव तदीयबिम्बम् ॥[1]

ईस्वी बारहवीं शती के अन्त में आचार्य माघनन्दी कृत संस्कृत अभिषेक पाठ में भी प्रतिमाभिषेक का गुणस्मरण के साथ समर्थन किया गया है। इसमें कुल 21 श्लोक हैं। इस विषय के कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं :

श्रीमन्नतामरशिरस्तटरत्नदीप्तितोयावभासिचरणाम्बुजयुग्मीशम्।
अर्हन्तमुन्नतपदप्रदमाभिनम्य, त्वन्मूर्तिषूद्यदभिषेकविधिं करिष्ये ॥[1]
याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमाः जिनस्य, संस्नापयन्ति पुरुहूतमुखादयस्ताः।
सद्भावलब्धिसमयादिनिमित्तयोगात्तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि ॥

प्राचीनकाल में इन्द्रों और देवों ने उन अरिहन्त भगवान् की साक्षात् प्रतिमा तथा कृत्रिम (रचित = बनायी गयी) प्रतिमाओं का अभिषेक किया है। शुद्ध भावों की प्राप्ति के लिए शुभ समय का निमित्त प्राप्तकर उन अरिहन्तदेव की प्रतिमा के विषय में ही निर्मलबुद्धि से हम इस प्रकार पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।

अभिषेक का प्रयोजन

हे जिनेन्द्रदेव! कर्मबन्धरूप बेड़ियों से हीन, न्याय नीति के लिए तत्त्व (सिद्धान्त) के प्रणेता, श्रेष्ठ ऋषभदेव को शुद्धस्वरूप जानकर भी, हम अपने पापकर्म समूह को समूल नष्ट करने के लिए शुद्ध जल के द्वारा आपका अभिषेक करते हैं। यह उक्त अभिषेक पाठ के 11वें श्लोक का तात्पर्य है। इसके आगे कहा गया है कि पूर्वकाल में जिन अरहन्त भगवान् का देवेन्द्रों ने अभिषेक किया था उनका हम भक्तिपूर्वक अभिषेक करते हैं। जिस अभिषेक के जल की एक बिन्दु भी मुक्तिरूप लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए निमित्त कारण होती है, यह मुक्तिप्राप्ति ही अभिषेक (पूजन के अंग) का चरम प्रयोजन है। जिनका अभिषेक किया गया है वे अर्हन्त भगवान् लोक में सतत शान्ति करनेवाले हों।

अभिषेक के पश्चात् सिंहासन पर विराजमान कर अर्हन्त परमात्मा का हम अष्ट द्रव्यों से, जन्म-जरा-मरण के दुःखों को विनष्ट करने के लिए पूजन करते हैं। हे भगवन्! आपके गन्धोदक के स्पर्श से हमारे दुष्कर्मों का समूह दूर हो और

---

1. जिनेन्द्रपूजनमणिमाला, प्र.--मिश्रीलाल दयाचन्द जैन करैरा (शिवपुरी म. प्र.), पृ. 100, प्र. सं.।
2. मन्दिरवेदीप्रतिष्ठाकलशारोहणविधि—पृ. 33, श्लोक 1-2, सं. प्रथम, प्र.—श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, सं. पं. पन्नालाल सा.।

भवभ्रमण का सन्ताप नष्ट होकर आत्मा में शान्ति-लाभ हो।

हे भगवन्! आपके अभिषेक का पवित्र जल पुण्य रूप अंकुर का उत्पादक है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपलता की वृद्धि को करनेवाला है, कीर्ति, लक्ष्मी और विजय का साधक है।

हे भगवन्! आपके अभिषेक तथा अर्चन से हमारा मानव जन्म सफल हो गया, पापकर्म पृथक् हुए और हम पवित्र हो गये।

अन्य जैन आचार्यों द्वारा प्रणीत, संस्कृत बीस श्लोकों से शोभित अभिषेक पाठ में भी अभिषेक करने का प्रयोजन दर्शाया गया है। श्लोक सं. 12 का तात्पर्य है—दूर से ही भक्ति के साथ विनम्र देवेन्द्रों के मुकुटों में जड़ित रत्नों के किरण समूह से जिनके चरण शोभित हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेव के चरणों का प्रस्वेद (पसीना), सन्ताप (गर्मी) एवं धूलि आदि मैल से रहित होने पर भी हम भक्ति (गुणानुराग) से, शुद्ध जल के द्वारा अभिषेक करते हैं। श्लोक सं. 19 का सारांश है—मान लो कि भक्त प्राणियों के शत-शत (सैकड़ों) मनोरथों के समान जलपूर्ण एक सौ आठ अथवा एक हज़ार आठ कलशों के द्वारा, इस विशाल संसार-सागर को पार करने के लिए पुल की तरह अर्हन्त भगवान् का भक्तिपूर्वक अभिषेक करते हैं। अर्थात् संसार-सागर को पार करने के लिए हम अभिषेक करते हैं।

अभिषेक पाठ के श्लोकों के उक्त सारांशों से यह सिद्ध हो जाता है कि अर्हन्तदेव का अभिषेक केवल शिर से जल ढालने की क्रिया नहीं है अपितु आत्म-कल्याण के लिए, भावों की विशुद्धि के लिए, परमात्मा के गुणस्मरण के लिए और पंचकल्याणकों के स्मरण के लिए विधिपूर्वक विनय के साथ एक अभिषेक क्रिया है जो कि एक प्रकार की अर्चा है एवं पूजन का आवश्यक अंग है। अभिषेक करते समय एक श्लोक में यह प्रयोजन भी दर्शाया गया है—भक्त मानवों के अभीष्ट सैकड़ों मनोरथों के समान जलपूर्ण अवशिष्ट सम्पूर्ण एक सौ आठ सुवर्णकलशों के द्वारा, संसाररूप समुद्र को उल्लंघन करने का कारण एक पुलरूपी त्रिलोकपति जिनेन्द्रदेव का मैं अभिषेक करता हूँ। इस भावपूर्ण श्लोक का उद्धरण :

"इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां, पूर्णैः सुवर्णकलशैः निखिलैः वसानैः।
संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्लावयेऽत्रिभुवनैकपतिं जिनेन्द्रम् ॥"

इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द और रूपकालंकार एवं उपमालंकार का सुन्दर शैली में प्रयोग किया गया है। इससे अभिषेक का एक प्रयोजन यह भी सिद्ध हो जाता है कि दुःखरूप संसार-सागर को पार करने के लिए ही अरिहन्त भगवान का अभिषेक किया जाता है। कारण कि अरिहन्तदेव का पुरुषार्थ सम्पूर्ण संसार-सागर को पार कर परमसिद्ध परमात्मा बन जाने का है।

साक्षात् अरिहन्तदेव का अभिषेक एक स्वाभाविक नैतिक नियोग है जिसका

बहिष्कार नहीं किया जा सकता है। अरहन्तदेव का अभिषेक प्रस्वेद (पसीना), सन्ताप और मैल को दूर करने के लिए नहीं किया जाता है, कारण कि उनके परम औदारिक शरीर में पसीना, उष्णता एवं किसी भी प्रकार का मैल या मल नहीं होता, यह एक अतिशय है। अतः साक्षात् अरिहन्तदेव का इन्द्रों द्वारा अभिषेक स्वाभाविक नियोग है जो पूजन का एक आवश्यक अंग है। इसी तात्पर्य को व्यक्त करनेवाला प्राचीन आचार्य द्वारा विरचित एक श्लोक अभिषेक पाठ के अन्तर्गत है :

> दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटी-संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिम् ।
> प्रस्वेद-ताप-मलमुक्तमपिप्रकृष्टैः भक्त्याजलैः जिनपतिं बहुधाभिषिं चे ॥

इस प्रकार पूजा, विधान और प्रतिष्ठा ग्रन्थों के प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि अभिषेक एक आवश्यक क्रिया और पूजन का अंग है।

अभिषेक की आवश्यकता और उपयोगिता का कथन करने के बाद अब अभिषेक एवं पूजन की सामान्य सामग्री का उल्लेख करते हैं :

मन्दिर, प्रतिष्ठित मूर्ति, वेदिका, चौकला, चटाई, सम्पूर्ण बर्तन, अष्टद्रव्य, सिंहासन, सिद्धयन्त्र, ठौना, अभिषेक की थाली, अष्टद्रव्य की थाली, द्रव्य अर्पण करने की थाली, घिसी हुई केसर, मंगलकलश, अभिषेक कलश, वस्त्रखण्ड, स्नानकर शुद्ध धोती-दुपट्टा का धारण करना पूजक को आवश्यक है, शुद्ध वस्त्र से जल छानकर पवित्र अग्नि से गरम करना, कुएँ का जल इत्यादि।

अभिषेक की विशेष विधि

वि. सं. की 13वीं शती में श्री माघनन्दी आचार्य ने पूजाकर्म के प्रथम अंग की क्रमशः विधि का निर्देश किया है जो इस प्रकार है[1] :

श्रीमन्नतामर–इत्यादि पूर्वोक्त प्रथम श्लोक पढ़कर कायोत्सर्गासन में नव बार नमस्कार मन्त्र पढ़ना चाहिए एवं नमस्कार करना चाहिए। द्वितीय तथा तृतीय श्लोक पढ़कर थाली में पुष्पांजलि छोड़ना चाहिए। चतुर्थ श्लोक पढ़कर अभिषेक की थाली में श्रीः एवं स्वास्तिक लिखना चाहिए। पंचम श्लोक पढ़कर थाली को उच्चासन पर स्थापित करें। षष्ठ एवं सप्तम श्लोक पढ़कर अभिषेक थाली में श्री प्रतिमा को विराजमान करें। अष्टम-नवम श्लोक पढ़कर थाली के चारों कोणों में चार जलपूर्ण कलश रखें। दशम श्लोक पढ़कर जिनदेव के लिए अर्घ (8 द्रव्यों का समूह) अर्पित करें। ग्यारहवाँ श्लोक तथा मन्त्र पढ़कर जिनदेव पर प्रथम जलधारा दें बारहवाँ श्लोक तथा मन्त्र पढ़कर निरन्तर 108 जलधारा देव प्रतिमा पर छोड़ें। अभिषेक के समय पर जय ध्वनि तथा घण्टाध्वनि की जाए। तेरहवाँ श्लोक पढ़कर मन्त्र के साथ

---

1. मन्दिरवेदीप्रतिष्ठाकलशारोहणविधि, पृ. 33 से 38 तक, सं. प्र., प्रका.–श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी। सम्पा. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य।

अन्तिम जलधारा प्रतिमा पर दें। चौदहवाँ श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर अर्धद्रव्य का समर्पण करे। पन्द्रहवाँ श्लोक पढ़कर थाली में पुष्प-समर्पण करे। इसके पश्चात् पास में एक थाली रखकर उसमें यन्त्र (गुणों का रेखाचित्र) स्थापित करें, उस यन्त्र पर, विश्व शान्ति की कामना से, शान्ति धारा पाठ पढ़ते हुए कलश रूप से अखण्ड धारा देना चाहिए, जनता को करबद्ध खड़े होकर विश्वशान्ति की भावना करनी चाहिए, इस समय वाद्यध्वनि, करध्वनि, जयध्वनि तथा घण्टाध्वनि नहीं होनी चाहिए। शान्तिधारा के पूर्ण होने पर अर्घ अर्पण करना तथा जयध्वनि करना।

सोलहवाँ श्लोक तथा मन्त्र पढ़कर स्वच्छ श्वेत वस्त्र से श्रीप्रतिमा का मार्जन करना, यन्त्र का मार्जन करना।

सत्रहवाँ श्लोक पढ़कर श्रीप्रतिमा तथा यन्त्र को सिंहासनों पर पृथक्-पृथक् स्थापित करना चाहिए। अठारहवाँ श्लोक एवं मन्त्र पढ़कर श्रीप्रतिमा तथा यन्त्र को अर्घसमर्पण करना चाहिए और घृतदीपक से आरती करना, उन्नीसवाँ तथा बीसवाँ श्लोक पढ़कर अभिषेकजल (गन्धोदक) को मस्तक पर लगाना चाहिए। इक्कीसवाँ श्लोक पढ़कर थाली में पुष्प छोड़े।

ग्यारहवें श्लोकपाठ के पश्चात् प्रथम जलधारा के समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह इस प्रकार है :

> ओं नमः सिद्धेभ्यः। अथ मध्यलोकेऽस्मिन् आर्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतवर्षे मध्यप्रदेशे सागर मण्डलान्तर्गत सागरनगरे श्रीबाहुबलि दि. जैनमन्दिरे, 2510, श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सरे, 2041 विक्रमाब्दे, ज्येष्ठमासे शुक्ल पक्षे, पूर्णमासीतिथौ बुधवासरे प्रातःकाले शुभमुहूर्ते, श्रीमतः भगवतः श्रीऋषभादि महावीरान्ततीर्थंकरपरमदेवान्, पूजकश्रोतृगणतापसार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं शुद्धजलेन अभिषिंचे ॥

इस मन्त्र के पढ़ने में आराधक को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के विषय में तथा अभिषेक के लक्ष्य में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है, इसके बिना मन्त्र अशुद्ध हो जाता है। इस मन्त्र के ज्ञान से दैनिक व्यवहार में भी दक्षता प्राप्त होती है।

उक्त संस्कृत अभिषेक में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति अलंकारों से शोभित, वसन्ततिलका शिखरिणी आदि छन्दों में निबद्ध रम्य श्लोकों के द्वारा शान्तरस एवं वात्सल्यभाव की धारा प्रवाहित होती है। यह प्रथम संस्कृत अभिषेक पाठ की रूपरेखा है।

अब श्री अभयनन्दी आचार्य द्वारा सम्पादित द्वितीय संस्कृत अभिषेक पाठ की रूपरेखा प्रकाशित की जाती है—सर्वप्रथम इस पाठ का मंगलाचरण इस प्रकार है :

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्यजगत्त्रयेशं, स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुः, जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥[1]

इस श्लोक को पढ़कर जिनदेव के आगे पुष्पांजलि क्षेपण करें।

दूसरे श्लोक को पढ़कर माला, सूत्र, यज्ञोपवीत आदि को धारण करें।

तीसरे श्लोक को पढ़कर मस्तक आदि नवस्थानों पर चन्दन का तिलक करें।

चतुर्थ श्लोक को पढ़कर नागसन्तर्पणपूर्वक भूमि का सिंचन करें।

पंचम श्लोक पढ़कर सिंहासन को स्थापित कर उसका प्रक्षालन करें।

छठवें श्लोक को पढ़कर सिंहासन पर केसर से श्रीवर्ण लिखें।

सातवें श्लोक को पढ़कर दशमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करते हुए, पूर्व आदि दशों दिशाओं में स्थापित दशदिक्पालों को अर्घ्य प्रदान करें।

आठवें श्लोक को पढ़कर, पात्र में रखे हुए दीप आदि से जिनदेव की आरती करें।

नौवें श्लोक को पढ़कर सिंहासन पर प्रतिमा को स्थापित कर पुष्पादि क्षेपण करें।

दशवें श्लोक को पढ़कर सिंहासन के चारों कोणों पर सुसज्जित चार कलश रखें।

ग्यारहवें श्लोक को पढ़कर अर्हन्तदेव के लिए अर्घ्य समर्पण करें।

बारहवें श्लोक को पढ़ने के पश्चात् पूर्वोक्त "ओं नमः सिद्धेभ्यः। अथमध्यलोके" इत्यादि मन्त्र कहते हुए जिन प्रतिमा पर कलश से जलधारा छोड़ें तथा मन्त्र को कहते हुए अर्घ्य का अर्पण करें।

तेरहवें श्लोक को पढ़ते हुए प्रतिमा पर घृत की धारा दें और अर्घ्य चढ़ाएँ।

चौदहवें श्लोक को पढ़कर जिन प्रतिमा पर शुद्ध दुग्ध की धारा दें और अर्घ्य चढ़ाएँ।

पन्द्रहवें श्लोक को पढ़कर जिनदेव पर शुद्ध दही की धारा दें, एवं अर्घ्य चढ़ाएँ।

सोलहवें श्लोक को पढ़ते हुए अर्हन्तदेव पर शुद्ध इक्षुरस की धारा छोड़ें, अर्घ्य चढ़ाएँ।

सत्रहवें श्लोक को पढ़कर प्रतिमा पर सर्वौषधि जल की धारा छोड़ें, एवं अर्घ्य अर्पण करें।

अठारहवें श्लोक को पढ़कर प्रतिमा पर सुगन्ध जल की धारा छोड़ें, अर्घ्य समर्पण करें।

---

1. ज्ञानपीठपूजांजलि–सम्पादक–पं. फूलचन्द सि. शा., डॉ. उपाध्ये, प्रका.–भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तृ. सं. पृष्ठ 13 से 25 तक।

उन्नीसवें श्लोक को पढ़कर शेष जलकलशों से प्रतिमा का अभिषेक करें और निम्नलिखित श्लोक पढ़कर अर्घ्य का समर्पण करें। अर्घ्य का श्लोक :

> उदकचन्दनतण्डुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घ्यकैः।
> धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥
> ओं ह्रीं अर्हन्तसिद्धप्रभृतिनवदेवेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बीसवें श्लोक को पढ़कर गन्धोदक को मस्तक पर लगाएँ।

उपरिकथित संस्कृत अभिषेक पाठ का दूसरा श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित एवं रूपकालंकार से शोभित है। ग्यारहवाँ श्लोक स्रग्धरावृत्त में रचित परिकर अलंकार से सुन्दर है। बीसवाँ श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों से परिपूर्ण है। शेष सत्रह श्लोक वसन्ततिलका,छन्द में रचित, रूपक, उपमा उत्प्रेक्षा अलंकारों से अलंकृत हैं।

अथ श्री हरजसरायकविकृत हिन्दी जलाभिषेक पाठ की रूपरेखा[1]—

> जय जय भगवन्ते सदा, मंगल मूल महान।
> वीतराग सर्वज्ञप्रभु, नमौं जोरि जुगपान ॥

यह मंगलाचरण कहकर मंगलपुष्प थाली में क्षेपें।

इसके पश्चात् कवि ने अडिल्ल तथा गीताछन्द को मिलाकर एक संयुक्तछन्द में नवकाव्यों की रचना की है। अन्त में एक दोहा की रचना की है इन छन्दों में भक्तिरस की पुट और अलंकारों की छटा है। इस अभिषेक पाठ को भक्तिपूर्वक बोलते हुए प्रतिमा पर जलधारा छोड़ते जाना चाहिए। पश्चात् शुद्ध वस्त्र से मार्जन कर प्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करना चाहिए।

इस प्रकार अभिषेक एक प्रयोजनभूत क्रिया, पूर्वाचार्य परम्परा से प्रसिद्ध है। उसको काल्पनिक तथा निष्फल नहीं कहा जा सकता है। सोमप्रभ आचार्य ने सूक्ति मुक्तावली पुस्तक में मानव जन्म रूपी वृक्ष के छह फल कहे हैं। वे इस प्रकार हैं— (1) जिनेन्द्रदेव पूजन, (2) गुरु भक्ति, (3) जीवदया, (4) श्रेष्ठपात्रों को दान करना, (5) गुणों में अनुराग (श्रद्धा), (6) शास्त्रस्वाध्याय। इनमें अभिषेक आदि के सहित सांगोपांग पूजन को मानव का धार्मिक कर्तव्य कहा गया है।

जैसे मानव को स्नान के बाद देवदर्शन तथा भोजन उपयोगी है उसी प्रकार जिनदेव का अभिषेक के बाद पूजन, शान्ति, विसर्जन करना उपयोगी है, अतः यह एक नैतिक क्रिया भी है।

जिस प्रकार गृह (घर) पर आये हुए अतिथि को, पहले स्नान कराते हैं अथवा हाथ-पैरों का प्रक्षालन कराते हैं, पश्चात् भोजन कराते हैं उसी प्रकार हृदय में आये

1. बृहत् महावीरकीर्तन, पृ. 35 से 37 तक।

हुए महान् पूज्य अतिथि जिनदेव का पहले अभिषेक करते हैं, पश्चात् पूजन विधान करते हैं।

जिस प्रकार किसी राजपुत्र का प्रथम अभिषेक किया जाता है पश्चात् तिलककरण, राज्य प्रदान आदि रूप से उसका आदर-सत्कार होता है, उसी प्रकार त्रिलोक के राजपुत्र अर्हन्तदेव का प्रथम अभिषेक होता है, पश्चात् पूजा (सत्कार) होता है इत्यादि हेतु एवं युक्तियों से अभिषेक एक वैज्ञानिक क्रिया भी सिद्ध होती है। इस क्रिया में एक वैज्ञानिक युक्ति यह भी है कि अभिषेक से प्रतिमा की मलिनता दूर होने से द्रव्यशुद्धि (बाह्य शुद्धि) और हम पूजकों की भावशुद्धि होती है इसलिए अभिषेक द्रव्यशुद्धि एवं भावशुद्धि का निमित्त कारण है, इसको प्रयोजन शून्य नहीं कहा जा सकता है।

आचार्य पूज्यपाद ने संस्कृत भक्तियों में और श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने दश प्राकृत भक्तियों में नन्दीश्वर भक्ति का निर्देश किया है। उसके अन्त में प्राकृत आलोचनारूप गद्यपाठ में अभिषेक तथा अष्टद्रव्यों से पूजन का विधान है, तद्यथा :

"दिव्वेहिं वासेहिं, दिव्वेहिं ण्हाणेहि आसाढ कत्तियफागुण मासाणं... इत्यादि[1]।"

सारांश—चारों प्रकार के देव नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालय में स्थित प्रतिमाओं का, कार्तिक-फाल्गुन और आषाढ़ मास के अन्तिम आठ दिनों में, दिव्य अभिषेक के द्वारा तथा दिव्यगन्ध आदि द्रव्यों के द्वारा पूजन करते हैं वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, और भावना करते हैं कि हे भगवन्! दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो और गुणसम्पत्ति प्राप्त हो।

भेदेनवर्णना का, सौधर्मः स्नपनकर्तृतामापन्नः।
परिचारकभावमिताः, शेषेन्द्राश्चन्द्रनिर्मलयशसः ॥[2]

सारांश—नन्दीश्वर द्वीप का विशेष वर्णन क्या किया जाए, संक्षेप से यही कहा जा सकता है कि सौधर्म स्वर्ग का प्रधान इन्द्र स्वयं नन्दीश्वर द्वीप की प्रतिमाओं का अभिषेक करता है, शेष स्वर्गों के यशस्वी इन्द्र, उस प्रधान इन्द्र के परिचारक बनकर अभिषेक में सहयोग करते हैं।

'त्रिलोकसार' में श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने अकृत्रिमजिन चैत्यालयों का वर्णन करते हुए कहा है :

---

1. धर्मध्यानदीपक, पृष्ठ 194 सम्पा. श्री अजितसागर जी महाराज, प्रका. श्रीमहावीर जी प्र. संस्करण।
2. धर्मध्यानदीपक, पृ. 188।

वंदणभिसेयणच्चन संगीयघलोय मंडवेहि जुदा।
कीणणगुणणगिहेहियं विसाल वर पट्ट सालेहिं ॥[1]

सारांश—उन अकृत्रिम चैत्यालयों में वन्दना, अभिषेक, नृत्य संगीत सर्वदा होते रहते हैं जिनके विशाल मण्डपों में बैठकर देव तथा विद्याधर भक्तिपूर्ण देवदर्शन करते हैं। इन प्रमाणों से अभिषेक विधि सर्वथा सार्थक सिद्ध होती है। वह पूजन के पूर्व अत्यावश्यक है। यह विधि आधुनिक ही नहीं किन्तु अतिप्राचीन एवं अनादि है, यह अभिषेकविधि नकल नहीं, अपितु मौलिक विधि है।

स्वस्तिवाचन (मंगलपाठ)

पूजा प्रक्रिया का दूसरा अंग स्वस्तिवाचन या मंगलपाठ है। जिस प्रकार विघ्नशान्ति, कार्यसिद्धि आदि के लिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण किया जाता है, उसी प्रकार पूजन के प्रारम्भ में स्वस्तिवाचन या मंगलपाठ एक मंगलाचरण है जो विघ्नशान्ति, इष्टसिद्धि, कृतज्ञता और शिष्टाचार पालन के लिए किया जाता है, गुणों की प्राप्ति तथा भक्ति से शक्ति प्राप्त करना भी इसका प्रमुख प्रयोजन है।

जैनदर्शन में पूजन के प्रारम्भ में मंगलपाठ एवं स्वस्तिवाचन की प्रक्रिया इस प्रकार है :

अभिषेक के बाद सम्पूर्ण द्रव्यों को पात्रों में व्यवस्थित कर लेना चाहिए, पश्चात् मंगल पाठ प्रारम्भ करें :

> जय श्री ओं नमः सिद्धेभ्यः, जय श्री ओं नमः सिद्धेभ्यः, जय श्री ओं नमः सिद्धेभ्यः !!! ओं जय जय जय, नमोस्तु! नमोस्तु!!! नमोस्तु!!! णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। ओं ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः, पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

यह कहकर उच्चपात्र में पुष्प (पीले-चावल) क्षेपण करें।

> चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
> चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ओं नमो अर्हतेस्वाहा, पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

---

1. त्रिलोकसार (नर तिर्यक्लोकाधिकार) गाथा 1009 सं. विशुद्धमतीमाता जी : प्र. दि. जैन ग्रन्थ संस्थान महावीरजी (राज.) 1975।

(अरिहन्तों को नमस्कार है—पुष्पांजलि समर्पण करना चाहिए)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत् पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥

अपराजितमन्त्रोयं, सर्वविघ्नविनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ॥

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्‌बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥[1]

पुष्पांजलिं क्षिपामि

द्रुतविलम्बित छन्द

उदकचन्दनतण्डुलपुष्पकैः, चरुसुदीपसुधूपफलार्घ्यकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥[2]

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अनन्त ज्ञान आदि चार गुण, समवसरण और सिंहासन आदि आठ प्रातिहार्यरूप लक्ष्मी से विभूषित जिनेन्द्रदेव के एक हज़ार आठ नामों के लिए हम अर्घ्यद्रव्य समर्पण करते हैं।

पूजन की प्रतिज्ञा (वसन्ततिलका छन्द)

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्यजगत्त्रयेशं, स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघसुदृशांसुकृतैकहेतुः, जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 29।
2. तथैव, पृ. 29।

वसन्ततिलकाछन्द

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्वस्तिस्वभावमहिमोदयसुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥
स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्तित्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्यवल्गन्, भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञं ॥
अर्हन् पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद् विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥[1]

द्वितीय—स्वस्तिवाचन

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री सम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः ॥
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः ॥
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्री श्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः ॥
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिः ॥
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः ॥
श्री नमिनाथः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः।
श्री पार्श्वनाथः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमानः ॥[2]

इस स्वस्तिवाचन (मंगलपाठ) को बोलते हुए हम पुष्पांजलि क्षेपण करते हैं। इसके पश्चात् परमऋषियों के तृतीय स्वस्तिवाचन के दशपद्यों को मंगलपुष्पों को छोड़ते हुए पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार पूजन के प्रारम्भ में स्वस्तिवाचन तथा मंगलपाठ पढ़ना अनिवार्य है इससे आत्माशुद्धि के साथ विश्व के लिए मंगलकामना की जाती है, इस पाठ से कृतज्ञता का भाव प्रकाशित होता है।

इस सम्पूर्ण स्वस्तिवाचन से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा या परमेष्ठी का

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 31।
2. तथैव, पृ. 33।

पूजन करने के पहले मानस में पूजा कर्तव्य की तत्परता अवश्य होनी चाहिए। भावपूर्वक द्रव्यपूजा करने में ही सफलता प्राप्त होती है।

पूजाकर्म (संस्कृत)

पूजन प्रक्रिया का तृतीय अंग पूजाकर्म कहा जाता है। यह गृहस्थ के दैनिक षट्कर्तव्यों में प्रथम कर्तव्य है। श्री आचार्य समन्तभद्र ने पूजाकर्म को, श्रावक के बारह व्रतों में से अतिथि संविभाग नामक बारहवें व्रत में प्रदर्शित किया है। इसलिए इसकी विधि अतिथिसंविभाग व्रत के समान है। पूजा के प्रारम्भ में इसी कारण से सबसे प्रथम आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण– ये तीन क्रिया की जाती हैं जो धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक हैं।

लोक-व्यवहार में यह देखा जाता है कि जब किसी व्यक्ति के घर पर कोई अतिथि (पाहुना) आता है तब गृहनिवासी व्यक्ति अतिथि महोदय को देखकर आदर के रूप में यह कहता है कि आइए! आइए!! श्रीमन्! घर में आ जाने पर वह अतिथि से कहता है—बैठिए! बैठिए श्रीमन्! जब वह अतिथि घर में बैठ जाता है तब वह अतिथि के पास बैठकर कुशलवृत्त पूछता है, इसके बाद नाश्ता या भोजन कराता है। इस अतिथि-सत्कार की विधि से अतिथि महोदय को प्रसन्नता होती है और गृहस्वामी को भी प्रसन्नता होती है। इस लोक-व्यवहार के समान धार्मिक पूजनक्रिया में भी यही वृत्त देखा जाता है, कारण कि जिनेन्द्र अर्हन्तदेव एक महान् पूज्य श्रेष्ठ अतिथि हैं, उनको जब हम अपने मन-मन्दिर में आमन्त्रित कर सत्कार करते हैं तब इस अतिथि-सत्कार की विधि से ही अर्हन्तदेव की पूजा बन जाती है, वह महान् अतिथि-सत्कार की विधि इस प्रकार है–(1) ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र, अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वान, अर्थात्–हे महावीर जिनदेव, इस मन-मन्दिर में पधारिए! पधारिए!!, संवौषट् यह अव्यय देवताओं के आमन्त्रण में प्रयुक्त होता है। आह्वान का अर्थ होता है आमन्त्रण या बुलाना। (2) जब भगवान महावीर मन-मन्दिर में आ गये, तब भक्त कहता है—ओं ह्रीं महावीर जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ इति स्थापनं, अर्थात्—हे महावीर जिनेन्द्र! इस मन-मन्दिर में आप बैठ जाइए। इसको ही स्थापना कहते हैं। (3) स्थापना करने के बाद भक्त भगवान् से कहता है–ओं ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्! अर्थात् हे महावीर तीर्थंकरदेव इस मन-मन्दिर में आप हमारे निकट हो जाइए, हो जाइए। वषट् यह अव्यय देवों के सम्मान में प्रयुक्त होता है। इस पूज्य अतिथि-सत्कार की विधि के समय पुष्प (पीले चावल), उक्त तीन बार मन्त्र कहकर उच्च स्थान पर स्थापित किये जाते हैं, यह निराकार स्थापना की विधि है।

किसी योग्य वस्तु में 'यह वही है' इस प्रकार मूल पदार्थ की कल्पना करने को स्थापना कहते हैं, इसके दो प्रकार हैं–(1) साकार स्थापना, (2) निराकार

स्थापना। (1) मूल पदार्थ की तरह आकारवाले पदार्थ में 'यह वही है' इस प्रकार मूल पदार्थ की कल्पना करना साकार स्थापना है, जैसे महावीर की प्रतिमा में महावीर भगवान की स्थापना करना (2) भिन्न आकारवाले पदार्थ में मूल पदार्थ की कल्पना करना निराकार स्थापना है जैसे शतरंज की गोटों में बादशाह, वजीर, बेगम आदि की कल्पना करना अथवा पुष्प में देवों की कल्पना करनी। यहाँ पर आह्वान, स्थापना सन्निधिकरण के समय जो पुष्प उच्च स्थान पर रखे जाते हैं वह निराकार स्थापना है। उन पुष्पों को उच्च स्थान पर रखने का यही ध्येय है कि निराकार स्थापना से देव की पूज्यता का सम्मान करना है इसलिए ही उनको सुरक्षित स्थान पर विसर्जित किया जाता है। जिस देव की पूजा करना हो, उस देव का ही आह्वानन, स्थापन तथा सन्निधीकरण किया जाता है। ऊपर श्री महावीर तीर्थंकर के विषय में तीनों विधियाँ दर्शायी गयी हैं इसी प्रकार अन्य पूज्य देव के विषय में भी समझना चाहिए। आह्वान, स्थापन एवं-सन्निधिकरण के विषय में इतना विशेष और भी जानना चाहिए कि पूज्य परमदेव मन्दिर में या मन-मन्दिर में न आते हैं, न बैठते हैं, न जाते हैं किन्तु मन में स्मरण करना ही आना है, मन की स्थिरता हो बैठना है और स्मरण को समाप्त करना ही देव का विसर्जन करना या जाना है। इस पूजा में विनयपूर्वक ही सब क्रिया की जाती है, महान् पूज्य अतिथि अर्हन्तदेव का गुणकीर्तन पूर्वक आदर किया जाता है इसलिए इस पूजाकर्म को अतिथिसंविभागव्रत के अन्तर्गत कहा गया है। सन्निधिकरण में पूज्य तथा पूजक की निकटता होने पर पूजक, पूज्य के प्रति उनके गुणों को तथा पूजाद्रव्य के वर्णन को करता हुआ पूजा कर्तव्य को आठ द्रव्यों के अर्पण के साथ सम्पन्न करता है। यही क्रम समस्त पूजाकर्म में समझना चाहिए।

संस्कृत-प्राकृत भाषा में संयुक्त पूजन

पूजाकर्म का सर्वत्र यह नियम है कि पहले पुष्पक्षेपणपूर्वक आह्वान, स्थापना और सन्निधिकरण होता है, पश्चात् छन्द एवं मन्त्र का उच्चारणपूर्वक क्रमशः जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल—ये 8 द्रव्य अर्पित किये जाते हैं, इसके बाद आठ द्रव्यों का समूह रूप अर्घ्य और अन्त में जयमाला के बाद अर्घ्य अर्पित किया जाता है, सबसे अन्त में छन्द पढ़ते हुए आशीर्वाद पुष्प अर्पित किये जाते हैं।

सबसे प्रथम संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में देवशास्त्रगुरु महापूजा देखी जाती है जिसका प्रथम श्लोक स्रग्धराछन्द में, द्वितीय श्लोक हरिणीप्लुता छन्द में, तृतीयश्लोक शार्दूलविक्रीडितछन्द में, चतुर्थ श्लोक अनुष्टुप् छन्द में, पंचम श्लोक से तेरहवें श्लोक तक नौ श्लोक उपजाति छन्द में, चौदहवां काव्य शार्दूलविक्रीडितछन्द में, पन्द्रहवें काव्य से तेईसवें श्लोक तक नौ श्लोक अनुष्टुप छन्द में रचित हैं। कुल 23 श्लोक हैं। इनमें से भगवती सरस्वती (जिनवाणी) के आह्वान, स्थापन,

सन्निधिकरण का तृतीय श्लोक उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है जो भक्तिरस एवं अलंकार से अलंकृत है।

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पादपंकेरुह।
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि माम्
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं सम्पूजयामोऽधुना ॥[1]

इस श्लोक में रूपकालंकार तथा उपमालंकार की पुट देकर भक्तिरस को प्रवाहित किया गया है।

जिस मनोहर श्लोक को पढ़कर अक्षतद्रव्य (अखण्डधावल) अर्पित किया जाता है उस श्लोक को गम्भीर अर्थ के साथ अनुभव में लाएँ :

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या।
दीर्घाक्षतांगैः धवलाक्षतोघैः, जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेहम् ॥

पूजन पाठ द्रव्यों से किया गया है, आशीर्वाद पुष्पांजलि के बाद अर्हन्तदेव के गुणों का कीर्तन करनेवाली प्राकृत जयमाला है जिसमें आठ छन्द शोभित हैं। उनमें से प्रथम पद्य को भावसौन्दर्य के साथ देखिए :

वत्ताणुट्ठाणें जणु धणदाणें पइं पोसिउ तुहुं खत्तधरु।
तवचरणविहाणें केवलणाणें तुहुं परमप्पउ परमपरु ॥

इस गाथा में तीर्थंकर ऋषभदेव की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। उन्होंने छह धार्मिक तथा कृषि आदि छह लौकिक कर्मों का उपदेश दिया। बहत्तर कलाओं का आविष्कार किया। राज्य संचालन किया। बाद में दीक्षा लेकर तप किया और परमात्मपद को प्राप्त किया।

देव की जयमाला के बाद शास्त्र (सरस्वती) की जयमाला भी प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इसमें श्रुतज्ञान के अंग तथा अनुयोगों का वर्णन है। इसमें तेरह सुन्दर गाथाएँ हैं। उदाहरणार्थ इस जयमाला की प्रथम गाथा भावसौन्दर्य के साथ उद्धृत की जाती है :

खंपइसुहकारण कम्मवियारण, भवसमुद्द तारणतरणं।
जिनवाणि णमस्समि सत्ति पयासमि, सग्ग मोक्खसंगमकरणं ॥

जिनवाणी की जयमाला के पश्चात् कवि ने सद्गुरु की जयमाला को भी प्राकृत भाषा में निबद्ध किया है। इसकी तेरह गाथाओं में आचार्य, उपाध्याय साधु के गुणों का वर्णन किया गया है। श्रेष्ठ गुरुओं का महत्त्व समझने के लिए जयमाला

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि : सम्पा. पं. फूलचन्द्र जी सि. शा., डॉ. उपाध्ये, पृ. 37, प्रका.—भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 1977 ई.।

की 10 वीं गाथा भावसौन्दर्य के साथ प्रस्तुत की जाती है :

गोदूहणि जे वीरा सणिया, जे धणुह-सेज्ज-वज्जासणिया।
जे तवयलेण आयासिजंति, जे गिरिगुहकंदरिविवरिथंति ॥
जे सत्तुमित्त समभावचित्त, ते मुणिवर वंदउ दिढचरित्त।

सारसौन्दर्य—जो साधु सदा गोदोहन आसन, वीरासन, धनुषासन, शय्यासन और वज्रासन से ध्यान लगाते हैं, जो तप के प्रभाव से आकाश में गमन करते हैं और जो पर्वतों की गुफा-कन्दराओं में तथा विवरों में निवास करते हैं, जिनका चित्त शत्रु और मित्र में समान रहता है, चारित्र में स्थिर उन मुनिवरों को हम नमस्कार करते हैं। यहाँ पर साधुओं के परमगुणों का वर्णन होने से श्रेष्ठशान्तरस की पुष्टि होती है। अन्त में तेरहवीं प्राकृतगाथा का सारांश है :

जो तपश्चरण में शूरवीर हैं, संयमधारण करने में धीर हैं, जो मुक्तिवधू के अनुरागी हैं, रत्नत्रय से शोभित हैं, दुष्कर्मों के विनाशक हैं, उन श्रेष्ठमहर्षियों के स्मरण करने में हम सदा उद्यत हैं। यहाँ पर रूपकालंकार (मुक्तिवधू) की पुट से, वियुक्तशृंगाररस, शान्तरस तथा वीररस का अंग बन गया है।

विद्यमानविंशति तीर्थंकर पूजा

इस मध्यलोक के अढ़ाई द्वीप प्रमाण मनुष्यलोक के पाँच विदेह क्षेत्रों में बीस तीर्थंकर सदा विद्यमान रहते हैं। इन तीर्थंकरों की परम्परा अक्षुण्ण रहती है, एक विदेह क्षेत्र में चार तीर्थंकर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होते हैं, इस प्रकार पंचविदेह क्षेत्रों के कुल बीस तीर्थंकर अपने-अपने समवसरण (विशाल सभा) में विश्वधर्म का तीर्थप्रवर्तन करते हैं। बीस तीर्थंकरों के शुभनाम इस तरह हैं—(1) सीमन्धर, (2) युगमन्धर, (3) बाहु, (4) सुबाहु, (5) संजातक, (6) स्वयंप्रभ, (7) ऋषभानन, (8) अनन्तवीर्य, (9) सूरप्रभ, (10) विशालकीर्ति, (11) वज्रधर, (12) चन्द्रानन, (13) भद्रबाहु, (14) भुजंगम, (15) ईश्वर, (16) नेमिप्रभ, (17) वीर सेन, (18) महाभद्र, (19) देवयश, (20) अजितवीर्य।

इस पूजा में इन उक्त 20 तीर्थंकरों का पूजन होता है इसलिए ही इसको 'विद्यमानविंशतितीर्थंकर पूजा' कहते हैं। इस पूजा में स्थापनात्रय का काव्य शालिनी—छन्द में रचित है। दो से लेकर दश तक नवद्रव्यों के श्लोक द्रुत-विलम्बित छन्द में निबद्ध हैं। इस पूजा के जल द्रव्य का श्लोक सं. 2 मनोहर उक्त छन्द, रम्य शब्द एवं अर्थ से विभूषित है। इसको साक्षात् अनुभव में प्राप्त करें :

सुरनदीजलनिर्मलधारया, प्रवरकुंकुमचन्द्रसुसारया।
सकलमंगलवांछितदायकान्, परमविंशतितीर्थपतीन् यजे ॥[1]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 63, श्लोक-2।

अर्थात्—मैं उत्तम केशर और कपूर से सुगन्धित, गंगानदी के जल की निर्मलधारा से, सम्पूर्ण मंगल और इच्छित पदार्थों को देनेवाले महान् बीस तीर्थंकरों की पूजा करता हूँ।

अन्त में प्राकृत जयमाला के छह काव्यों में बीस तीर्थंकरों का वर्णन है।

कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयों का सामूहिक पूजन

इस सामूहिक पूजन में तीन लोक के कृत्रिम (बनाये गये) और अकृत्रिम (मनुष्य तथा देवों के द्वारा नहीं बनाये गये अर्थात् अनादिनिधन) जिन चैत्य (प्रतिमा) तथा चैत्यालयों (मन्दिरों) की अर्चा है, जिसका प्रथम पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित है, द्वितीय पद्य उपजाति छन्द में रचित है, तृतीय पद्य मालिनी छन्द में, चतुर्थ पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में, पंचम पद्य स्रग्धरा छन्द में, छठा पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध है। अन्त में प्राकृत गद्य में कायोत्सर्गविधि अर्थात् खड्गासन होकर नव बार णमोकार मन्त्र पढ़ने की विधि है।

प्रथम पद्य का तात्पर्य इस प्रकार है—तीन लोक के कृत्रिम तथा अकृत्रिम सुन्दर विशाल चैत्यालयों की तथा भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क एवं कल्पवासी देवों के सुन्दर चैत्यालयों की हम सदा वन्दना करते हैं, और दुष्ट अष्ट कर्मों की शान्ति के लिए पवित्र जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप तथा फल के द्वारा उनकी शुद्धभाव से पूजा करते हैं।

संस्कृत पूजा-काव्य में रस छन्द और अलंकार योजना

सिद्धपूजा (द्रव्याष्टक)

इस पूजा-प्रकरण में सिद्ध परमात्मा का अष्टद्रव्यों द्वारा पूजन कहा गया है। इसमें कुल पच्चीस पद्य हैं। प्रथम पद्य, ग्यारहवाँ पद्य, चौदहवाँ पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में, दूसरा तथा तेरहवाँ पद्य अनुष्टुप छन्द में, तीन से दश तक तथा बारहवाँ पद्य वसन्ततिलका छन्द में, पन्द्रह से लेकर चौबीस तक दश पद्य मौक्तिक दामछन्द में, और अन्तिम पच्चीसवाँ पद्य मालिनी छन्द में रचित है। उदाहरणार्थ पद्य सं. 8 और उसका भावसौन्दर्य इस प्रकार है :

आतंकशोकभयरोगमदप्रशान्तं, निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशम्।
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातैः दीपैर्यजेरुचिवरैः वरसिद्धचक्रम् ॥[1]

जिन्होंने आतंक, शोक, भय, रोग और अभिमान को नष्ट कर दिया है, जो अन्य विकारभाव से रहित हैं और महत्त्व के स्थान हैं उन श्रेष्ठ सिद्धभगवन्तों की कपूर

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 78-79।

तथा स्वर्णदीपकों से हम पूजा करते हैं। यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार से शान्तरस प्रकाशित होता है। पद्य सं. 12 और उसका भावसौन्दर्य :

> ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं, सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम्।
> कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्यबीजं, वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रम् ॥

इस पद्य में स्वभावोक्ति, रूपक अलकारों की संसृष्टि तथा शान्तरस है। जयमाला का पद्य सं. 17 और उसका सारसौन्दर्य :

> निवारितदुष्कृतकर्मविपाश, सदामल केवलकेलिनिवास।
> भवोदधिपारग शान्त विमोह! प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥[1]

इस पूजा के अन्त में 25वें छन्द का सारांश इस प्रकार है—इस प्रकार जो मनुष्य असम (अनुपम) अर्थात् संसारी आत्माओं से भिन्न विशुद्ध आत्मस्वरूप, निर्मल चैतन्य चिह्न से शोभित, परपदार्थों की परिणति से रहित, पद्मनन्दि आचार्य द्वारा वन्दनीय, सम्पूर्ण गुणों के मन्दिर और विशुद्धसिद्ध समूह का स्मरण करता है, नमस्कार करता है तथा स्तुति करता है—वह मनुष्य मुक्ति का अधिकारी होता है। इस पद्य में अनुप्रास और स्वभावोक्ति अलंकार, शान्तरस है एवं भक्ति का फल दर्शाया है।

सिद्धपूजा (भावाष्टक)

इस भावाष्टक में द्रव्य पूजा का लक्ष्य नहीं रखा गया है किन्तु भावात्मक द्रव्य के अर्पण से सिद्धों के गुणों का स्तवन किया गया है। इस भाव-पूजा के छन्दों के प्रथमार्ध में भावरूप द्रव्य का वर्णन है और द्वितीय अर्ध छन्द में सिद्धभगवान् के गुणों का स्तवन है। इस भाव-पूजा के आठ श्लोक द्रुतविलम्बित छन्द में रचित हैं, अन्त का नवम श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित है, कुल 9 श्लोक हैं। उदाहरणार्थ जलद्रव्य अर्पण करने का प्रथम श्लोक और उसका सौन्दर्य इस प्रकार है :

> निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारस धारया।
> सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥

इस पद्य में रूपकालंकार के द्वारा शान्तरस की शीतल धारा प्रवाहित होती है। अनुप्रास नामक शब्दालंकार से पद्य के पढ़ने में ही भक्तिरस झलकता है।

जल अर्पण करने का मन्त्र—

> ओं ह्रीं अनन्तज्ञानादिगुणसम्पन्नाय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 77।

हिन्दी में अर्थ—ओं = पंचपरमेष्ठीदेव, ह्रीं = चौबीसतीर्थंकर देवों का स्मरण कर, अनन्तज्ञानादि अष्ट विशेषगुणों से सम्पन्न, सिद्धचक्र के अधिपति, सिद्धपरमेष्ठीदेव के लिए मैं जन्म-जरा-मरण के नाश के हेतु जल अर्पण करता हूँ।

नैवेद्यद्रव्य अर्पण करने का पंचम पद्य :

अकृतबोधसुदिव्यनैवेद्यकैः, विहितजातिजरामरणान्तकैः।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥
फलद्रव्यकापद् परमभावफलावलिसम्पदा, सहजभावकुभावविशोधया।
निजगुणास्फुरणात्मनिरंजनं, सहज सिद्धमहं परिपूजये ॥

संस्कृत मन्त्र—ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यद्रव्य समर्पण करने का नवम पद्य—

नेत्रोन्मीलिविकासभावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः।
यश्चिन्तामणि शुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं सम्प्रार्चयामो वयम् ॥[1]

इस श्लोक में उपमा रूपक और स्वभावोक्ति अलंकारों की संसृष्टि में शान्तरस अच्छी तरह झलकता है जो आत्मानन्दस्वरूप है। इस श्लोक के अन्त में भगवत्पूजा का फल भी दर्शाया गया है ॥

विदेहक्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थंकरों की अर्चा-स्थापना—

श्रीमज्जम्बूधातकीपुष्करार्धद्वीपेषूच्चैर्ये विदेहाः शराः स्युः।
वेदा वेदा विद्यमाना जिनेन्द्राः प्रत्येकं तांस्तेषु नित्यं यजामि ॥

इस पूजा में संस्कृत के दशछन्द हैं उनमें प्रथम पद्य का छन्द शालिनी है और शेष नौपद्य द्रुतविलम्बित छन्द में रचित हैं। अन्त में प्राकृतभाषा में जयमाला के छह छन्द हैं जो भक्तिरस से सरस एवं मनोहर हैं।

उदाहरणार्थ जल अर्पण करने का संस्कृत छन्द :

सुरनदीजलनिर्मलधारया, प्रवरकुंकुमचन्द्रसुसारया।
सकलमंगलवांछितदायकान्, परमविंशतितीर्थपतीन् यजे ॥

जल अर्पण करने का मन्त्र—

ओं ह्रीं (1) सीमन्धर, (2) जुगमन्धर, (3) बाहु, (4) सुबाहु, (5) संजातक, (6) स्वयंप्रभ, (7) ऋषभानन, (8) अनन्तवीर्य, (9) सूरप्रभ, (10) विशालकीर्ति,

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 83।

(11) वज्रधर, (12) चन्द्रानन, (13) भद्रबाहु, (14) भुजंगम, (15) ईश्वर, (16) नेमिप्रभ, (17) वीरसेन, (18) महाभद्र, (19) देवयश, (20) अजितवीर्य–इति विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस विशालमन्त्र में, विदेह क्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थंकरों के लिए, जन्म-जरा (वृद्धावस्था) मरणरूप रोगों का नाश करने के ध्येय से जल अर्पण किये जाने का निर्देश है।

अर्घ्य (आठ द्रव्यों का समूह) अर्पण करने का पद्य :

जल सुगन्धप्रसूनसुतन्दुलैश्चरुप्रदीपक धूप फलादिभिः।
सकलमंगलवांछितदायकान्, परमविंशतितीर्थपतीन्यजे ॥

सारांश–(1) जल, (2) सुगन्ध, (3) अक्षत, (4) पुष्प, (5) नैवेद्य, (6) दीप, (7) धूप, (8) फल–इन आठ द्रव्यों के समूह रूप अर्घ्य के द्वारा, सम्पूर्ण मंगल और इच्छित पदार्थों के दाता श्रेष्ठ बीस तीर्थंकरों का हम पूजन करते हैं। अतिश्रेष्ठपद की प्राप्ति के लिए। जयमाला का अन्तिम प्राकृतपद्य और उसका तात्पर्य :

ए बीस जिणेसर, णमिय सुरेसर, विहरमाण मइ संथुणियं।
जे भणहिं भणावहिं, अरुमन भावहिं, ते णर पावहिं परमपयं ॥[1]

इस प्रकार देव और मानव आदि से नमस्कृत, इन नित्य विहार करनेवाले बीस तीर्थंकरों की मैंने स्तुति की है। इस जयमाला को जो मानव पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं अथवा मन में स्मरण करते हैं वे भक्त मनुष्य परमपद मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं।

इस पद्य का घत्ता छन्द कहा जाता है, इसमें भक्तिरस की धारा और पूजा का फल दर्शाया गया है।

श्रीबाहुबलिस्वामिपूजा

इस पूजा में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र श्री बाहुबलि स्वामी के गुणों का अर्चन किया गया है, इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इस पूजा में कुल सत्रह पद्य हैं, जिनमें प्रथम पद्य स्थापना का है, यह इन्द्रवज्रा छन्द में रचित है, पद्य इस प्रकार है :

श्रीपोदनेशं पुरुदेवसूनुं, तुंगात्मकं तुंगगुणाभिरामम्।
देवेन्द्रनागेन्द्र नरेन्द्रवन्द्यं, श्रीदोर्बलीशं महयामि भक्त्या ॥[2]

सारांश–पौदनपुर के अधिपति, ऋषभदेव के सुपुत्र, उच्चशरीरधारी, श्रेष्ठगुणों

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 63।
2. श्री बाहुबलिपूजा एवं बाहुबलि स्तुति–लेखक सुरेन्द्रनाथ श्रीपाल जैन मोतीवाला, जुबिलीबाग, तारदेव बम्बई, प्र. सं., पृ. 14 से 17 तक।

से मनोहर, देवेन्द्र-नागेन्द्र एवं चक्रवर्ती के द्वारा वन्दनीय श्री बाहुबलिकामदेव का मैं भक्तिपूर्वक पूजन करता हूँ। इस पद्य में श्री बाहुबलि के यथार्थगुणों के वर्णन से भक्तिरस का प्रवाह दर्शाया गया है। स्वभावोक्ति एवं अनुप्रास अलंकार शोभित है।

स्थापना के मन्त्र—

> ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं बाहुबलिजिनदेव अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधापनं।

पीले चावल (पुष्प) से स्थापना करने के पश्चात् जल आदि द्रव्यों का अर्पण करते हुए आठ पद्य क्रमशः कहे जाते हैं, उनमें जल का पद्य यह है :

> दिव्यदीर्घिकादिनव्यतीर्थपावनोदकैः, सेव्य मानभव्यवृन्द पापतापनाशकैः।
> वन्ध्यशैलमस्तके सुरासुरौघपूजितं, सुन्दरांगमर्चयामि गोमटेशमच्युतम् ॥

अक्षत (तण्डुल) अर्पण करने का पद्य :

> रूप्यशुभ्र साग्र दीर्घदभ्र शालितण्डुलैः
> प्रेक्षमाणभक्तलोकस्वार्थदृङ्मनोहरैः।
> लोकलोकनायकं [illegible]
> यक्षवन्ध्यमर्चयामि दोर्बलीशमिष्टदम् ॥

अर्घ्य का पद्य

> वारिगन्धचारुशालितण्डुलप्रसूननै—
> वेद्यदीपधूपसत्फलौघनिर्मितार्घ्यकैः।
> देवराजभोगिराजभूमिराजपूजितम्
> देवदेवमर्चयामि विश्वजीवदायिनम् ॥

इस पद्य में आठ द्रव्यों तथा बाहुबलि का वर्णन किया गया है। स्वभावोक्ति एवं अनुप्रास अलंकारों से शान्तरस प्रवाहित होता है।

इस पूजा की जयमाला का अन्तिम पद्य :

> दरदलितसरोजाशोकबन्धूकसूनैः
> सुरभिनिकरसर्वाह्लादसन्तानदानैः।
> पुरुजिनपतिसूनोः पण्डितार्याब्जभानोः
> वरपदकमले पुष्पांजलिं प्रार्चयामि ॥

भगवान् ऋषभदेव का पूजन

श्री मुनि सोमसेन गणी ने पच्चीस संस्कृत पद्यों में इस पूजन की रचना की है, प्रथम पद्य अनुष्टुप् छन्द में, 2-3 पद्य उपजाति छन्द में, सं. 4 से सं. 12 तक

पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में, सं. 18 से सं. 22 तक पद्य त्रोटकछन्द में, सं. 23 का पद्य अनुष्टुप् छन्द में, सं. 24 का पद्य मालिनी छन्द में और सं. 25 का पद्य वसन्ततिलका छन्द में रचा गया है।

भगवान ऋषभदेव की स्थापना के प्रथम तीन पद्य क्रमशः इस प्रकार हैं :

मोक्षसौख्यस्य कर्तारं भोक्तारं शिवसम्पदाम्।
आह्वाननं प्रकुर्वेहं, जगच्छान्तिविधायिनाम् ॥[1]

(1) मन्त्र– ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीऋषभ जिनेन्द्रदेव, मम हृदये अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वानं।
देवाधिदेवं वृषभं जिनेन्द्रं, इक्ष्वाकुवंशस्य परं पवित्रम्।
संस्थापयामीह पुरः प्रसिद्धं, जगत्सु पूज्यं जगतां पतिं च॥

(2) मन्त्र– ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्री ऋषभजिनेन्द्र देव! मम हृदये तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः–इति स्थापनम्।
कल्याणकर्ता शिवसौख्यभोक्ता, मुक्तेः सुदाता परमार्थयुक्तः।
यो वीतरागो गतरोषदोषः, तमादिनाथं निकटं करोमि॥

(3) मन्त्र– ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव! मम हृदयसमीपे सन्निहितो भव भव वषट्–इति सन्निधिकरणम् ॥

उपरिकथित तीनों पद्यों का क्रमशः सारसौन्दर्य :

(1) मुक्ति के अक्षय सुख को प्राप्त करनेवाले, पंच कल्याणरूप सम्पत्ति का भोग करनेवाले, जगत् के प्राणियों को शान्तिमार्ग (मुक्तिमार्ग) दर्शानेवाले भगवान ऋषभदेव का मन-मन्दिर में हम आह्वान करते हैं। इस पद्य में स्वभावोक्ति एवं रूपकालंकार से भक्तिरस झलकता है।

(2) इक्ष्वाकुवंश के श्रेष्ठ पवित्र महात्मा, अखिल विश्व के पूज्य, तीनों लोकों के अधिपति, देवों में परमदेव श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर को हम प्रत्यक्ष अपने मन-मन्दिर में स्थापित करते हैं। इस पद्य में–स्वभावोक्ति अलंकार से भक्तिरस का आस्वादन होता है।

(3) जो स्व-परकल्याण के कर्ता हैं, मोक्ष के अनन्त सुख के भोक्ता हैं, मोक्षमार्ग के प्रदर्शक, आध्यात्मिकरस में लीन, राग, द्वेष, मोह के विनाशक और जो क्रोध, मान, माया, लोभ के विजेता हैं उन श्री आदिनाथ तीर्थंकर को हम अपने निकट स्थापित करते हैं। इस पद्य में स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा भक्ति रस का मधुरपान होता है। उदाहरणार्थ दीपद्रव्य अर्पण करने का पद्य इस प्रकार है :

---

1. श्रीभक्तामरपूजा विधान, सम्पा. पं. मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर, सप्तम संस्करण, पृ. 30 से 33 तथा, पृ. 99।

अज्ञानादितमोविनाशनकरैः कर्पूरदीप्तैः वरैः
कर्पासस्य विवर्तिकाग्रविहितैः दीपैः प्रभाभासुरैः।
विद्युत्कान्तिविशेषसंशयकरैः कल्याणसम्पादकैः
कुर्यामार्तिहरार्तिकां जिन! विभो! पादाग्रतोमुक्तिः॥

मन्त्र—ओं ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय श्रीऋषभजिन चरणाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि स्वाहा।

इस पद्य में रूपक, भ्रान्तिमान, स्वभावोक्ति अलंकारों के द्वारा शान्त रस चमकता है।

अर्घ्य (अष्टद्रव्यों का समूह) अर्पण करने का पद्य :

नीरैश्चन्दनतण्डुलैः सुसघनैः, पुष्पैः प्रमोदास्पदैः
नैवेद्यैः नवरत्नदीपनिकरैः, धूमैस्तथा धूपजैः।
अर्घ्यैः चारुफलैश्च मुक्तिफलदं, कृत्वा जिनांघ्रिद्वये
भक्त्या श्रीमुनिसोमसेनगणिना, मोक्षो मया प्रार्थितः॥

मन्त्र—ओं ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि स्वाहा।

श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ पूजा

जिस प्रकार मन में विचार करने मात्र से, चिन्तामणि के द्वारा मानवों को इष्टमनोरथ की सिद्धि होती है उसी प्रकार तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के पूजन-भजन-चिन्तन और स्तवन करने से मानवों को इष्टमनोरथ की सिद्धि होती है इसलिए इन तीर्थंकर की प्रसिद्धि चिन्तामणि पार्श्वनाथ के नाम से विश्व में देखी जाती है। महाकवि सोमसेन ने संस्कृत में बीस पद्यों की रचनाकर, श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ के विषय में भक्तिरस की गंगा को प्रवाहित किया है। इस पूजा के प्रथम द्वितीय पद्य अनुष्टुप छन्द में, सं. 3 से सं. 11 तक पंचचामरछन्द में, सं. 12 से 20 तक स्रग्धरा छन्द में रचित हैं। पद्यों की रचना शब्द तथा अर्थ की अपेक्षा बहुत सुन्दर है। उदाहरणार्थ स्थापना के प्रथम द्वितीय पद्य :

श्रीपार्श्वः पातु वो नित्यं, जिनः परमशंकरः।
नाथः परमशक्तिश्च, शरण्यः सर्वकामदः॥
सर्वविघ्नहरः सर्वः, सर्वसिद्धिप्रदायकः।
सर्वसत्त्वहितोयोगी, श्रीकारपरमार्थदः॥[1]

स्थापना मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ! अत्र अवतर अवतर

1. श्री दि. जैन पूजनसंग्रह, सं. पं. राजकुमार शास्त्री, प्र. संयोगितागंज इन्दौर, प्रथम सं., पृ. 43-46।

सर्वौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ॥

इस पद्य में स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा शान्तरस का अनुभव प्राप्त हो है।

जलद्रव्य अर्पण करने का पद्य :

निर्मलैः सुशीतलैः महापगाभवैः वनैः
शातकुंभकुंभगैः जगज्जनांगतापहैः।
देव देव पार्श्वनाथ श्रीकल्याणपंचकम्
स्वर्ग मोक्षसम्पदानुभूतिकारणं यजे ॥

इस पद्य में जल द्रव्य तथा भगवान पार्श्वनाथ और उनके पंचकल्याणकों का वर्णन अनेक विशेषणों के साथ किया गया है। स्वभावोक्ति, रूपक, अनुप्रास इन अलंकारों से अलंकृत भक्ति रस मानस कमल को प्रफुल्लित करता है।

मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं. अर्हं श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

इस पूजा की जयमाला में संस्कृत के पद्यों में बहुत कठिन तथा संयोगी पद हैं, पद्य के चरणों में बीजाक्षरमन्त्रों का भी समावेश है। उदाहरणार्थ जयमाला भाग का दूसरा पद्य इस प्रकार है :

ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं विभास्वन्मरकतमणिमाक्रान्तमूर्तेः हि वं. मं,
हं सं तं बीजमन्त्रैः कृतसकलजगत् क्षेमरक्षोरुवक्षः।
क्षां क्षीं क्षूं क्षैः समस्तक्षितितलमहित ज्योतिरुद्योतितार्थः।
क्षां क्षैः क्षों क्षौं क्षिप्तबीजात्मकसकलतनुः नः सदा पार्श्वनाथः ॥

इस पद्य में यह भावना की गयी है कि अनेक मन्त्रों से विभूषित अथवा अनेक मन्त्रमय शरीरवाले श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ देव हम सबकी रक्षा करें।

इसी प्रकार जयमाला के सर्व ही नौपद्य कठिन पद तथा मन्त्रों से भरे हुए हैं।

अनादिसिद्धयन्त्र पूजा

इस पूजा में किसी भी तीर्थंकर या अरहन्त का पूजन नहीं किया गया है किन्तु तीर्थंकर या अरहन्तदेव के प्रतिनिधि रूप सिद्धयन्त्र का पूजन किया गया है। चौकोर-गोल-त्रिकोण आकारवाले ताम्र-पीतल-सुवर्ण आदि धातु के बने पट्टे पर, बीजमन्त्र सहित जो देवों के नाम उत्कीर्ण किये जाते हैं उसे यन्त्र कहते हैं, उस यन्त्र के विषय के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। इस यन्त्र का नाम सिद्धयन्त्र है, इसमें बीजाक्षरमन्त्रों के साथ सत्रह वीतरागदेवों के नाम उत्कीर्ण किये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं :

(1) अरहन्त, (2) सिद्ध, (3) आचार्य, (4) उपाध्याय, (5) साधु, (6) अरहन्तमंगल, (7) सिद्धमंगल, (8) साधुमंगल, (9) केवलज्ञानी प्रणीत धर्ममंगल, (10) लोकोत्तम अरहन्त, (11) लोकोत्तमसिद्ध, (12) लोकोत्तम साधु, (13) लोकोत्तम केवल ज्ञानी प्रणीतधर्म, (14) अरिहन्तशरण, (15) सिद्धशरण, (16) साधुशरण, (17) केवलज्ञानी प्रणीतधर्मशरण। इस सिद्धयन्त्र (रेखाचित्र) में उक्त सब ही वीतरागदेवों के नाम बीजाक्षरमन्त्रों के साथ उत्कीर्ण रहते हैं। इन सब यन्त्रों के रेखाचित्र इस पुस्तक के अन्त में लिखित परिशिष्ट में व्यक्त किये जाएँगे।

प्रतिष्ठा, गृहशुद्धि, विवाह, शिलान्यास, खातमुहूर्त, शान्तिजप, विश्व शान्तिहवन, पूजाविधान आदि प्रमुख कार्यों में सिद्धयन्त्र आदि यन्त्रों की पूजा का नियम प्रतिष्ठाग्रन्थों में देखा गया है। इसलिए सद्गृहस्थ अपने निवासगृहों में शान्तिजप, हवन, विवाह, गृहप्रवेश आदि शुभकार्यों के हेतु सिद्धयन्त्र (विनायक) स्थापित करते हैं, कार्यसमाप्त हो जाने पर श्रीमन्दिर में पुनः स्थापित कर देते हैं। इन यन्त्रों की पूजा भी पाँच प्रकार से की जाती है—(1) अभिषेक, (2) स्थापना, (3) अष्टद्रव्यों से पूजन, (4) शान्ति, (5) विसर्जन। प्रतिमा का प्रतिनिधि होने से यन्त्र भी प्रतिमा की तरह पूज्य माना जाता है। इस यन्त्र की भी प्रतिष्ठा होती है।

इस सिद्धयन्त्र-पूजा में कुल अड़तीस पद्य हैं। पद्य सं. 1 वसन्ततिलका छन्द में, पद्य सं. 2 अनुष्टुप छन्द में, पद्य सं. 3 से 10 इन्द्रवज्रा छन्द में, पद्य सं. 11 शार्दूलविक्रीडित छन्द में, पद्य सं. 12 से 16 तक वसन्ततिलका छन्द में, पद्य सं. 17 से सं. 28 तक अनुष्टुप छन्द में, पद्य सं. 29 वसन्ततिलका में, पद्य सं. 30 अनुष्टुप में, पद्य सं. 31 से 36 वसन्ततिलका में, पद्य सं. 37 मालिनी छन्द में और पद्य सं. 38 अनुष्टुप छन्द में विरचित है। उदाहरणार्थ यन्त्र के अभिषेक का प्रथम पद्य :

स्नात्वा शुभाम्बरधरः कृतयत्नयोगात्
यन्त्रं निवेश्य शुचिपीठवरेभिषिंचेत्।
ओं भूर्भुवः स्वरिह मंगलयन्त्रमेतत्
विघ्नौघवारकमहं परिषिंचयामि ॥[1]

यन्त्रस्थापना का पद्य

परमेष्ठिन्! जगत्त्राण-करणे मंगलोत्तम—
शरण इह तिष्ठतु मे सन्निहितोस्तु पावनः ॥

सारांश—हे परमेष्ठिदेव! जगत् की रक्षा करने में मंगल उत्तम शरण, हे परम-पवित्र! यहाँ मेरे हृदय में विराजिए और सन्निकट हो जाइए।

---

1. श्री दि. जैन पूजन संग्रह, सं. राजकुमार शास्त्री, पृ. 17-51।

मन्त्र—(1) ओं ह्रीं अर्हं असिआउसा मंगलोत्तमशरणभूताः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्—इति आह्वानं।

(2) अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः इति स्थापनम्।

(3) अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट्—सन्निधिकरणम् ॥

चन्दन अर्पण करने का पद्य—

काश्मीरकर्पूरकृतद्रवेण, संसारतापापहृतौ युतेन।
अर्हत्पदाभाषितमंगलादीन् प्रत्यूहनाशार्थमहं यजामि ॥

मन्त्र—ओं ह्रीं अर्हं असिआउसामंगलोत्तमशरणभूतेभ्यः पंचपरमेष्ठिभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥

आचार्यपरमेष्ठी के गुणों का अर्चन :

स्वाचारपंचकमपि स्वयमाचरन्ति
ह्याचारयन्ति भविकान् निजशुद्धिभाजः।
तानर्चयामि विविधैः सलिलादिभिश्च
प्रत्यूहनाशनविधौ निपुणान् पवित्रैः ॥

मन्त्र—ओं ह्रीं पंचाचारपरायणाय आचार्यपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मशरण के लिए अर्घ्य अर्पण करने का पद्य—

धर्म एव सदा बन्धुः स एव शरणं मम।
इह वान्यत्र संसारे, इति तं पूजयेऽधुना ॥

मन्त्र—ओं ह्रीं धर्मशरणाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सारांश—इस प्राणी का सदा धर्म ही भाई या मित्र है, धर्म ही हम सबका शरण (रक्षक) है। इस कारण इस लोक और परलोक में हम उसकी पूजा करते हैं, इसमें धर्म का महत्त्व दर्शाया गया है अतएव धर्म को देव मानकर उसकी पूजा की जाती है ॥

अन्तिम आशीर्वाद प्रदर्शक पद्य :

श्रियं बुद्धिमनाकुल्यं, धर्मप्रीतिविवर्धनम्।
जिनधर्मेस्थितिर्भूयात्, श्रेयो मे दिशतु त्वरा ॥
इति आशीर्वाद पुष्पांजलिः ॥

भावार्थ—हे भगवन्! मेरी सदा जिन धर्म में स्थिति (मर्यादा) बनी रहे और हमारे लिए शीघ्र ही, अन्तरंगलक्ष्मी (ज्ञानादि) तथा बहिरंगलक्ष्मी (सम्पत्ति आदि) की, वृद्धि हो, जीवन के आनन्द को, अतिशय धार्मिक श्रद्धान को और कल्याण को प्रदान करें ॥

भक्तामरमण्डलपूजा—(प्रथम)

आचार्य सोमसेन मुनिराज ने, हीरापण्डित जो कि देवशास्त्र गुरु का परमभक्त था, उसके प्रार्थना करने पर भक्तामरमण्डल पूजा का निर्माण किया है। ईशा की सातवीं शती के मध्यवर्ती आचार्य श्रीमानतुंग ने भक्तामर (आदिनाथ) स्तोत्र की रचना कर भगवान ऋषभदेव के गुणों का कीर्तन किया है। जैन समाज में इसकी विशेष प्रसिद्धि है। आचार्य मानतुंग के उत्तरकालवर्ती श्री सोमसेन आचार्य ने, इस स्तोत्र की महत्ता एवं विशेष प्रसिद्धि को देखकर भक्तामरमण्डलपूजा की रचना की है। सर्वप्रथम इस पूजा की भूमिका या पूर्व पीठिका में सोलह श्लोक रचे गये हैं, प्रारम्भ के दो पद्य उपजाति वृत्त में, तीन से लेकर सोलह पद्य तक अनुष्टुप छन्द में रचित हैं। इसके बाद भगवान ऋषभदेव की स्तुति है जिसका प्रथम पद्य स्रग्धराछन्द में, दो से लेकर सं. 11 श्लोक तक वसन्ततिलका छन्द में, बारहवां पद्य मालिनी छन्द में रचित है। इसके बाद भगवान ऋषभदेव का पूजन है जो पूजा पृ. सं. 202 में लिखी गयी है।

इसके पश्चात् भक्तामरस्तोत्र के 48 काव्य मन्त्र-यन्त्र सहित हैं। ये सम्पूर्ण काव्य वसन्ततिलका छन्द में रचित हैं। इसके बाद 49वां पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में, पचासवाँ पद्य द्रुतविलम्बित छन्द में, 51वां पद्य अनुष्टुप छन्द में रचित है। इसके बाद 48 मन्त्रों द्वारा ऋद्धिधारी तपस्वी मुनीश्वरों का पूजन किया गया है। अनन्तर त्रोटक छन्द में जयमाला के दस पद्य हैं, सं. 11 का पद्य अनुष्टुप छन्द में, 12वां पद्य मालिनी छन्द में, 13वां पद्य वसन्ततिलका छन्द में रचित है। अन्त के ये दो पद्य आशीर्वाद वचन के रूप में हैं।

यह भक्तामरमण्डल पूजा भक्तामरस्तोत्र के माध्यम से होती है। इसमें प्रतिमा जी के आगे मण्डल स्थापित किया जाता है। गोल रेखाकार चित्र को मण्डल कहते हैं, इसमें 49 कोष्ठ (खाने) होते हैं। सबसे प्रथम मध्य के कोष्ठ में 'ॐ' लिखा जाता है, इसके चारों ओर गोलाकार आठ कोष्ठ, इसके चारों ओर गोलाकार सोलह कोष्ठ, इसके चारों ओर गोलाकार चौबीस कोष्ठ, कुल मिलाकर 48 कोष्ठ होते हैं। इन 48 कोष्ठों में 'क्लीं' बीजाक्षर मन्त्र लिखा जाता है। इस ही मण्डल पर श्रीफल सहित पाँच कलश स्थापित किये जाते हैं। मण्डल स्थापना के कारण इसको 'भक्तामरमण्डलपूजा' कहते हैं। इस पूजा की भूमिका का प्रथम पद्य उदाहरणार्थ इस प्रकार है :

श्रीमन्तमानम्य जिनेन्द्रदेवं, परं पवित्रं वृषभं गणेशम्।
स्याद्वादपाराम्निधिचन्द्रबिम्बं, भक्तामरस्यार्चनमालसिद्ध्यै ॥

इस पूजा की भूमिका में पूजाकारक के गुण तथा योग्यता कैसी होनी चाहिए इसका वर्णन है, पूजा करानेवाले प्रतिष्ठाचार्य के लक्षणों का वर्णन है, पूजा के योग्य स्थान एवं मण्डप का वर्णन, पूजा के मण्डल का वर्णन, पूजा की विधि और पूर्ण

सामग्री का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् श्रीऋषभदेव की स्तुति कही गयी, इस स्तुति में मंगलाचरण, पूजा का महत्त्व, ऋषभदेव के गर्भकल्याणक, जन्मोत्सव, कर्मयुग के विविध आविष्कार, राज्य द्वारा प्रजा का संरक्षण, दीक्षाकल्याणक, ज्ञान कल्याणक, दिव्य उपदेश, मोक्ष कल्याणक और परम आशीर्वाद का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ पूजा या स्तुति का महत्त्व प्रदर्शक पद्य :

यस्यात्रनामजपतःपुरुषस्य लोके, पापं प्रयाति विलयं क्षणमात्रतो हि।
सूर्योदये सति यथा तिमिरस्तथास्तां, वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥[1]

इस काव्य में दृष्टान्तालंकार द्वारा शान्तरस प्रवाहित होता है।

शासनकला का आविष्कार तथा प्रजासंरक्षण—

षट्कर्मयुक्तिमवदर्श्य दयां विधाय
सर्वाः प्रजाः जिनधुरेण वरेण येन।
संजीविताः सविधिना विधिनायकं तं
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥

विविधविभवकर्ता, पापसन्तापहर्ता
शिवपदसुखभोक्ता, स्वर्गलक्ष्म्यादिदाता।
गणधरमुनिसेव्यः सोमसेनेन पूज्यः
वृषभजिनपतिः श्रीं वांछितां मे प्रदद्यात् ॥

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु कीर्तिरस्तु
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्यसमृद्धिरस्तु।
आरोग्यमस्तु विजयोस्तु महोस्तु पुत्र—
पौत्रोद्भवोस्तु तव सिद्धिपतिप्रसादात् ॥

द्वितीय भक्तामरमण्डल पूजा

यह पूजा भी आचार्य श्री सोमसेन के द्वारा विरचित है, इसका इतिहास पूर्व की तरह है। इसमें कुल 76 पद्य हैं जिनमें श्री ऋषभदेव की स्तुति के पाँच पद्य वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध हैं। नौ द्रव्य अर्पण करने के नौ पद्य भुजंगप्रयात छन्द में रचित हैं। अन्त में जयमाला के दस पद्य भुजंगप्रयात छन्द में विरचित हैं। भूमिका को छोड़कर शेष पद्य पूर्व पूजा के समान हैं। उदाहरणार्थ स्तुति का प्रथम पद्य

कल्याणकीर्तिकमलाकमलाकरं हि, संचर्चिदुज्ज्वलमहः प्रकटीकृतार्थम्।
उच्चैर्निधायहृदिवीरजिनं विशुद्ध्यै, शिष्टेष्टमादिपरमेष्टमहं प्रवक्ष्ये ॥[2]

---

1. श्रीभक्तामरपूजाविधान : सं. मो. ला. शास्त्री जबलपुर : पृ. 26-100।
2. श्री दि. जैन पूजन संग्रह : सं. राजकुमार शास्त्री : इन्दौर : पृ. 57-70।

इस काव्य में यमक, अनुप्रास, रूपक अलंकारों से शान्तरस ध्वनित होता है स्तुति का द्वितीय पद्य चमत्कारपूर्ण इस प्रकार है :

> दीर्घाजवंजवविवर्तननर्तनर्त—
> रात्रिप्रकर्तनविकर्तन कीर्तनश्रीः।
> उन्निद्रसान्द्रतरभद्रसमुद्रचन्द्रः
> सद्यः पुरुर्दिशतु शाश्वतमंगलं वः ॥

पूजन प्रकरण में जल अर्पण करने का विचित्र पद्य—

> अनच्छाच्छताकारिसंगच्छदच्छ—
> सरूपैस्सुभूपैरिवानन्द कूपैः।
> अजीवैः जगज्जीवजीवैरिवोच्चैः
> यजे आदिनाथं समाध्यम्बुकन्दम् ॥

काव्य सौन्दर्य—मलिनता को स्वच्छ करने में निर्मल स्वरूप को प्राप्त करनेवाले, उत्तम राजाओं के समान, जगत के प्राणियों का जीवनरूप, श्रेष्ठ अचित्त (जीव-जन्तु रहित), आनन्दप्रद कूपजल के द्वारा हम, समाधि के समुद्र श्री ऋषभदेव भगवान का पूजन करते हैं। राजा के पक्ष में द्वितीय अर्थ—

अपने दोषों को दूर करने में निर्मल गुणों को प्राप्त करनेवाले, विश्व के प्राणियों के जीवन की सुरक्षा करनेवाले, आनन्दप्रद जलकूपों के समान, अहिंसक राजाओं के द्वारा भगवान ऋषभदेव का पूजन किया जाता है।

इस काव्य के दो अर्थ व्यक्त होते हैं प्रथम कूपजल का और द्वितीय अर्थ नृपपक्ष का। भाव यह है कि ऋषभदेव की इतनी अधिक पूज्यता होती थी कि राजा मण्डल भी जिन की पूजा करता था। इस काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक, परिकर, श्लेष अलंकारों की संसृष्टि से शब्द एवं अर्थ का चमत्कार प्रकट होता है। इस रचना से शान्त रस की वृद्धि होती है।

इस पूजा के अन्त में जयमाला का प्रथम पद्य :

> अखण्डप्रचण्डप्रतापस्वभावं, निराकारमुच्चैरनन्तस्वभावम्।
> स्वभावानुभावं क्षतोद्यद्विभावं, स्वभावाय वन्दे वरं आदिनाथम् ॥

इस पद्य में अनुप्रास एवं परिकर अलंकार की शोभा से शान्तरस का आस्वादन होता है, शब्दविन्यास अपूर्व है।

इसी जयमाला का तृतीय पद्य इस प्रकार है :

> विकार्यं विमायं सदा निष्कषायं, ज्वलद् रागदोषादिदोषव्यपायम्।
> अलोकं च लोकं समालोकयन्तं, भजे आदिनाथं समुद्योतयन्तम् ॥

इस काव्य में अनुप्रास एवं स्वभावोक्ति इन अलंकारों की छटा से श्री आदिनाथ के विषय में अपार भक्तिरस झलकता है। शब्दों का विन्यास चित्त को

प्रभावित करता है। इसी जयमाला का पद्य सं. 6 इस प्रकार चमकता है :

गतध्यानमालं स्फुरच्चिद्विशालं, दितारातिजालं विनष्टान्तकालम्।
मुनिध्येयरूपं त्रिलोकैकभूपं, यजे आदिनाथं सुखागाधकूपम् ॥

इस काव्य में अनुप्रास, परिकर, रूपक, स्वभावोक्ति इन अलंकारों का चमत्कार होने से, शान्तरस द्वारा आत्मा में परमानन्द का अनुभव होता है।

जयमाला का अन्तिम दशम पद्य—

यजध्वं भजध्वं बुधाः सम्मनुध्वं, निधध्वं हृदिध्वं विशुद्धादिनाथम्।
चिदानन्दकन्दं स्वरूपोपलब्धिं, यदीह ध्वमन्तं निनीषध्वमेनम् ॥

इस काव्य में स्वभावोक्ति एवं परिकर तथा अनुप्रास अलंकारों के अलंकरण से शान्तरस का परमानन्द प्राप्त होता है। क्रिया समूह की ध्वनि चित्त में चेतना जाग्रत करती है। आशीर्वाद पद्य के अन्त में अधिम मन्त्र का 108 बार जाप करना चाहिए।

मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं अर्हं श्रीवृषभनाथ तीर्थंकराय नमः ॥

इस पूजा में प्रारम्भिक स्तुति, द्रव्य अर्पण और जयमाला के सभी पद्य अर्थालंकारों तथा शब्दालंकारों से परिपूर्ण है, कठिन है और पढ़ने में ही आनन्द प्रदान करते हैं।

श्री तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूजा

ईस्वी संवत् के प्रारम्भ में दक्षिण भारत के महान् तपस्वी आचार्य उमास्वामी ने मानव समाज को तत्त्वोपदेश देने के लिए संस्कृतवाणी में तत्त्वार्थसूत्र की रचना की। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम मोक्षशास्त्र भी प्रसिद्ध है। इसमें दश अध्याय हैं तथा 357 सूत्र हैं। इसमें सात तत्त्वों का व्याख्यान किया गया है : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। इस शास्त्र की गम्भीरता एवं सैद्धान्तिक विषय का अनुशीलन कर उत्तरवर्ती सोलह आचार्यों ने इसकी विशेष व्याख्या की है। इसकी गम्भीरता एवं महत्ता का अन्वीक्षण कर एक अज्ञात नाम आचार्य ने इसकी पूजा का निर्माण संस्कृत में ही किया है।

पूजन इस प्रकार है। मंगलाचरण :

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥[1]

ओं ह्रीं मोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(द्रुतविलम्बित छन्द)

1. श्री दि. जैनपूजनसंग्रह : सं. राजकुमार शास्त्री, इन्दौर, पृ. 77-86।

उदधि क्षीरसुनीरसुनिर्मलैः, कलशकाचनपूरितशीतलैः।
परमपावनश्रीयुतपूजनैः, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयचन्दनगन्धसुकुंकुमैः, विमलसद्घनसारविमिश्रितैः।
सुपथमोक्षप्रकाशनमर्चितं, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥

धवलतण्डुलकान्तिविखण्डनैः, कमनपुंजविसदृशमण्डितैः।
विविधबीजमुपार्जितपुण्यजैः, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कमलकुन्दसु[illegible]चनकैः, [illegible]।
प्रचुरफुल्लितपुष्पमनोहरैः, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मधुर आमिलहीन सुव्यंजनैः, वृकटघेवर खज्जकमोदकैः
कनकभाजनपूरित निर्मितैः, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विमलज्योति विकाशनदीपकैः, घृतवरैः धनसारमहोज्ज्वलैः।
स्वयमुदारसुवादितनृत्यकैः जिनगृहे जिनसूत्रमहं भजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः मोहान्धकार विनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगरचन्दनधूपसुगन्धजैः, दहनकर्मदवानलखण्डितैः।
अलितगुंजनवासमहोत्तमैः, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं मोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फलसुदाडिम आम्र सुश्रीफलैः, कदलि नारिंग निम्बुजद्राक्षकैः।
हरितमिष्ट फलादिकसंयुतैः, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः मोक्षपदप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे ॥

ओं ह्रीं श्रीमोक्षशास्त्रे तत्त्वार्थसूत्रे दशाध्यायेभ्यः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय का वाचन—

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं नयानां चैव लक्षणम्।
ज्ञानस्य च प्रमाणत्वमध्यायेस्मिन्निरूपितम् ॥
अमल कमल पांशुमिश्रतोयैस्सुगन्धैः
मलयभयसुगन्धैस्तन्दुलैः पुष्पवृन्दैः।
चरुकवरसुदीपैः धूपकैः सत्फलौघैः
शिवसुखफलसिद्ध्यै संयजेऽध्यायमाद्यम् ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे प्रथमाध्यायाय दर्शनज्ञानप्रमाण नयप्ररूपणाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

तत्त्वार्थसूत्र के द्वितीय अध्याय का वाचन—

जीवस्वभावलक्षण-गतिजन्मयोनिदेहलिंगा—
नपवर्तितायुष्कभेदाः, द्वितीयाध्याये निरूपिताः मुनिभिः ॥
स्वच्छैर्जलैः जलजरेणुयुतैस्सुपुष्पैः, नैवेद्यदीपवरधूपफलैः समर्घ्यैः।
सम्पूजये परमतत्त्वसुभावसूत्रमध्यायकं शिवकरं द्वैत यजामि ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयाध्याये जीवस्वभावलक्षण गति जन्मयोनिदेहलिंगानपवर्तितायुष्कभेदप्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वार्थसूत्र के तृतीय अध्याय का वाचन—

भूविललेश्याद्यायुः, द्वीपोदधिवास्यगिरिसरः सरिताम्।
मानं नृणां च भेदाः, स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥
जीवनैरिष्टगन्धान्वितैश्चन्दनैरक्षतैस्सल्लतान्तैः वरैः भक्षकैः।
दीपधूपैः फलैः पद्मपूर्णार्घ्यकैरर्चयामि तृतीयं वराध्यायकम् ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयाध्यायभूविल लेश्यायुर्द्वीपोदधिगिरिसरः सरित्प्रमाणमनुष्यतिर्यंश्चायुर्भेदप्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

तत्त्वार्थसूत्र के चतुर्थ अध्याय का वाचन—

चतुर्णिकायदेवानां, स्थानं भेदाः सुखादिकम्।
परापरस्थितिर्लेश्या, तुर्याध्याये निरूपितम् ॥
वारिगन्ध तन्दुलैश्च पुष्पभक्ष्यदीपकैः, धूम्रयुक्तधूपकैः फलैः वरार्घ्यसंयुतैः।
स्वर्णपात्रसंयुतैस्सुदुन्दुभिरवाकुलैः, सशंकरं चतुर्थकं यजे विशिष्टकं परम् ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थाध्यायाय चतुर्णिकायदेवस्थानभेद लेश्या परापरस्थितिप्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वार्थसूत्र के पंचम अध्याय का वाचन—

षड्द्रव्यस्य नामानि, द्रव्याणामवगाहनम्।
परमाण्वोः मिथः बन्धः, पंचाध्याये निरूपितम्॥
तोयैर्दिशश्चैव सुगन्धि... अनगनधुलेशस्वदनैश्चन्द्र मिश्रैः
माधुर्यैरक्षतौघैः विकसितकुसुमैः हव्यैस्सच्चरुकैः।
दीपैर्धूपैः सुधूमैर्मधुकरसुखदैस्सत्प्रियैस्सत्फलार्घ्यैः
एभिर्द्रव्यैर्यजेहं, गणधरगदितं पंचमाध्यायकं वै॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमाध्यायद्रव्यलक्षणप्रदेशावगाह परमाणुबन्ध-प्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वार्थसूत्र के षष्ठ अध्याय का वाचन—

योगास्रवकषायाणां, भावनानां च वर्णनम्।
क्रियाधारसुभेदाश्च, षष्ठाध्याये निरूपितम्॥
गंगानीरैः कनकघटजैः मौक्तिकामाभिरामैः
हेमान्वितैः मलयनगजैश्चन्दनैश्चारुगन्धैः।
तन्दुलौघैः कुसुमचरुभिः दीपधूपैः फलार्घ्यैः
भक्त्याभ्यर्चेजगद्विदितं षष्ठकाध्यायमर्हम्॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठकाध्याय योगास्रवकषायभावनाक्रिया धारभेदप्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय का वाचन—

अणुव्रतातिचाराणां, भावनानां तथैव च।
पापानां कथनं चास्मिन्, सप्तमाध्यायके स्फुटम्॥

नीरैर्गन्धैस्सोमान्वितैस्सत्तण्डुलैः माधुर्यैः, फलैर्भक्ष्यैः दीपैः धूम्रान्वितैः धूपाद्यैः दाडिमाद्यैः सुगन्धाढ्यैः, पक्वैर्वृन्दैरर्घार्घ्यैरभिर्द्रव्यैः श्रीजिनोक्तं भक्त्यार्चेऽहं ससूत्रम्॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमाध्याय व्रताभावनातिचारसप्तशीलव्रत प्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

मोक्षशास्त्र के अष्टम अध्याय का वाचन—

बन्धहेतुः तथा लक्ष्य मूलकोत्तरप्रकृतिः।
वृजिनं पुण्यकरी चैवाष्टाध्याये निरूपितम्॥
शुचिक्षीरगन्धाक्षतैः भूरिपुष्पैः
मुनिध्यानतुल्यैरसुभक्ष्यैः प्रदीपैः।

चरैर्धूपवृन्दैः फलैरर्घ्ययुक्तैः
यजेऽहं विशुद्धयाष्टकाध्यायकं वै ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्ष शास्त्रे अष्टमाध्याय बन्धहेतु लक्षणभेद मूलोत्तर प्रकृतिस्थिति पुण्य पाप प्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मोक्षशास्त्र के नवम अध्याय का वाचन–

समितिगुप्तिचरित्रतपस्तथा
विनयधर्मसुसंवरनिर्जरा।
मुनिगणैश्च तथा सुनिरूपिताः
नवमके ननु सर्वसुखप्रदे ॥
पूतैः पद्मपरागमिश्रितजलैस्सच्चन्दनैश्शालिजैः
मन्दारादिसमुद्भवैस्सुमनसैः सद्भक्ष्यकैः हृत्प्रियैः।
पीताभाग्निलदीपकैरगुरुजैः धूपैः फलैः सार्घ्यकैः।
अर्चेऽहं जिनराजनिर्गतगिरं सम्मुक्तिदाध्यायकम् ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमाध्यायाय संवरसमिति गुप्तिचारित्रतप-धर्मभावनानिर्जरामुनिगणभेदप्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

मोक्षशास्त्र के दशम अध्याय का वाचन–

कैवल्यहेतुचत्वारः, परिणामस्तदध्वजः।
सिद्धानुयोगैरूर्ध्वगः, प्राणाध्याये निरूपितम् ॥
जलैस्सुगन्धैः मुनिचित्ततुल्यैः, सदक्षतैः निर्मलखण्डमुक्तैः।
पुष्पैश्चरुदीपयुतैस्सुधूपैः, फलैर्यजेऽध्यायमहं दशाह्वयम् ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमाध्यायाय केवलज्ञानहेतु मोक्षोर्ध्वगमन सिद्धभेदप्ररूपकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दस अध्यायों में सूत्रों की संख्या–

त्रयस्त्रिंशत्त्रिपंचाशत् नवत्रिंशदनुक्रमात्
चत्वारिंशत्सहैकेन, द्वाभ्यां संख्येति संयुक्ता (31 अ) 51
सप्तविंशन्नवत्रिंशत् षड्विंशतिका मता
चत्वारिंशत्सप्ताभिः नवसूत्रपदाः स्मृताः (31 ब)

विमल विमलवाणी, देवदेवेन्द्रवाणी
हरषि हरषि गानी भव्य जीवेन प्राणी।
कुरु कुरु निजपाठे तत्त्वतत्त्वार्थसूत्रे
भजभजनिजरूपं तत्त्वतत्त्वार्थदीपम् ॥

घनमोह महातम विश्वभरं, वसुनाशन भानुप्रकाशकरं।
निरलोक उद्योतक दीपलसं, प्रणमामि सदा जिनसूत्रमहम् ॥
इति जिनमतसूत्रे तत्त्वतत्त्वार्थसारैः
विविधचरणपुष्पैः गृद्धपिच्छोपलक्ष्यम्।
प्रकटितदशभागं श्रीउमास्वामि सूरिं
विरचितजयमाला लालचन्द्रो विनोदी ॥

ओं ह्रीं तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशाध्यायेभ्यः जयमालार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अनुपमसुखदाता भव्यजीवैनसाता, कुगतिकुमतिभानी जैनवाणी विख्याता।
सुरनरमुनिजेता ध्यान ध्यायन्तितेता, सजयति जिनसूत्रं मोक्षमार्गस्यभानुः ॥

इति आशीर्वाद पुष्पांजलिः।

इस तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) की पूजन में इक्यावन पद्य हैं। पद्यों में सूत्रों की संख्या तथा वर्णनीय विषय अध्यायों के क्रम से दिये गये हैं। पूजा के पद्यों में तथा जयमाला के पद्यों में रूपक, उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से शान्तरस का आस्वादन होता है। वह देव का नहीं किन्तु उनकी वाणी (शास्त्र) का पूजन है। जैनग्रन्थों में देव-शास्त्र-गुरु के पूजन का विशेष महत्त्व है।

लघुजिनसहस्रनाम पूजा

ई. 8वीं शती में आचार्य जिनसेन ने जिन सहस्रनामस्तोत्र की रचना की है। इसमें 171 पद्यों में कथित एक सहस्र आठ शुभनामों के द्वारा वीतराग परमात्मा की स्तुति की गयी है; इसमें बारह अध्याय शोभित हैं। इस स्तोत्र की महत्ता को देखकर आचार्यों ने जिनसहस्रनामपूजा, जिनसहस्रनामव्रत और सहस्रनामव्रतोद्यापन— इन तीन रचनाओं का आविष्कार किया है। जिस सहस्रनामपूजा श्री धर्मभूषण द्वारा ई. 15वीं शती में रची गयी है। इस अट्ठाईस पद्यों से विभूषित पूजा में विविध छन्द एवं अलंकारों के द्वारा शान्त रस परिपुष्ट किया गया है। इस पूजा के अन्त में प्राकृतभाषा की जयमाला है। इस पूजा में प्रत्येक नामशतकों के लिए अर्धसमर्पण किया गया है। पूजा की रूपरेखा इस प्रकार है :

स्थापना (अनुष्टुप् छन्द)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तये चिन्त्यवृत्तये ॥[1]

---

1. श्री दि. जैन पूजनसंग्रहः सं. राजकुमार शास्त्री : पृ. 87-94।

(एक पद्य से लेकर 32 पद्य तक कहना चाहिए)

अजराय नमस्तुभ्यं, नमस्तेऽतीतजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने॥

पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिए।

अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका: गुणा:।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे॥
एवं स्तुत्वा जिनं देवं, भक्त्या परमया सुधी:।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्रं पापशान्तये॥

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं परब्रह्मन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् (पुष्पक्षेपण)।

अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणं, (उच्चस्थान पर पुष्पों को क्षेपण करना चाहिए)

जल अर्पण करने का पद्य (वसन्ततिलका छन्द)

कर्पूरपूरपरमिश्रितचारुनीरै:, तीर्थोदकै: कनककुम्भधृतै: सुपूतै:।
श्रीमज्जिनेन्द्रमहमिन्द्रनरेन्द्रपूज्यं, सम्पूजयामि भवसम्भवतापशान्त्यै॥

मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीमदादि अष्टाधिकसहस्रनामधारकजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वार्गन्धतन्दुललतान्तचरुप्रदीपै:
धूपै: फलै: विरचितै: शुभहेमपात्रै:।
सम्पूजयामि जिननाथमहं सुभक्त्या
त्रैलोक्यमंगलकरं सततं महार्घै:॥

ओं ह्रीं श्रीमदादि अष्टाधिक सहस्रनामधारकजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

इस सहस्रनामस्तोत्र में ग्यारह शतक हैं। अन्तिम शतक में जिनेन्द्र परमात्मा के सहस्रनामों की महिमा का वर्णन है। प्रत्येक शतक का पाठ करने के पश्चात् अर्घ अर्पण किया जाता है। पाँचवें शतक के लिए अर्घ समर्पण इस प्रकार है :

चारुनीरगन्धशालितन्दुलप्रफुल्लकै:
सच्चरुप्रदीपधूपसत्फलै: महार्घकै:।
देवदेववीतरागसंश्रीवृक्षाकं शतं
अर्चयामि पापतापनाशनं सुखप्रदम्॥

ओं ह्रीं श्रीवृक्षादिशतनामधारक जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

इस पद्य में श्रीवृक्षलक्षण रुचिर आदि शतनाम के धारक परमात्मा के लिए

धर्म समर्पण किया गया है, इसमें पंचचामर छन्द शोभित है। इसमें स्वभावोक्ति एवं रूपकालंकार की कान्ति से शान्तरस चमकता है।

इस सहस्रनाम स्तोत्र के अन्त में एक पद्य कहा गया है जो शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित है जिसका भावसौन्दर्य इस प्रकार है :

हे भगवन्! तीन लोक के प्राणी आपकी स्तुति करते हैं पर आप किसी की भी स्तुति नहीं करते हैं योगीजन आपका सदा ध्यान करते हैं परन्तु आप स्वयं किसी का ध्यान नहीं करते हैं आप नतमस्तकों को भी उन्नत मस्तक करनेवाले हैं अर्थात् अवनत को भी उन्नत करनेवाले हैं और जगत् के प्राणी आपको नमस्कार करते हैं परन्तु आप स्वयं किसी को भी नमस्कार नहीं करते हैं इसलिए आप यथार्थ में श्रीमान् हैं, तीन लोक के श्रेष्ठगुरु हैं, सबसे प्रथम पवित्रदेव हैं। इस पद्य में परिकर तथा व्याजस्तुति अलंकार के द्वारा भक्तिरस अलंकृत होता है। अन्त में प्राकृत जयमाला का अन्तिम प्राकृत पद्य :

> एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए।
> लहइ सो सिद्धसुक्खाइं वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥
> अरिहा सिद्धाइरिया, उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
> एयाणणमुक्कारो, भवे भवे मम, सुहं दिंतु ॥

सारांश—इस पूजास्तोत्र के द्वारा जो मानव पंचपरमेष्ठीगुरुओं की वन्दना करता है वह मानव विशाल संसार दुःख रूपी सघन लता का विच्छेद कर देता है, कर्मरूप ईंधन के समूह को भस्म कर देता है और वह श्रेष्ठ मानव सिद्ध परमात्मा के अक्षय सुख को प्राप्त करता है। जो भव्य मानव अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—इन पंचपरमेष्ठी देवों को विनयपूर्वक वन्दना करता है वह जन्म-जन्म में पुण्य सुख को प्राप्त करे और मेरे (पूजानिर्माता एवं पूजा कारक) लिए भी सुख की प्राप्ति हो।

षोडशकारण (भावना) पूजा

जैनदर्शन में चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता है। जो इस जगत् में अवतार लेकर विश्वकल्याण के लिए धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करे उसे तीर्थंकर, तीर्थकृत या तीर्थंकर कहते हैं। इनसे ही मूलतः जैन पूजा-काव्य का उद्भव हुआ है। तीर्थंकर वही आत्मा होता है जो अपनी साधना से सोलह भावनाओं या विशेष कारणों का चिन्तन करता है। भावना का तात्पर्य है कि तत्त्व का बार-बार चिन्तन करना, मनन करना। इससे तत्त्व-विचार और सिद्धान्त के प्रति दृढ़ता प्राप्त होती है। भावना माता के समान आत्मा का हितकर और खेती को बाड़ी की तरह संरक्षक होती है। भावना सोलह प्रकार की होती हैं—(1) दर्शनविशुद्धि (25 दोषरहित शुद्ध सम्यक् दर्शन (श्रद्धा)

धारण करना), (2) विनय सम्पन्नता (मोक्षमार्ग के साधन दर्शन, ज्ञान, चारित्र में तथा देव आगम गुरु में विनय धारण करना), (3) शीलव्रतानतिचार (अहिंसा सत्य आदि बारह व्रतों का निर्दोष पालन करना), (4) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग (समीचीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए निरन्तर अभ्यास करना), (5) संवेग (अन्याय-पाप-व्यसनों तथा दुःखों से अपने को सुरक्षित रखना), (6) शक्ति के अनुसार आहार ज्ञान एवं अभयदान करना) शक्तितस्त्याग, (7) शक्तितःतप (आत्म-कल्याण के लिए शक्तिपूर्वक कष्ट सहन करना, अथवा अनशन आदि बारह तपों का आचरण करना), (8) साधु समाधि (संयम तथा व्रत की साधना में लीन साधुजनों के उपसर्ग-कष्ट-विघ्नों को दूर करना), (9) वैयावृत्यकरण (गुणी-व्रती धर्मात्माओं की सेवा करना, दुःख को दूर करने का प्रयास करना), (10) अर्हद्भक्ति (अर्हन्तभगवान में शुद्धभाव से भक्ति करना), (11) आचार्यभक्ति (आचार्य में भावपूर्वक भक्ति करना), (12) बहुश्रुतभक्ति (उपाध्याय परमेष्ठी में भक्ति करना), (13) प्रवचन भक्ति (अर्हन्तभगवान की वाणी या आगम में भक्ति करना), (14) आवश्यकापरिहाणि (समता वन्दना स्तुति प्रतिक्रमण स्वाध्याय कायोत्सर्ग—इन छह कर्तव्यों का यथा-समय दृढ़पालन करना), (15) मार्गप्रभावना (अहिंसा ज्ञान आदि सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करना), (16) प्रवचनवत्सलत्व (गोवत्स के समान देशबन्धु-धर्मबन्धु में स्नेह करना) : इन सोलह भावनाओं के चिन्तन से भव्य आत्मा पूज्यतीर्थंकर पद को प्राप्त करता है।

इन भावनाओं का इतना अधिक महत्त्व है कि आत्म-कल्याण के इच्छुक मानव एवं महिलाएँ सोलह भावनाव्रत का पालन विधिपूर्वक करती हैं। आचार्यों ने इसकी विधि चारित्रशास्त्रों में लिखी है। यह व्रत प्रतिवर्ष सम्पूर्ण भाद्रपदमास में पालन करते हुए सोलह वर्ष तक करना होता है, सोलह वर्ष के पश्चात् इसका उद्यापन (उत्सवपूर्वक समाप्ति) किया जाता है। इस व्रत के पालनसमय प्रतिदिन सोलह कारण पूजा करने का नियम है और उद्यापन के समय में भी उद्यापन पूजा का नियम है।

सोलह कारण पूजा की रचना भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य श्री जयभूषण के द्वारा संस्कृत में की गयी है और षोडशकारण व्रतोद्यापन की पूजा केशवाचार्य तथा सुमतिसागर द्वारा की गयी है।

षोडशकारण पूजा की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है :

इन्द्रवज्रा छन्द :

ऐन्द्रं पदं प्राप्य परं प्रमोदं, धन्यात्मतामात्मनि मन्यमानः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेन्द्रलक्ष्म्याः, महाम्यहं षोडशकारणानि ॥[1]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि : पृ. 144-157।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदि षोडशकारणानि अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् इति आह्वानम्। ओं ह्रीं...अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः इति स्थापनम्। ओं ह्रीं...अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट् इति सन्निधिकरणम्—पुष्पांजलि क्षेपण करें।

भावसौन्दर्य--परमप्रमोदसहित इन्द्र के पद को धारण कर अपने मन में आत्मा को धन्य मानता हुआ, तीर्थंकर लक्ष्मी की कारणभूतदर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं की मैं पूजा करता हूँ। यहाँ पर उल्लासरूप भावों से उत्कृष्ट भक्ति परिणामों की अभिव्यक्ति होती है।

जल समर्पण करने का पद्य--

सुवर्णभृंगारविनिर्गताभिः, पानीयधारामिरिमाभिरुच्चैः।
दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेन्द्रलक्ष्याः, महाम्यहं षोडशकारणानि ॥

इस पद्य में उपजाति छन्द, रूपकालंकार भक्तिरस को अभिव्यक्त करते हैं.

अर्घसमर्पण करने के पद्य सं. 10 का सारांश—

अरिहन्त परमात्मा पद की सोलह कारण भावनाओं की पूजा विधि में, जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से निर्मित अर्घपात्र हम सबके लिए प्रशस्त मंगल का विस्तार करे। यहाँ तक भावनाओं का समुच्चय पूजन है। इसके पश्चात् प्रत्येक भावना का वर्णन करते हुए अर्घसमर्पण किया गया है। अन्त में प्राकृत जयमाला में प्रत्येक भावना का वर्णन तथा उसके फल का कथन किया गया है। उदाहरणार्थ जयमाला का प्रथम प्राकृत पद्य इस प्रकार है :

घत्ता छन्द

भवभवहिं निवारण, सोलहकारण, पयडमि गुणगणसायरहं।
पणविवितित्थंकर, असुहखयंकर, केवलणाण दिवायरहं ॥

सारसौन्दर्य—अनेक गुणों के समुद्र, अशुभ कर्म का क्षय करनेवाले, और केवलज्ञान रूपी सूर्य तीर्थंकरों को प्रणाम करके मैं जगत् के जन्म-मरण को मिटानेवाली सोलह कारण भावनाओं का कथन करता हूँ।

इस प्राकृत पद्य में परिकर तथा रूपक-अनुप्रास अलंकारों की छटा से शान्त रस का मधुर पान होता है।

जे सोलहकारण, कम्मवियारण, जे धरंति वयसीलधरा।
ते दिवि अमरेसुर, पहुमि णरेसुर, सिद्धवरंगण हियहि हरा ॥

सोलह कारण पूजा के अन्त में आशीर्वादरूप पद्य—

एताः षोडशभावना यतिवराः कुर्वन्ति ये निर्मलाः
ते वै तीर्थकरस्य नाम पदवीमायुर्लभन्ते कुलम्।

वित्तं कांचनपर्वतेषु विधिना स्नानार्चनं देवता
राज्यं सौख्यमनेकधा वरतपो मोक्षं च सौख्यास्पदम् ॥

इस पूजा में कुल चालीस पद्य विविध छन्दों में निबद्ध हैं जिनसे भक्तिरस की धारा बहती है। इस पूजा का मन्त्र—

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदिषोडशकारणेभ्यो नमः।

शास्त्रों में पुष्पांजलि व्रत का विधान है, पौराणिक कथा के आधार पर यह प्रसिद्ध है कि आर्यखण्ड के मृणालपुर नामक नगर में रहनेवाले श्रुतकीर्ति विप्र की पुत्री प्रभावती ने एक दिगम्बर मुनिराज के उपदेश से पुष्पांजलि व्रत का पालन किया था जिसके प्रभाव से वह प्रभावती सोलहवें स्वर्ग में देव उत्पन्न हुई। इस पुष्पांजलि व्रत में पंचमेरुपर्वतों की स्थापना कर चौबीस तीर्थंकरों की पूजा करने का नियम है। अढ़ाई द्वीप (मनुष्य लोक) में विभिन्न स्थानों में प्राकृतिक पंच मेरुपर्वत हैं, एक-एक मेरुपर्वत पर सोलह-सोलह अकृत्रिम जिन-मन्दिर शोभायमान हैं। उन अस्सी जिनालयों का पूजन इस व्रत में किया जाता है, इसलिए इस पूजा को पुष्पांजलि पूजा अथवा पंचमेरुपूजा कहते हैं। इस व्रत की सतत साधना करने के पश्चात् इसका उद्यापन किया जाता है।

इस पूजन के महत्त्व को लक्ष्यकर भट्टारक रत्नचन्द्र जी द्वारा संस्कृत में इस पूजा की रचना की गयी है। इनका समय वि. सं. 1600 कहा गया है। इस पूजा में पंचमेरुपर्वतों के मन्दिरों का पृथक्-पृथक् पूजन किया गया है। प्रथम सुदर्शन मेरुपर्वत के सोलह मन्दिरों का पूजन अठारह पद्यों में पाँच प्रकार के छन्दों में रचा गया है।

उदाहरणार्थ स्थापना करने का प्रथम पद्य इस प्रकार है :

जिनान् संस्थापयाम्यत्रावाहनादिविधानतः।
सुदर्शनभवान् पुष्पांजलिव्रत विशुद्धये ॥[1]

सारांश—पुष्पांजलिव्रत की शुद्धि के लिए स्थापना आदि विधिपूर्वक सुदर्शन मेरुपरस्थित सोलह मन्दिरों की स्थापना करते हैं।

मन्त्र—ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिषोडशचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं...अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं...अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जयमाला का अन्तिम पद्य—

इति रचितफलोद्यप्राप्तसुज्ञानधाराः।
हततमघनपापा नम्रसर्वामरेन्द्राः।

---

1. ज्ञानपीठ पुष्पांजलि, पृ. 139-197।

गतनिखिलविलापाः कान्तिदीप्ता जिनेन्द्राः
अपगतघनमोहाः सन्तु सिद्ध्यै जिनेन्द्राः ॥

इस मालिनी छन्द से शोभित काव्य में रूपक तथा स्वभावोक्ति अलंकारों की छटा से शान्त रस का अनुभव होता है।

(1) विशेष मन्त्र—जयमाला के अन्तिम अर्घ अर्पण का—

ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धि-भद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुक वनस्थित पूर्व दक्षिणपश्चिमोत्तरसम्बन्धि जिन चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मन्त्र का हिन्दी सार—

ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि भद्रशाल-नन्दन-सौमनस और पाण्डुकवन के पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तरदिशा के जिन चैत्यालयों में स्थित जिन प्रतिमाओं के लिए मैं पूणर्घ समर्पित करता हूँ ॥

(2) विजयमेरुपर्वत के मन्दिरों का पूजन—

इस पूजन में सत्रह पद्य हैं जो चार छन्दों में रचित हैं और अनेक अलंकारों से विभूषित हैं। अनुष्टुप्छन्द में स्थापना करने का पद्य :

जिनान् संस्थापयाम्यत्रावाहनादिविधानतः।
धातकीखण्डपूर्वाशामेरोः विजयवर्तिनः ॥

सारांश—दूसरे धातकी खण्डद्वीप की पूर्व दिशा में स्थित विजयमेरु सम्बन्धी जिनेन्द्रों की आवाहन आदि विधान से मैं स्थापना करता हूँ।

ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि जिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्—इति स्थापनम् ॥
जल अर्पण करने का पद्य—

सुतोयैः सुतीर्थोद्भवैः वीतदोषैः, सुगांगेयभृंगारनालास्यसंगैः।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं, यजे रत्नबिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

मन्त्र—ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि भद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुकवन स्थित-पूर्वदक्षिण-पश्चिमोत्तरस्थ जिन चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस काव्य में भुजंगप्रयातछन्द द्वारा भक्तिरस का पान कराया गया है।
जयमाला का प्रथम पद्य—

सकलकलिलमुक्ताः सर्वसम्पत्तियुक्ताः
गणधरगणसेव्याः कर्मपंकप्रणष्टाः।
प्रहतमदनमानास्त्यक्तमिथ्यात्वपाशाः
ललितनिखिलभावास्तेजिनेन्द्रा जयन्तु ॥

मालिनी छन्द से शोभित इस पद्य में स्वभावोक्ति, रूपक तथा परिकर अलंकारों के विन्यास से शान्तरस आत्मा में प्रवाहित होता है।

जयमाला का द्वितीय पद्य—

विमोह विमारितकामभुजंग, अनेकसदाविधिभाषितभंग।
कषायदवानलतत्त्वसुरंग, प्रसीद जिनोत्तम मुक्तिसुसंग ॥

(3) तृतीय अचलमेरुपर्वत के मन्दिरों का पूजन—

स्थापना— जिनान्संस्थापयाम्यत्रावाहनादिविधानतः।
धातकीपश्चिमाशास्थाचलमेरुप्रवर्तिनः ॥

मन्त्र—ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति ॥

जयमाला का दूसरा पद्य इस प्रकार है—पादाकुलकछन्द

सुरखेचरकिन्नरदेवगमं, यात्रागतचरणमुनीन्द्ररणम्।
नानारचनारचितप्रसरं, वन्दे गिरिराजमहं विभरम् ॥

जयमाला के सातवें पद्य का तात्पर्य इस प्रकार है :

इस काव्य में मालिनी छन्द के माध्यम से अचलमेरु का प्राकृतिक वर्णन किया गया है। इस पर्वत की पूजा के उदाहरणमात्र ये दो पद्य हैं। इसी प्रकार इस पूजा में कुल अठारह पद्य चार प्रकार के छन्दों में विरचित हैं जो भक्तिभाव पूर्ण हैं।

(4) मन्दिरमेरुपर्वत का पूजन :

इस गिरिराज की पूजा में कुल अठारह काव्य छह प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं जो अनेक अलंकारों से अलंकृत एवं भक्तिरस पूर्ण हैं। उदाहरणार्थ स्थापना का पद्य इस प्रकार शोभित है।

जिनान् संस्थापयाम्यत्रावाहनादिविधानतः।
मेरुमन्दिरनामानः, पुष्पांजलि विशुद्धये ॥

सारांश—मैं पुष्पांजलिव्रत की विशुद्धता के लिए आवाहन आदि विधि से मन्दिरमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमाओं की स्थापना करता हूँ।

अक्षत द्रव्य समर्पण करने का पद्य—

चन्द्रांशुगौरविहितैः कलमाक्षतांसैः
घ्राणप्रियैरवितथैः विमलैरखण्डैः।
मेरुं यजेऽखिलसुरेन्द्रसमर्चनीयं
श्रीमन्दिरं विनतपुष्करद्वीपसंस्थम् ॥

वसन्ततिलका छन्द में विरचित इस काव्य में उपमालंकार तथा परिकरालंकार के प्रयोग से भक्तिरस की धारा प्रवाहित होती है।

जयमाला का तीसरा काव्य—

> जन्मकल्याणसम्मोहितामरबलं, दर्शितानेकदेवांगनासुन्दरम्।
> प्रोल्लसत्केतुमालालयैः सुन्दरं, श्रीजिनागारबारं भजे भासुरम्॥

इस पद्य में लक्ष्मीधरा छन्द भक्त को आनन्दित कर रहा है। उत्प्रेक्षालंकार के सहयोग से शान्त रस, शीतल मन्द पवन को प्रवाहित कर रहा है।

इस पूजा की जयमाला का सातवाँ काव्य—

> विविधविषयभव्यं भव्यसंसारतारं
> शतमखशतपूज्यं प्राप्तसज्ज्ञानपारम्।
> विषयविषमदुष्टव्यालपक्षीशमीशं
> जिनवरनिकरं तं रत्नचन्द्रो भजेऽहम्॥

मालिनी जैसे मनोहर छन्द में रचित इस काव्य में परिकर, रूपक, उपमा अलंकारों की संसृष्टि से रमणीय शान्तरस की सरिता शीतलता प्रवाह कर रही है।

मन्त्र का सार—ओं ह्रीं मन्दरमेरु के भद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुकवन की चार दिशाओं में स्थित जिनमन्दिरों के जिनबिम्बों के लिए मैं पूर्ण अर्घ समर्पण करता हूँ।

(5) विद्युन्मालीमेरु के मन्दिरों का पूजन

इस पंचम विद्युन्माली नामक मेरुपर्वत पर भी चारों दिशाओं में चार वन और उनके चारों दिशाओं में चार-चार चैत्यालय, इस प्रकार कुल सोलह चैत्यालय शोभित हैं। इन मन्दिरों का पूजन कुल अठारह पद्यों में एवं पंचप्रकार के छन्दों में किया गया है। सरस और मनोहर पद्यों की रचना की गयी है। प्रथम स्थापना :

> जिनान्संस्थापयाम्यत्राबाहनादिविधानतः।
> पुष्करे पश्चिमाशास्थान् विद्युन्मालिप्रवर्तिनः॥

सारांश—पुष्कर द्वीप के पश्चिम दिशा में स्थित विद्युन्माली मेरु सम्बन्धी मन्दिरस्थ जिनप्रतिमाओं की मैं आवाहन आदि विधि से स्थापना करता हूँ।

अक्षत अर्पण करने का पद्य—

> इन्दुरश्मिहारयष्टि हैमभासभासितैः
> अक्षतैरखण्डितैः सुवासितैः मनः प्रियैः।
> जैनजन्ममज्जनांभसः प्लवातिपावनं
> पंचमं सुमन्दिरं महाम्यहं शिवप्रदम्॥

उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों से शान्तरस की पुष्टि हो रही है।

इस पूजा की जयमाला का अन्तिम सातवाँ पद्य—

घण्टा तोरण तारिकाब्जकलशैश्छत्राष्टद्रव्यैः परैः
श्रीभामण्डलचामरैः सुरचितैश्चन्द्रोपकरणादिभिः।
त्रैकाल्ये वरपुष्पजाप्यजपनैः जैनः करोत्वर्चनाम्
भव्यैः दानपरायणैः कृतदयैः पुष्पांजलेः शुद्धये ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द में विरचित इस पद्य में परिकर अलंकार के द्वारा भक्ति का मार्ग दर्शाया गया है जिससे आत्मा, हिंसा आदि पापों को दूरकर शान्ति के पथ में कुशलरीति से गमन कर सके।

पुष्पांजलि पूजा के अन्त में श्रीरत्नचन्द्र द्वारा शुभाशीर्वाद :

सर्वव्रताधिपं सारं, सर्वसौख्यकरं सताम्।
पुष्पांजलिव्रतं पुष्याद, युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥

सारांश—सर्वव्रतों में श्रेष्ठ, कल्याणप्रद और सज्जनों को सुखकारी पुष्पांजलिव्रत पूजा आप सबको अविनाशी लक्ष्मी को प्रदान करे। इस पद्य में अनुष्टुपछन्द है, इस पूजन से मानव के प्रति शुभकामना व्यक्त की गयी है। इस प्रकार यह पूजा 89 श्लोकों में समाप्त होती है।

श्रीदशलक्षणपूजा

विश्व में 1. आत्मा (जीव), 2. पुद्गल, 3. धर्म, 4. अधर्म, 5. आकाश, 6. काल—ये छह द्रव्य प्रधान हैं। इनमें आत्मा परमार्थदृष्टि से स्वतन्त्र, अखण्ड परमशुद्ध निर्मल चैतन्य (ज्ञानदर्शन) स्वरूप प्रमुख द्रव्य है परन्तु लौकिक दृष्टि से ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मों से, मिथ्यात्व-राग-द्वेष-मोह आदि भाव कर्मों से और शरीर आदि नोकर्मों से पराधीन अशुद्ध एवं विकार सहित है। उस अशुद्ध आत्मा की शुद्धि के लिए आचार्यों ने धार्मिक मार्ग दर्शाया है। धर्म वह है जो विकारी आत्माओं को, जगत् के जन्म-मरण आदि अपार दुःखों से छुटाकर अक्षय अनन्त मोक्ष सुख को प्राप्त करा दे। "यः सत्त्वान् संसार दुःखतः निष्कास्य श्रेष्ठ सुखे धरति सः धर्मः" यह व्याकरण की दृष्टि से शाब्दिक अर्थ धर्म का होता है। धर्म दस प्रकार का होता है :

1. उत्तमक्षमा (श्रद्धापूर्वक क्रोध का त्याग), 2. मार्दव (अभिमान का त्याग), 3. आर्जव (माया = छल-कपट का त्याग), 4. शौच (लोभ-तृष्णा का त्याग), 5. सत्य (मनसा वाचा कर्मणा सत्य का आचरण), 6. संयम (इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुए प्राणियों की सुरक्षा करना), 7. तप (इच्छा को रोककर व्रत-नियम का आचरण), 8. त्याग (मोह का त्याग करते हुए आहार, उपकरण, औषध, जीवनसुरक्षा आदि दान करना), 9. आकिंचन्य (धन-धान्य आदि वस्तुओं का भावपूर्वक त्याग करना), 10. ब्रह्मचर्य (शीलव्रत धारण करना)—ये दस धर्म हैं। इनकी साधना विधिपूर्वक करना-दशलक्षणव्रत कहा जाता है और इस व्रत की साधना में भावपूर्वक

दशधर्मों का अष्ट द्रव्यों से पूजन करना दशलक्षणव्रत पूजा कही जाती है। श्री भट्टारक धर्मचन्द्र जी ने इस पूजा को संस्कृत में बनाया है। इसमें अनुष्टुपछन्द में एक पद्य और वसन्ततिलका छन्द में 9 पद्य—कुल दस पद्य विरचित हैं। उदाहरणार्थ स्थापना का पद्य इस प्रकार है :

उत्तमक्षान्तिकाद्यन्त ब्रह्मचर्यसुलक्षणम्।
स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम् ॥[1]

मन्त्र—ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्म अत्र अवतर अवतर संवौषट् ओं ह्रीं ...अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ओं ह्रीं...अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जल अर्पण करने का पद्य—

प्रालेयशैलशुचिनिर्गतचारुतोयैः
शीतैःसुगन्धसहितैः मुनिचित्ततुल्यैः।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय शमादियुक्तम् ॥

वसन्ततिलकाछन्द में रचित इस पद्य में उपमालंकार के व्यवहार से शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है।

संस्कृत पूजा के पश्चात् पृथक्-पृथक् दशधर्मों की दश जयमालाएँ हैं जिनका प्रथम पद्य संस्कृत में और अन्य पद्य प्राकृत में विरचित हैं। दश जयमालाओं के अन्त में एक समुच्चय जयमाला प्राकृत भाषा में है, इन प्राकृतभाषा की जयमालाओं के निर्माता श्री रइधूकविवर हैं। समुच्चय जयमाला के अन्त का पद्य इस प्रकार महत्त्वपूर्ण है :

कोहाणलुचुक्कउ, होउ गुरुक्कउ, जाइ रिसिंदहिं सिट्ठइं।
जगताइं सुहंकरु, धम्ममहातरु, देइ फलाइं सुमिट्ठइं ॥

भावसौन्दर्य—क्रोधानल का त्याग कर महान् शुद्ध आत्मा बनो—ऐसा ऋषिवरों ने उपदेश दिया है। कल्याण करनेवाला यह धर्मरूपी महावृक्ष विश्व प्राणियों को पुण्यरूप मीठे फल प्रदान करता है।

प्रतिष्ठासार संग्रह काव्य

जिसमें एक महापुरुष का पूजन लिखा होता है उसको 'पूजा-काव्य' कहते हैं। जिसमें अनेक महापुरुषों का पूजन वर्णित है उसको 'समुच्चय पूजा-काव्य' कहते हैं।

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, दशलक्षणपूजा, पृ. 199-229।

जिसमें व्रतों का समापनपूर्वक उद्यापन होता है उसको 'उद्यापन पूजा-काव्य' कहते हैं। जिसमें विशेष पूजा की प्रक्रिया कथित हो उसको 'विधानकाव्य' कहते हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रतिष्ठापाठ काव्य' प्राचीन अथवा अर्वाचीन आचार्यों या विद्वानों द्वारा विरचित हैं जिनमें मूर्तियों (प्रतिमाओं) की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठापना अथवा प्राणप्रतिष्ठा की प्रक्रिया का वर्णन है, ये प्रतिष्ठाकाव्य विशालकाय और संस्कृत भाषा में निबद्ध होते हैं। वर्तमान में पंचकल्याण प्रतिष्ठा इन ही प्रतिष्ठा काव्यों के आधार पर होती है। इन प्रतिष्ठाकाव्यों का, संस्कृत से हिन्दी भाषा में अनुवाद हो गया है।

इस प्रतिष्ठासार संग्रह ग्रन्थ में प्रतिष्ठा का लक्षण, मन्दिर-निर्माण विधि, भूमि-शुद्धि एवं शिलान्यास विधि, प्रतिमा-निर्माण विधि, प्रतिष्ठा के शुभ मुहूर्त, मण्डपप्रतिष्ठा विधि, प्रतिष्ठा के सत्पात्र, नान्दीविधान, धर्मध्वज स्थापना, सपादलक्षजपविधि, विश्वशान्तियज्ञविधि, यागमण्डल का निर्माण, यागमण्डल में जिन बिम्ब स्थापना, यागमण्डल विधान की सामग्री, अंगशुद्धि, न्यास एवं सकलीकरण क्रिया, 250 गुणों का पूजन, स्वस्ति पाठ, अभिषेक विधि, शान्तिधारा विधान, सिद्धबिम्ब प्रतिष्ठा, आचार्य, उपाध्याय, साधुबिम्ब प्रतिष्ठा, मण्डल प्रतिष्ठा और चरणलक्षण प्रतिष्ठा का पूर्ण वर्णन है।

प्रतिष्ठासार संग्रह काव्य में, अनेक प्रतिष्ठाग्रन्थों के आवश्यक अंग तथा विधि लेकर, श्री ब्र. शीतल प्रसाद जी ने क्रमशः संग्रह किया है तथा हिन्दी में अनुवाद भी छन्दोबद्ध के रूप में किया है। इस प्रतिष्ठासार काव्य में पंचकल्याणकों की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—(1) गर्भकल्याणक प्रक्रिया—तीर्थंकर महापुरुषों की स्वर्ग में इन्द्रों की सभा में प्रश्नोत्तर, तीर्थंकर, महत्त्व वर्णन, कुबेर को आदेश, 2. नगर में राजमहल की रचना, 3. माता-पिता की भक्ति, 4. रत्नवृष्टि होना, 5. माता के गर्भ का देवियों द्वारा शोधन, माता की भक्ति, 6. माता का सोलह स्वप्न देखना, 7. नित्य पूजा, शान्ति हवन, 8. राजसभा में स्वप्नों का फल, 9. इन्द्रों द्वारा गर्भ कल्याणक महोत्सव, 10. गर्भकल्याणकपूजन, 11. देवियों द्वारा माता की सेवा, 12. माता तथा देवियों के मध्य 50-उपयोगी प्रश्नोत्तर।

2. तीर्थंकरों का जन्मकल्याणक :

1. तीर्थंकर जन्म महोत्सव, 2. इन्द्र तथा देवों द्वारा तीर्थंकर बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाना, 3. सुमेरुपर्वत तथा क्षीरसमुद्र की रचना का वर्णन, 4. तीर्थंकर का सुमेरु पर जन्माभिषेक महोत्सव, 5. जन्मकल्याणक के समय चौबीस तीर्थंकरों का पूजन, 6. राजभवन में तीर्थंकर प्रभु का पधारना, 7. तीर्थंकर के मात-पिता के प्रमोद का वर्णन, 8. इन्द्र द्वारा ताण्डव नृत्य का प्रदर्शन, 9. तीर्थंकर के पूर्व भवों का प्रदर्शन, 10. तीर्थंकर के गृहस्थ जीवन का वर्णन, 11. तीर्थंकर बालक की दोलना

क्रिया, 12. तीर्थंकर बालक की क्रीडा का वर्णन, 13. युवा तीर्थंकर के राज्याभिषेक का वर्णन।

3. तीर्थंकर का तपकल्याणक :

1. तीर्थंकर को वैराग्य होना एवं बारह भावना का चिन्तन, 2. लोकान्तिक देवों का शुभागमन एवं स्तुति, सम्बोधन, 3. इन्द्रों का पालकी सहित आगमन, 4. तीर्थंकर का राज्यत्याग और पालकी द्वारा वन को जाना, 5. तपोवन में दीक्षा लेने की विधि, 6. मातृका यन्त्र एवं प्रतिमा पर अक्षरन्यास, 7. प्रतिमा पर संस्कार, 8. तीर्थंकर के तपकल्याणक का पूजन-महोत्सव।

4. तीर्थंकर का ज्ञानकल्याणक :

1. तीर्थंकर मुनिराज का प्रथम आहार ग्रहण, 2. तीर्थंकर मुनिराज का क्षपकश्रेणी भावों को धारण करना, 3. मातृका यन्त्र विधि, 4. तिलकदान विधि, 5. अधिवासना विधि, 6. मुखोद्घाटन क्रिया, 7. नयनोन्मीलन क्रिया, 8. केवलज्ञानसूर्य का उदय, 9. ज्ञानकल्याणक का पूजन, 10. समवशरण की रचना व पूजा, 11. तीर्थंकर भगवान् का धर्मोपदेश, 12. भगवान् का विहार और दिव्यध्वनि।

5. तीर्थंकर का मोक्षकल्याणक :

1. मोक्षकल्याणक की विधि, 2. तीर्थंकर के मोक्षकल्याणक का पूजन, 3. विश्वशान्ति हवन, 4. अभिषेक, शान्तिपाठ, विसर्जन पाठ, 5. जिनयज्ञ विधान, 6. सिद्धपूजा, 7. महर्षिपूजा, 8. स्वस्तिपाठ, 9. शान्तिधारा ।

1. सिद्धप्रतिमाप्रतिष्ठा, 2. आचार्य प्रतिमा प्रतिष्ठा, 3. उपाध्याय प्रतिमा प्रतिष्ठा, 4. साधुप्रतिमा प्रतिष्ठा, 5. श्रुतस्कन्धप्रतिष्ठा, 6. चरणचिह्नप्रतिष्ठा, 7. मन्दिर एवं वेदीप्रतिष्ठा, 8. कलशारोहण एवं ध्वजारोहण प्रक्रिया ।

प्राकृतभाषा में सिद्धपूजा

1. गंगादि-तित्थप्प हवप्पएहिं
   सगंधदा-णिम्मकदाणएहिं।
   अच्चेमि णिच्चं परमट्ठसिद्धं
   सव्वट्ठ-संपादय-सव्वसिद्धे ॥ जलं निर्वपामीति ॥

2. गंधेहि धाणाण सुहप्पएहिं
   समच्चयाणं पि सुहप्पएहिं।

अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्वसिद्धे ॥ चन्दनं निर्वपामीति ॥

3. पेरंत-छोणी-सिपकारणेहिं
वरक्खएहिं सिपकारणेहिं।
अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्वसिद्धे ॥ अक्षतं निर्वपामीति ॥

4. पुप्फेहि दिव्वेहि सुवण्णएहिं
कव्वे कईसेहि सुवण्णिएहिं।
अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्व सिद्धे ॥ पुष्पं निर्वपामीति ॥

5. बब्भेहि णाणा-सुरसप्पएहिं
भव्वाण णाणादि रसप्पएहिं।
अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्व सिद्धे ॥ नैवेद्यं निर्वपामीति ॥

6. देदिव्व माणप्पह दीवएहिं
संजूय आणं सिरिदेवएहिं।
अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्व सिद्धे ॥ दीपं निर्वपामीति ॥

7. कालागरुब्भूय-सुहूवएहिं
जीवाणं पावाण सुहूवएहिं।
अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्वसिद्धे ॥ धूपं निर्वपामीति ॥

8. अणग्घभूएहिं फलव्वएहिं
भव्वस्स संदिण्ण फलव्वएहिं।
अच्चेमि णिच्चं परमट्ठ सिद्धे
सव्वट्ठ संपादय सव्व सिद्धे ॥ फलं निर्वपामीति ॥

9. णएण णाणेण य दंसणेण
तवेण उट्ठेण य संजमेण।
सिद्धे तिकाले सुविसुद्ध बुद्धे
समग्घणयो सयले विसुद्धे ॥ अर्घं निर्वपामीति ॥

प्राकृतभाषा में पूजा-काव्य

रचयित्री—आर्यिका विशुद्धमति माता जी

स्थापना

सम्मं लसंतो, चारित्तरत्तो, धम्मेणजुत्तो, इक्खा विरत्तो।
सिरिविज्जासायर, चित्तम्मितिट्ठो, णमामि णिच्चं जोएहिं सुद्धो ॥

ओं ह्रीं श्रीं 108 विद्यासागर महाराज। अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आवाहनम्

ओं ह्रीं...अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ओं ह्रीं...अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

कंचनकलशभरेहिं, विमलसुगंधेहि वारि धारेहिं।
अइमत्ति संपउत्तो, अच्चेमि सूरिणो णिच्चं ॥ जलम् ॥

कोसीरमलयचन्दनकुंकुमपंकेहिं सुगंध गंधेहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं ॥ चन्दनम् ॥

मुत्ताहल पुंजेहिं सयलक्खेहिं सुगंध मालेहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं ॥ अक्षतम् ॥

कइयार कमल कुवलय णीणुप्पलकुमुद कुसुम मालेहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं ॥ पुष्पम् ॥

बहुविह णइवेज्जेहिं लड्डू घेवर सुखज्ज फेणीहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं॥ नैवेद्यम् ॥

णिक्कज्जल कलुसेहिं पडिप्प करणेहिं रयणदीवेहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं॥ दीपम् ॥

चंदण कालागरुहिं णाणाविह अइ सुगंध धूवेहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं ॥ धूपम् ॥

दाडिम अम्म फलेहिं कदली नारंग दक्ख पक्केहिं।
अइमत्ति संपउत्तो अच्चेमि सूरिणो णिच्चं ॥ फलम् ॥

जलगंध अक्खय सुपुप्फ चरुं पदीवं
धूवं फलं मिलिय कंचणथालभरियं।
पायारविंद अमलं मे अच्चणीयं
असत्तभत्ति मणिबद्ध सहाय हेदुं ॥ अर्घम् ॥

जयमाला

सिरिविज्जासायर गणी, पुज्जो मणवयण काय संजुत्तो।
रयणत्तएण हेदुं, तम्हा सूरी हु मे सरणं ॥

पण्ण आयार दह धम्म अवगाहियो
गुत्ति तिय सम्म शुदि वंदणा पयासिओ।
पयच्छिल देह चत्त पच्चक्खाणधारणं
विज्जासूरि देंतु अम्हं वरं मंगलं ॥

रायदोसमोहजित्त मुत्तिमग्गहाणियो
गयणमिव णिरुवलेव परण असंभाहियो।
पसत्थभाव बहुविणय सुभेयणाणं मणं
विज्जासूरि देंतु अम्हं वरं मंगलं ॥

विण्णिगारइवणसइ भत्ति बहु पयासयइ
कुबोधविण्णासह भव्वजण विमोहयइ।
जम्मजरमरण तियपण्णभवविहंदणं
विज्जासूरि देंतु अम्हं वरं मंगलं ॥

सीलवंत जोगचित्त भोगदेहदोनिरत्त
विगयरलोयकामकोह दुविह महातवपवित्त
गुणगभीर धीर वीर मद्दवमाणणिछलं
विज्जासूरि देंतु अम्हं वरं मंगलं ॥

एण अच्चणाए जो आइरियो पुज्जए
तेण संसारघणवेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सव्व सुह सग्गमोक्खं वरं
विज्जासूरि देंतु अम्हं वरं मंगलं ॥ अर्घम् ॥

अप्पं सहाव लहिइण विरागपत्तं
विज्जस्स सागरमुणी भविबंद णिच्चं।
संसारखार आदि घोरसमत्थतरिदुं
सुह संति तुरिय दिसंतु विसुद्धमइया ॥ पुष्पांजलि ॥

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी जैन पूजा-काव्यों में छन्द, रस, अलंकार

संस्कृत साहित्य में जैसे छन्द, रस और अलंकार के प्रयोग से भाषा में, माधुर्य और चमत्कार व्यक्त करता है तथा संस्कृत पूजा-काव्य में इन तीनों के प्रयोग भी पूर्व में दर्शाये गये हैं उसी प्रकार पूजा-काव्य की हिन्दी भाषा में भी छन्द, रस और अलंकारों के सुन्दर प्रयोग किये गये हैं। इससे जैन पूजा-काव्य में सरस, मधुरता और चमत्कारपूर्ण अर्थ या भाव प्रकाशित होता है।

हिन्दी के जैन कवियों के भगवत्पूजा के पद्यों में मनोहर रस, छन्द एवं अलंकारों के प्रयोग नितरां भव्यतापूर्वक दृष्टिगोचर होते हैं इसलिए जैन पूजा-काव्य, सरस काव्यत्व के गौरव को प्राप्त हुए हैं। इनके पठन और श्रवण मात्र से ही मानव के मानस में आह्लाद और शान्ति का अनुभव होता है। जैन हिन्दी पूजा-काव्यों में संस्कृत एवं हिन्दी के मात्रिक तथा वर्णिक (गणछन्द) छन्दों का यथासम्भव व्यवहार हुआ है। इन काव्यों में छन्द, रस तथा अलंकारों के द्वारा शान्तरस का पोषण किया गया है। कारण कि इन भक्तिकाव्यों में देव, आगम एवं गुरु की पूजा के माध्यम से आत्मा में शान्तभावों से आनन्दानुभव होता है।

जैन भक्ति की शान्तिपरकता

"कवि बनारसीदास ने 'शान्तरस' को रसराज कहा है—'नवमो शान्तरसनिकोनायक'। उनका यह कथन जैनदर्शन के 'अहिंसा' सिद्धान्त के अनुकूल ही है। जैन भक्तिकाव्य पूर्ण रूप से अहिंसक है।"[1]

पूजा-विधान में अभिषेक के पश्चात् स्वस्तिवाचन करते हुए सबसे प्रथम सामान्य पूजा की जाती है। वह—'देव-शास्त्र-गुरु' पूजा के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है। सबसे प्रथम हिन्दी में कविवर श्री द्यानतराय जी ने अठारहवीं शती में श्री

---

1. डॉ. प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, देहली, 1964, पृ. 29

देव-शास्त्रगुरु-पूजा की रचना की है जिसका प्रथम स्थापना छन्द इस प्रकार है–

प्रथम देव अरहन्त सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रन्थ महन्त मुकतिपुर पन्थ जू।
तीनरतन जगमाँहि सु ये भवि ध्याइए,
तिनकी भक्ति प्रसाद परमपद पाइए॥[1]

इस पद्य में रूपकालंकार, अडिल्लछन्द और शान्तरस की धारा प्रवाहित है। कवि 'पुष्पइन्दु' रचित विस्तृत देव, शास्त्र, गुरु पूजा का प्रथम स्थापना का पद्य–

चारघातियाघात अनन्त चतुष्टय पाए
दिव्यबोध से सर्वतत्त्व सिद्धान्त बताए।
ताका लहि भविबोध मोक्षमारग प्रति धावे
इम जिनेन्द्रवरदेव तास वच शास्त्र कहाए।
तिन अनुगामी ग्रन्थ रच, त्रिविध सुगुरु परवीन।
ते सब धारहु [illegible] [illegible] [illegible] सुजानि॥[2]

इस पद्य में षट्पद छन्द स्वभावोक्ति एवं रूपक अलंकार और शान्तरस है। इसी पूजन की देवजयमाला का छठा पद्य इस प्रकार है–

जय विश्वरमापति त्रिजगभूप, जय ब्रह्म विष्णु बुध हर स्वरूप।
जय सुमत सर्वलोचन जिनेन्द्र, जय शम्भु परम आनन्द कन्द॥

इस पद्य में रूपक, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति अलंकारों से शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है। इस पूजन में 47 पद्य विविध छन्दों में निबद्ध हैं।

तीसरी देव-शास्त्र-गुरुपूजन श्री जुगलकिशोर एम.ए. द्वारा विरचित है जो वर्तमान में एक आध्यात्मिक कवि हैं। इस पूजन में कुल 35 पद्य विविध छन्दों में गुम्फित हैं। ये आधुनिक छन्द हैं। इस पूजन का प्रथम स्थापना का पद्य इस प्रकार है–

केवल रवि किरणों से जिसका सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर,
उस श्री जिनवाणी में होता तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन।
सद्दर्शन बोधचरणपथ पर अविरल जो चलते हैं मुनिगण,
उन देव परम आगम गुरु को शतशत वन्दन शत शत वन्दन॥

इस पद्य में रूपक और स्वभावोक्ति अलंकार से शान्तरस की धारा बहती है। इसी पूजन का नैवेद्य का पद अपना महत्त्व दर्शाता है–

---

1. जिनेन्द्रपूजन मणिमाला, प्र. सं., पृ. 68-74
2. तथैव, पृ. 121-127

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से प्रभु भूख न मेरी शान्त हुई,
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।
युग-युग से इच्छासागर में प्रभु गोते खाते आया हूँ,
पंचइन्द्रिय मन के षट्‌रस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ॥[1]

इस पद्य में रूपक अलंकार से आत्मा में शान्तरस का अनुभव होता है।

जैन दर्शन में रविव्रत का बहुत सम्मान है। प्राचीन काल में वाराणसी नगरी में निवास करनेवाले श्रेष्ठी मतिसागर और उनकी पत्नी गुणसुन्दरी ने एक दिगम्बर मुनिराज के उपदेश से नौवर्ष तक विधिपूर्वक रविव्रत का पालन कर उत्सव के साथ उसका उद्यापन किया था। पुराणों में इसकी कथा प्रसिद्ध है। उसी समय से धर्मवत्सल पुरुष और महिलाएँ प्रति रविवार को रविव्रत पालन करती हैं और तीर्थंकर पार्श्वनाथ का पूजन करती हैं। इसको रविव्रत पूजा भी कहते हैं। इसमें विविध छन्दों में निबद्ध उन्तीस पद्य हैं।

उदाहरणार्थ दीप अर्पण करने का पद्य इस प्रकार है—

मणिमय दीप अमोलक लेकर जगमग ज्योति जगायी,
जिनके आगे आरति करके मोहतिमिर नश जायी।
पारसनाथ जिनेश्वर पूजो, रविव्रत के दिन माहीं
सुखसम्पति बहु होय तुरत ही आनन्द मंगल दायी॥[2]

इस पद्य में नरेन्द्र छन्द (जोगीरासा), रूपक अलंकार, उत्प्रेक्षा अलंकार, शान्तरस की सरिता प्रवाहित कर रहे हैं।

सप्तर्षि पूजा (सात महर्षियों का पूजन, जो ऋद्धिधारी थे)

धूप अर्पण करने पद्य

दिक्‌चक्र गन्धित होय जाकर, धूप दश अंगी कही
सो लाय मन वच काय शुद्ध लगाय कर खेहूँ सही।
मन्वादिचारणऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करूँ
ता करें पातक हरें सारे सकल आनन्द विस्तरूँ॥

इस पद्य में गीता छन्द और उत्प्रेक्षा अलंकार से भक्ति का स्रोत बहता है, जयमाला का प्रथम पद्य—

वन्दौं ऋषिराजा, धर्मजहाजा, निजपरकाजा करत भले,
करुणा के धारी, गगनविहारी, दुख अपहारी भरम दले।

---

1. जिनेन्द्रपूजनमणिमाला, पृ. 284-288
2. तत्रैव, पृ. 147-152

काटत जगफन्दा, भविजनवृन्दा, करत अनन्दा चरणन में
जो पूजै, ध्यावै, मंगल गावै, फेर न आवै भववन में॥[1]

इस पद्य में रूपक और स्वभावोक्ति अलंकार शान्तरस को उछला रहे हैं।

श्री अष्टम नन्दीश्वर द्वीप के जिनालयों का पूजन

ईसा की अठारहवीं शती में कविवर द्यानतराय जी ने श्रीनन्दीश्वर पूजा का निर्माण किया है। इसमें विविध छन्दों में बीस पद्य निबद्ध हैं। उदाहरणार्थ—

जल अर्पण करने का प्रथम पद्य इस प्रकार है—

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथ नीर भरा
तिहुँ धारदयी निरवार, जम्मन मरण जरा।
नन्दीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पूज करौं
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनन्दभाव धरौं॥

इस पद्य में अवतार छन्द के पढ़ने से ही आत्मा में शान्ति का उदय होता है। इस पद्य के अतिशयोक्ति एवं स्वभावोक्ति अलंकार आभूषण हैं।

इसी पूजा की जयमाला का नवम पद्य इस प्रकार है—

कोटि शशि भानु दुति तेज छिप जात है
महावैराग्य परिणाम ठहरात है।
वचन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं
भवन बावन प्रतिमा नमों सुखकरं॥[2]

इस पद्य में अतिशयोक्ति और विभावना अलंकारों के द्वारा शान्तरस की सरिता प्रवाहित होती है। इस काव्य में हीरक छन्द की मधुर स्वरलहरी लहरा रही है।

सोलह कारण पूजन (सोलह भावना पूजा)

इस पूजन में कविवर द्यानतराय जी ने उन पवित्र सोलह कारणों या भावनाओं का वर्णन किया है जिनके अनुचिन्तन करने से भव्य आत्मा तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है, जो धर्मतीर्थ का महान् प्रवर्तन करते हैं। इस पूजन में विविध छन्दों में रचित कुल 38 पद्य हैं जो विविध अलंकारों से अलंकृत हैं। उदाहरणार्थ स्थापना का प्रथम पद्य इस प्रकार है—

---

1. जिनेन्द्रमणिमाला, पृ. 161-165
2. तथैव, पृ. 166-171

> सोलह कारण भाय जे तीर्थंकर भये
> हरषे इन्द्र अपार मेरु पर ले गये।
> पूजा कर निज धन्य लखो बहु चाव सों
> हम हूँ षोडश कारण भावें भाव सौं॥

इस पद्य में चान्द्रायण छन्द और स्वभावोक्ति अलंकार शोभित हैं।
जल अर्पण करने का पद्य—

> कंचनझारी निर्मल नीर, पूजों जिनवर गुणगंभीर।
> परम गुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो।
> दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकरपद पाय,
> परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥[1]

श्रीकलिकुण्डपार्श्वनाथ पूजा

कलिकुण्डयन्त्र की स्थापना कर भगवान पार्श्वनाथ का पूजन किया जाता है इसलिए इस पूजा को श्रीकलिकुण्ड पार्श्वनाथ पूजा के नाम से कहते हैं। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इस पूजा में विविध छन्दों में रचित कुल 35 पद्य हैं। उदाहरणार्थ इस पूजा की स्थापना का पद्य इस प्रकार है—

> है महिमा को थान शुद्धवर, यन्त्र कलीकुण्ड जानो।
> डाकिन शाकिन अगनि चोर भय, नाशन सब दुख खानो।
> नवग्रह का सब दुःखविनाशक, रवि शनि आदि पिछानो
> तिसका मैं स्थापन कर हूँ, त्रिविध योग कर लानो॥[2]

इस पद्य में जोगीरासा छन्द द्वारा भक्तिरस की मधुर धारा प्रवाहित है।
जल अर्पण करने का पद्य—

> गंगा को नीरं, अति ही शीरं, गन्धगहीरं मेल सही,
> भर कंचर झारी, आनन्द धारी, धार करों मन प्रीति लही।
> कलि कुण्डसुयन्त्रं, पढ़कर मन्त्रं, ध्यावत जे भविजन ज्ञानी।
> सब विपति विनाशै, सुखपरकाशै, होवे मंगल सुखदानी॥

त्रिभंगी जैसे मनोहर छन्द में रचित यह पद्य भक्ति रस की वर्षा करता है।

श्री महावीर तीर्थंकर पूजा

कविवर श्री वृन्दावन ने भगवान महावीर पूजन की रचना की है। आपने अनेक

---

1. जिनेन्द्रमणिमाला, पृ. 185-193
2. जिनेन्द्रमणिमाला, पृ. 266-272

मनोहर छन्दों में तेतीस पद्यों की रचना भावपूर्ण करके आत्मा को भगवान् की भक्ति में तन्मय किया है। आपका समय ईशा की अठारहवीं शती माना जाता है। उदाहरणार्थ स्थापना का प्रथम पद्य—

श्रीमतवीर हरैं भवपीर, भरे सुखशीर अनाकुल ताई,
केहरिअंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआई।
मैं तुमको इत थापतु हों प्रभु, भक्तिसमेत हिये हरषाई,
हे करुणाधनधारक देव, इहाँ अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई॥[1]

इस पद्य में मत्तगयन्द छन्द, रूपक तथा अनुप्रास अलंकारों के साथ, शान्तरस की छटा से सहृदयों को भक्ति में तन्मयकर देता है।

जल अर्पण करने का पद्य—

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों,
प्रभुवेग हरो भवपीर, यातें धार करों।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो,
जय वर्धमान गुणधीर, सन्मति दायक हो॥

इस पद्य में अष्टपदी अथवा अवतार छन्द शान्तरस के योग्य प्रयुक्त किया गया है। इसमें उपमा, अनुप्रास और स्वभावोक्ति अलंकार शान्तरस के माधुर्य को व्यक्त कर रहे हैं।

जयमाला का प्रथम पद्य

गनधर, अशनिधर, चक्रधर, हलधर गदाधर वरवदा
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा।
दुखहरन आनन्दभरन तारण तरन चरण रसाल हैं
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नतभाल की जयमाल हैं।

हरिगीता छन्द, यमक, अनुप्रास, उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति और स्वभावोक्ति अलंकारों की छटा से यह पद्य शान्तरस का सरोवर है जो कि आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करता है।

जयमाला का द्वितीय छन्द (पद्य)

जयत्रिशलानन्दन, हरिकृतवन्दन, जगदानन्दन, चन्दवरं।
भवतापनिकन्दन, तनमनवन्दन, रहितसपन्दन नयनवरं॥

इस पद्य में घत्ता छन्द की मधुर ध्वनि के साथ यमक, अनुप्रास, रूपक और स्वभावोक्ति अलंकार भक्त के मन-मन्दिर को अलंकृत कर शान्ति प्रदान कर रहे हैं।

---

1. जिनेन्द्रमणिमाला, पृ. 321-325

जयमाला का तृतीय पद्य

> जय केवलभानुकलासदनं, भविकोक विकासन कंजवनं।
> जगजीत महारिपु मोहहरं, रजज्ञानदृगाम्बर चूरकरं॥

इस पद्य में तोटक छन्द का प्रयोग किया गया है जो कर्णप्रिय होने से भक्तिभाव की वृद्धि करता है। रूपक और अनुप्रास अलंकारों से भावपक्ष में सौन्दर्य की वृद्धि होती है। शान्तरस का यहाँ प्रभाव झलकता है।

सरस्वती-पूजा

कविवर द्यानतराय जी ने सरस्वती, जिनवाणी अथवा शास्त्र (आगम) की भक्ति करने के लिए सरस्वती पूजा की रचना की है। इस पूजा में विविध छन्दों में विरचित बाईस पद्य हैं। इसमें यह भाव दर्शाया है कि तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि (धर्म उपदेश) को सुनकर चतुर ज्ञानधारी गणधरों ने हृदय में धारण किया, उनसे प्रतिगण-धरों ने ग्रहण किया, इसके बाद शिष्य-प्रशिष्य परम्परा द्वारा प्रसारित होकर विश्वकल्याण के लिए जनसाधारण तक प्राप्त हुआ।

पूजन का एक पद्य जल अर्पण सम्बन्धी, उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

> क्षीरोदधिगंगा, विमलतरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा,
> भरि कंचनझारी, धार निकारी, तृषानिवारी हितचंगा।
> तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमयी,
> सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्यमयी॥[1]

इस पद्य में त्रिभंगी छन्द चित्त को आकर्षित करता है और अतिशयोक्ति और स्वभावोक्ति अलंकार शान्तरस व्यक्त कर रहे हैं।

सोरठा—

> ओंकार धुनि सार, द्वादशांग वाणी विमल।
> नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरै॥

परमात्म-पूजन

कवि पुष्प इन्दु ने भक्तिवश इस पूजन की रचना की है। इसमें विविध छन्दों में विरचित तेतीस पद्य हैं जो भावपूर्ण पढ़ने में मधुर एवं शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रस्तुत हैं। उदाहरणार्थ प्रथम स्थापना का पद्य—

> हे परम सौभाग्य प्रभुवर, आज यह अवसर मिला।
> आप से अनुभूति निज पाने हृदयशतदल खिला।

---

1. जिनेन्द्रपूजनमणिमाला, पृ. 328-331

ध्यानपथ से हृदयमन्दिर में बुलाता हूँ तुम्हें,
आओ, विराजो, सन्निकट, कृतकृत्य अब करिए हमें॥[1]

उपगीताछन्द में रचित एवं रूपकालंकार से शोभित यह पद्य भक्तिरस को प्रवाहित करता है।

पंचमेरुपूजनकाव्य

कविवर द्यानतराय जी ने पंचमेरुपूजा की रचना कर अपना भक्ति भाव प्रदर्शित किया है। इसमें ढाई द्वीप के पंचमेरुपर्वतों के अस्सी अकृत्रिम, विशाल जिनालयों का पूजन इक्कीस पद्यों में तथा अनेक छन्दों में किया गया है। उदाहरणार्थ जल अर्पण करने का पद्य—

शीतल मिष्ट सुवासमिलाय, जलसौं पूजों श्री जिनराय,
महासुख होय, देखें नाथ परम सुख होय।
पाँचो मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रणाम,
महासुख होय, देखें नाथ परमसुख होय॥[2]

इस पद्य में आंचलीवद्ध चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है जो पढ़ने में ही मधुर दर्शाता है। भक्ति रस का प्रवाह है।

दशलक्षणधर्म पूजा-काव्य

कविवर द्यानतराय जी ने ईसा की 18वीं शती में इस पूजा की रचना की है। इसमें विविध छन्दों में रचित, अट्ठावन पद्यों में, उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों का अर्चन, भावात्मकरूप से किया गया है। दशलक्षणव्रत की साधना के समय यह पूजन प्रमुख रूप से किया जाता है। कुछ प्रमुख पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

मान महाविषरूप, करहिं नीचगति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुखपावे प्राणी सदा॥
कपट न कीजे कोय, चोरन के पुर न बसै।
सरल स्वभावी होय, ताके घर बहुसम्पदा॥
कठिन वचन मत बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादो जग में सुखी॥
धरि हिरदे सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में॥

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 122-126
2. तथैव, पृ. 312-315

करें करम की निर्जरा, भवपींजरा विनाश।
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राश॥

श्रीशान्तिनाथ तीर्थंकर पूजा

कविवर श्रीवृन्दावन जी ने ईसा की अठारहवीं शती में इस पूजा की रचना की है। आपकी कविता में भावपक्ष के साथ शब्द-सौन्दर्य भी महत्त्व रखता है। इस पूजा में विविध छन्दों में बद्ध तीस पद्यों के माध्यम से सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ के गुणों का अर्चन किया गया है। उदाहरणार्थ स्थापना का प्रथम पद्य--

या भवकानन में चतुरानन, पापपनानन घेरि हमेरी
आतम जान न मान न ठानन, बान न होन दई सठ मेरी।
ता मदमानन आपहि हो यह, छान न आन न आनन टेरी,
आनगही शरनागत को, अब श्रीपतजी पतराखहु मेरी॥[1]

इस पद्य में मत्तगयन्द छन्द और यमक, रूपक, उपमा और परिकर अलंकारों की वर्षा से शान्तरस व्यक्त होता है।

श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ पूजा

ईसा की उन्नीसवीं शती में कविवर बख्तावर जी ने श्री पार्श्वनाथ पूजा-काव्य की रचना कर भक्ति भाव व्यक्त किया है। इस पूजा-काव्य में विविध छन्दों में निबद्ध पैंतीस पद्यों के माध्यम से श्री भगवान् पार्श्वनाथ के गुणों का स्तवन किया है। उदाहरणार्थ जल अर्पण करने का पद्य प्रस्तुत किया जाता है--

क्षीर सोम के समान अम्बुसार लाइए
हेमपात्र धार के सु आप को चढ़ाइए।
पार्श्वनाथ देव सेव आप की करूँ सदा
दीजिए निवास मोक्ष भूलिए नहीं कदा॥[2]

इस पद्य में चित्त को आकर्षित करनेवाला चामर छन्द की कान्ति है। उपमा अलंकार से अलंकृत है, जो शान्तरस के अनुकूल है।

निर्वाणक्षेत्र पूजा

कविवर द्यानतराय जी ने निर्वाणक्षेत्र पूजा-काव्य का सृजन किया है। इस काव्य में चौबीस तीर्थंकरों के पूज्य निर्वाण क्षेत्रों (मोक्ष जाने के स्थानों) का वर्णन,

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 369-374
2. जिनेन्द्रपूजन मणिमाला, पृ. 388-394

विविध छन्दों में निबद्ध बीस काव्यों के द्वारा किया गया है। ये भारत में निर्वाण तीर्थ क्षेत्रों के नाम से प्रसिद्ध है। उदाहरणार्थ जल अर्पण करने का पद्य—

> शुचि छीरदधिसम नीर निर्मल, कनकझारी में भरों।
> संसार पार उतार स्वामी, जोरकर विनती करों।
> सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाश कों
> पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि निवास कों॥[1]

इस काव्य में हरिगीता छन्द और उपमा अलंकार के द्वारा शान्ति रस आत्मशान्ति को प्रदर्शित करता है।

श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा

कवि श्री जिनेश्वरदास जी ने श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा-काव्य का निर्माण भक्तिवश किया है। इस पूजा-काव्य में अनेक छन्दों में विरचित तेतीस काव्यों का निर्माण कर आठवें चन्द्रप्रभ तीर्थंकर के गुणों का सुन्दर वर्णन किया है। स्थापना का प्रथम काव्य प्रस्तुत है।

> घातिचन्द्र चतुष्टयमण्डित घातिप्रचण्ड अरि चकचूरे
> चन्द्रविराजित वर्णविषैं यह चन्द्रप्रभा सम है अनुपूरे।
> चारु चरित्र चकोरन के चित चोरत चन्द्रकला बहु सूरे
> सो प्रभु चन्द समन्त गुरुचित चिन्तत ही सुख होय हजूरे॥[2]

इस काव्य में इकतीस मात्रा वाला सवैया छन्द अंकित है, इसमें अनुप्रास-उपमा-रूपक और अतिशयोक्ति अलंकारों के द्वारा शान्तरस प्रवाहित होता है।

श्रीगोमटेश बाहुबली जिनपूजा

वर्तमान कवि श्री नीरज जैन ने, श्रवणबेलगोला तीर्थक्षेत्र (कर्नाटक) में, सन् 1981 फरवरी मासीय, श्री गोमटेशप्रतिष्ठापना सहस्राब्दि महोत्सव के साथ सम्पन्न महामस्तकाभिषेक की पुण्य वेला में, श्री गोमटेश बाहुबली जिनपूजा-काव्य के माध्यम से, अपने मानससरोवर से भक्तिरस की गंगा को प्रवाहित किया था। यह काव्य रस, अलंकारपूर्ण एवं विविध रम्य छन्दों में निबद्ध है और बाईस पद्यों में समाप्त होता है। उदाहरणार्थ स्थापना का प्रथम काव्य प्रस्तुत किया जाता है—

---

1. जिनेन्द्रपूजन मणिमाला, पृ. 415-419
2. परमात्मपूजासंग्रह : सं. सुभाषजैन, प्रका.—दि. जैन साहित्य प्रचार समिति, नया बाजार, लश्कर ग्वालियर, पृ. 50-53 सन् 1981

आदिदेव के पुत्र, भरत के भ्रात, सुनन्दानन्दन
प्रथमपथिक शिवपथ के, तुमको युग का शतशत वन्दन।
बाहुबली जिनराज नयनपथगामी तुम्हें बनाऊँ
गोमटेश के श्रीचरणों में बारबार शिर नाऊँ॥

आधुनिक छन्द में निबद्ध यह काव्य अनुप्रास, परिकर और रूपक अलंकारों के प्रभाव से भक्तिरस की वर्षा कर रहा है।

जल अर्पण करने पद्य—

आदिकाल से जन्ममरण का लगा हुआ काजल है
धोने में समर्थ केवल संयम सरिता का जल है।
सो जलधार समर्पित करके, निर्मल पदवी पाऊँ
गोमटेश के श्रीचरणों में बारबार सिर नाऊँ॥

इसी पूजा की जयमाला का अन्तिम पद्य

अमर हुई चामुण्डराय की भक्ति विश्वविख्याता
रूपकार की कला, विन्ध्य की शिला, गुल्लिका माता।
'नीरज' ऐसे धीरज धारी की बलिहारी जाऊँ
गोमटेश के श्री चरणों में बारबार सिर नाऊँ॥[1]

इन काव्यों में आधुनिक छन्द और यमक, अनुप्रास, रूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकार शान्तरस को उछाल रहे हैं।

चाँदनपुर महावीर पूजा

ईसवीय बीसवीं शती के स्व. कवि पूरनमल द्वारा विरचित इस पूजा-काव्य में अतिशय क्षेत्र चाँदनपुर महावीर जी के भगवान महावीर के अनुपम गुणों का कीर्तन किया गया है। इस पूजा-काव्य में अनेक छन्दों में रचित कुल 37 पद्य हैं जो चाँदनपुर महावीर क्षेत्र (राजस्थान) के ऐतिहासिक चमत्कार को व्यक्त करते हैं। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी—श्री महावीर जयन्ती पर्व पर इस क्षेत्र में वार्षिक मेला का आयोजन होता है। उदाहरणार्थ जल अर्पण करने का पद्य—

क्षीरोदधि से भरि नीर कंचन के कलशा,
तुम चरणनि देत चढ़ाय, आवागमन नशा।

---

1. स्याद्वाद ज्ञानगंगा, प्रधान सं. गुलाबचन्द्र दर्शनाचार्य, प्र.- सुमतचन्द्र शास्त्री, मुरेना, अप्रैल-मई 1981, पृ. 51-54

चाँदनपुर के महावीर, तोरी छवि प्यारी,
प्रभु भवआताप निवार, तुम पद बलिहारी॥[1]

इस काव्य में उपमान छन्द मनोहर राग को व्यक्त करता हुआ हृदय में उपासकों के भक्तिरस को प्रवाहित करता है।

श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान (महापूजा-काव्य)

पूजा-काव्य के अनेक प्रकार होते हैं, सामान्य या एक पूजा को पूजा-काव्य कहते हैं। व्रत-नियम की प्रतिज्ञा कर, पूर्ण अवधि तक विधिपूर्वक जो व्रत की साधना की जाती है, व्रत नियम सम्पूर्ण होने पर उसका उद्यापन (समारोहपूर्वक व्रत नियम की समाप्ति या विसर्जन) जिस पूजा से किया जाता है वह व्रतोद्यापनपूजा-काव्य कहा जाता है। जैसे रविव्रतोद्यापनपूजाकाव्य, दशलक्षणव्रतोद्यापनपूजाकाव्य, मोक्षसप्तमी-व्रतोद्यापनपूजाकाव्य, सुगन्धदशमीव्रतोद्यापनपूजाकाव्य। ये काव्य संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओं में रचित हैं जिनके नाम संस्कृत पूजा-काव्यों की सूची में पहले दिये गये हैं।

जिनपूजा-काव्यों में विस्तार से विशेष पूजा की प्रक्रिया कही गयी है उनको विधान शब्द से कहा जाता है जैसे सिद्ध चक्र मण्डल विधान, इन्द्रध्वजमण्डल विधान, नन्दीश्वर विधान, ऋषिमण्डल विधान, नवग्रह विधान, पंचकल्याणक विधान इत्यादि।

श्री सिद्ध चक्र मण्डल विधान का संक्षिप्त परिचय

इस सिद्धचक्रविधान महापूजा-काव्य की रचना श्री कविवर सन्तलाल ने अपने भक्तिभाव से प्रेरित होकर निष्पन्न की है। इस महाकाव्य में 2265 पद्यों की रचना के माध्यम से सिद्ध परमात्मा के गुणों का स्तवन किया गया है। इन पद्यों में प्रचुर अलंकार और छन्दों के प्रयोग से शान्तरस का प्रबल प्रवाह दृष्टिगत होता है।

निश्चय वा व्यवहार, सर्वथा मंगलकारी,
जगजीवन के विघनविनाशन सर्वप्रकारी।
शिष्यन के अज्ञान हरैं, ज्यों रवि अँधियारा,
पाठकगुण सम्भवै सिद्धप्रति नमन हमारा॥

जय भवभय हारं, बन्धविदारं, सुखसारं शिव करतारं।
नित 'सन्त' सु ध्यावत, पाप नशावत, पावत पद निज अविकारं॥

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन, सं.पं. मंगलसेन विशारद, प्र.—श्री वीरपुस्तकालय, श्रीमहावीर जी, 1971, पृ. 806-810

ज्यों दे न सकें भण्डारी, परधन को हो रखवारी।
यह अन्तराय परजारा, हम पूज रचो सुखकारा॥

श्री इन्द्रध्वज विधान

इन्द्रध्वज विधान का प्रणयन पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माता जी ने किया है जिसकी समाप्ति सन् 1976 में उत्तरप्रदेशीय मुजफ्फरनगर ज़िला अन्तर्गत खतौली नगर में, चातुर्मासयोग के अवसर पर की गयी है। इस विधान में छोटी-बड़ी बहत्तर पूजाएँ, 458 अर्घ्य, 68 महार्घ्य और 51 जयमालाएँ शोभायमान हैं। इस श्रेष्ठ विधान में इकतालीस प्रकार के हिन्दी तथा संस्कृत छन्दों के प्रयोग से प्रायः 1500 पद्यकाव्यों की रचना की गयी है। इस विधान में मध्यलोक के 458 अकृत्रिम जिनमन्दिरों का अष्ट द्रव्य से पूजन किया गया है। उदाहरणार्थ इस विधान के कुछ पद्य प्रस्तुत किये जाते हैं—

ग्रह भूत पिशाचक्रूर व्यन्तर, नहिं रंच उपद्रव कर सकते,
जो अनुष्ठान करते विधिवत् उनके सब दुख संकट टलते।
अतिवृष्टि अनावृष्टी ईती भीती संकट टल जाते हैं
नित समय-समय पर इन्द्र देव, अमृतसम जल बरसाते हैं॥[1]

इन दो पद्यों में वीरछन्द और उपमा एवं स्वभावोक्ति अलंकारों के द्वारा विधान का महत्त्व मानस को प्रमुदित कर देता है।

स्थापना का पद्य—

सिद्धी के स्वामी सिद्ध चक्र, सब जन को सिद्धी देते हैं
साधक आराधक भव्यों के, भव भव के दुख हर लेते हैं।
जिन शुद्धात्मा के अनुरागी, साधू जन उनको ध्याते हैं
स्वात्मैक सहज आनन्द मगन, होकर वे शिवसुख पाते हैं॥[2]

जल अर्पण करने का पद्य—शुम्भ छन्द

गंगा का उज्ज्वल जल लेकर, कंचन झारी भर लाया हूँ
भव भव की तृषा बुझाने को, त्रयधारा देने आया हूँ।
जो शाश्वत जिनप्रतिमा राजें, इस मध्य लोक में स्वयं सिद्ध
उनकी पूजा नित करने से, निज आत्मा होती स्वयं सिद्ध॥[3]

---

1. इन्द्रध्वजविधान, रचयित्री-श्रीज्ञानमती माता जी, प्रका.—दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ उ.प्र.), द्वि. संस्करण, पृ. 122
2. तथैव, पृ. 137
3. तथैव, पृ. 142

जयमाला का पद्य—

> भगवन् तुम्हारी अर्चना जब कर्मपर्वत चूरती
> फिर क्यों अनेकों विघ्न-संकट, को न पल में चूरती।
> पूजा तुम्हारी हे प्रभो! जब मुक्ति लक्ष्मी दे सके,
> फिर क्यों न भक्तों को तुरत, धनधान्य लक्ष्मी दे सके॥[1]

इस काव्य में गीता छन्द तथा रूपक अलंकार से शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है और फल की सम्भावना व्यक्त होती है।

त्रिलोकमण्डलविधान (तीन लोक पूजा)

जैन पूजा-काव्य में त्रिलोकमण्डलविधान का स्थान सर्वाधिक है। यह समस्त विधानों का विधान कहा जाता है। इसकी रचना कविवर श्री टेकचन्द्र जी ने, द्वितीय आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी तिथि, वि.सं. 1828 में, भगवत्-भक्ति से तन्मय होकर समाप्त की है। इसमें तीन लोक के अकृत्रिम (स्वाभाविक) अगणित जिन चैत्यालयों (मन्दिरों) की पूजा का वर्णन है। इस पूजा के अध्ययन से या करने से जैन सिद्धान्त में वर्णित तीन लोक के स्वरूप का अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है। भावपूर्वक इस विधान को करने से स्वर्ग की एवं परम्परा मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

इस तीन लोक पूजा-विधान की दो प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध हैं। एक कविवर टेकचन्द्र जी कृत और दूसरी प्रति जो इससे द्विगुणी बड़ी है वह कविवर नेमिचन्द्र जी कृत है। समाज में इस प्रस्तुत प्रति का प्रचलन बहुत है, अनेक स्थानों पर समाज की ओर से यह विधान समारोह के साथ किया जाता है, समाज के सभी वर्गों में अहिंसा, परोपकार, शाकाहार और सदाचार की प्रभावना होती है। इस विधान में कुल 555 पृष्ठ हैं, सैकड़ों छन्दों में निबद्ध हजारों हिन्दी सरस काव्य हैं जिनके पढ़ने से ही मन में शान्तरस का उद्भव होता है। कविवर टेकचन्द्र जी ने स्व-परकल्याण के लिए इस ग्रन्थ की रचना कर अपनी भगवद्भक्ति को मूर्तिमान बना दिया है। इस पूजा महाकाव्य के पठन से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा की कृत्रिम अथवा अकृत्रिम प्रतिमा की पूजन से पुण्यलाभ तथा हिंसा आदि पापों का क्षय होता है।

दूरवर्ती या परोक्ष जिनमन्दिरों की भक्ति के विषय में कविवर टेकचन्द्र जी एक काव्य के द्वारा सफलता दर्शाते हैं—

> शक्तिहीन हम दूर जाय सकते नहीं,
> भक्ति भरे चितलाय यजें इस ही मही।

---

1. इन्द्रध्वजविधान, रचयित्री-श्रीज्ञानमती माता जी, प्रका.–दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ उ.प्र.), द्वि. संस्करण, पृ. 495

अष्ट द्रव्य शुभ लाय सुसन्मुख आयकैं,
करने लागे भक्ति महागुण गायकें॥

देव ही जहँ पूजकर, महपुण्यफल उपजावहीं,
बहुकरैं भक्ति विनययुत हो, कण्ठ जिनगुण गावहीं।
तहँ मनुष का नहिं गमन जानो, पुण्य बिन दर्शन नहीं
इमि जान उर में भायभावन, पूजिहौं इस ही मही॥

पूजा करनेवाले भक्ति पुरुष के लक्षण

मन वच काय शुद्ध भावसमताभई, शील जुत नार नर होय पूजा ठई।
अन्त पूजा लगैं भाव ऐसो धरैं, कर्मकारज तनौं लोभसब परिहरैं॥
चित्त उदार बहुदामखर्चैसही, मानछललोभ जिस चाहि ताकी जही।
भाव शुद्ध राख तजि क्रोध सुखसों रहे, भक्तियुत दीन हो सेव जिन की करै॥

समुच्चय चैत्यालय पूजा—जल अर्पण करने का काव्य

नीरनिर्मल क्षीरदधिको कनकझारी में भरी
अतिविनयकर मन वैन काया आप करले अनुसरी।
सब लोक जामन मरण छेदक देव के पद को जजौं,
तिस लाभ तें जगमरण को दुख खेदबिन सहजें तजौं॥

अर्घ अर्पण करने का काव्य—

लोक में उत्पत्तिमरणो किरण अरहट ज्यों कही
थिर नाहिं जेते करमवश हैं जगतविधि चंचल सही।
यह छाँडि जग की रीति सब ही लोक उत्पत्ति को हरी,
तिसदेव के पद सेवने को अरघ हम जिन ढिग धरी॥[1]

उपमालंकार और गीता छन्द में रचित इस काव्य में कवि ने भक्त के मानसतल पर शान्तरस की धारा प्रवाहित करने का प्रयास किया है।

अन्तिम सिद्धलोक पूजा की स्थापना—

चेतनज्ञानस्वरूपसदा सुख, नाम लिये अघ जावे,
शुद्धस्वभावमूर्ति विन अंजन राग द्वेष नहिं पावै।
कर्मकलंक विना आतम इक लोकशिखर पै राजै
ऐसे सिद्ध अनन्त सिद्ध थल थापि जजौं शिव काजै॥[2]

---

1. तीनलोकपूजा, पृ. 5-7
2. तथैव, 546

इस काव्य में रूपकालंकार के द्वारा भक्तिरूपी अमृत की धारा प्रवाहित होती है।

त्रिलोकसार पूजा भाषा काव्य

इस काव्य का सृजन कविवर पं. बुधमहाचन्द्र, द्वितीयनाम कविवर पं. महाचन्द्र ने किया है। आप खण्डेलवाल समाज के भूषण थे। जन्मस्थान—सीकर (जयपुर) था किन्तु प्रतापगढ़ में वि.सं. 1915 कार्तिक कृष्ण अष्टमी शुक्रवार को उक्त काव्य की रचना समाप्त की। इस विधान महाकाव्य में 7 महापूजा संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में गुम्फित हैं। इनका हिन्दी भाषान्तर आपने किया है। इससे सिद्ध होता है कि संस्कृत भाषा एवं प्राकृत भाषा के विद्वान् कवि थे। इसमें 80 प्रकार के छन्दों द्वारा पद्य निबद्ध हैं। इसमें तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का 480 पृष्ठों में संक्षेप से पूजन किया गया है।[1]

सिद्धलोकपूजा की जयमाला के कुछ आद्यकाव्य

> तीनलोक चूड़ामणी, अष्टकर्मरज नाँहि।
> नमों साध नमनों गिरे, सिद्धक्षेत्र जग माँहि॥

श्री ऋषिमण्डल मन्त्र कल्प (ऋषिमण्डल विधान)

श्री ऋषिमण्डलमन्त्र कल्प नामक विधानकाव्य की रचना श्री विद्याभूषण आचार्य (श्री गुणभद्राचार्य मुनीन्द्र) ने संस्कृत भाषा में सम्पन्न की है। इस पूजा-काव्य में 183 संस्कृत पद्यों द्वारा, चौबीस तीर्थंकर तथा ऋषियों की तपस्या के प्रभाव से सिद्ध ऋषियों का मन्त्र यन्त्र के साथ पूजन किया गया है। इस संस्कृत पूजा-काव्य का हिन्दी में अनुवाद, आगरा उ.प्र. निवासी संस्कृतज्ञ विद्वान् श्री लाल काव्यतीर्थ सिद्धान्तशास्त्री ने भक्तिभाव के साथ किया है। इस पूजा-काव्य की समाप्ति की शुभतिथि फाल्गुन कृष्ण द्वितीया, गुरुवार, वी.नि.सं. 2484 स्मरण के योग्य है।

अंगरक्षक सकलीकरण मन्त्र की विधि—

> हृदयकमल में 'अर्ह' पद का स्थापन जो है करना
> कर्मणकाठ जलावन कारण अग्नि-ज्वाला बनना।
> निर्मल है वह निर्मल करता अरहत्पद का दाता
> बारंबार नमूँ मैं उनको पाऊँ अक्षय साता॥

---

1. संग्रहकर्ता एवं प्रकाशक- मूलचन्द किशनदास कापड़िया -श्री दि. जैन पुस्तकालय, गांधी चौक, सूरत। प्रथम संस्करण, वी. नि. 2483

हिन्दी ऋषिमण्डलस्तोत्र के कुछ महत्त्वपूर्ण पद्य

करी कालिमा दूर आकांक्षा चूरी, संशय रहा न लेश सब आशा पूरी।
ईश्वर ब्रह्मा बुद्ध ज्योतिरूप कहे, शाश्वत सिद्धस्वरूप सब में देव बड़े॥
लोकालोक प्रकाश करते नाँहि थके, ऐसे श्री 'ह्रीं' देव मैंने मन में धरे।
एकवर्ण दोवर्ण तीनवर्ण धारी, चार पाँच हैं वर्ण सबके अधिकारी॥

ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकर सब ही, ध्याओ उनको नित्य योगत्रय से सही।
अर्धचन्द्र आकार ह्रीं का नाद कहा, उसका वर्ण है श्वेत जैसे चन्द्र महा॥
श्रीऋषिमण्डल मध्य 'ह्रीं' का परिकर है, उससे रक्षित देह मेरी सुखकर है।
तब नहिं नागिनि जाति मेरा निष्ट करे, सेवक होकर वेग मेरे पायन परे॥

सर्वऋद्धि के ईश आर्हतगणधर हैं, उनके तेज से लोक सब ही व्यापत है।
उनका ध्यान किये परम सौख्य होगा, विलय जाएँगे दुःख मेरे अतिवेगा॥[1]

उपरिकथित पद्यों में 'ह्रीं' मन्त्र का महत्त्व अनेक अलंकारों से अलंकृत किया गया है।

आचाम्ल तप आदि कर, जिन पूजे धर नेह।
सुमिरै आठ हज़ार जो, कार्य सिद्धि उस गेह॥
प्रात समय इस मन्त्र को, आठ एक सौ बार।
जपैं सो नर होवें सुखी, रोग करैं नहिं वार॥[2]

उक्त पद्यों में ऋषिमण्डल मन्त्र 'ह्रीं' और उसके यन्त्र की पूजा का महत्त्व, सफलता कही गयी है।

ऋषिमण्डल पूजा की स्थापना के पद्य

प्रधानबीजाक्षर ह्रीं की पूजा

ऋषिगण का आराध्य बीजाक्षर 'ह्रीं' है
ज्ञापक ऋषभादि तीर्थंकर चौबीस हैं।
पिण्डवर्ण संयुक्त ह्भमरादिक आठ हैं
वर्ण मातृका सहित दहन विधि काठ हैं॥

अष्टऋद्धिसंयुक्त विराजें ऋषि यहाँ
यों हो पूजन पंच परमगुरु का यहाँ।

---

1. श्री ऋषिमण्डलकल्प, पृ. 10-11
2. तत्रैव, पृ. 15

इनके सेवक देव चतुर निकाय हैं
देवि जयादिक भक्ति सहित शिरनाय हैं॥[1]

आडिल्ल छन्द में निर्मित ये पद्य भक्ति रस को प्रवाहित कर रहे हैं। यहाँ 'ह्रीं' मन्त्र की पूजा के लिए यन्त्र की स्थापना का विधान है।

मन्त्र के प्रथम वलय (गोलाकार विभाग) में चौबीस तीर्थंकर, द्वितीय वलय में शब्द ब्रह्म (व्यंजन स्वर वर्ण), तृतीय वलय में पंचपरमेष्ठी देव, चतुर्थ वलय में ऋद्धिधारी मुनीश्वर, पंचम वलय में श्री आदि चौबीस देवियाँ तथा चार प्रकार के देवों की स्थापना की गयी है। इसलिए ह्रीं यह मन्त्र परमपूज्य महामन्त्र है।

जल अर्पण करने का काव्य–

गंगा आदिक शुभ नदियों के नीर सुगन्धित लाऊँ
भरि भरि झारी धार देयकर अगनि कषाय बुझाऊँ।
ह्रीं बीजाक्षर पूजन तप से सब ही विघ्न विलावे
ऐसी श्रद्धा धर कर मन में, नित प्रति पूज रचावे॥

मन्त्र–ओं ह्रीं श्रीमदर्हदादिज्ञापक ह्रीं बीजाक्षराय जलं निर्वपामि स्वाहा॥[2]

शब्द ब्रह्म की पूजा में प्रथम शब्द ब्रह्म की स्थापना–

शब्द ब्रह्म जाने बिना, परम ब्रह्म नहिं होय।
लौकिक आगम जल्पना, इसके बिना नशाय
निश्चयनय व्यवहार के, दोनों ब्रह्म प्रतीक।
इससे ही आराध्य हैं, दोनों सत्य सुनीक॥[3]

यहाँ पर स्वर तथा व्यंजन आदि को शब्द ब्रह्म कहा गया है। इससे परमब्रह्म की प्राप्ति होती है।

जयमाला के अन्तिम पद्य और शब्दब्रह्म की उपासना का फल

शब्द ब्रह्म की सेव से, शिव का पावे राज।
इस ही से पूजा रची, भक्तिभाव उर साज॥
आलम्बन नाना कहे, मोक्ष प्राप्ति के हेत।
उनमें ध्यान पदस्थ यह, ध्यावो भक्ति समेत॥[4]

---

1. पूर्व लिखित पुस्तक, पृ. क्रमशः 17
2. पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. 18
3. पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 164
4. पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. 170।

सबसे अन्तिम समुच्चय जयमाला का अन्तिम पद्य—

श्रीऋषिमण्डल श्रेष्ठ है, जग में महाप्रसिद्ध।
विघ्न हरै मंगल करै, मन चीती हो सिद्ध॥[1]

उक्त पद्यों में शब्द ब्रह्म की उपासना से भक्ति रस प्रवाहित होता है।

चौंसठ ऋद्धिपूजा विधान

विक्रम सं. 1910, श्रावण शुक्ल सप्तमी शुभतिथि में कविवर स्वरूपचन्द्र जी ने दिगम्बर मुनिराजों की भक्ति में लीन होकर, चौंसठ ऋद्धि पूजा विधान की रचना कर मानव-जीवन को सार्थक बनाया है। इस पूजा-काव्य में 92 पृष्ठ विद्यमान हैं। इस विधान को प्रारम्भ करने के पूर्व चौंसठ ऋद्धि मण्डल (चौंसठ ऋद्धियों का रेखाकार गोल चित्र) बनाया जाता है, इसमें चौंसठ ऋद्धियों के धारी मुनि-महात्माओं का पूजन किया जाता है। इस मण्डल में सम्पूर्ण 41 कोष्ठ होते हैं।

प्रथम मुनीश्वरों का समुच्चय पूजन, चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों का पूजन, प्रथम कोष्ठ में बुद्धिऋद्धिधारी मुनीश्वरों का, द्वितीय कोष्ठ में चारणऋद्धिधारी, तृतीय कोष्ठ में विक्रियाऋद्धिधारी, चतुर्थ कोष्ठ में तपऋद्धिधारी, पंचम कोष्ठ में बलऋद्धिधारी, षष्ठ कोष्ठ में औषधऋद्धिधारी, सप्तम कोष्ठ में रसऋद्धिधारी और अष्टम कोष्ठ में अक्षीण महानस ऋद्धिधारी मुनीश्वरों का पूजन किया गया है। अन्त में पंचमकाल के (कलिकाल) आदि में उदित मुनीश्वरों या केवल ज्ञानी ऋषियों का पूजन किया गया है। सबके मध्य में ॐ की, उसके चारों ओर बने आठ कोष्ठों में सिद्ध के आठ गुणों की, उसके चारों ओर बने कोष्ठों में 24 तीर्थंकरों की और अन्त में चौंसठ मुनीश्वरों की स्थापना है।

उदाहरणार्थ इस विधान के कुछ महत्त्वपूर्ण पद्य प्रस्तुत किये जाते हैं—

रूपक-अनुप्रास-दोहा-मंगलाचरण और पूजा का प्रयोजन

सारासार विचारकरि, तज संसृति को भार।
धारा धरि निजध्यान की, भये सिन्धु भवपार॥
भूत भविष्यत काल के, वर्तमान ऋषिराज।
तिनके पद को नमन कर, पूज रचों शिवकाज॥[2]

वज्रधर चक्रधर अरु धरणिधर विद्याधरा।
तिरशूलधर अरु कामहलधर शीस चरणनि तल धरा।

---

1. श्री ऋषिमण्डल कल्प, पृ. 344
2. चौंसठ ऋद्धिपूजाविधान, प्रणेता : कविवर स्वरूपचन्द्र जी, प्रका.—ब्र. सूरजमल जैन, शान्तिवीर नगर, महावीर जी. पृ. ।

ऐसे ऋषीश्वर ऋद्धि विक्रियधरी तिनके पदकमल,
पूजों सदा मन वचन तन करि, हरो मेरे कर्ममल॥[1]

स्थापना—

धरतशिरधरतशिर धरतशिर चरण तर
करत हम करत हम करत गुरु भक्तिवर।
थपत इत थपत इत थपत बल ऋषिचरण
बलऋद्धि बलऋद्धि बलऋद्धि अर्चन करन॥[2]

आशीर्वाद कथन

सात ईति भय मिटै देश सुखमय बसैं
प्रजामाँहि धन धान्य महद्धिकता लसैं।
राजा धार्मिक होय न्यायमग में चलै
या पूजन फल येह धर्म जिनवर झिलै॥[3]

जैनभक्ति के विशाल स्तम्भ : प्रबन्ध काव्य

"हिन्दी के जैन कवियों ने अनेक महाकाव्यों का निर्माण किया है। उनमें जिनेन्द्रदेव अथवा उनके भक्तों की भक्ति ही मुख्य है। जैन अपभ्रंश के महाकाव्यों से प्रभावित होते हुए भी हिन्दी के जैनभक्ति काव्यों में कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। हिन्दी के जैन महाकाव्यों में पौराणिक और रोमांचक शैली का समन्वय हुआ है। यथा—सधारुका 'प्रद्युम्नचरित्र' और ईश्वर सूरि का 'ललितांगचरित'। इनमें कथा के साथ भक्ति का स्वर ही प्रबल है।

जैन महाकाव्यों की दूसरी विशेषता यह है कि बीच-बीच में मुक्तक स्तुतियों की रचना। यदि महाकाव्य तीर्थंकर के जीवनचरित् से सम्बद्ध होता है, तो पंच कल्याणकों के अवसर पर स्तुतियों का निर्माण होता ही है।

तृतीय विशेषता यह है कि इन महाकाव्यों का अन्तिम अध्याय, जिनमें नायक (तीर्थंकर) के केवलज्ञान प्राप्त करने का भावपूर्ण विवेचन होता है। यहाँ नायक को, आत्मा के परमात्मरूप होने की बात कही जाती है, इसी को जीवात्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य होना कहते हैं। उस समय कवि के मुख से जो कुछ निकलता है वह आत्मा के परमात्मरूप की उपासना ही होती है। इस भाँति जैन महाकाव्य

1. चौंसठ ऋद्धिपूजा विधान, पृ. 42
2. तथैव, पृ. 54
3. तथैव, पृ. 61

सगुण (सकल) और निर्गुण (निष्कल) की भक्ति के रूप में ही रचे गये हैं।"[1]

उपसंहार

देश तथा काल के परिवर्तन के अनुकूल भाषाओं में भी विकास और परिवर्तन होता रहता है। प्राचीन काल में संस्कृत और प्राकृतभाषा में जैनदर्शन के साहित्य की रचना हुई। तदनन्तर अनेक प्रान्तीय भाषाओं में और देशान्तर भाषाओं में उस साहित्य का भाषान्तर हुआ तथा उसका प्रचार एवं प्रसार हुआ। भारतीय हिन्दी साहित्य में हिन्दी जैन पूजा-काव्य भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। उसके सृजन के साथ जैन पूजा-काव्य का भी विकास हुआ है। पूर्वकाल में संस्कृत पूजा तथा प्राकृत पूजा के माध्यम से गृहस्थ नागरिक परमात्मा की उपासना करते थे। समय का परिवर्तन होने पर संस्कृत से हिन्दी भाषा का उदय हुआ। शनैः शनैः उसका विकास हुआ। वर्तमान में हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा पद पर आसीन है। इसलिए आवश्यकता के अनुकूल हिन्दी भाषा में भी जैन पूजा-काव्य की रचना का उदय हुआ और उसका विकास हुआ।

भारतीय हिन्दी साहित्य के विकास में जैन हिन्दी पूजा-काव्य ने भी बहुत सहयोग प्रदान किया है, वह भी गद्य की अपेक्षा पद्य में विशिष्ट स्थान रखता है। इस निबन्ध में पद्य पूजा साहित्य का ही उल्लेख किया गया है जो वर्तमान में प्रचलित है। इस अध्याय में हिन्दी जैन पूजा-काव्य का छन्द-रस और अलंकार की दृष्टि से महत्त्व दर्शाया गया है। कारण कि गद्य की अपेक्षा पद्य सबको प्रिय होते हैं तथा शीघ्र स्मृति में आ जाते हैं। उन पद्यों की लोकप्रियता या सौन्दर्य अलंकारों से होता है। उसका अध्ययन एवं मनन करने से आत्मा में शान्तरस या भक्ति रस रूप आनन्द का आविर्भाव होता है।

इस अध्याय में 26 हिन्दी पूजा-काव्यों के छन्द, रस एवं अलंकारों से अलंकृत मनोहर पद्यों के संक्षिप्त उद्धरण दिये गये हैं जिनके पढ़ने से आनन्द का अनुभव होता है, जैन पूजा-काव्यों की महत्ता एवं सार्थकता सिद्ध होती है। सम्पूर्ण पूजा साहित्य के छन्द, रस तथा अलंकारों सहित पद्यों का उद्धरण विस्तार के भय से लिखना सम्भव नहीं है इसलिए जैन पूजा-काव्यों की सूची अन्त में प्रदर्शित की जाती है। इस सूची में प्रतिष्ठाग्रन्थ, पूजा विधान, पूजाग्रन्थ, समुच्चयपूजाग्रन्थ और विविध पूजनों का संग्रह किया गया है। इसकी संख्या सम्भवतः 201 होती है। यद्यपि इससे अधिक संख्या भी हिन्दी पूजा-काव्य की हो सकती है परन्तु पूजा विषयक साहित्य पूर्ण उपलब्ध नहीं हो सकता है अतः संक्षेप से इस संख्या का उल्लेख किया गया है।

---

1. डॉ. प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, देहली, 1964, प्र.सं., पृ. 28

पंचम अध्याय

जैन पूजा-काव्यों में रत्नत्रय

प्रथम अध्याय में यह प्रतिपादन किया गया है। पूर्व वर्णित है कि पूजा-काव्य के बाह्य निमित्त या आधार नौ देवता हैं—(1) अरहन्तदेव, (2) सिद्धदेव, (3) आचार्य देव, (4) उपाध्याय देव, (5) साधुदेव, (6) चैत्य (प्रतिमा) देव, (7) चैत्यालय (मन्दिर) देव, (8) धर्मदेव, (9) आगम (शास्त्र) देव। इन नौ देवों में से 'रत्नत्रय' एक अन्तरंग निमित्त धर्म नामक देव है, जो आत्मा का स्वभाव है, अक्षय और कल्याणकारक है। उसकी पूजा का विधान, जैन पूजा-काव्य में निरूपित है। इसी प्रकार दशलक्षणधर्म, सोलहभावनाधर्म, अहिंसा, स्याद्वाद, अपरिग्रह, सत्य आदि धर्मों की भी पूजा का विधान है जो जीवन में अत्यन्त उपयोगी साधन है। रत्नत्रय पूजा का प्रमाण—

श्रीवर्धमानमानम्य, गौतमादींश्च सद्गुरून्।
रत्नत्रयविधिं वक्ष्ये, यथाम्नायं विमुक्तये॥[1]

सारांश = श्री महावीर तीर्थंकर को और गौतम (इन्द्रभूति) गणधर आदि गुरुओं को प्रणाम कर संसार से मुक्त होने के लिए परम्परा के अनुसार रत्नत्रय धर्म की पूजा को कहूँगा।

रत्नत्रय दो प्रकार का होता है—(1) व्यवहार रत्नत्रय धर्म, (2) निश्चय रत्नत्रय धर्म। जो आत्मधर्मरूप, अक्षय एवं परम लक्ष्य रूप है वह 'निश्चयरत्नत्रय' है और जो निश्चयरत्नत्रय को प्राप्त करने का बाहरी साधन एवं क्रियाकाण्ड रूप है वह 'व्यवहाररत्नत्रय' कहा जाता है। निश्चयरत्नत्रय साध्य है और व्यवहाररत्नत्रय साधन है। एक भक्त व्यवहाररत्नत्रय की साधना का क्या रूप अपनाता है, संस्कृत पूजा में इसका प्रमाण—

सन्निश्चयश्चिदचिदादिषु दर्शनं तत्
जीवादितत्त्वं परमात्मगमः प्रबोधः।

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 23।

पापक्रियाविरमणं चरणं किलेति
रत्नत्रयं हृदिदधे व्यवहारतोऽहम्॥[1]

तात्पर्य—चेतन और अचेतन पदार्थों में श्रद्धा करना अथवा सत्यार्थ देव-शास्त्र गुरु में श्रद्धा (दृढ़ विश्वास) करना सम्यग्दर्शन कहा जाता है। जीव-अजीव आदि सात तत्त्वों का सत्यार्थ ज्ञान करना सम्यक्ज्ञान है और हिंसा आदि पापक्रियाओं से निवृत्त होना सम्यक्चारित्र है। ऐसे व्यवहार रत्नत्रय को मैं चित्त से धारण करता हूँ। जो निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति का साधन है वह व्यवहाररत्नत्रय कहा जाता है।

अब 'निश्चयरत्नत्रय' पर विचार किया जाता है जो परमविशुद्ध उद्देश्य (लक्ष्य) रूप होता है, अखण्ड एवं अक्षय स्वरूप होता है। (1) शुद्ध आत्मा का निश्चय या श्रद्धा करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। जो आत्मा अन्य द्रव्यों से भिन्न, नित्य, अखण्ड, अविनाशी, ज्ञानदर्शनस्वभाव वाला है। (2) अन्य द्रव्यों से भिन्न आत्मा का विशेषज्ञान सम्यक् ज्ञान है। (3) राग, द्वेष, मोह, माया, लोभ आदि से रहित शुद्ध आत्मा में लीन होना 'निश्चय सम्यक् चारित्र' कहा जाता है, इस निश्चय रत्नत्रय को मैं नमस्कार करता हूँ। इसी तात्पर्य को दर्शानेवाला काव्य रत्नत्रय पूजा में कहा गया है—

दर्शनमात्मविनिश्चितिः, आत्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं, निश्चयरत्नत्रयं वन्दे॥

हम उस रत्नत्रय को नमस्कार करते हैं जो जन्म, दुःख और मरण रूपी तीन सर्पों के विष को हरण करनेवाला है। जिस रत्नत्रय आभूषण को धारण करके साधु महात्मा तपस्या के द्वारा क्षीण शरीर वाले होने पर भी या विकृत आकृति वाले होने पर भी मुक्तिरूपी लक्ष्मी के प्रिय हो जाते हैं अर्थात् मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। इसी आशय का काव्य रत्नत्रय पूजा में कहा गया है—

रत्नत्रयं तज्जननार्तिमृत्यु, सर्पत्रयीदर्पहरं नमामि।
यद् भूषणं प्राप्य भवन्ति शिष्टाः, मुक्तेः विरूपाकृतयोऽप्यभीष्टाः॥

इस काव्य में रत्नत्रय धर्म का महत्त्व, रूपक तथा आश्चर्य अलंकारों की छटा से विशेष रूप से दर्शाया गया है।

सम्यग्दर्शन को विकसित करने की भावना

मोक्षरूपी सम्पत्ति जिसमें प्रतिदिन प्रमोद के साथ विकसित होती है, समयसार (आत्मा) के रस से परिपूर्ण वह सम्यग्दर्शनरूपी कमल मेरे मनरूपी मानस-सरोवर में विकसित होवे। इसी आशय को व्यक्त करनेवाला काव्य रत्नत्रय पूजा में कहा गया है—

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 235

प्रतिदिनं खलु यत्र वितन्वते कृतमुदा वसतिं शिवसम्पदा।
समवसाररसे मम मानसे, तदवतारमुपैतु दृगम्बुजम्॥[1]

इस काव्य में द्रुतविलम्बित छन्द और रूपकालंकार शान्तरस का पोषक है।

अक्षत द्रव्य से सम्यग्दर्शन का पूजन

जिस सम्यग्दर्शन के होने पर स्वप्न में भी दुःखों के स्थानरूप नरकों में प्राणियों का पतन नहीं होता है। उस अष्टांग सम्यग्दर्शन की मनोहर अक्षतों से हम पूजा करते हैं। इसी तात्पर्य का प्रबोधककाव्य–

स्वभ्रेषु दुःखावनिषु प्रपातः, स्वप्नेऽपि यस्मिन्सति नांगभाजाम्।
साष्टांगमर्चामि सुदर्शनं तत्, रत्नं विशुद्धं ललिताक्षतौघैः॥[2]

सम्यग्दर्शन के आठ अंग

जिस प्रकार मानव शरीर के आठ अंग होते हैं–(1) दक्षिणपाद, (2) वामपाद, (3) वामहस्त, (4) दक्षिणहस्त, (5) नितम्ब, (6) पीठ, (7) हृदयस्थल, (8) मस्तक। इन अंगों से शरीर की शोभा होती है, शरीर का दैनिक कार्य और पुष्टि होती है, यदि एक भी अंग न हो तो शरीर की शोभा नष्ट हो जाती है और शरीर से कार्य भी नहीं हो सकता। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के भी क्रमशः आठ अंग होते हैं इनसे सम्यग्दर्शन की पूर्णता, शोभा और कार्य सम्पन्न होते हैं। वे अंग क्रमशः–(1) निःशंकित अंग (परमात्मा), उनकी वाणी तथा इनके उपासक गुरुओं में सन्देह नहीं करना और भय नहीं करना। (2) निःकांक्षित अंग–(धर्म की साधना करते हुए राज्य धन आदि की इच्छा न करना), (3) निर्विचिकित्सित अंग (धर्म और धर्मात्मा- मानव में ग्लानि न करना), (4) अमूढ़दृष्टि अंग (सत्य और असत्य का निर्णय करने हेतु परीक्षा प्रधानी होना), (5) उपगूहन अंग (उपकार की भावना से अपने गुणों को छिपाना और दूसरे के दोषों को छिपाना तथा अपने धार्मिक तत्त्वों को उन्नत करना), (6) स्थितिकरण (धर्म से भ्रष्ट होते हुए अपने तथा दूसरे व्यक्ति को धार्मिक कर्तव्यों में पुनः स्थिर करना), (7) वात्सल्य अंग (गाय और बछड़े की तरह धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय बन्धुओं में निष्कपट प्रेम करना), (8) प्रभावना अंग (स्व-परकल्याण के लिए धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों का प्रचार करना)। जैसे एक भी अक्षर रहित मन्त्र विष की वेदना को नष्ट करने के लिए समर्थ नहीं है उसी प्रकार आठ अंगों में से एक भी अंग रहित सम्यग्दर्शन जीवन मरण के दुःखों को दूर करने के लिए समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए जैनपूजा-काव्यों में अष्टांग सम्यग्दर्शन की पूजा का विधान किया गया है।

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 235, श्लोक 22-24, पृ. 243 श्लोक 44
2. तथैव, पृ. 245, पद्य 49

जैनपूजा-काव्य में द्वितीयरत्न सम्यग्ज्ञान की पूजा

सम्यग्ज्ञान के द्वारा तीन दोषों का निराकरण—वह सम्यग्ज्ञान संशय, मोह और विभ्रम को इस प्रकार नष्ट कर देता है कि जैसे उदित हुआ सूर्य रात्रि और रात्रि में विचरनेवाले जन्तुओं को दूर कर देता है अर्थात् सम्यग्ज्ञान से तीन दोषों का निराकरण होता है। पूजा-काव्य में इसी आशय को व्यक्त करनेवाला काव्य—

> तज्ज्ञानं यन्नुदत्याशु, मोह-संशय-विभ्रमान्।
> नक्तं नक्तंचराख्यानि, रविबिम्बमिवोद्गतम्॥[1]

सम्यज्ञान ही दिव्यनेत्र है—विश्व के सम्पूर्ण तत्त्व और पदार्थों को देखने में समर्थ ऐसा ज्ञानरूपी नेत्र जिसके नहीं है वह सुन्दरनेत्रवाला होकर भी नियम से अन्धा है। इसी अभिप्राय का काव्य—

> न ज्ञानं लोचनं यस्य, विश्वतत्त्वावलोकने।
> सुलोचनोऽपिसोऽवश्यं नरो विगतलोचनः॥[2]

केवलज्ञान अक्षय सुख का कारण—यदि अविनाशी सुख चाहते हो तो इस लोक में अपार महिमा से परिपूर्ण और परलोक में मुक्ति को देनेवाले केवलज्ञान की उपासना करो।

> तृतीयनेत्र सम्यग्ज्ञान की जल से पूजा-
> नेत्रं तृतीयमखिलार्थं विलोकनेऽस्मिन्-
> लोके यदस्य जगतो विमलं स्वभावात्।
> आनन्दसान्द्रपरमात्मपदाप्तयेऽहं
> तज्ज्ञानरत्नमसमं पयसा यजामि॥[3]

काव्यसौन्दर्य—इस विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों को देखने में जो स्वच्छ तृतीयनेत्र के समान है, जो स्वभाव से निर्मल है, अनन्त सुख से परिपूर्ण परमात्मपद की प्राप्ति के लिए, उस सम्यग्ज्ञान की हम पवित्र जल द्रव्य से पूजा करते हैं।

अनेकान्तसूर्य से आशीर्वाद की कामना

> यः सर्वथैकान्तनयान्धकार-प्राग्भारमस्यन्नयरश्मिजालैः।
> विश्वप्रकाशं विदधाति नित्यं, पायादनेकान्तरविः स युष्मान्॥[4]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 259, पद्य-3
2. तथैव, पृ. 159, पद्य-6
3. तथोक्त, पृ. 265, पद्य-5
4. तथोक्त, पृ. 277, पद्य-41

इस काव्य में इन्द्रवज्रा छन्द और रूपकालंकार की छटा से शान्तरस मानस को पवित्र करता है।

इस काव्य में मनोहर मालिनी छन्द को पढ़ने से चित्त में प्रमोद को उत्पन्न करता है, रूपक और उपमा का विन्यास चमत्कार व्यक्त करता है। अर्थ में यह विशेषता है कि उपमेय ज्ञान एक है और उपमान अनेक हैं, इससे शान्तरस की वृद्धि होती है।

सम्यग्ज्ञान के आठ अंग

सम्यग्दर्शन के समान सम्यग्ज्ञान के भी आठ अंग होते हैं, जिनसे ज्ञान की पूर्णता, ज्ञान की शोभा और ज्ञान की वृद्धि होती है। वे अंग इस प्रकार होते हैं--

(1) शब्दाचार—व्याकरण के अनुसार अक्षर, पद, मात्रा और वाक्य का प्रयत्नपूर्वक शुद्ध पठन-पाठन और उच्चारण करना।

(2) अर्थाचार—पद और वाक्य के शुद्ध अर्थ का विचार करना।

(3) उभयाचार—शब्द और अर्थ दोनों का विचार करना, पठन-पाठन करना।

(4) कालाचार—उपद्रवरहितयोग्यकाल में सिद्धान्तग्रन्थों का स्वाध्याय करना या पठन-पाठन करना। उपद्रव, सूर्यचन्द्रग्रहण, तूफान, भूकम्प आदि के समय भक्तामरस्तोत्र-कीर्तन-पूजन-जप-शान्ति हवन आदि का अनुष्ठान करना।

(5) विनयाचार—शुद्ध जल से हाथ-पैर धोकर शुद्ध स्थान में पर्यकासन बैठकर नमस्कारपूर्वक शास्त्रों का स्वाध्याय करना।

(6) उपधानाचार—स्मरणपूर्वक स्वाध्याय करना अथवा पठित विषय को भूल नहीं जाना।

(7) बहुमानाचार- सम्यग्ज्ञान, पुस्तक और अध्यापक का पूर्ण आदर करना।

(8) अनिह्नवाचार—जिस गुरु एवं शास्त्र से ज्ञान का अर्जन हो उसको न छिपाना, प्रशंसा करना।

आचार्य अमृतचन्द्र ने 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' ग्रन्थ में सम्यग्ज्ञान के उक्त आठ अंगों का वर्णन एक पद्य में किया है—

ग्रन्थार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधानं च
बहुमानेनसमन्वितमनिह्नवं ज्ञानमाराध्यं।[1]

सारांश—सम्यग्ज्ञान की उपासना करने के लिये आठ अंग होते हैं-- (1) शब्दाचार, (2) अर्थाचार, (3) उभयाचार, (4) कालाचार, (5) विनयाचार, (6) उपधानाचार, (7) बहुमानाचार, (8) अनिह्नवाचार।

---

1. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय—टीकाकार नाथूराम प्रेमी, प्रका.--श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम अगास, षष्ठ सं.— पृ. 25

इन अंगों का आचरण करना आवश्यक है।

जैनपूजा-काव्य में सम्यक् चारित्र (तृतीयरत्न) का अर्चन

जैनपूजा-काव्य में तीसरे रत्न (सम्यक्चारित्र) का पूजन भी बहुत गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है, जिसकी पूर्णता सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञान के होने पर ही होती है, सम्यक्चारित्र के पूर्ण होने पर ही साक्षात् मुक्तिलक्ष्मी की प्राप्ति होती है, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आत्मा परमात्मा पद को प्राप्त हो जाता है। इसकी रूपरेखा इसके वर्णन के प्रारम्भ में कही गयी है। सम्यक्चारित्र की पूजा में जो विशेषता कही गयी है वह इस प्रकार है—

> आनन्दरूपोऽखिलकर्ममुक्तो, निरत्ययः ज्ञानमयः सुभावः।
> गिरामगम्यो मनसोऽप्यचिन्त्यो, भूयान् मुदे वः पुरुषः पुराणः॥[1]

काव्यसौन्दर्य—जो अक्षय आनन्दरूप है, समस्त कर्मविकारों से रहित है, अविनाशी है, ज्ञान स्वरूप है, उत्तम गुणरूप है, वाणी के द्वारा कहने के योग्य नहीं है, मन से भी अविचारणीय है वह पुराणपुरुष तुम सबके हर्ष प्राप्ति के लिए हो। यह काव्य सम्यक्चारित्र की भूमिका का मंगलाचरण है, इस काव्य में उपजाति छन्द शोभावर्धक है, स्वभावोक्ति अलंकार व्यक्त होता है।

इस काव्य का आभूषण रूपक तथा उपमा है, वसन्ततिलका छन्द सौन्दर्य है, प्रसादगुण की शोभा है और यह काव्य शान्तरस का जलाशय है।

अर्घ्यद्रव्य से अहिंसामहाव्रत का पूजन

> निराकुलं जन्मजरार्तिहीनं, निरामयं निर्भयमात्मसौख्यम्।
> फलं यदीयं करुणामयं तन्महाव्रतं संततमाश्रयामि॥[2]

काव्यसार—जिसके पालन करने का फल निराकुल, जन्म, जरा, दुःखों से रहित रोगरहित तथा निर्भय आत्मसुख की प्राप्ति होती है, करुणाविभूषित उस 'अहिंसा महाव्रत' का हम सदा आश्रय करते हैं एवं भावपूर्वक अर्घद्रव्य समर्पित करते हैं। स्वभावोक्ति और शान्तरस रम्य है।

वचनगुप्ति (मौनव्रत) का अर्घ्यद्रव्य से पूजन

> भवन्ति यस्यां गणनातिगाः गुणाः, सत्यामसत्यादिनिवृत्तिसम्भवाः।
> भवापदामन्तभरं विधित्सतः, सा मे वचोगुप्तिरुदेति मानसे॥[3]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 277
2. तथैव, पृ. 285, पद्य-24
3. तथैव, पृ. 287

काव्यभावार्थ—जिस वचनगुप्ति के होने पर असत्य आदि पाप दूर हो जाते हैं और पापों के दूर होने से अगणित गुणों का विकास हो जाता है। इसलिए संसार की आपदाओं का शीघ्र ही अन्त चाहनेवाले हम उदासीन मानवों के मन में वह 'वचनगुप्ति' उदित हो, अतएव उसका हम अर्घ्यद्रव्य से पूजन करते हैं।

यह काव्य वंशस्थ छन्द के माध्यम से शान्तरस की वर्षा करता है।

ईर्यासमिति (समीक्षित गमन) व्रत का अर्चन—

प्रमादमुक्त्या युगमात्रदृष्ट्या, स्पष्टे करैरुष्णकरस्य मार्गे।
या वै गतिः सा समितिः किलेयां, मान्या मुनीनां हृदये ममास्ताम्॥[1]

काव्यसौन्दर्य—सूर्य की किरणों से मार्ग के स्पष्ट होने पर प्रमादरहित होकर चार हाथ आगे ज़मीन देखते हुए जो गमन तथा आगमन होता है, मुनिराजों द्वारा मान्य वह 'ईर्यासमितिव्रत' हमारे जीवन में सम्पन्न हो। इस भावना से हम अर्घ्यद्रव्य द्वारा ईर्यासमितिव्रत का अर्चन करते हैं।

इस काव्य में वंशस्थ छन्द शोभित होता है। जीवन के कष्ट तथा जीवहिंसा को दूर करने के लिए योग्य गमन और आगमन का निर्दोष कथन किया गया है।

उत्कृष्ट चारित्र को नमस्कार

ममतारजनीदिवसाधिपतिं, प्रकटीकृतसत्यपरात्महितम्।
परमं शिवसौधनिवासकरं, चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम्॥[2]

काव्यसार—मोहरूपी रात्रि के लिए सूर्य के समान, सत्य को प्रकाशित करनेवाले, दूसरे मानवों का और अपना हित करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ मोक्षरूपी महल में प्राप्ति करानेवाले उस उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र (आचरण) को हम प्रणाम करते हैं।

इस काव्य में तोटक छन्द कर्णप्रियध्वनि को, यमक-उपमा अलंकार शोभा को और शान्तरस आत्मानन्द को व्यक्त करता है—

मानव को चारित्र प्राप्ति के लिए प्रेरणा

विरमविरम संगान्, मुंच मुंच प्रपंचं
विसृज विसृज मोहं, विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्।
कलय कलय वृत्तं, पश्य पश्य स्वरूपम्,
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्तहेतोः॥[3]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 289
2. तथैव, पृ. 295
3. तथैव, पृ. 297

काव्यप्रकाश—अनन्त एवं अक्षय मोक्षसुख प्राप्ति के लिए परिग्रह पाप से विरक्त हो विरक्त हो, प्रपंच (मायाजाल) का त्याग कर—त्याग कर, मोह को छोड़ दो छोड़ दो, आत्मतत्त्व को जान लो, जान लो, चारित्र को धारण करो, धारण करो, अपने स्वरूप को देख लो, देख लो, और पुनः पुनः पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो।

इस काव्य में मालिनी छन्द में प्रसादगुण का प्रयोग किया गया है जिससे शान्तरस को पुष्टि करने में पुनः पुनः प्रेरणा मिलती है।

रत्नत्रय पूजा के अन्त में शुभ आशीर्वाद

मोहमल्लममल्लं यो, व्यजेष्टनिश्चयकारणम्।
करीन्द्रं वा हरिः सोऽर्हन्, मल्लिः शल्यहरोऽस्तु वः॥[1]

काव्यभाव—जिस प्रकार प्रबल सिंह हाथी को जीत लेता है उसी प्रकार जिन तीर्थंकरों ने मोह रूपी सुभट को बड़ी आसानी से जीत लिया है वे श्री मल्लिनाथ अर्हन्त आप के या सकल प्राणियों के दुःखों का विनाश करें।

इस काव्य में अनुष्टुप् छन्द है, रूपक और उपमा के द्वारा वीररस की पुष्टि होती है और मंगल आशीष से आत्मा में शान्ति-लाभ होता है।

ईसवीय ग्यारहवीं शती में आचार्य मल्लिषेण द्वारा संस्कृत में इस रत्नत्रय पूजा का प्रणयन किया गया है, कारण कि इस पूजा के अन्त में आशीर्वाद रूप काव्य के अन्तर्गत 'मल्लिः' यह संकेत मिलता है। इस महापूजा के मध्य चौंतीस काव्यों में समुच्चय रत्नत्रय (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र) का पूजन किया गया है। इसके अनन्तर इक्यावन काव्यों में सम्यग्दर्शन का पूजन कहा गया है। तदनन्तर पचास काव्यों में सम्यग्ज्ञान का पूजन कहा गया है। तत्पश्चात् बासठ काव्यों द्वारा सम्यक्चारित्र का सम्यक् अर्चन किया गया है। कुल मिलाकर इस पूजा में 197 काव्यों द्वारा अक्षय रत्नत्रय का पूजन भक्ति भाव के साथ किया गया है। विविध छन्दों के प्रयोग से काव्यों में मधुरता, विविध अलंकारों की छटा से काव्यों में रमणीयता और प्रसाद माधुर्य आदि गुणों से काव्यों में आत्मीयता और भावों की गम्भीरता से काव्यों में सफल सार्थकता झलकती है। अतः मानव को रत्नत्रय की साधना करना आवश्यक है।

हिन्दी भाषा में रत्नत्रयपूजा और उसके महत्त्वपूर्ण काव्य

अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कविवर द्यानतराय जी ने इस रत्नत्रय पूजा का निर्माण हिन्दी में किया है। इसमें रत्नत्रय की सामूहिक पूजा ग्यारह काव्यों में निबद्ध है, पश्चात् सम्यग्दर्शन का पूजन चौदह काव्यों, सम्यग्ज्ञान का पूजन-चौदह काव्यों में और सम्यक् चारित्र का पूजन इक्कीस काव्यों में रचा गया है। इस पूजा में दोहा,

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 299

वेसरी छन्द, सोरठा और चौपाई छन्दों का प्रयोग किया गया है। काव्यों में अलंकारों के रमणीय प्रयोग से शान्तरस की वर्षा होती है। इसमें कुल 60 काव्य हैं। उदाहरणार्थ रत्नत्रय पूजा का प्रथम स्थापना काव्य--

चहुँगति-फनि विषहरणमणि, दुख-पावक-जलधार।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यक्त्रयी निहार॥[1]

सम्यग्दर्शन की परिभाषा (संक्षिप्त)

आप आप निहचै लखे, तत्त्वप्रीति व्यवहार।
रहित दोष पच्चीस है, सहित अष्टगुण सार॥[2]

काव्य सौन्दर्य—इस दोहा में सम्यक्दर्शन की संक्षेप से दो परिभाषा की गयी हैं—(1) आत्मा में स्वयं दृढ़ श्रद्धा करना अन्तरंग सम्यग्दर्शन है। (2) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मुक्ति—इन सात तत्त्वों में दृढ़ श्रद्धा करना द्वितीय बहिरंग सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इन दोनों को ही क्रमशः निश्चयसम्यग्दर्शन तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। दोनों ही सम्यग्दर्शनों में पच्चीस दोष नहीं होना चाहिए अर्थात् सम्यग्दर्शन को विशुद्ध होना आवश्यक है, वही आत्मा का कल्याण करनेवाला एवं मुक्ति का कारण है। इसी प्रकार उस सम्यग्दर्शन के आठ अंग होना भी आवश्यक हैं। इनका वर्णन संस्कृत पूजा में किया गया है।

सम्यक् ज्ञान की परिभाषा

पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेय प्रकाशनभान।
मोहतपनहरचन्द्रमा, सोई सम्यक् ज्ञान॥[3]

सम्यक् ज्ञान के भेद-दोष और अंग

आप आप जाने नियत, ग्रन्थ पठन व्यवहार।
संशयविभ्रममोहविन, अष्ट अंग गुणकार॥[4]

काव्यसार—आत्मा द्वारा स्वयं स्वानुभव करना अन्तरंग (निश्चय) सम्यग्ज्ञान कहा जाता है और शब्दात्मक ग्रन्थ का अनुभव (पठन) करना बहिरंग (व्यवहार) सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। संशय (सन्देह करना), विभ्रम (विपरीत जानना), मोह (पदार्थ का अस्पष्ट ज्ञान)—ये तीन दोष ज्ञान को दूषित करनेवाले हैं। सम्यग्ज्ञान के आठ अंग संस्कृत रत्नत्रय पूजा में कहे जा चुके हैं।

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 323
2. तथैव, पृ. 327
3. तथैव, पृ. 328
4. तथैव, पृ. 330

सम्यग्ज्ञान तीसरा नेत्र है

सम्यक्ज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय सँग जानो॥[1]

सम्यक्चारित्र का महत्त्व

विषयरोग औषध महा, दवकषाय जलधार।
तीर्थंकर जाको धरैं, सम्यक् चारित सार॥[2]

सम्यक् चारित्र के भेद और उसके अंग

आप आप थिर नियत नय, तप संयम व्यवहार।
स्व-परदया दोनों लिये, तेरह विध दुखहार॥[3]

सम्यक् चारित्र का उपदेश चौपाई मिश्रित गीता छन्द

सम्यक् चारित रतन सँभालो, पांच पाप तजिके व्रत पालो।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजे, नरभव सफल करहु तन छीजे॥[4]

रत्नत्रय से मुक्ति

सम्यक् दरशन ज्ञान व्रत, इन बिन मुकति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दवलोय॥[5]

काव्यसौन्दर्य—सम्यग्दर्शन (दृढ़ श्रद्धान), सम्यक्ज्ञान (श्रद्धान के साथ सत्यार्थ वस्तु का विज्ञान), सम्यक् चारित्र (श्रद्धा-ज्ञान के साथ निर्दोष आचरण) इन तीनों की एक साथ पूर्णता होने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, यदि ये गुण पृथक्-पृथक् पालन किये जावें तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

किसी जंगल में तीन पुरुष रहते थे। एक अन्धा, एक लँगड़ा और एक आलसी। एक समय वन में अग्नि धधक उठा। तीन ओर से दावानल लग चुका था, केवल एक दिशा खाली रह गयी थी। चक्षुर्हीन होने से अन्धा पुरुष अपने प्राण बचाने के लिए एवं पैरहीन होने से लँगड़ा पुरुष अपने प्राण बचाने के लिए नहीं भाग सके। आलसी पुरुष नींद लग जाने से नहीं भाग सका। प्राण बचाने का कोई उपाय न देखकर अन्धा और लँगड़ा दोनों रोने लगे। इसी समय एक बुद्धिमान मानव वहाँ से

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 330
2. तथैव, पृ. 330
3. तथैव, पृ. 332
4. तथैव, पृ. 332
5. तथैव, पृ. 335

निकला, उसने दोनों को रोता देखकर रोने का कारण पूछा। दोनों ने अपने कारण कह दिये। उस बुद्धिमान व्यक्ति ने शीघ्रता से अन्धे के कन्धे पर लँगड़े को बैठा दिया, और तीसरे पुरुष को जगाया, तीनों को शीघ्र ही दौड़ लगाने को कह दिया। उसके कहने से तीनों पुरुष शीघ्र दौड़कर अपने इष्टस्थान को अच्छी तरह प्राप्त हुए।

ज्ञानं पंगौ क्रिया चान्धे, निःश्रद्धे नार्थकृद्द्वयम्।
ततो ज्ञानक्रियाश्रद्धा त्रयं तत्पद कारणम्॥[1]

जिस प्रकार एक प्रबुद्ध व्यक्ति के कहने से तीन पुरुषों ने मिलकर एक साथ अपने प्राणों की रक्षा अग्नि से की है, उसी प्रकार आचार्यों के उपदेश से यह प्राणी एक साथ दर्शन ज्ञान चारित्र की साधना करने से, संसार रूपी वन में लगी जन्ममरण रूप अग्नि (सन्ताप) से अपनी सुरक्षा कर इष्टस्थान मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। इस काव्य में सुन्दर दृष्टान्त द्वारा मुक्ति का एक सर्वश्रेष्ठ मार्ग दर्शाया गया है जिससे मानव जीवन में एक महती चेतना जागृत होती है।

इसी प्रकार इस जगत् के जीवों को जन्म-जरा-मरण आदि के रोग लगे हुए हैं। उन रोगों की औषधि सम्यक् श्रद्धा ज्ञान-आचरण का एक साथ सेवन (साधना) करने से जीव, जन्मादि रोगों से मुक्त हो सकता है।

रत्नत्रयविधान

विशेष या महती पूजा को 'विधान' कहते हैं।
विधा विधौ प्रकारे च, साधु रम्येऽपि च त्रिषु।[2]

विधा या विधान का अर्थ प्रकार तथा प्रशंसा या गुणकीर्तन होता है। रत्नत्रय विधान का अर्थ होता है कि रत्नत्रय पूजा, एक पूजा का प्रकार है। द्वितीय अर्थ होता है कि रत्नत्रय की प्रशंसा या गुणकीर्तन करना रत्नत्रय विधान का अर्थ होता है। इसी प्रकार सिद्ध चक्र विधान आदि की व्याख्या समझना चाहिए।

यह विशेष अवसरों पर या पर्व के समय की जाती है, समाज, सामूहिक रूप से इन विधानों को करता है जिससे धर्म की प्रभावना होती है। कविवर पं. टेकचन्द जी ने इस रत्नत्रय विधान की रचना की है। इससे पूजा-काव्य का महत्त्व अधिक सिद्ध हो जाता है। इस पूजा-काव्य का वर्णनीय विषय, अर्थगाम्भीर्य, तात्पर्य और शब्द-विन्यास ध्यान देने योग्य है।

इस पूजा-काव्य के अन्तर्गत चार पूजाएँ हैं, अर्घ (अष्ट द्रव्यों का समूह)

---

1. पूज्यपादाचार्य : सर्वार्थसिद्धि : सं.पं. वर्धमान पार्श्वनाथ सि. शास्त्री, प्र.—कल्याण मुद्रणालय सोलापुर, सन् 1939, पृ. 2 टिप्पणी
2. अमरसिंह : अमरकोष : सं. पंडित रामस्वरूप, प्र.—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1935, पृ. 245, पद्य 10।

समपर्ण करने के समस्त काव्य 270 हैं जो रत्नत्रय के उत्तरगुणों को सूचित करते हैं, वे इस प्रकार हैं—सम्यग्दर्शन के उत्तरगुण—50, सम्यक्ज्ञान के उत्तरगुण 70 और सम्यक् चारित्र के उत्तरगुण 150 हैं। इनका योग 270 हो जाता है। इन उत्तर गुणों का स्पष्टीकरण अर्घ काव्यों से जानना चाहिए।

सम्यक्ज्ञान की पूजा के कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य

सम्यक्ज्ञान की स्थापना—

मति श्रुत अवधि ज्ञान मन लाय, मनपर्यय केवल समझाय।
ये ही पाँचों सम्यक्ज्ञान, पूजों थाप यहाँ हित आन॥[1]

इसके पाँच प्रकार होते हैं—(1) मतिज्ञान—पाँच इन्द्रियाँ तथा मन से विकसित होनेवाला वस्तु का प्राथमिक ज्ञान, जो कि मतिज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से होता है। (2) श्रुतज्ञान—मतिज्ञान के द्वारा जाने गये पदार्थ को विशेष रूप से जानना। (3) अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सीमा लिये हुए इन्द्रियों की अपेक्षा के बिना पदार्थ का स्पष्ट ज्ञान, जो आत्मा में विशेष साधनों से उत्पन्न होता है। (4) मनःपर्ययज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र आदि की सीमा के साथ दूसरे के मन में विचारे गये तीन काल के पदार्थों को स्पष्ट जानना। (5) केवलज्ञान या उत्कृष्टज्ञान—तीन लोक और तीन काल के सम्पूर्ण द्रव्य, गुण तथा अवस्थाओं को एक साथ स्पष्ट जाननेवाला ज्ञान, जो सम्पूर्ण दोषावरण (कर्म) के क्षय से परमात्मा के होता है। इन पाँच प्रकार के ज्ञानों की हृदय में स्थापना कर इस जीवन में विश्वहित के लिए हम उस ज्ञान की पूजा करते हैं।

आचारांग श्रुतज्ञान के लिये अर्घ अर्पण का काव्य—

खावे जतन यतन तें चलै, बोले जतन यतन तें हलै।
आचारांग क्रिया यों ही, सो श्रुतसम्यक् पूजों सही॥[2]

विद्यानुवादपूर्वश्रुतज्ञान के लिए अर्घ अर्पण करने का काव्य

विद्यासाधनमन्त्र, जन्त्र विधि जानिये
स्वर लक्षण अरु स्वप्न, आदि विधि मानिये।
पूरव यह विद्यानुवाद, शुभ थान है
सो श्रुत सम्यक्ज्ञान, जजों श्रुति आन है॥[3]

1. रत्नत्रयविधान, पृ. 32
2. तत्रैव, पृ. 36
3. तत्रैव, पृ. 41

सम्यक्ज्ञान से मुक्ति—

ज्ञानतैं लोक दुख जाय भय आन की
ज्ञान तैं मोक्षतिय वरतं है जान जी।
ज्ञानरवि होय मिथ्यात्व तम जाय है
ज्ञान यौं जजौं उर वसो मम आय है॥

ज्ञान से विश्व का कल्याण—

ज्ञान जगभेद सब जान भ्रम भान जी
ज्ञान तैं मिटे उरक्रोध छल मान जी।
ज्ञान उर होय तब धर्म मनभाय है
ज्ञान यौं जजौं उर वसो मम आय है॥[1]

सम्यक् चारित्र का पूजन एवं काव्य

शुभ चारित्र के तेरह प्रकार (अडिल्ल छन्द)—

पंचमहाव्रत सार समिति पाँचों सही
गुप्ति तीन मिल तेरह विध जिन ध्वनि कही।
यों ही शुभचारित्र भवोदधि नाव है
सो मैं पूजों थाप यहाँ कर चाव है॥[2]

जीवदया के हेतु महामुनि, दोष हटाकर खावें
समतासागर सब जियबन्धु, खानपान सुध पावें।
तबहिं अहिंसाव्रत की शुद्धी, होय इसी विधि राखें
या जुत सम्यक् चारित पूजों, करके व्रत अभिलाखें॥[3]

चारित्र की महिमा

चारित का शरणा जिन पाया, ताने जिन भव सफल बनाया।
शक्तीप्रद हितकर गिन याको, मैं पूजत मन वच तन ताको॥[4]

---

1. तथैव, पृ. 52-53
2. तथैव, पृ. 55
3. रत्नत्रयविधान, पृ. 58
4. तथैव, पृ. 90

रत्नत्रय पूजा

रत्नत्रय की सेव कर, रत्नत्रय गुण गाव।
रत्नत्रय की भावना, कर पल पल शिर नाव॥[1]

रत्नत्रय व्रत का मन्त्र–

ओं ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामि स्वाहा॥

पौराणिक रत्नत्रयव्रत का आख्यान–

सम्यग्दर्शन ज्ञानव्रत, इनबिन मुक्ति न होय।
रत्नत्रयव्रत की कथा, कही सुनो भविलोय॥[2]

पौराणिक आख्यान प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल में वीतशोकपुर नामक नगर में, राजनीतिज्ञ धार्मिक वैश्रवणनृप एक दिन वसन्त ऋतु में उद्यान के मध्य मनोविनोदार्थ गये। वहाँ पर उनकी दृष्टि अचानक एक दिगम्बर तपस्वीयोगी पर पड़ी। नृपराज ने निकट जाकर सविनय वन्दनापूर्वक प्रार्थना की। हे मुनिराज आत्मकल्याण के हेतु धर्मोपदेश दीजिए। मुनिराज ने रत्नत्रय धर्म का उपदेश दिया।

वैश्रवण राजा ने 12 वर्ष रत्नत्रयधर्म का श्रद्धानसहित प्रतिपालन किया। एक दिन राजा ने, पवन के तीव्र झकोरे के कारण जड़ से उखड़े हुए विशाल वटवृक्ष को देखकर अपने जीवन को क्षणिक जानते हुए मुनि दीक्षा धारण कर ली। तप के प्रभाव से उत्तम स्वर्ग में जन्म लिया। वहाँ से अवतरित होकर वे 19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ हुए। देवों तथा मानवों ने पंचकल्याण महोत्सव किये। जीवन के अन्त में दीक्षा लेकर श्रेष्ठ योगी होते हुए आर्यखण्ड के सहस्रों नगरों में उपदेश दिया और अन्त में परमात्मपद प्राप्त किया। यह सब रत्नत्रय धर्म का प्रभाव है।

उपसंहार

जैनपूजा-काव्य में रत्नत्रयधर्म का अत्यन्त महत्त्व है। परमात्मा, सत्यार्थ सिद्धान्त और वास्तविक गुरु के विषय में दृढ़ श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन कहा जाता है। अहिंसा सिद्धान्तों एवं आत्म आदि तत्त्वों के यथार्थ ज्ञान का विकास करना सम्यक् ज्ञान कहा जाता है। श्रद्धा एवं ज्ञान के साथ पवित्र आचरण करना सम्यक् चारित्र कहा जाता है। इन तीन आध्यात्मिक रत्नों को रत्नत्रय शब्द से कहा जाता है। इस रत्नत्रय की सम्पूर्णता को ही मुक्ति या निर्वाण कहते हैं। तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थ में इसी विषय का विवेचन किया गया है।

---

1. रत्नत्रयविधान, पृ. 93
2. जैन व्रतकथा संग्रह : सं. पं. मोहनलाल शास्त्री, प्र.–जैनग्रन्थ भण्डार, जवाहरगंज, जबलपुर, पृ. 59-64, वी. नि. 2503

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'[1]

सारांश--सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीन गुणरत्नों की युगपत् साधना करना मुक्ति का मार्ग है।

जिस प्रकार रोगी पुरुषवैद्यराज (डॉक्टर) के द्वारा कही हुई, निदानानुकूल रोग की दवा पर विश्वास, दवासेवन का ज्ञान और दवासेवन रूप आचरण, इन तीनों गुणों का एक साथ पुरुषार्थ करता है, तो वह रोगी रोग से यथासमय मुक्त हो जाता है अर्थात् नीरोग हो जाता है। उसी प्रकार जन्म-मरण जरा, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा आदि रोगों से रोगी यह संसारी आत्मा, अर्हत् भगवान् रूपी वैद्यराज के द्वारा कथित, रत्नत्रय रूप दवा की श्रद्धा, ज्ञान, आचरण द्वारा साधना (पालन) करता है तो वह संसारीरुग्ण आत्मा दुष्कर्मरूपरोग से मुक्त होकर परमात्म पद को प्राप्त करता है।

जिस प्रकार हमारे नेताओं—महात्मा गाँधी, इन्दिरा गाँधी आदि—ने राष्ट्र के निर्माण के लिए घोषणा की, कि दूरदृष्टि, पक्का इरादा, कड़ा अनुशासन से ही राष्ट्र की समुन्नति हो सकती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी श्रद्धा, ज्ञान एवं आचरण (चारित्र) के माध्यम से ही आत्मा को मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

सारांश यह है कि जैसे किसी भी लौकिक कार्य के लिए कार्य पर विश्वास, कार्य करने का ज्ञान और कार्य को विधिपूर्वक सम्पन्न करना—ये तीन पुरुषार्थ आवश्यक हैं। उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी आत्म-विकास के लिए श्रद्धा-ज्ञान और सदाचरण को प्राप्त करना ही रत्नत्रय का अन्तरंग पूजन है। तथा इस अन्तरंग रत्नत्रय के अनुकूल जो बाह्यप्रवृत्ति होती है, उनको अष्टद्रव्य से अर्चा होती है। वह रत्नत्रय का बाह्य पूजन है।

जैनदर्शन में उक्त कारणों की अपेक्षा ही रत्नत्रय का पूजन करना परम कर्तव्य दर्शाया गया है। इस कारण 'भट्टारक' श्री धर्मचन्द्र ने संस्कृत में बृहत् रत्नत्रय पूजा का निर्माण किया है। जिससे कि विद्वज्जन संस्कृत रत्नत्रय पूजा के माध्यम से रत्नत्रय की साधना कर सकें।

इसी प्रकार कविवर द्यानतराय ने हिन्दी में रत्नत्रय पूजा की रचना की है जिससे कि जनसाधारण हिन्दी रत्नत्रय पूजा के माध्यम से रत्नत्रय की उपासना कर आत्मशुद्धि में पुरुषार्थ कर सकें। इसी ध्येय को सुरक्षित करते हुए कविवर पं. टेकचन्द्र जी ने रत्नत्रय पूजा विधान का निर्माण किया है। इन तीनों पूजन काव्यों के परिचय एवं मुख्य उद्धरण इस अध्याय में संक्षेप से प्रदर्शित किये गये हैं।

अन्त में पौराणिक शिक्षाप्रद रत्नत्रय धर्म का आख्यान अंकित है।

---

1. तत्त्वार्थसूत्र : आचार्य उमास्वामी, सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र. --दि. जैन पुस्तकालय सूरत, सू. 1, 1987

षष्ठ अध्याय

जैन पूजा-काव्यों में संस्कार

मानव जीवन और संस्कार

जिस प्रकार मणियों का जन्म आकर (खानि) में अवश्य होता है अथवा समुद्र में भी रत्नों का जन्म होता है अतएव उसे रत्नाकर भी कहते हैं। परन्तु वे मणि आकार-प्रकार, कान्ति और सौन्दर्य से हीन रहते हैं, उनका मूल्यांकन नहीं हो सकता, कारण कि वे संस्कारों से रहित होते हैं। जिस समय उन मणियों का सुयोग्य संस्कार कर लिया जाता है, उस समय उनमें आकार-प्रकार, चमक-दमक एवं सौन्दर्य गुण का विकास होकर उचित मूल्यांकन होने लगता है, जिनसे आभूषण के रूप में मानव-शरीर की शोभा एवं भवन आदि की सुन्दरता अधिक हो जाती है।

इसी प्रकार इस विश्व की चौरासी लाख योनिरूपी आकरों में मानवों का जन्म अवश्य होता है, परन्तु वे मानव शिक्षा आदि संस्कारों से हीन होने पर उनमें गुणरूपी कान्ति, सदाचार रूपी सौन्दर्य न होने से कोई योग्यता प्राप्त नहीं होती और न उनके मानव-जीवन का कोई मूल्यांकन हो पाता है। उनका जीवन संस्कारहीन पशु-पक्षियों के समान निःसार रहता है। धार्मिक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है :

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारैः, द्विज उच्यते"।

इसका तात्पर्य यह होता है कि मनुष्य अपने जन्म से ही शूद्र, अर्थात् गुणहीन, ज्ञानहीन, सदाचारहीन, अशुद्ध और अव्यवस्थित जीवनवाला होता है परन्तु वही मानव अच्छे संस्कारों से द्विज हो जाता है अर्थात् गुणसम्पन्न ज्ञानी, सदाचारी, शुद्ध और व्यवस्थित जीवन की चर्यावाला हो जाता है। द्विज शब्द का व्याकरण की दृष्टि से अर्थ इस प्रकार सिद्ध होता है—"द्वाभ्यां जन्मभ्यां जायते उत्पद्यते इति द्विजः" अर्थात् दो बार जिसका जन्म होता है उसे द्विज कहते हैं।

इस नियम के अनुसार दाँतों को द्विज इसलिए कहते हैं कि वे दाँत शिशु अवस्था में उत्पन्न होकर गिर जाते हैं और कुछ समय पश्चात् वे पुनः उत्पन्न हो जाते हैं, लोक में कहावत भी प्रसिद्ध है कि —"दूध के दाँत गिरते हैं और अन्न के दाँत

निकलते हैं।" तात्पर्य यह है कि दाँतों का दो बार जन्म होता है इसलिए उनको द्विज कहते हैं। इसी प्रकार पक्षी भी द्विज कहे जाते हैं, कारण कि वे एक बार माता के उदर से अण्डे के रूप में जन्म लेते हैं और दूसरी बार वे अण्डे से निकलते हैं इसीलिए पक्षी भी द्विज कहे जाते हैं।

परन्तु जैसे जन्म की प्रक्रिया से पक्षी तथा दाँत द्विज कहे जाते हैं वैसे मनुष्य द्विज नहीं कहे जा सकते हैं। मनुष्य को द्विज नैतिक एवं धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से कहते हैं। वह प्रक्रिया इस प्रकार है—प्रथम बार मनुष्य माता के उदर से उत्पन्न होता है और दूसरी बार विद्यारम्भ आदि सोलह संस्कारों से मनुष्य का जीवन एक नया संस्कार युक्त और व्यवस्थित बन जाता है, जिससे जीवन भर वह सच्चरित्र, धार्मिक एवं शुद्ध कर्तव्यशील बन जाता है, इसी पवित्र सुसंस्कृत जीवन के परिवर्तन को ही मानव का दूसरा जन्म कहते हैं, यह मानव-जीवन की बड़ी विशेषता है।

यद्यपि संस्कृत भाषा के कोषकारों ने ब्राह्मणवर्ग को द्विज कहा है। यह कोष की दृष्टि से कहा है, परन्तु व्यापक मानवता की दृष्टि से विचार किया जाए तो जो मानव धार्मिक संस्कारों से सहित, शिक्षित, सच्चरित्र, नैतिक और कर्तव्यपरायण होता है वही द्विज कहा जाता है। वही श्रेष्ठ मानव वास्तव में मानव है चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हरिजन आदि कोई भी जाति का हो, किसी वर्ग या समाज और किसी भी देश का हो। वही मानव यथार्थ में सामाजिक, राष्ट्रीय एवं नागरिक कहा जाता है।

संस्कार की परिभाषा

(1) "मानवव्यक्तित्वस्य विकसनमेवसंस्कृतिः"

मानव के व्यक्तित्व का विकास होना ही संस्कृति या संस्कार है।

(2) "संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्य-चिदर्थस्य"।

अर्थात् संस्कार वह कहा जाता है जिसके सम्पन्न होने पर किसी प्रयोजन के योग्य पदार्थ (वस्तु) हो जाता है।

(3) "योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यन्ते"।

अर्थात् योग्यता को विकसित करनेवाली क्रिया को संस्कार कहते हैं।

(4) "संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा"।

अर्थात् जिसके द्वारा गुणों का विकास हो अथवा दोषों का निराकरण हो उसे संस्कार कहते हैं।

संस्कार का प्रयोजन :

"संस्कारैः संस्कृतास्ते"[1]

अर्थात् वे मानव या पदार्थ संस्कारों से सुसंस्कृत होते हैं।

संस्कार भेद

जिन संस्कारों से सुसंस्कृत मानव द्विज कहा जाता है वे संस्कार सोलह होते हैं—(1) आधान संस्कार, (2) प्रीति संस्कार, (3) सुप्रीति संस्कार, (4) धृति, (5) मोद, (6) जातकर्म, (7) नामकरण, (8) बहिर्यान, (9) निषद्या, (10) अन्नप्राशन, (11) व्युष्टि, (12) केशवाय अथवा चौलकर्म, (13) लिपिसंख्यान, (14) उपनीति, (15) व्रताचरण, (16) विवाह संस्कार[2]।

जीवन की कल्याणकारी विशेष क्रिया को 'संस्कार' कहते हैं। अथवा जिस विशेष क्रिया से जीवन में सुधार या परिवर्तन हो जाए उसे संस्कार कहते हैं। ये संस्कार धर्मशास्त्र की विधि से किये जाते हैं।

संस्कारों की सामान्य विधि

प्रत्येक संस्कार को सम्पन्न करने के लिए पहले मण्डप बनाया जाता है। मण्डप में वेदी तीन कटनीवाली बनायी जाती है जिस पर सिंहासन सहित सिद्ध यन्त्र विराजमान किया जाता है, उसके सामने तीन कटनीवाले तीन कुण्ड या एक कुण्ड बनाया जाता है जिसमें हवन क्रिया होती है, हवन या यज्ञ भी एक प्रकार का पूजन ही है। यह हवन क्रिया व्रतोद्यापन, विवाह, संस्कार, पातक के समय, वेदी मन्दिर प्रतिष्ठा, कलशारोहरण, नवीनगृह निर्माण, गृहशान्ति और महारोगादि के समय की जाती है। वाद्यों की ध्वनि होती एवं समाज के बन्धु और सम्बन्धियों को आमन्त्रित किया जाता है। प्रतिष्ठाचार्य को आमन्त्रित करना आवश्यक है। अष्ट द्रव्य को तैयार करना, हवन के लिए साकल्य तैयार करना। इन संस्कारों के योग्य आसन चौकी आदि को सुसज्जित करना।

---

1. भारतीय सांस्कृतिक निधि : डॉ. रामजी उपाध्याय, प्र.—गांधी विश्वपरिषद् दाना (सागर) वि. सं. 2015, पृ. 20।
2. षोडशसंस्कार : सं. एवं प्र. जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता/संस्कारप्रकरण। सं. नरेन्द्रकुमार जैन।

संस्कारों का स्वरूप-विश्लेषण और विधि

आधान संस्कार

जब स्त्री विवाह के अनन्तर प्रथम ऋतुमती होती है तब आधान क्रिया का समय होता है। प्रथम ऋतुमती स्त्री चौथे या पाँचवें दिन जब स्नान कर शुद्ध हो जाए उस दिन यह क्रिया करनी चाहिए। सौभाग्यवती नारियाँ उस स्त्री तथा उसके पति को मण्डप में लाकर वेदी के निकट विराजमान करा दें। शुद्ध वस्त्र धारण कर संस्कार की विधि कराना आवश्यक है। प्रतिष्ठाचार्य निम्नलिखित विधि कराएँ।

प्रथम मंगलाचरण, मंगलाष्टक, हस्तशुद्धि, भूमिशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, पात्रशुद्धि, मन्त्रस्नान, साकल्यशुद्धि, समिधाशुद्धि, होमकुण्ड शुद्धि, पुण्याहवाचन के कलश की स्थापना, दीपक प्रज्वलन, तिलककरण, रक्षासूत्रबन्धन, संकल्प करना, यन्त्र का अभिषेक, शान्तिधारा, गन्धोदक वन्दन, इसके पूर्व अर्घसमर्पण, पूजन के प्रारम्भ में स्थापना, स्वस्तिवाचन, इसके बाद देव-शास्त्र-गुरुपूजा, एवं सिद्धयन्त्र का पूजन करना चाहिए। अनन्तर शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पति और भार्या विश्वशान्तिप्रदायक हवन को करें।

प्रीति-संस्कार

द्वितीयप्रीति संस्कार गर्भाधान से तीसरे माह में किया जाता है। प्रथम ही गर्भिणी स्त्री को तैल उबटन आदि लगाकर स्नानपूर्वक वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत करें तथा शरीर पर चन्दन आदि का प्रयोग करें। इसके बाद प्रथम संस्कार की तरह हवन क्रिया करें। आचार्य कलश के जल से दम्पती का सिंचन करें। पश्चात् आचार्य—त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैकाल्यज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव, इन तीनों मन्त्रों को पढ़कर दम्पती पर पुष्प (पीले चावल) छिड़के। शान्ति पाठ-विसर्जन पाठ पढ़कर थाली में पुष्प-क्षेपण करें। "ओं कं ठं व्हः पः असिआउसा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर पति गन्धोदक से गर्भिणी के शरीर का सिंचन करें, स्त्री अपने उदर पर गन्धोदक लगाएँ।

सुप्रीति क्रिया (संस्कार)

इस संस्कार को सुप्रीति अथवा पुंसवन कहते हैं। यह संस्कार गर्भ के पाँचवें माह में किया जाता है। इसमें भी प्रीतिक्रिया के समान सौभाग्यवती स्त्रियाँ उस गर्भिणी को स्नान के बाद वस्त्राभूषणों से तथा चन्दन आदि से सुसज्जित कर मंगलकलश लेकर वेदी के समीप लाएँ और स्वस्तिक पर मंगलकलश रखकर, नीलवस्त्राच्छादित पाटे पर दम्पती को बैठा दें। इस समय घर पर सिन्दूर तथा अंजन

(काजल) अवश्य लगाना चाहिए। प्रथम क्रिया की तरह, पूजन एवं हवन करना आवश्यक है।

धृति संस्कार

चौथी क्रिया का नाम 'धृति' है। इसको 'सीमन्तोन्नयन' अथवा सीमान्त क्रिया भी कहते हैं। इसको सातवें माह के शुभ दिन नक्षत्र योग मुहूर्त आदि में करना चाहिए। इसमें प्रथम संस्कार के समान सब विधि कर लेना चाहिए। पश्चात् यन्त्र-पूजन एवं हवन करना चाहिए। इसके बाद सौभाग्यवती नारियाँ गर्भिणी के केशों में तीन माँग निकालें।

मोद क्रिया

मोद-प्रमोद या हर्ष ये एक ही अर्थवाले शब्द हैं। इस संस्कार में हर्षवर्धक ही सब कार्य किये जाते हैं अतः इसको 'मोद' कहते हैं। गर्भ से नौवें माह में यह मोद क्रिया की जाती है। प्रथम संस्कार की तरह सब क्रिया करते हुए सिद्धयन्त्रपूजन और हवन करना चाहिए। अनन्तर आचार्य गर्भिणी के मस्तक पर णमोकार मन्त्र पढ़ते हुए ओं श्री आदि बीजाक्षर लिखना चाहिए। पीले चावलों की वर्षा मन्त्रपूर्वक करनी चाहिए। वस्त्र-आभूषण धारण कराने के साथ हस्त में कंकण सूत्र का बन्धन करना चाहिए। शान्ति-विसर्जन पाठ पढ़ते हुए पुष्पों की वर्षा करना जरूरी है। पश्चात् गर्भिणी को सरस भोजन करना चाहिए तथा आमन्त्रित सामाजिक बन्धुओं का आदर-सत्कार करें।

जातकर्म

पुत्र अथवा पुत्री का जन्म होते ही पिता अथवा कुटुम्ब के व्यक्तियों को उचित है कि वे श्रीजिनेन्द्र मन्दिर में तथा अपने दरवाज़े पर बाजे बजवाएँ। भिक्षुक जनों को तथा पशु-पक्षियों को दान दें। बन्धु वर्गों को वस्त्र-आभूषण,ताम्बूल आदि शुभ वस्तुओं को प्रदान करें। पश्चात् "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रौं ह्रूं ह्रः नानानुजानुप्रजो भव भव अ सि आ उ सा स्वाहा।" यह मन्त्र पढ़कर, पुत्र का मुख देखकर, घी दूध और मिश्री मिलाकर, सोने की चमची अथवा सोने के किसी बर्तन से उसे पाँच बार पिलाएँ। पश्चात् नाल कटवाकर किसी शुद्धभूमि में मोती, रत्न अथवा पीले चावलों के साथ प्रक्षिप्त कर दें।

नामकरण संस्कार

सातवाँ संस्कार नामकर्म (नामकरण) है। पुत्रोत्पत्ति के बारहवें दिन अथवा सोलहवें, बीसवें या बत्तीसवें दिन नामकरण करना चाहिए। कदाचित् बत्तीसवें दिन

तक भी नामकरण न हो सके तो जन्मदिन से वर्ष पर्यन्त इच्छानुकूल नामकरण कर सकते हैं। पूर्व के संस्कारों के समान मण्डप, वेदी, कुण्ड आदि सामग्री तैयार करना चाहिए। पुत्र सहित दम्पती को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर वेदी के सामने बैठाना चाहिए। पुत्र स्त्री के गोद में रहे। स्त्री पति की दाहिनी ओर बैठे। मंगलकलश भी कुण्डों के पूर्व दिशा में दम्पती के सन्मुख रखे।

बहिर्यान संस्कार

आठवें संस्कार का नाम बहिर्यान है। बहिर्यान का अर्थ बाहर निकालना है। यह संस्कार दूसरे, तीसरे अथवा चतुर्थ महीने में करना चाहिए। घर से बाहर निकलने का अभिप्राय बालक को जिनेन्द्र देव का प्रथम दर्शन कराना है। अर्थात् जन्म से दूसरे, तीसरे अथवा चौथे महीने में बच्चे को घर से बाहर निकालकर प्रथम ही किसी चैत्यालय अथवा मन्दिर में ले जाकर श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन श्रीफल के साथ स्तुति पढ़ते हुए कराना चाहिए। इसी समय केशर से बच्चे के ललाट में तिलक करना भी आवश्यक है। यह क्रिया शुक्लपक्ष एवं शुभ नक्षत्र में की जाती है।

निषद्या संस्कार

जन्म से पाँचवें मास में निषद्या या उपवेशन विधि करना चाहिए। निषद्या या उपवेशन का अर्थ है बिठाना अर्थात् पाँचवें मास में बालक को बिठाना चाहिए। प्रथम ही भूमि-शुद्धि, पूजन और हवन कर पंच कुमार तीर्थंकरों का पूजन करें। वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर इन पाँच बालब्रह्मचारी तीर्थंकरों को कुमार कहते हैं।

अनन्तर चावल, गेहूँ, उड़द, मूँग, तिल, जवा इनसे रंगावली चौक बनाकर उस पर एक वस्त्र बिछा दें। बालक को स्नान कराकर वस्त्रालंकारों से विभूषित करें। पश्चात् "ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः बालकं उपवेशयामि स्वाहा"। यह मन्त्र पढ़कर उस रंगावली पर बिछे वस्त्र पर उस बालक को पूर्व दिशा की ओर मुखकर पद्मासन बिठाना चाहिए। अनन्तर बालक की आरती उतारकर प्रतिष्ठाचार्य एवं प्रमुख जन उसको आशीर्वाद प्रदान करें।

अन्नप्राशन संस्कार

इस संस्कार का नाम अन्नप्राशन विधि है। अन्नप्राशन का अर्थ है कि बालक को अन्न खिलाना। सारांश यह कि बालक को अन्न खाना सिखलाने के लिए तथा उस अन्न द्वारा बालक को पुष्टि होने के लिए यह संस्कार किया जाता है। यह संस्कार सातवें मास में करना चाहिए। यदि सातवें में न हो सके तो आठवें अथवा नौवें मास में करना उचित है।

व्युष्टि संस्कार

व्युष्टि का अर्थ वर्ष-वृद्धि है। जिस दिन बालक का वर्ष पूर्ण हो उस दिन यह संस्कार करना चाहिए। इस संस्कार में कोई विशेष क्रिया नहीं है, केवल जन्मोत्सव मनाना है। यहाँ पर पूर्व के समान श्रीजिनेन्द्र देव की पूजा करें एवं हवन करें। नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर उस बालक पर पीले चावल बखेरें। मन्त्र—"उपनयन जन्मवर्षवर्धनभागी भव, वैवाहनिष्टवर्षवर्धनभागी भव, मुनीन्द्रवर्षवर्धनभागी भव, सुरेन्द्रवर्षवर्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव, यौवराज्यवर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव"।

अनन्तर यथाशक्ति चार प्रकार के दान दें। इष्टजन तथा बन्धु-वर्गों को भोजनादि द्वारा सन्तुष्ट करें।

केशवाय अथवा चौलकर्म संस्कार

यह संस्कार 'चौलकर्म' कहा जाता है। यह संस्कार पहले, तीसरे पाँचवें अथवा सातवें वर्ष में करना उचित है। परन्तु यदि बालक की माता गर्भवती हो तो मुण्डन करना सर्वथा अनुचित है। माता के गर्भवती होने पर यदि मुण्डन किया जाएगा तो गर्भ पर असर उस बालक पर कोई विपत्ति आ जाना सम्भव है। यदि बालक के पाँच वर्ष पूर्ण हो गये हों तो फिर माता का गर्भ किसी प्रकार का दोष नहीं कर सकता अर्थात् सातवें वर्ष में यदि माता गर्भवती भी हो तथापि बालक का मुण्डन कर देना ही उचित है। बालक के सातवें वर्ष में माता के गर्भ से कोई हानि नहीं हो सकती।

लिपिसंख्यान संस्कार

लिपि संख्यान संस्कार अर्थात् बालक को अक्षराभ्यास कराना। शास्त्रारम्भ यज्ञोपवीत से पीछे ही होता है। लिपिसंख्यान संस्कार पाँचवें अथवा सातवें वर्ष में करना चाहिए। ग्रन्थकारों का मत है :

"प्राप्ते तु पंचमे वर्षे, विद्यारम्भं समाचरेत्"।[1]

अर्थात्—पाँचवें वर्ष में विद्यारम्भ संस्कार करना चाहिए।

ततोऽस्य पंचमे वर्षे, प्रथमाक्षरदर्शने।
ज्ञेयः क्रियाविधिर्नाम्ना, लिपिसंख्यानसंग्रहः ॥

---

1. षोडश संस्कार : सं. एवं प्र.—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय 161/1 हरीसन रोड कलकत्ता, पृ. 48।

यथाविभवमत्रापि, ज्ञेयः पूजापरिच्छदः।
उपाध्याय पदे चास्य, मतोऽधाती गृहव्रती ॥

तात्पर्य—लिपिसंख्यान (विद्यारम्भ) संस्कार पाँचवें अथवा सातवें वर्ष में करना चाहिए। इस संस्कार में शुभ मुहूर्त की अत्यावश्यकता है। योग, वार, नक्षत्र ये सब ही शुभ अर्थात् विद्यावृद्धिकर होने चाहिए। उपाध्याय (गुरु) इस विषय का अत्यन्त ध्यान रखे।

इस संस्कार में आचार्य को इस शुभ मुहूर्त का बहुत ध्यान होना चाहिए। ज्योतिषशास्त्र में वारों का फल इस प्रकार है—गुरुवार को विद्यारम्भ करने से बुद्धि अत्यन्त प्रखर (तेज) होती है। बुधवार तथा शुक्रवार को बुद्धि शुद्ध होती और बढ़ती है। रविवार को विद्यारम्भ करने से आयु बढ़ती है। सोमवार को मूर्खता, मंगलवार को मरण और शनिवार को विद्यारम्भ करने से शरीर का क्षय होता है।

बालक के पाँचवें वर्ष में, सूर्य के उत्तरायण होने पर विद्यारम्भ को कराना उत्तम है। मृग, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मूल, हस्त, चित्रा, स्वाती, अश्विनी, पूर्वा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका—ये नक्षत्र शुभ हैं। इस प्रकार योग और लग्न आदि भी देखकर मुहूर्त निश्चित कर लेना चाहिए। जिस दिन मुहूर्त निकले उस दिन प्रथम ही श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा तथा गुरु एवं शास्त्र की पूजा कर पूर्व के समान शान्ति हवन करें। अनन्तर बालक को स्नान कराकर वस्त्र अलंकार पहनाते हुए चन्दन का तिलक लगाकर विद्यालय अथवा पाठशाला में ले जाएँ। शिक्षा देनेवाले गुरु महोदय को वस्त्र, अलंकार, श्रीफल और कुछ राशि उपहारस्वरूप देकर बालक स्वयं करबद्ध नमस्कार करे।

गुरु महोदय स्वयं पूर्वदिशा की ओर मुखकर बैठें। बालक को अपने सामने पश्चिम दिशा की ओर मुख कराकर बिठाएँ और उसे धर्म, अर्थ, काम—इन तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध करने योग्य बनाने के लिए अक्षरारम्भ संस्कार प्रारम्भ करें। प्रथम ही उपाध्याय एक बड़े तख्ते पर अखण्ड चावलों को बिछाएँ और उस पर हाथ से—"ओं नमः सिद्धेभ्यः" यह मन्त्र लिखकर, "अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः" ये स्वर और "क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह" ये व्यंजन लिखें। अनन्तर बालक के दोनों हाथों में सफ़ेद पुष्प और अक्षत देकर लिखे हुए अक्षरों के समीप रखा दें और फिर—"ओं नमो अर्हन्ते नमः सर्वज्ञाय सर्वभाषा भाषित सकल पदार्थाय बालकं अक्षराभ्यासं कारयामि द्वादशांगश्रुतं भवतु भवतु ऐं ओं ह्रीं क्लीं स्वाहा।" यह मन्त्र पढ़कर उन लिखे हुए अक्षरों के समीप ही बालक के हाथ से वही "ओं नमः सिद्धेभ्यः" मन्त्र और अकार से हकार पर्यन्त अक्षर लिखाएँ।

इस प्रकार वह बालक गुरु के कथनानुसार अक्षरों का अभ्यास करे। जब अक्षराभ्यास पूरा हो जाए तब पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ करें। जिस दिन पुस्तक पढ़ना

आरम्भ करें उस दिन श्री जिनेन्द्र देव की पूजा आदि पहले के समान ही करना चाहिए। बालक स्वयं वस्त्र, अलंकार आदि से गुरु महोदय का सत्कार कर हाथ जोड़ पूर्व दिशा की ओर मुख कर बैठे और गुरु महोदय सन्तोषपूर्वक उसे पुस्तक दें। शिष्य प्रथम ही मंगलपाठ (मंगलाष्टक) पढ़े और फिर पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ करे॥

उपनीति संस्कार

इस संस्कार का नाम उपनीति, उपनयन एवं यज्ञोपवीत है। यह संस्कार ब्राह्मणों को गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रियों को ग्यारहवें वर्ष में और वैश्यों को बारहवें वर्ष में करना चाहिए। यदि कारण कलापों से नियत समय तक उपनयनविधान न हो सका तो ब्राह्मणों को सोलह वर्ष तक, क्षत्रियों को बाइस वर्ष तक और वैश्यों को चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत संस्कार कर लेना उचित है। यह उपनीति संस्कार का अन्तिम समय है। जिस पुरुष का यज्ञोपवीत संस्कार इस समय तक भी नहीं हुआ है, वह पुरुष असभ्य होकर धर्मविरुद्ध हो सकता है, इस संस्कार से रहित पुरुष पूजा-प्रतिष्ठा, जप, हवन आदि करने के योग्य नहीं होता है।

पुत्र सात प्रकार के माने गये हैं—(1) निज पुत्र, (2) अपनी लड़की का लड़का, (3) दत्तक (गोद लिया) पुत्र, (4) मोल लिया पुत्र, (5) पालन-पोषण किया हुआ पुत्र, (6) अपनी बहिन का पुत्र, (7) शिष्य।

यज्ञोपवीत करानेवाला आचार्य बालक का पिता हो सकता है, यदि पिता न हो तो पितामह (पिता के पिता), यदि वे भी न हों तो पिता के भाई (काका, चाचा, ताऊ आदि), यदि वे भी न हों तो अपने कुल का कोई भी ज्येष्ठ पुरुष, यदि वे भी न हों तो अपने गोत्र का कोई भी ज्येष्ठ पुरुष आचार्य बनकर यज्ञोपवीत करा सकता है।

व्रताचरण संस्कार

यज्ञोपवीत के पश्चात् विद्याध्ययन करने का समय है, विद्याध्ययन करते समय कटिलिंग (कमर का चिह्न), ऊरुलिंग (जंघा का चिह्न) उरोलिंग (हृदयस्थल का चिह्न) और शिरोलिंग (शिर का चिह्न) धारण करना चाहिए। (1) कटिलिंग—इस विद्यार्थी का कटिलिंग त्रिगुणित मौंजीबन्धन है जो कि रत्नत्रय का विशुद्ध अंग और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का चिह्न है। (2) ऊरुलिंग—इस शिष्य का ऊरुलिंग धुली हुई सफ़ेद धोती तथा लँगोट है जो कि जैनधर्मी जनों के पवित्र और विशाल कुल को सूचित करती है। (3) उरोलिंग—इस विद्यार्थी के हृदय का चिह्न सात सूत्रों से बनाया हुआ यज्ञोपवीत है। यह यज्ञोपवीत सात परमस्थानों का सूचक है (4) शिरोलिंग—विद्यार्थी का शिरोलिंग शिर का मुण्डन कर शिखा (चोटी) सुरक्षित करना है। जो कि मन वचन काय की शुद्धता का सूचक है।

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् नमस्कार मन्त्र को नौ बार पढ़कर इस

विद्यार्थी को प्रथम ही उपासकाचार (श्रावकाचार) गुरुमुख से पढ़ना चाहिए। गुरुमुख से पढ़ने का अभिप्राय यह है कि श्रावकों की बहुत-सी ऐसी क्रियाएँ हैं जो अनेक शास्त्रों के मन्थन करने से निकलती हैं, गुरुमुख से वे सहज ही प्राप्त हो सकते हैं। श्रावकाचार पढ़ने के बाद न्याय, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि लौकिक एवं पारमार्थिक विधाओं का अध्ययन करे। यह बालक जब तक विद्याध्ययन करेगा तब तक उसके यही वेश और व्रत रहेंगे। जब विद्याध्ययन समाप्त हो जाएगा तब इसका यह वेष और व्रत छूट जाएँगे। शास्त्रानुसार विद्यार्थी के सोलह वर्ष और कन्या के बारह वर्ष पूर्ण होने पर विवाह संस्कार होगा तथा इन गृहस्थों के आठ मूलगुणों का धारण हो जाएगा, जो श्रावकों के मुख्य व्रत कहे जाते हैं। वर्तमान समय में वर और कन्या का, अधिक उम्र में भी विवाह संस्कार सम्पन्न हो सकता है कारण कि वर्तमान में शिक्षा की अवधि पूर्व से अधिक हो गयी है, लौकिक शिक्षा का स्तर भी वैज्ञानिक युग में उन्नत हो गया है। पूर्वकाल की अपेक्षा महिलावर्ग में भी अधिक शिक्षा की प्रगति हो गयी है।

विवाह संस्कार

मानव-जीवन का विवाह संस्कार, सोलह संस्कारों में अन्तिम एवं महत्त्वपूर्ण संस्कार है। सुयोग्य वर एवं कन्या के जीवन पर्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध सहयोग और दो हृदयों के अखण्ड मिलन या संगठन को विवाह कहते हैं। विवाह, विवहन, उद्वह, उद्वहन, पाणिग्रहण, पाणिपीडन—ये सब ही एकार्थवाची शब्द हैं। "विवहनं विवाहः" ऐसा व्याकरण से शब्द सिद्ध होता है। विवाह का प्रयोजन—मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि का लक्ष्य रखकर धर्म, अर्थ एवं काम पुरुषार्थ की साधना करना, एवं इन तीन वर्गों की अखण्ड परम्परा चलाना, शान्तिपूर्वक विषयों का सेवन, सदाचार का निर्दोष पालन, कुल उन्नति करना और गृहस्थ जीवन के सोलह संस्कारों के साथ छह दैनिक कर्तव्यों का पालन करना विवाह का उद्देश्य (प्रयोजन) है। गृहस्थ (श्रावक) के छह दैनिक कर्तव्य इस प्रकार हैं—(1) भगवत्पूजन, (2) गुरु या श्रेष्ठ पुरुषों की संगति एवं सेवा, (3) ज्ञान वृद्धि के लिए स्वाध्याय करना, (4) संयम, व्रत एवं सदाचार का पालन करना, (5) इच्छाओं को रोककर एकाशन, उपवास आदि करना, (6) आहार (भोजन), ज्ञान औषधि और जीवनदान एवं जीवनसुरक्षा करना ॥

विवाह के पाँच अंग—

> वाग्दानं च प्रदानं च, वरणं पाणिपीडनम्।
> सप्तपदीति पंचांगी, विवाहः परिकीर्तितः ॥

(1) वाग्दान (सगाई करना), (2) प्रदान (विधिपूर्वक कन्यादान), (3) वरण (माला द्वारा परस्पर स्वीकारना), (4) पाणिग्रहण (कन्या एवं वर का हाथ मिलाकर,

उन हाथों पर जलधारा छोड़ना), (5) सप्तपदी (देवपूजन के साथ सात प्रदक्षिणा (फेरा) करना)—ये विवाह के पाँच अंग आचार्यों ने कहे हैं।

संस्कारों का प्रमाण

मानव जीवन के इन षोडश संस्कारों का वर्णन श्री जिनसेन आचार्य ने महापुराण के प्रथम भाग आदि-पुराण में विस्तार से किया है। महापुराण के मुख्य दो खण्ड हैं—(1) आदिपुराण या पूर्वपुराण और (2) द्वितीय उत्तरपुराण। आदिपुराण 47पर्वों में पूर्ण हुआ है जिसके 42 पर्व पूर्ण तथा 43वें पर्व के तीन श्लोक भगवज्जिनसेनाचार्य के द्वारा रचित हैं और अवशिष्ट पाँच पर्व तथा उत्तरपुराण, श्री जिनसेनाचार्य के प्रमुख शिष्य श्री गुणभद्राचार्य के द्वारा विरचित हैं।

आदिपुराण, भारतीय पुराणकाल के सन्धिकाल की एक अनुपम रचना है। अतः यह न केवल पुराण ग्रन्थ है अपितु महाकाव्य ग्रन्थ भी है। वास्तव में आदिपुराण संस्कृत साहित्य का एक प्रशस्त ग्रन्थ है। ऐसा कोई विषय नहीं है जिसका इसमें प्रतिपादन न किया गया हो। यह पुराण है, महाकाव्य है, धर्मकथा है, धर्मशास्त्र है, राजनीतिशास्त्र है, आचारशास्त्र है और कर्मयुग की आद्यव्यवस्था का (आविष्कार का) प्रदर्शक इतिहास है।

महापुराण के प्रथम भाग (आदिपुराण) में अड़तीसवें (38) पर्व के अन्तर्गत षोडश संस्कारों का विधिपूर्वक वर्णन किया गया है। इसी शास्त्र के आधार पर षोडश संस्कार पुस्तक की रचना की गयी है।

आदिपुराण में संस्कृत के 67 छन्दों के प्रकारों में 10979 पद्य रचे गये हैं। उत्तरपुराण के अन्तर्गत सोलह प्रकार के संस्कृत छन्दों में 7575 पद्यों की रचना की गयी है। यह महापुराण की रचना का प्रमाण है। इस महापुराण की रचना सन् 815 से सन् 877 के मध्य में की गयी एवं गुणभद्राचार्य ने 897 में उत्तरपुराण की विरचना कर भारतीय साहित्य के गौरव को उन्नत किया है।[1]

सूची

पूजा-काव्यों और मन्त्रों के द्वारा क्रमशः संस्कारों का प्रावधान

क्र.	पूजन-काव्य	मन्त्र क्रमांक	संस्कार का नाम	यज्ञ
1.	विनायक यन्त्र पूजा	मन्त्र क्र. 1	आधान संस्कार	शान्ति-यज्ञ
2.	विनायक यन्त्र पूजा	मन्त्र क्र. 2	प्रीति संस्कार	यज्ञ
3.	विनायक यन्त्र पूजा	मन्त्र क्र. 3	सुप्रीति संस्कार	यज्ञ
4.	विनायक यन्त्र पूजा	मन्त्र क्र. 4	धृति संस्कार	यज्ञ
5.	शान्ति नाथ पूजा	मन्त्र क्र. 5	मोद संस्कार	यज्ञ

क्र.	पूजन-काव्य	मन्त्र क्रमांक		संस्कार का नाम	यज्ञ
6.	सिद्ध पूजा	मन्त्र क्र.	6	जातकर्म संस्कार	यज्ञ
7.	देवशास्त्र गुरु पूजन	मन्त्र क्र.	7	नामकरण संस्कार	यज्ञ
8.	शान्तिनाथ पूजा	मन्त्र क्र.	8	बहिर्यान संस्कार	यज्ञ
9	पार्श्वनाथ पूजा	मन्त्र क्र.	9	निषद्या संस्कार	यज्ञ
10.	महावीर पूजा	मन्त्र क्र.	10	अन्न प्राशन संस्कार	यज्ञ
11.	चन्द्रप्रभ पूजा	मन्त्र क्र.	11	व्युष्टि संस्कार	यज्ञ
12.	ऋषभदेव पूजा	मन्त्र क्र.	12	केशवाप (चौलकर्म)	यज्ञ
13.	देवशास्त्र गुरु पूजा	मन्त्र क्र.	13	लिपिसंख्यान (विद्यारम्भ)	यज्ञ
14.	पंचपरमेष्ठी पूजा	मन्त्र क्र.	14	उपनीति संस्कार	यज्ञ
15.	चौबीसतीर्थंकर पूजा	मन्त्र क्र.	15	व्रताचरण संस्कार	यज्ञ
16.	सिद्धयन्त्र पूजा	मन्त्र क्र.	16	विवाह संस्कार	यज्ञ
	सप्तपदी पूजा	अनेक मन्त्र		सप्तप्रदक्षिणा	यज्ञ

जैन पूजा-काव्य में नवग्रहशान्ति का विधान

ज्योतिर्विद्या का मूलतः आविष्कार—जैन दर्शन में ज्योतिर्विद्या की सत्ता को अनिवार्यतः स्वीकार किया गया है। इसका मूलतः उदय या आविष्कार प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से हुआ है। उन्होंने अपने पुत्रों के लिए 72 कलाओं का आविष्कार कर उपदेश दिया और उनके पुत्रों ने मानव समाज के लिए उन सम्पूर्ण कलाओं का शिक्षण दिया। इस प्रकार कला शिक्षण की परम्परा ऋषभदेव से महावीर तीर्थंकर तक प्रचलित रही। भगवान महावीर के दिव्य उपदेश से कलाओं का शिक्षण हुआ। तत्पश्चात् गणधर तथा आचार्यों द्वारा कलाओं का शिक्षण प्रचलित रहा। उन कलाओं में एक ज्योतिर्विद्या का प्रसार भी होता रहा है। आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्रशास्त्र में ज्योतिष के विषय में प्रणयन किया है :

"ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च" ॥
मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥
तत्कृतः कालविभागः ॥[1]

सारांश—इस मनुष्य लोक में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए नित्य गमन करते हैं और इन्हीं गतिशील सूर्य आदि ज्योतिष्क देवों के द्वारा पल, विपल, घटी, घण्टा, दिन, मास, वर्ष आदि काल का विभाग होता

1. श्री जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराण : सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.--भारतीय ज्ञानपीठ देहली, पर्व 38, 1988, पृ. 244-268।

है। अर्थात् इन्हीं से ज्योतिष विद्या का उदय हुआ है। उनमें ग्रह नौ प्रकार के होते हैं—(1) चन्द्र, (2) सूर्य, (3) मंगल, (4) बुध, (5) बृहस्पति, (6) शुक्र, (7) शनैश्चर, (8) राहु, (9) केतु।

ज्योतिष ग्रन्थों में इन ग्रहों की दशा का सूक्ष्म वर्णन किया गया है।

जैन दर्शन में इन अशुभ ग्रहों की दशा को शान्त करने के लिए नवग्रह शान्ति पूजा-विधान काव्य की रचना श्री दिगम्बरदास जी ने सम्पादित की है। इसमें नवग्रहों का एक समुच्चय पूजा तथा नवग्रहों की पृथक्-पृथक् नवपूजा, इस प्रकार दश पूजाएँ हैं। इस काव्य में सम्पूर्ण 211 पद्य हैं, इनमें 17 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है।

इन पद्यों में यथासम्भव रस एवं अलंकारों की छटा से भक्तिरस प्रवाहित होता है। इन अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिए चौबीस तीर्थंकरों का पूजन, जप तथा हवन का अनुष्ठान दर्शाया गया है। इस पूजाविधानकाव्य का मंगलाचरण संस्कृत में इस प्रकार है :

अनुष्टुप् छन्द

प्रणम्याद्यन्ततीर्थेशं, धर्मतीर्थप्रवर्तकम्।
भव्यविघ्नोपशान्त्यर्थं, ग्रहार्चा वर्ण्यते मया॥
मार्तण्डेन्दु कुजसौम्य-सूरसूर्यकृतान्तकाः।
राहुश्च केतुसंयुक्तो, ग्रहाः शान्तिकरा नव॥

दोहा

काल दोप परभावसों, विकलप छूटे नाहिं।
जिन पूजा में ग्रहन की—पूजा मिथ्या नाहिं॥
ज्ञान प्रश्नव्याकर्ण में, प्रश्न अंग हैं आठ।
भद्रबाहुमुख जनित जो—सुनत कियो मुख पाठ॥[1]

पूजा-काव्य द्वारा इन ग्रहों की शान्ति का विवरण निम्नानुसार है :

क्र.	ग्रहनाम	शान्ति के लिए तीर्थंकर	पूजा मन्त्रजाप संख्या	यज्ञ
1.	सूर्यग्रह	पद्मप्रभतीर्थंकर पूजा	7000 जाप्य	शान्तियज्ञ
2.	चन्द्रग्रह	चन्द्रप्रभतीर्थंकर पूजा	11000 जाप्य	"
3.	मंगलग्रह	वासुपूज्यतीर्थंकर पूजा	10000 जाप्य	"

1. उमास्वामी प्रणीत तत्त्वार्थसूत्र : सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र. जैन पुस्तकालय, गांधी चौक, सूरत, पृ. 76, 1987, अ. 4, सूत्र 12, 13, 14।

क्र.	ग्रहनाम	शान्ति के लिए तीर्थंकर	पूजा मन्त्रजाप संख्या	यज्ञ
4.	बुधग्रह	13. 14. 15. 16. 17. 18. 21. 24वें तीर्थंकरों का पूजन	8000 जाप्य	〃
5.	गुरुग्रह	1. 2. 3. 4. 5. 7. 10. 11वें तीर्थंकरों का पूजन	11000 जाप्य	〃
6.	शुक्रग्रह	पुष्पदन्ततीर्थंकर का पूजन	11000 जाप्य	〃
7.	शनैश्चर	मुनिसुव्रततीर्थंकर का पूजन	23000 जाप्य	〃
8.	राहुग्रह	नेमिनाथ का पूजन	18000 जाप्य	〃
9.	केतुग्रह	मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ का पूजन	7000 जाप्य	〃

श्री नवग्रह शान्ति स्तोत्र

(1) जगद्गुरुं नमस्कृत्य, श्रुत्वासद्गुरुभाषितम्।
ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि, लोकानां सुखहेतवे ॥

(2) जन्मलग्ने च राशौ च, पीडयन्ति यदा ग्रहाः।
तदा सम्पूजयेद् धीमान्, खेचरैः सहितान् जिनान् ॥

(3) पद्मप्रभस्य मार्तण्डः, चन्द्रश्चन्द्रप्रभस्य च।
वासुपूज्यस्य भूपुत्रो, बुधोऽप्यष्टजिनेषु च ॥

(4) विमलानन्तधर्माराः, शान्तिः कुन्थुर्नमिस्तथा।
वर्धमानस्तथैतेषां, पादपद्मे बुधं न्यसेत् ॥

(5) ऋषभाजितसुपार्श्वाः, चाभिनन्दनशीतलौ।
सुमतिः सम्भवः स्वामी, श्रेयांसश्चैषु गीष्पतिः ॥

(6) सुविधिः काथितः शुक्रः सुव्रतस्य शनैश्चरः।
नेमिनाथे भवेद् राहुः, केतुः श्रीमल्लिपार्श्वयोः ॥

(7) जिनानामग्रतः कृत्वा, ग्रहाणां शान्तिहेतवे।
नमस्कारशतं भक्त्या, जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥

(8) भद्रबाहुरुवाचैवं, पंचमः श्रुतकेवली।
विद्याप्रवादतः पूर्वात्, ग्रहशान्तिरुदीरिता ॥

1. जैनविधानसंग्रह : सं. पं. मोहनलाल शास्त्री, प्र.-जैनग्रन्थ भण्डार जबलपुर, गत सन्स्करण, पृ. 67-114।

ग्रहशान्ति मन्त्र

ओं ह्रीं ग्रहाश्चन्द्रसूर्यांगारकबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहुकेतुसहिताः खेटा जिनपतिपुरतो अवतिष्ठन्तु मम धनधान्य जयविजय-सुखसौभाग्यधृतिकीर्ति कान्ति-शान्ति तुष्टिपुष्टिवृद्धिलक्ष्मीधर्मार्थकामदाः स्युः स्वाहा।

जैन दर्शन में संस्कार

जैनदर्शन के अन्तर्गत आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन संस्कृति समन्वयवादी थे। उनके समय में सामाजिक विशेषाधिकार वर्णाश्रम और संस्कार संस्था पर ही अवलम्बित था। उस युग में संस्कारहीन व्यक्ति शूद्र समझा जाता था तथा जाति और वर्ण भी सामाजिक सम्मान के हेतु थे। अतएव दूरदर्शी समाज शास्त्रवेत्ता जिनसेन आचार्य ने जैन धर्मानुयायियों को सामाजिक सम्मान और उचित स्थान प्रदान करने के लिए वर्णाश्रम-व्यवस्था तथा संस्कार-व्यवस्था का योग्य प्रतिपादन किया है। जिनसेन की यह संस्कार संस्था मुख्यतः तीन भागों में विभक्त है।

(क) गर्भान्वय क्रिया संस्था।

(ख) दीक्षान्वय क्रिया संस्था।

(ग) क्रियान्वय क्रिया संस्था।

(क) गर्भान्वय क्रिया—संस्था में श्रावक या गृहस्थ नागरिक की 53 क्रियाओं का वर्णन है--वह इस प्रकार है :

(1) आधान क्रिया (संस्कार), (2) प्रीति क्रिया, (3) सुप्रीति, (4) धृति, (5) मोद, (6) प्रियोद्भव जातकर्म, (7) नामकर्म, नामकरण, (8) वहिर्यान, (9) निषद्या, (10) अन्नप्राशन, (11) व्युष्टि (वर्षगाँठ), (12) केशवाप, (13) लिपिसंख्यान, (14) उपनीति (यज्ञोपवीत), (15) व्रतावरण, (16) विवाह, (17) वर्णलाभ, (18) कुलचर्या, (19) गृहीशिता, (20) प्रशान्ति, (21) गृहत्याग, (22) दीक्षाग्रहण, (23) जिनरूपता, (24) मौनाध्ययन, (25) तीर्थकृद्भावना, (26) गणोपग्रहण, (27) स्वगुरुस्थानावाप्ति, (28) निस्संगत्वात्मभावना, (29) योगनिर्वाणसम्प्राप्ति, (30) योगनिर्वाणसाधन, (31) इन्द्रोपपाद, (32) इन्द्राभिषेक, (33) इन्द्रविधिदान, (34) सुखोदय, (35) इन्द्रत्याग, (36) अवतार, (37) हिरण्योत्कृष्टजन्मग्रहण, (38) मन्दराभिषेक, (39) गुरुपूजन, (40) यौवराज्यक्रिया, (41) स्वराज्यप्राप्ति, (42) दिशांजय, (43) चक्राभिषेक, (44) साम्राज्य, (45) निष्क्रान्त, (46) योगसम्मह, (47) आर्हन्त्य क्रिया, (48) विहारक्रिया, (49) योगत्याग, (50) अग्रनिर्वृत्ति, तीन अन्य क्रिया (संस्कार) इस प्रकार गर्भ से लेकर निर्वाण पर्यन्त 53 क्रियाओं (संस्कारों) का कथन किया गया है।

(ख) दीक्षान्वय क्रिया

(1) अवतार, (2) वृत्तलाभ, (3) स्थानलाभ, (4) गणग्रह, (5) पूजाराध्य, (6) पुण्ययज्ञ, (7) दृढ़चर्या, (8) उपयोगिता, (9) उपनीति, (10) व्रतचर्या, (11) व्रतावतरण, (12) पाणिग्रहण, (13) वर्णलाभ, (14) कुलचर्या, (15) गृहीशिता, (16) प्रशान्तता, (17) गृहत्याग, (18) दीक्षाद्य, (19) जिनरूपत्व, (20) दीक्षान्वय।

(ग) क्रियान्वय क्रिया

सज्जातिः सद्गृहस्थत्वं, पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं पदमार्हन्त्यं, निर्वाणं चेति सप्तकम् ॥

(1) सज्जातित्व (सत्कुलत्व), (2) सद्गृहस्थता, (3) पारिव्रज्य, (4) सुरेन्द्रपदत्व, (5) साम्राज्यपद, (6) अर्हन्तपद, (7) निर्वाणपदप्राप्ति। ये सात क्रियान्वय क्रियाएँ हैं।[1]

इन समस्त क्रियाओं में धर्मसाधना की प्रक्रिया वर्णित है। इन क्रिया (संस्कारों) में देव-शास्त्र-गुरु पूजा का यथायोग्य-विधान है।

उपसंहार

जैन पूजा-काव्य के इस षष्ठ अध्याय में कर्मकाण्ड के विधिविधान का वर्णन किया गया है। कर्मकाण्ड का अर्थ होता है कि वे क्रिया संस्कार या कर्तव्य, जिनके आचरण से आत्मा की पवित्रता हो, जीवन का विकास हो, सदाचार की वृद्धि हो, श्रद्धा के साथ ज्ञान का विकास हो और शारीरिक बल की उन्नति हो। जिस प्रकार मणि (रत्न) का मूल्यांकन बिना संस्कार के नहीं होता है, उसी प्रकार मानव का मूल्यांकन या योग्यता बिना संस्कार के नहीं हो सकती। अतएव मानव-जीवन के विकास के लिए संस्कारों या कर्मकाण्ड की महती आवश्यकता है।

इस प्रकरण में इसी ध्येय को स्थिर कर सोलह संस्कारों की शास्त्रोक्त विधि, व्याख्या, पूजा-काव्य, मन्त्र और शान्ति हवन का निर्देश किया गया है, जिससे कि मानव विवेक के साथ संस्कारों की साधना कर सर्वतोमुखी मानवता का विकास कर सके। नीतिकारों का कथन है :

यथोदयगिरेर्द्रव्यं, सन्निकर्षेण दीप्यते।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥

सारांश—जैसे सूर्य के संयोग से उदयाचल का द्रव्य चमकता है, उसी प्रकार

1. डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, प्र. श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थ माला, अस्सी वाराणसी, सन् 1968, पृ. 165-169

सज्ज्ञान के संयोग से अथवा श्रेष्ठ संस्करण के संयोग से साधारण मानव भी महान् हो जाता है।

इस पूजा-काव्यों का संस्कारों पर बहुत प्रभाव प्रकाशित होता है। कोई भी संस्कार पूजा-काव्य एवं मन्त्र की शक्ति के बिना अपना प्रयोजन पुष्ट नहीं कर सकता। अन्त में संस्कारों का रेखाचित्र है।

इसी प्रकार पूजा-काव्यों का अशुभग्रहों पर भी प्रचुर प्रभाव अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक मानव का ग्रहों से जीवनान्त सम्बन्ध है। ग्रह शुभ तथा अशुभ दो प्रकार के होते हैं। जब शुभ ग्रह का उदय होता है तब सुख का अनुभव होता है। जब अशुभ ग्रह का उदय होता है तब दुःख का अनुभव होता है। यद्यपि जीवन में सुख और दुःख पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से होते हैं। सुख और दुःख में कर्म निमित्त होते हैं, ग्रह नहीं। जब ग्रह दुःख-सुख के दाता नहीं हैं तो क्रिया शून्य होने से ग्रहों के अभाव का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। ऐसी दशा में इसका उत्तर यही है कि जिस समय कर्मों के निमित्त से प्राणी को सुख और दुःख होते हैं उस समय ग्रहों की दशा सुख-दुःख को सूचित कर देती है। यह ग्रहों का कार्य है। इसलिए ग्रहों का अभाव नहीं हो सकता। ग्रहों की शान्ति के लिए इस कारण ही चौबीस तीर्थंकरों का पूजन, जप और हवन किया जाता है। अन्त में ग्रहों के विवरण का रेखाचित्र अंकित किया गया है। एवं नवग्रहशान्तिस्तोत्र एवं ग्रहशान्ति मन्त्र का उल्लेख है। पश्चात् वैदिकधर्म में कथित संस्कारों का उल्लेख है।

तत्पश्चात् जैनदर्शन के अन्तर्गत आचार्य जिनसेन के द्वारा आदिपुराण में प्रतिपादित प्रायः 80 संस्कारों का (गर्भान्वय क्रिया-53, दीक्षान्वय क्रिया-20, क्रियान्वय क्रिया-7) दिग्दर्शन कराया गया है। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस अध्याय में प्रस्तुत है।

सप्तम अध्याय

जैन पूजा-काव्यों में पर्व

भारतीय संस्कृति को जीवित एवं सुरक्षित रखने के लिए भारत के अन्य धर्मों के पर्वों की परम्परा के समान जैन पर्वों की परम्परा भी अपनी विशेष सत्ता स्थापित करती है। जो मानव समाज को जीवनशुद्धि एवं आत्महित के लिए समय-समय पर प्रेरणा देती रहती है।

'पर्व' शब्द का अर्थ

पर्व का अर्थ मुख्य या विशेष उत्सव होता है, यह प्रथम अर्थ है। पर्व का पर्यायवाचक शब्द पावन भी है जिसका अर्थ पवित्र दिवस होता है अर्थात् वह मुख्य (विशेष) या पवित्र दिवस, कि जिस पावन बेला में मानव, आत्मविश्वास, ज्ञान एवं सदाचरण के द्वारा आत्मशुद्धि या आत्मकल्याण करता है। सदैव के लिए संयम या नियम ग्रहण करता है तथा अन्य दिनों की अपेक्षा पर्व के दिवस में विशेष नैतिक, धार्मिक, सामायिक, स्वाध्याय, देवार्चन, स्तुति आदि अनुष्ठान करता है।

"तिथि भेदे क्षणेपर्व, वर्त्मनेत्रच्छदेऽध्वनि"।

अर्थात्--अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या (अमावस्या), पूर्णिमा आदि विशेष तिथियों को तथा उत्सव को पर्व कहते हैं।[1]

'पर्व' का दूसरा अर्थ गाँठ भी है जैसे गन्ने की नीरस गाँठ सरस गन्ने को उत्पन्न करती है उसी प्रकार धार्मिक पर्व विषयरूपी रस से हीन होते हुए भी आत्मरस को उत्पन्न करते हैं।

"ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी, गुन्द्रस्तेजनकः शरः"।

अर्थात्--ग्रन्थि, पर्वन्, परुष ये तीन गाँठ के नाम हैं।[2]

---

1. अमरसिंह विरचित अमरकोश : सं. पं. रामस्वरूप, प्र.--श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, पृ. 249, श्लोक 121, वि. सं. 1992।
2. तथैव, पृ. 95, श्लोक 162।

पर्वों का महत्त्व

ये पर्व मानव को श्रेष्ठ कर्तव्य के पालन के लिए प्रभावित एवं उत्साहित करते हैं। यदि पर्व का निमित्त न हो तो मानव के हृदय में विशेष उत्साह तथा नवीन जागृति नहीं हो सकती, नवीन सामाजिक कार्यक्रम भी सम्पन्न नहीं हो सकता है। विश्व के प्रायः सभी देशों में अपने-अपने धर्म एवं संस्कृति के अनुसार पर्वों की मान्यता है जिससे धार्मिक श्रद्धा दृढ़ होती है और धार्मिक सिद्धान्त अहिंसा, सत्य, अध्यात्म एवं स्याद्वाद के अनुकूल बाह्य आचरण या संस्कार दृढ़ होते हैं।

पर्व एक वह अलार्मबेल (सावधान घण्टी) है जो मोह नींद में सुप्त मानव को धर्म एवं संस्कृति के माध्यम से आत्मजागरण के लिए प्रेरणा देता है। पर्व एक वह सूचीयन्त्र (इंजेक्शन) है जो पाप एवं व्यसन से रुग्ण मानव की आत्मा को श्रद्धा ज्ञान आचरण के प्रभाव से स्वस्थ एवं शक्तिशाली बना देता है। पर्व एक वह नेता है जो समाज को जागृत करने के लिए नैतिक क्रान्ति को उत्पन्न करता है। जो समाज को स्वस्थ तथा संगठित बना देता है जिससे विभिन्न कार्य सम्पन्न होते हैं। सभा के कार्यक्रम में व्याख्यान-कविता-वाद-विवाद आदि के द्वारा धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समाज को प्राप्त होती है। सामूहिक भगवत्पूजा का संगीत के साथ कार्यक्रम होने से सामाजिक वातावरण शान्त, एकविचार और समान रीति-रिवाज का विकास होता है।

राष्ट्रीय जीवन के तत्त्व और सत्य-अहिंसा-पंचशील आदि सिद्धान्तों का विकास पर्व के माध्यम से होता है। पर्व की मान्यता से शासन में शान्त वातावरण, समस्याओं का हल और प्रजा तथा शासकों के मध्य में भातृ-स्नेह का भाव जागृत होता है। राष्ट्र के सुरक्षा की भावना उदित होती है। पर्व की मान्यता एक वैज्ञानिक तत्त्व है। वर्तमान युग में पर्व की साधना में विज्ञान एक भौतिक बल प्रदान करता है। पर्व के लक्ष्य के विकास में विज्ञान सहयोग देता है।

पर्व के भेद

पर्व दो प्रकार के होते हैं—(1) राष्ट्रीय पर्व, (2) धार्मिक पर्व।

(1) राष्ट्रीय पर्व—राष्ट्रीय पर्व राष्ट्रीय सिद्धान्तों को और धार्मिक पर्व धार्मिक सिद्धान्तों और नैतिक तत्त्वों को विकसित करते हैं। राष्ट्रीय पर्व जैसे—स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, गाँधी जयन्ती, शिक्षक दिवस, बाल दिवस, सुभाष जयन्ती, इन्दिरा दि. इत्यादि दिवस।

(2) धार्मिक पर्व—मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं--(1) साधारण पर्व, (2) नैमित्तिक पर्व, (3) नैसर्गिक।

साधारण पर्व यथा—अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, रविवार आदि प्रतिमास में होते हैं।

जो महापुरुषों के निमित्त से होते हैं वे 'नैमित्तिक पर्व' कहे जाते हैं यथा—दीवाली, रक्षाबन्धन, विजयादशमी, महावीर जयन्ती, ऋषभनिर्वाण दिवस, अक्षय तृतीया, श्रुतपंचमी, गुरुपूर्णिमा, मोक्ष सप्तमी आदि।

जिनमें महापुरुषों की जीवन घटना का कोई निमित्त नहीं है परन्तु प्रलयकाल के पश्चात् श्री ऋषभदेव आदि तीर्थंकर महापुरुषों के द्वारा मानव समाज के हित के लिए, अति प्राचीनकाल से संचालित किये जाते हैं अथवा कर्मभूमि के आदि में संचालित किये गये हैं वे 'नैसर्गिक पर्व' कहे जाते हैं, यथा—षोडश-कारण पर्व, दशलक्षण पर्व, रत्नत्रय पर्व, नन्दीश्वर पर्व।

वैदिक संस्कृति में भी दशधर्म तथा गणेशव्रत की मान्यता नैसर्गिक रूप से परम्परागत है। भारत में यह परम्परा है कि इन पर्वों के शुभ अवसर पर सभा, प्रवचन, कवि-सम्मेलन आदि कार्यक्रमों के साथ महापुरुषों एवं परमात्मा की पूजा अर्चा भी समारोह के साथ की जाती है। जैन समाज में भी पर्व की पावन वेला में भगवत् अर्चा के साथ ज्ञान तथा व्रत की उपासना की जाती है।

पर्व नैमित्तक जैन पूजा-काव्य

जैन कवियों एवं आचार्यों ने इन पर्वों की सफल मान्यता के लिए जैन पूजा-काव्यों की रचना की है। उदाहरणार्थ कुछ पर्व नैमित्तक पूजा-काव्य निम्न प्रकार हैं—रविवार के दिन 'रविव्रत पूजा' की जाती है। नन्दीश्वर पर्व के दिनों में 'नन्दीश्वर पूजा' और 'सिद्धचक्रविधान' भी किया जाता है। सोलहकारण पर्व के दिनों में 'षोडशकारण पूजा', महावीर जयन्ती पर्व पर 'महावीर पूजा', श्रुतपंचमी पर्व पर 'सरस्वती पूजा', दशलक्षणमहा पर्व के दिवसों में श्री दशलक्षण पूजा, एवं दशलक्षणविधान समारोह के साथ किया जाता है। इन पूजा-काव्यों का वर्णन अध्याय चतुर्थ में किया जा चुका है, अतः यहाँ पर नहीं किया है। रत्नत्रय पर्व के समय रत्नत्रय पूजा-काव्य का उपयोग होता है। इस पूजा का वर्णन अध्याय पंचम में किया गया है, अतः यहाँ पर नहीं किया गया है। ये सब हिन्दी भाषा में रचित पर्व पूजा-काव्य हैं।

संस्कृत भाषा में भी संस्कृत कवियों द्वारा पर्व पूजा-काव्यों की रचना की गयी है। जैसे—षोडशकरण पर्व पूजा, दशलक्षण पर्व पूजा, नन्दीश्वर पर्व पूजा इनका वर्णन तृतीय अध्याय में किया गया है और रत्नत्रय पर्व पूजा (संस्कृत) का वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक संस्कृत पर्व पूजा-काव्य हैं जो पर्व के अवसर पर उपयोग में आते हैं।

ऊपर कुछ हिन्दी एवं संस्कृत के पर्व पूजा-काव्यों की नामावली प्रस्तुत की गयी है। इनसे अतिरिक्त हिन्दी में अन्य पर्व पूजा-काव्य भी अपना प्रभाव दिखाते हैं, यथा :

अनन्तव्रत पर्व पूजा-काव्य

इसके रचयिता कवि का नाम अज्ञात है। इसमें प्रथम काव्य आडिल्ल छन्द में, नौ काव्य गीता छन्द में और आठ काव्य पद्धरी छन्द में एवं अन्त में एक दोहा छन्द में काव्य निबद्ध है। कतिपय उदाहरण :

जय अनन्तनाथ करि अनन्तवीर्य, हरि घातकर्म धरि अनन्तवीर्य।
उपजायो केवल ज्ञानभानु, प्रभु लखै चराचर सब सुजान ॥

इस पद्य में स्वभावोक्ति तथा रूपक अलंकारों से शान्त रस की वृष्टि होती है।

ये चौदह जिन जगत में, मंगल करण प्रवीण।
पाप हरन बहु सुख करन, सेवक सुखमय कीन ॥[1]

क्षमावाणीपर्व-पूजा-काव्य

इस पूजा-काव्य के रचयिता मल्ल कवि हैं। इसमें विविध छन्दों में रचित कुल 33 काव्य हैं। ये काव्य शान्तरस और अलंकारों से अलंकृत हैं। रत्नत्रय पर्व के पश्चात् आश्विन कृष्णा प्रतिपादा को क्षमावाणीपर्व धूमधाम से मनाया जाता है। उस समय यह पूजा की जाती है। इस दिन सभी सामाजिक बन्धु हार्दिक प्रसन्नतापूर्वक परस्पर मिलते हुए क्षमायाचना कर स्नेह की वृद्धि करते हैं।

इस पूजा-काव्य के कुछ महत्त्वपूर्ण पद्य :

रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई।
चैत्र माघ भादों त्रयबारा, क्षमा क्षमा हम उर में धारा ॥
यह क्षमावाणी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
कहै 'मल्ल' सरधा करो, मुक्ति श्रीफल होय ॥

गुरुपूजा-काव्य (गुरुपूर्णिमा पर्व पर)

अठारहवीं शती के कविवर द्यानतराय ने गुरुपूजा-काव्य का निर्माण किया है। इस काव्य में इक्कीस पद्य हैं। इन पद्यों में दोहा, गीतिका, वेसरी छन्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्य :

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 246।

बहुंगति दुखसागरविषैं, तारणतरणजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगनतन, धन्य महामुनिराज॥

इस पूजाकाव्य की जयमाला की रचना कवि हेमराज द्वारा हुई है, कुछ पद्य :

कनककामिनीविषयवश, दीखै सब संसार।
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुण भण्डार॥
कहौ कहालौं भेद मैं, बुध थोरी गुणभूर।
हेमराज सेवक हृदय, भक्ति करो भरपूर॥[1]

रक्षाबन्धन पर्व-पूजा-काव्य

श्रावणी पूर्णिमा पर्व या रक्षाबन्धन पर्व के शुभ अवसर पर यह पूजा (रक्षाबन्धन पूजा) की जाती है। इसके रचयिता कवि बाबूलाल हैं।

इस पूजा-काव्य में पच्चीस पद्य, पाँच छन्दों में निबद्ध हैं और विविध अलंकारों से शान्तरस एवं करुण रस की वर्षा होती है। कतिपय पद्य :

श्री अकम्पन मुनि आदि सब सात सौ
कर विहार हस्तनागपुर आये सात सौ।
तहाँ भयो उपसर्ग बड़ो दुखदाय जी
शान्तिभाव से सहन कियो मुनिराय जी॥

मुनि सब गुण धारं, जग उपकारं कर भवतारं सुखकारं।
कर कर्म जु नाशा, आतमशाला, सुखपरकाशा, दातारं॥

श्री विष्णुकुमार महामुनि—पूजा-काव्य

रक्षाबन्धन पर्व के पावन प्रसंग पर श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा भी की जाती है। इसके रचयिता श्री रघुपति कवि हैं। इस पूजा-काव्य में सम्पूर्ण सत्ताईस पद्य, पाँच प्रकार के छन्दों में रचित हैं। विभिन्न अलंकारों की छटा से शान्तरस एवं करुणरस की घटा छायी है। उदाहरणार्थ कतिपय भावपूर्ण पद्य :

गंगासम उज्ज्वल नीर, पूजों विष्णुकुमार सुधीर।
दयानिधि होय, जय जगबन्धु दयानिधि होय॥
सप्त सैकड़ा मुनिवरजान, रक्षाकरी विष्णुभगवान।
दयानिधि होय, जय जगबन्धु दयानिधि होय॥

---

1. वृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 258-260।

श्री महावीर निर्वाण पर्व—(दीपावली पर्व) पूजा-काव्य

तिथि कार्तिक कृष्णा अमावस्या श्री महावीर निर्वाण पर्व की अर्थात् दीपावली पर्व की पावन वेला में यह पूजा समारोह के साथ सम्पन्न की जाती है। इसके पश्चात् शास्त्र प्रवचन होता है। इस पूजा-काव्य के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं होता। इसमें दस प्रकार के छन्दोबद्ध पचपन पद्य हैं। अलंकारों की छटा भक्तिरस के साथ शान्तरस को प्रवाहित कर रही है। इस पर्व में आकाशतल एवं पृथ्वीतल पर प्रज्वलित दीपकमाला, झिल-मिल झिल-मिल कान्ति के द्वारा, ज्ञानदीप को प्रज्वलित करने के लिए प्रेरणा देती है। कतिपय प्रभावक पद्य प्रस्तुत :

नमों चरमजिन चरणयुग, नाथवंश वर पाय।
सिद्धारथ त्रिशला तनुज, हम पर होहु सहाय ॥

पुष्पोत्तर तजि थान धवल छठ षाढ़ की
उत्तर फाल्गुन नखत बसे उर माय की।
अवधि विबुधपति जान रतन बरसाइयो
कुण्डलपुर हरि आय सुमंगल गाइयो ॥

पंचानन पग चिह्न तिन, तन उतंग कर सात।
वरण हेम प्रतिबिम्ब जिन पूजऊँ भव्य प्रभात ॥

श्रीदशलक्षण पर्व—महामण्डल-विधान

जैनदर्शन में विशेष (विस्तारपूर्ण) पूजा को विधान कहते हैं। ये विधान मण्डल (गुणों का रेखाकार चित्र) को सामने बनाकर किये जाते हैं। भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्थी से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त दश दिनों तक यह दशलक्षण महामण्डल-विधान किया जाता है। कविवर टेकचन्द्र जी द्वारा इस विधान की रचना की गयी है। इस विधान में सम्पूर्ण 409 पद्य अठारह प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। इनमें प्रयुक्त अलंकारों की छटा से शान्तरस एवं भक्ति रस घटित होता है जिससे पूजा-काव्य आनन्दप्रद सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ भावपूर्ण सरस पद्य :

धर्म के दश कहे लक्षण, तिन थकी जिय सुख लहै,
भवरोग को यह महा औषधि, मरण जामन दुख दहै।
यह वरत नौका पोत जो का, करो आदरतें सही,
मैं जजों दशविध धर्म के अंग, तासु फल द्यै शिवमही ॥

यह वरत मनकपि गले माँही, साँकली सम जानिए,
गज अक्ष जीतन सिंह जैसी, मोहतम रवि मानिए।

सुरथान माहीं वरत नाहीं, मनुज शुभ फल कुल लहं,
तातैं सुअवसर है भलो, अब करो पूजा धुनि कहे॥

श्रीनन्दीश्वर पर्व–पूजन-विधान काव्य

इस मध्यलोक में आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप है। वह बहुत विशाल है। उसके चारों दिशाओं में तेरह-तेरह चैत्यालय के क्रम से सम्पूर्ण बावन विशाल चैत्यालय हैं। कार्तिक-फाल्गुन-आषाढ़ के अन्तिम आठ दिनों में सम्पूर्ण देव इन बावन चैत्यालयों की वन्दना करने जाते हैं। इसलिए इन आठ दिनों में नन्दीश्वर पर्व की मान्यता प्राचीन काल से ही चली आती है। मनुष्य उस द्वीप में जाने की शक्ति नहीं रखते। अतः अपने नगर के मन्दिर में ही उन 52 चैत्यालयों का पूजन एवं विधान करते हैं। उक्त विधान काव्य इसी नन्दीश्वर पर्व की पावन वेला में किया जाता है। इसके रचयिता कविवर 'टेकचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध हैं। इस विधान काव्य के सम्पूर्ण 188 पद्य हैं जो नौ प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। अलंकार एवं गुणों का स्थान-स्थान पर प्रयोग होने से शान्तिरस तथा भक्तिरस की गंगा प्रवाहित होती है। जिसके द्वारा पूजन भजन करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ कतिपय सरस पद्यों का दिग्दर्शन :

अष्टम द्वीप नन्दीश्वर बहु विस्तार है
ताके चउदिश बावन गिर मणिधार हैं।
तिन सब पै जिनथान कहे बावन सही
सो यहाँ थापन थाप जजों पुण्य की मही ॥

जे जिन मन्दिर सुमरत भाई, पाप कटैं पुण्य बन्ध कराई।
तौ दरशन की महिमा सारी, कहै कौन फल की विधि भारी ॥

श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर पूजा-काव्य–(ऋषभजयन्ती पूजा)

चैत्रकृष्णा नवमी–ऋषभजयन्ती पर्व पर, माघकृष्णा चतुर्दशी–ऋषभ निर्वाण पर्व पर और वैशाख शुक्ला तृतीया–अक्षयतृतीया पर्व के शुभ समय में भगवान् ऋषभदेव का पूजन, समारोह के साथ, सामूहिक स्तर पर किया जाता है, व्रत, उपवास, जप, तप आदि श्रद्धापूर्वक किये जाते हैं। इस पूजा-काव्य के रचयिता अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कविवर वृन्दावन हैं जिन्होंने अनेक पूजा-काव्यों की रचना की है। इस ऋषभ पूजा-काव्य में 29 पद्य, पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं जिनमें अलंकारों के प्रवाह से शान्तरस एवं भक्तिरस की शीतल तरंगें उछलती हैं। उदाहरणार्थ कतिपय मनोरम पद्य :

परम पूज्य वृषभेश स्वयंभूदेव जी
पिता नाभि मरुदेवि करैं सुर सेव जी।

कनकवर्ण तनतुंग धनुष पनशत तनो
कृपासिन्धु इत आइ तिष्ठ मम दुखहनी ॥

जय जय जिन चन्दा, आदि जिनेन्द्रा, हनि भवफंदा कन्दा जी।
वासवशतवन्दा, धरि आनन्दा, ज्ञान अनन्दा नन्दा जी ॥

त्रिलोक हितंकर पूरब पर्म, प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म।
जतीश्वर ब्रह्मविदाम्बर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियाम्बुधि शुद्ध ॥

अन्य पर्वों की तिथि और करने योग्य पूजा

1. वीरशासनजयन्ती पर्व	श्रावण कृष्णा प्रतिपदा	महावीर पूजा
2. पार्श्वनिर्वाण पर्व (मोक्षसप्तमी)	श्रा. शु. 7	पार्श्वनाथ पूजा
3. सुगन्धदशमी पर्व	भाद्र शु. 10	श्रीसिद्ध पूजा
4. श्रुतपंचमी पर्व	ज्येष्ठ शुक्ला 5	सरस्वती पूजा (हिन्दी) श्रुतस्कन्धविधान (संस्कृत)
5. कलशदशमी पर्व	श्रावण शु. 10	ऋषभदेव पूजा
6. अनन्तव्रत पर्व	भाद्र शु. 14	अनन्तनाथ पूजा
7. कवलचान्द्रायण पर्व	प्रति अमावस्या	ऋषभनाथ पूजा
8. त्रिलोकतृतीया पर्व	भाद्र शुक्ला 3	चौबीस तीर्थंकर पूजा
9. निर्दोषशील सप्तमी पर्व	भाद्र शु. सप्तमी	दशलक्षण पूजा
10. निःशल्य अष्टमी पर्व	भाद्र शु. 8	नेमिनाथ पूजा
11. चन्द्रप्रभनिर्वाण पर्व	फाल्गुन शु. 7	चन्द्रप्रभ पूजा
12. पुष्पांजलि पर्व	भाद्र शु. 5 से भाद्र शु. 9 तक	चौबीस तीर्थंकर पूजा अथवा पंचमेरु पूजा
13. मुक्तावली पर्व	भाद्र शु. 7	पंच परमेष्ठी पूजा
14. गरुड़पंचमी पर्व	श्रावण शु. 5	चौबीस तीर्थंकर पूजा
15. रोहिणीव्रत पर्व	प्रतिमास रोहिणी नक्षत्र दिन	परमेष्ठी पूजन
16. कोकिलापंचमी पर्व	आषाढ़ कृ. पंचमी	चौबीस तीर्थंकर पूजा
17. आकाशपंचमी पर्व	भाद्रशुक्ला पंचमी	चौबीस तीर्थंकर पूजा
18. चन्दनषष्ठी पर्व	आश्विन कृष्णा षष्ठी	अकृत्रिम चैत्यालय पूजा

19. मेघमाला पर्व	भाद्र शु. 1 से आश्विन शु. 1	पंचपरमेष्ठीविधान
20. मौनएकादशी पर्व	पौष कृष्ण 11	पंचपरमेष्ठी पूजन
21. लब्धिविधान पर्व	भाद्र शु. 1 से 3 तक	महावीर पूजन[1]
22. सोलह भावना पर्व	भाद्रपद कृष्णा 1 से आश्विन कृ. 1 तक	सोलह भावना पूजा
23. नन्दीश्वर पर्व	कार्तिक फाल्गुन-आषाढ़-के अन्त आठ दिन	नन्दीश्वर पूजा-विधान
24. दीपावली पर्व	कार्तिक कृ. 15 (वीरनिर्वाण)	दीपावली पर्व पूजा-काव्य
25. महावीरजयन्ती पर्व	चैत्र शुक्ला 13	महावीरजयन्ती पूजन-काव्य
26. अक्षय तृतीया पर्व	वैशाखशुदी 3	अक्षयतृतीया पूजन-काव्य
27. श्रुतपंचमी पर्व	ज्येष्ठ शु. पंचमी	श्रुतपंचमी पूजन-काव्य
28. रक्षाबन्धन पर्व	श्रावण शु. पूर्णिमा	रक्षाबन्धन पर्व पूजा-काव्य
29. क्षमावाणी पर्व	आश्विनकृष्णा 1	क्षमावाणी पूजा-काव्य
30. रत्नत्रय पर्व	भाद्र शु. 13 से पूर्णिमा तक	रत्नत्रय पर्व पूजन-काव्य
31. दशलक्षण पर्व	भाद्र शु. 4 से 14 तक	दशलक्षण पूजा-काव्य
32. ऋषभनाथजयन्ती पर्व पूजन	चैत्र कृ. नवमी	ऋषभनाथ पूजा अथवा ऋषभजयन्ती पूजा
33. रविवार पर्व	प्रति रविवार	पार्श्वनाथ पूजा
34. मुकुटसप्तमी	श्रावण शु. 7	पार्श्वनाथ पूजा या आदिनाथ पूजा
35. ऋषभनिर्वाण पर्व	माघ कृष्ण 14	ऋषभनाथ पूजा
36. चन्द्रप्रभनिर्वाण पर्व	फाल्गुन शु. 7	चन्द्रप्रभ पूजा
37. श्रेयांसनिर्वाण पर्व	श्रावण शु. पूर्णिमा	श्रेयांसनाथ पूजन या विष्णुकुमारमुनि पूजा

1. जैनव्रत कथा संग्रह - सम्पादक पं. मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर : तृतीय संघ, पृ. 1-13।

38. रविपंचमी पर्व	आषाढ़ शु. 5	पार्श्वनाथ पूजन
39. अष्टमी पर्व	प्रत्येक मास की अष्टमी	सिद्धपूजा
40. चतुर्दशी पर्व	प्रत्येक मास की चतुर्दशी	अनन्तनाथ पूजा
41. लघु पंचकल्याणक पर्व	चौबीस तीर्थंकरों की-120 तिथियाँ।	चौबीस तीर्थंकर पूजा
42. महापंचकल्याणक पर्व	24 तीर्थंकरों की-पंचकल्याणक तिथि, 5 वर्ष तक[1]	चौबीस तीर्थंकर पूजा

1. जैनव्रत विधान संग्रह : सं. पं. बारेलाल राजवैद्य, प्र.—वैद्य बाबूलाल जैन, टीकमगढ़, सन् 1952 : पृ. 35-124।

अष्टम अध्याय

जैन पूजा-काव्यों में तीर्थक्षेत्र

भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व और इतिहास में तीर्थक्षेत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये महापुरुषों, तीर्थंकरों, महर्षियों और अवतारों के ज्वलन्त स्मारक हैं जो आज भी महापुरुषों आदि के प्रबल सन्देशों को मौन आकृति से कह रहे हैं। इन पावन तीर्थों ने भारतीय संस्कृति-पुरातत्त्व और इतिहास एवं दर्शन, समाज और धर्म के विकास में स्वयं को समर्पित कर दिया है।

संस्कृतव्याकरण के विग्रह के अनुसार तीर्थ का अर्थ होता है कि 'तीर्यते संसार-महार्णवः येन निमित्तेन तत् तीर्थमिति' अर्थात् जिस पवित्र साधन से संसार रूपीमहादुःख समुद्र को पार किया जाए, वह तीर्थ है।

तीर्थ शब्द व्यापक अर्थों से शोभित है इसलिए उसके अनेक अर्थ हैं—(1) शास्त्र, (2) अवतार, (3) जलाशय का घाट, (4) महापात्र (5) पुण्यक्षेत्र, (6) उपाध्याय, (7) दर्शन, यज्ञ, (8) तपोभूमि। इससे सिद्ध होता है कि तीर्थ शब्द परमश्रेष्ठ है और उसकी भक्ति, जगत् के मानवों का कल्याण करनेवाली है।

तीर्थे प्रवचने पात्रे, लब्धाम्नाये विदाम्वरे।
पुण्यारण्ये जलोत्तरे, महासत्त्वे महामुनौ॥[1]

जैन तीर्थों पर तीर्थंकरों ने और आचार्यों ने तपस्या कर आत्म साधना को किया और धर्म, साहित्य, दर्शन, कला-गणित-विज्ञान-आयुर्वेद-नीति आदि विषयों पर शास्त्रों का सृजन करते हुए लोक-कल्याण एवं आध्यात्मिक ज्योति का विकास किया। इसी कारण वे क्षेत्र तीर्थ स्थान होने के योग्य एवं विश्ववन्दनीय माने जाते हैं।[2]

---

1. महाकवि धनञ्जय : धनञ्जयनाममाला : सं. मोहनलाल शास्त्री, जवाहरगंज जबलपुर, पृ. 85 : 1980
2. "जैन तीर्थों के विषय में लिखे गये अनेक ग्रन्थों का इतिहास, भूगोल, कला तथा पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक तीर्थों ने स्वयं साहित्य के विकास, प्रचार और पुनरुद्धार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। श्रवणबेलगोला के शिलालेख जीवित साहित्य के अनुपम उदाहरण हैं।" 'भारतीय संस्कृति में जैन तीर्थों का योगदान' ले. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', प्र.—अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, एटा, उ.प्र., प्र. सं., पृ. 9, सन् 196।

तीर्थ शब्द की व्याख्या

तरति इति तीर्थं अथवा तीर्यन्ते अनेन वा जनाः इति तीर्थं, तृ (प्लवनतरणयोः) भ्वादिगणी पर सेट् धातु से 'पातृतुदि (उणादिगण 2/7) इत्यादि सूत्र से थक् प्रत्यय करने पर 'तीर्थ' शब्द की निष्पत्ति होती है।

'निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ'

(अमरकोष, तृ. काण्ड, श्लोक 86)

अर्थात्—जलाशय, आगम (शास्त्र), ऋषि सेवित जल और गुरु में तीर्थ शब्द का प्रयोग होता है।

तीर्थ शब्द के विषय में संस्कृत कोष 'मेदिनी' का प्रमाण—

"तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारी-रजःसु च।
अवतारर्षि जुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥"

अर्थात्—आगम, यज्ञ, गुरु, क्षेत्र, उपाय, नारीरज, जलावतरण, ऋषिसेवित जलपात्र, उपाध्याय, मन्त्री इन अर्थों में तीर्थ शब्द का प्रयोग होता है।

संसाराब्धेरपारस्य तारणे तीर्थमिष्यते।
चेष्टितं जिननाथानां, तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा॥

(जिनसेनाचार्यकृत आदि पुराण, अ. 4, श्लोक 8)

तात्पर्य—जो इस अपार संसार सागर से पार करे उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र देव का चरित्र ही हो सकता है। अतः उसके कथन करने को तीर्थाख्यान कहते हैं। तीर्थ = जिनेन्द्र देव का चरित्र।

आचार्य समन्तभद्र ने तीर्थंकर जिनेन्द्र के शासन (उपदेश) को सर्वोदय तीर्थ कहा है—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं
सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव॥

तात्पर्य—मुख्यता तथा गौणता से व्यवस्थित, सर्वधर्मों से सहित, परन्तु परस्पर निरपेक्ष धर्मों की सत्ता से रहित, मिथ्यादर्शन के उदय से होनेवाले सर्वदुखों का विनाशक, अन्त से रहित, आपका ही यह प्रसिद्ध सर्वोदय तीर्थ है जो विश्व का कल्याण करनेवाला है।

(समन्तभद्राचार्यकृत युक्त्यनुशासन, प्र.—नाथूराम प्रेमी, बम्बई, पृ. 159, श्लोक 62)

समन्तभद्राचार्य ने स्वयंभूस्तोत्र में भगवान मल्लिनाथ की स्तुति करते हुए तीर्थ शब्द का प्रयोग किया है—

यस्य समन्ताज्जिन-शिशिरांशोः, शिष्यक-साधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासित सत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम्॥[1]

तात्पर्य—जिन मल्लिनाथ जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा के चारों ओर शिष्य साधु रूप ताराओं का विभव विद्यमान था और जिनका उपदेश तीर्थ भी, संसार समुद्र से भयभीत प्राणियों को पार उतरने का प्रधान मार्ग था उन भगवान मल्लिनाथ की शरण को मैं प्राप्त हुआ हूँ।

तीर्थं करोतीति तीर्थकरः = धर्मतीर्थ प्रवर्तक (आद्य प्रणेता)।

(षट्खण्डागम भाग 8, पृष्ठ 91)

हस्तिनापुर के श्रेयांसनृप को आदि पुराण में 'दानतीर्थप्रवर्तक' कहा गया है तथा मोक्षप्राप्ति का कारण रत्नत्रय को (सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र को) रत्नत्रयतीर्थ कहा गया है।

(आदि पुराण अ. 2, श्लोक 39)

आवश्यक निर्युक्ति में तीर्थ शब्द की व्याख्या—(1) मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, इस चतुर्विध संघ को तीर्थ कहते हैं। (2) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चार वर्णों को तीर्थ कहते हैं। (3) ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, उदासीनाश्रम (नैष्ठिकाश्रम), भिक्षुकाश्रम (संयासाश्रम)— इन चार आश्रमों को तीर्थ कहते हैं। (4) चार ज्ञानधारी प्रधानगणधर को तीर्थ कहते हैं। (5) गणधर (अर्हन्तजिनेन्द्र) को तीर्थ कहते हैं।[2]

तीर्थों का मूल्यांकन

सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे पुराणपुरुषाश्रिते।
कल्याणकलिते पुण्ये, ध्यानसिद्धिः प्रजायते॥[3]

तात्पर्य—त्रेसठ शलाका महापुरुषों से प्रभावित, कल्याण का स्थान, पवित्र सिद्धक्षेत्र ऐसे महान् तीर्थ कर ध्यान करने से परम पद तथा स्वर्ग आदि वैभव की सिद्धि होती है।

---

1. स्वयंभूस्तोत्र : सं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.—शान्तिवीरनगर महावीर जी, 1969, पृ. 121।
2. भारत के दि. जैनतीर्थ : सं. बलभद्र न्यायतीर्थ, प्र.- दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई, प्र. भा., सन् 1947, प्रस्तावना, पृ. 11, 12, 13
3. शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव : सं. पन्नालाल काकलीवाल, प्र. श्रीराजचन्द्र आश्रम, अगास (गुजरात), वि.सं. 2017, पृ. 269

श्री तीर्थपान्थरजसा विरजीभवन्ति
तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नराः स्थिरसम्पदः स्युः
पूज्याः भवन्ति जगदीशपथाश्रयन्तः॥[1]

भाव सौन्दर्य—तीर्थयात्रा की अथवा तीर्थमार्ग की धूलि के सेवन से मानव पापरहित होते हैं। तीर्थ क्षेत्रों पर भ्रमण (यात्रा) करने से मानव भव में भ्रमण नहीं करते हैं। तीर्थयात्रा के निमित्त सम्पदा का व्यय करने से, इस लोक में मानव स्थायी सम्पदा के धनी होते हैं। अर्हन्त भगवान् के मार्ग का अथवा तीर्थक्षेत्रों का आश्रय लेने से मानव पूज्य हो जाते हैं अर्थात् भक्त भी भगवान् बन जाते हैं।

पावनानि हि जायन्ते, स्थानान्यपि सदाश्रयात्॥
सद्भिरध्युषिता धात्री, सम्पूज्येति किमद्भुतम्।
कालायसं हि कल्याणं, कल्पते रसयोगतः॥[2]

भावसौन्दर्य—महापुरुषों की संगति से स्थान भी पवित्र हो जाते हैं। जहाँ महापुरुष रह रहे हों, वह भूमि पूज्य अवश्य होगी। अर्थात् वह तीर्थ बन जाता है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है जैसे कि रसायन अथवा पारस के संयोग से लोहा सुवर्ण अवश्य बन जाता है।

तीर्थ और क्षेत्रमंगल

कतिपय प्राचीन जैन दर्शन के आचार्यों ने तीर्थ के स्थान पर 'क्षेत्रमंगल' शब्द का प्रयोग किया है। क्षेत्र मंगल के सम्बन्ध में इस प्रकार व्याख्या दृष्टिगोचर होती है—

> तत्र क्षेत्रमंगलं गुणपरिणतासन-परिनिष्क्रमण-केवलज्ञानोत्पत्तिपरि-निर्वाणक्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्—ऊर्जयन्तचम्पापावानगरादिः। अर्धाष्टा-रत्न्यादि-पंचविंशत्युत्तर पंच धनुःशतप्रमाणशरीरस्थित-कैवल्याद्यवष्टब्धा-काशदेशा वा, लोकमात्रात्मप्रदेशैः लोक पूरणापूरित-विश्वलोकप्रदेशा वा।[3]

सारांश—गुणपरिणत आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँ पर योगासन, वीरासन इत्यादि अनेक आसनों से तदनुकूल अनेक प्रकार के योगाभ्यास जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों, ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण-क्षेत्र केवलज्ञानोत्पत्ति-क्षेत्र और निर्वाण-क्षेत्र

---

1. भारत के दि. जैन तीर्थ - सं. बलभद्र जैन न्यायतीर्थ, प्रस्तावना, पृ. 13, (प्रथम भाग)
2. तथैव।
3. षट्खण्डागम : प्र. खं., पुष्पदन्तभूतबलि : सं. डॉ. हीरालाल जैन, प्र.—जैन-संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1973, जीवस्थानसत्प्ररूपणा-1

आदि को क्षेत्र मंगल कहते हैं। इसके उदाहरण—ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पापुर, पावापुर आदि नगर क्षेत्र हैं। अथवा—साढ़े तीन हाथ से लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष तक के शरीर में स्थित और केवल ज्ञानादि से व्याप्त आकाश प्रदेशों को क्षेत्र मंगल कहते हैं। अथवा—लोक प्रमाण आत्मप्रदेशों से लोक पूरणसमुद्घातदशा में व्यापत किये गये समस्त लोक के प्रदेशों को क्षेत्र मंगल (तीर्थ) कहते हैं।

अन्य प्रमाण—

"क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनाम् ।
निष्क्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्॥[1]

अर्थात्—तीर्थंकर अरहन्त आदि के निर्वाणस्थान, तपस्याभूमि आदि को क्षेत्र मंगल कहते हैं। इस प्रकार तीर्थ शब्द के आशय में ही क्षेत्र मंगल शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है। तीर्थक्षेत्र शब्द का अभिप्राय यही सिद्ध होता है जो क्षेत्र मंगल शब्द का है। निष्क्रमण (दीक्षा) और केवलज्ञान आदि के स्थान आत्मगुणों की प्राप्ति के साधन हैं।

इसी विषय पर अन्य प्रमाण—

गुणपरिणदासणं परिणिक्कमणं, केवलस्स णाणस्स।
उप्पत्ती इयपहुदी, बहुभेयं खेत्तमंगलयं॥
एदस्स उदाहरणं, पावाणगरुज्जयंत चंपादी।
आउट्ठहत्थपहुदी, पणुवीसब्भहि पणसयधणूणि॥

सारांश—गुणप्राप्ति के कारण, आसनक्षेत्र अर्थात् जहाँ पर योगासन वीरासन आदि विविध आसनों से तदनुकूल ध्यानाभ्यास, ज्ञान, चित्त निर्मलता आदि अनेक गुण प्राप्त किये गये हों, ऐसा क्षेत्र, दीक्षा लेने का क्षेत्र, श्रेष्ठज्ञानोत्पत्ति का क्षेत्र इत्यादि रूप से क्षेत्र मंगल (तीर्थ) बहुत प्रकार का है। इस क्षेत्र मंगल के उदाहरण पावागिरि, ऊर्जयन्त (गिरनार पर्वत) और चम्पापुर आदि हैं। जिस काल में महात्मा केवलज्ञानादिरूप मंगलमय अवस्था को प्राप्त करता है उस काल को, दीक्षाग्रहण काल, ज्ञानोदय काल, मोक्षप्राप्तिकाल, ये सब पाप-मल को गलाने का कारण होने से काल मंगल (तीर्थ) कहा गया है।[2]

धर्म और दर्शन के आधार पर मानव-जीवन में ढलनेवाली क्रिया अथवा आचरण पद्धति का नाम संस्कृति है, जिसका आविष्कार मानव अपनी बुद्धि एवं

---

1. गोम्मटसार जीवकाण्ड : नेमिचन्द्राचार्य : सं. पं. खूबचन्द्र शास्त्री, प्र.—रायचन्द्र आश्रम, अगास, 1977
2. तिलोयपण्णत्ति : यतिवृषभाचार्य : सं. हीरालाल जैन, प्र.—जैन संघ, सोलापुर, पृ. 3, श्लोक 21-22, सन् 1943

श्रद्धा के बल पर करता है। अन्तरंग संस्कृति जीवन में व्याप्त रहती है और बहिरंग संस्कृति कुल परम्परा, संस्कार, तीर्थक्षेत्र, मन्दिर, मूर्ति और व्यवहार में विकसित होती है। डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के संस्कृत विभागीय भूतपूर्व अध्यक्ष–डॉ. रामजी उपाध्याय के मतानुसार–"मानव-जीवन की कला तथा व्यक्तित्व का विकास ही संस्कृति है।"

भारतवर्ष अनेक धर्म, दर्शन एवं संस्कृतियों का संगम है, इसमें वैदिक, जैन, बौद्ध–इन प्रमुख संस्कृतियों का विकास हुआ है और वर्तमान में हो रहा है, मुस्लिम-क्रिश्चियन संस्कृति का भी इस युग में विकास हो रहा है। इसलिए भारत में मुख्यतः वैदिक, जैन एवं बौद्ध संस्कृति के अमर स्मारक के रूप में तीर्थक्षेत्र अपना प्रभावक अस्तित्व दिखला रहे हैं।

जैन तीर्थों के प्रकार

जैन दर्शन की दृष्टि से जैन तीर्थ तीन प्रकार के दृष्टिगोचर होते हैं–(1) निर्वाणतीर्थ क्षेत्र, (2) सिद्धतीर्थ क्षेत्र, (3) अतिशय तीर्थ क्षेत्र।

(1) निर्वाण क्षेत्र की परिभाषा और भेद–जिस स्थान से श्री ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों ने परम ध्यान साधनों के माध्यम से निर्वाणपद (मुक्ति) को प्राप्त किया, अतएव जहाँ पर देवों तथा मानवों द्वारा निर्वाण कल्याणक-महोत्सव किया गया हो, वे 'निर्वाण तीर्थ क्षेत्र' कहे जाते हैं, यथा–कैलाश पर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनार, चम्पापुर, पावापुर।

(2) सिद्ध क्षेत्र की परिभाषा–जिस स्थान से तीर्थंकरों से भिन्न महापुरुषों ने, मुनीश्वरों, आचार्यों एवं उपाध्यायों ने योग-साधना के माध्यम से मुक्ति (परमात्मपद) पद को प्राप्त किया है वे 'सिद्ध क्षेत्र' कहे जाते हैं। यथा–चूलगिरि (बड़वानी), तुंगीगिरि, सिद्धवरकूट, द्रोणगिरि, रेशंदीगिरि, कुन्थलगिरि आदि। यद्यपि निर्वाण क्षेत्रों से भी मुनीश्वरों आदि ने परमात्म पद (सिद्ध पद) प्राप्त किया है तथापि उन क्षेत्रों में निर्वाण तीर्थ क्षेत्र की ही मुख्यता है।

(3) अतिशय तीर्थ क्षेत्र की परिभाषा–जिन स्थानों में तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा एवं ज्ञान कल्याणक–महोत्सव हुए हों, महापुरुषों ने ध्यान-साधना की हो, शास्त्रों का निर्माण किया गया हो, अथवा आत्म-साधना के कारण अन्य कोई अतिशय या चमत्कार हुआ हो वे 'अतिशय तीर्थ क्षेत्र' कहे जाते हैं यथा हस्तिनापुर, अयोध्या इत्यादि।

जैन तीर्थों ने 'भारतीय संस्कृति' के प्रत्येक अंग को प्रभावित किया है। सुविधा की दृष्टि से उस योगदान का विभाजन निम्न शीर्षकों में सम्भाव्य है–(1) शैक्षणिक योगदान, (2) दार्शनिक तथा चारित्रिक योगदान, (3) साहित्यिक योगदान,

(4) धार्मिक प्रवृत्ति सम्बन्धी योगदान, (5) कला और पुरातत्त्व सम्बन्धी योगदान, (6) वैज्ञानिक योगदान।[1]

डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी ने स्वयं बिहार के पारसनाथ क़िले का निरीक्षण कर वहाँ कई जैन मूर्तियाँ तथा शिलालेख प्राप्त किये हैं। प्राप्त सामग्री के आधार पर उनका कथन है कि 10वीं तथा 11वीं शती में वह जैनधर्म का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। उन्होंने वहाँ पर्यवेक्षण और खुदाई की महती आवश्यकता प्रदर्शित की है।[2]

जैन तीर्थों के अन्य प्रकार

दिगम्बर जैन साहित्य में एक अन्य प्रकार से जैन तीर्थों के भेद प्रचलित पाये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

(1) निर्वाण क्षेत्र, (2) कल्याणक क्षेत्र, (3) अतिशय क्षेत्र।

निर्वाण क्षेत्र का वर्णन—निर्वाण क्षेत्र वे कहे जाते हैं जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं तपस्वी मुनिराजों का निर्वाण हुआ हो। धर्मशास्त्रों का उपदेश व्रत-चारित्र-तपस्या आदि सभी साधना निर्वाण-प्राप्ति के लिए हैं। यही आत्मा का चरम और परम पुरुषार्थ है। अतः जिस स्थान पर निर्वाण होता है उस स्थान पर इन्द्र, देव और मनुष्य पूजा को आते हैं। अन्य तीर्थों की अपेक्षा निर्वाण क्षेत्रों का महत्त्व अधिक होता है। इसलिये निर्वाण क्षेत्रों के प्रति भक्त जनता की श्रद्धा अधिक होती है, जहाँ तीर्थंकरों का निर्वाण होता है उस स्थान पर सौधर्म इन्द्र चिह्न लगा देता है। उसी स्थान पर भक्तजन उन तीर्थंकर भगवान् के चरण चिह्न स्थापित कर देते हैं। आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभूस्तोत्र में भगवान् नेमिनाथ की स्तुति करते हुए बताया है कि ऊर्जयन्त (गिरनार) पर्वत पर इन्द्र ने भगवान नेमिनाथ के चरण चिह्न उत्कीर्ण किये। तीर्थंकरों के निर्वाण क्षेत्र कुल पाँच हैं—(1) कैलाश पर्वत, (2) चम्पापुर, (3) पावापुर, (4) ऊर्जयन्त (गिरनार), (5) सम्मेदशिखर।

पूर्व के चार क्षेत्रों पर क्रमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर, नेमिनाथ मुक्त हुए। शेष बीस तीर्थंकरों ने सम्मेदशिखर से मुक्ति प्राप्त की। इन पाँच निर्वाण क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य मुनिराजों की भी निर्वाण भूमियाँ प्रसिद्ध हैं। जैसे—तारंगा, शत्रुंजय, मांगीतुंगी, गजपन्थगिरि इत्यादि।

कल्याणक क्षेत्रों का वर्णन—वे कल्याणक क्षेत्र हैं जहाँ किसी तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक-महोत्सव हुए हैं। जैसे मिथिलापुरी, भद्रिकापुरी, हस्तिनापुर आदि।

---

1. भारतीय संस्कृति में जैन तीर्थों का योगदान : डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', प्र.—अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज (एटा), सन् 1961, पृ. 3
2. तथैव, पृ. 20

अतिशय क्षेत्रों का वर्णन—जहाँ किसी मन्दिर, मूर्ति या क्षेत्र में कोई चमत्कार (अतिशय) देखा जाता है वे अतिशय क्षेत्र कहे जाते हैं, जैसे महावीर जी, देवगढ़ आदि।[1]

सम्मेदशिखर तीर्थराज का इतिहास

जैन दर्शन में भक्तिमार्ग का विकास करने के लिए तीर्थक्षेत्र एक प्रमुख साधन माना गया है। इसलिए तीर्थक्षेत्रों का इतिहास और उनके अर्चन का वर्णन परम आवश्यक है। श्री सम्मेदशिखर तीर्थ सम्पूर्ण तीर्थक्षेत्रों में सर्वप्रधान तीर्थक्षेत्र है। अतएव इसको तीर्थराज भी कहा जाता है। इसकी-मनसा-वाचा कर्मणा वन्दना करने से जन्म-जन्मान्तरों में संचित पाप कर्मों का नाश हो जाता है।

इस विषय में निर्वाण क्षेत्र पूजा का एक पद्य प्रसिद्ध है—

बीसों सिद्ध भूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भूपर।
एक बार वन्देजो कोई, ताहि नरक पशु गति नहीं होई॥[2]

सम्मेदशिखर के विषय में प्राकृतनिर्वाणकाण्ड का प्रमाण—

बीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवन्दिता धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥[3]

सारांश—देव, मानव और तिर्यंचों से वन्दित, जन्म-मरण कष्ट को नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ बीस तीर्थंकर श्री सम्मेदशिखर पर्वत से तप करते हुए मोक्ष को प्राप्त हुए। उनको सविनय प्रणाम हो।

संस्कृत निर्वाण भक्ति में सम्मेदशिखर तीर्थराज का समर्थन—

शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्लाः
ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारित-सौख्यनिष्ठं
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः॥[4]

सारसौन्दर्य—मोहरूपी मल्ल को जीतनेवाले, जगत्पूज्य, अमित शक्तिसम्पन्न शेष उन बीस तीर्थंकरों ने, ज्ञानसूर्य की प्रचुर किरणों के द्वारा जगत् के मानवों को

---

1. भारत के दि. जैन तीर्थ : सं. पं. बलभद्र जैन, प्र.—तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई, 1974, प्राक्कथन, पृ. 10-11
2. बृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 81
3. श्री विमलभक्ति संग्रह : सं. क्षु. सन्मतिसागर, प्र.- स्याद्वाद विमलज्ञानपीठ सोनागिर, दतिया, पृ. 129, सन् 1985
4. श्री विमलभक्ति संग्रह, पृ. 108 निर्वाणभक्ति, पद्य 25

प्रकाशित कर श्री सम्मेदशिखर क्षेत्र पर तपस्या करते हुए अक्षय सुख से पूर्ण परम निर्वाण को प्राप्त किया था।

> शेषा जिनेन्द्रास्तपसः प्रभावात्, विधूयकर्माणि पुरातनानि।
> धीराः परां निर्वृतिमभ्युपेताः सम्मेदशैलोपवनान्तरेषु॥[1]

भाव सौन्दर्य—धीर वीर अजितनाथ आदि शेष बीस तीर्थंकर प्रकृष्ट तप के प्रभाव से पूर्ण संचित आठ कर्मों को नष्ट कर सम्मेदशिखर सघन उपवन से मुक्ति को प्राप्त हुए।

> कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे,
> चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
> शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे-नेमीश्वरस्यार्हतो
> निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥[2]

सार सौन्दर्य—कैलाश पर ऋषभनाथ की, पावापुर में महावीर की, चम्पानगरी में वासुपूज्य की और गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ तीर्थंकर की निर्वाणभूमि प्रसिद्ध है। शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमियाँ सम्मेदशिखर पर जगत्प्रसिद्ध हैं, इस प्रकार मुक्ति को प्राप्त हुए, वे चौबीस तीर्थंकर विश्व का कल्याण करें।

इसी प्रसंग में जैन दर्शन के अन्तर्गत उत्तर पुराण में एक प्रभावक कथा सगर चक्रवर्ती के विषय में प्रसिद्ध है—

सगर चक्रवर्ती का जीव पूर्वजन्म में स्वर्ग का एक धर्मात्मा देव था, उसका मित्र मणिकेतु नाम का एक देव भी स्वर्ग में रहता था। दोनों का पारस्परिक मैत्री पूर्ण व्यवहार था। एक दिन दोनों देवों में यह निश्चय हुआ कि हम दोनों में जो भी प्रथम मनुष्य भव प्राप्त करेगा, उसको मध्यलोक में, स्वर्ग का मित्र देव आत्म-कल्याण के लिए सम्बोधित करेगा। भाग्यवश सगर चक्री का पूर्व जीव स्वर्ग से चय कर सगर चक्री हो गया। वह समयानुसार भरत क्षेत्र में शासन करने लगा।

जब मणिकेतु देव ने अपने पूर्वभव की मित्रता को ध्यान में रखकर सगर चक्री को आत्म-कल्याण में प्रेरित करने के लिए, उसके साठ हजार पुत्रों के मायावश अकाल मरण का शोक वृत्तान्त सुनाया तो चक्रवर्ती को सुनते ही संसार से वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य देकर चक्री ने दि. मुनिदीक्षा को अंगीकार कर लिया। उधर कैलाश पर्वत के निकट मणिकेतु ने उन साठ हजार पुत्रों को सचेत करते हुए, उनके पिता द्वारा मुनि दीक्षा को लेने का समाचार जा सुनाया। उस श्रेष्ठ वृत्तान्त

---

1. जटासिंह नन्दिकृत वरांगचरित : सं. पं. खुशालचन्द गोरावाला, प्र.—जैनसंघ, चौरासी, मथुरा 1953
2. विमलभक्ति संग्रह : मंगलाष्टक, पद्य 6, पृ. 170

को सुनकर उन सब पुत्रों ने भी मुनिव्रत धारण कर लिया और तपस्या करते हुए अन्त में तीर्थराज सम्मेदशिखर से मुक्तिधाम को प्राप्त किया। प्रमाण भी है—

ते सर्वे सुंदर पुत्राः, तपसा विविधद् बुधाः।
शुक्ल ध्यानेन सम्मेदे, सम्प्रापन् परमं पदम्॥[1]

सम्मेदशिखर का मूल्यांकन—अनेक साहित्य मनीषियों ने विविध भाषाओं में सम्मेदशिखर का मूल्यांकन कर उससे सम्बद्ध पूजा-काव्यों का प्रणयन किया है। इनमें इस क्षेत्र के सिद्धक्षेत्रत्व को अनेकशः प्रमाणित किया है। जैन परम्परा में सम्मेदशिखर सर्वाधिक पूज्य एवं महनीय तीर्थक्षेत्र है।

कारंजा (महाराष्ट्र) के गंगादास कवि, मूलसंघ के भट्टारक श्री धर्मचन्द्र के शिष्य थे। आपने मराठी में 'पार्श्वनाथ भवान्तर', गुजराती में 'आदित्यवार व्रतकथा', 'त्रेपन क्रिया', संस्कृत में मेरुपूजा तथा क्षेत्रपाल पूजा-काव्यों का सृजन किया है। इनके अतिरिक्त आपने संस्कृत में सरस 'सम्मेदाचल पूजा' नामक काव्य की रचना कर तीर्थराज का महत्त्व वृद्धिंगत किया है। आपकी सत्ता का समय सत्रहवीं शती माना जाता है।

विक्रम की 19वीं शती के संस्कृत कवि देवदत्त दीक्षित ने कान्यकुब्ज ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया। अटेरनगर निवासी आपने भदौरिया नृप के शासन काल में सम्मान प्राप्त किया। इसी समय आपने शौरीपुर के भट्टारक (पट्टाधीश) जिनेन्द्र भूषण की प्रेरणा से संस्कृत पद्य में 'सम्मेदशिखर माहात्म्य' एवं 'स्वर्णाचल माहात्म्य' इन दो ग्रन्थों की रचना कर तीर्थराज का अमूल्य मूल्यांकन किया। जिसका हिन्दी गद्यानुवाद आचार्य कुन्थुसागर जी मुनिराज ने किया है।

इस विशाल ग्रन्थ में विभिन्न छन्दों में निर्मित एक हज़ार सात सौ साठ (1760) पद्य इक्कीस अध्यायों में विभक्त हैं, उन अध्यायों में बीस पौराणिक कथा वस्तुओं का विवेचन है जिनमें श्री सम्मेदशिखर वन्दना का महत्त्व दर्शाया गया है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय के द्वितीय पद्य में ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थसृजन की प्रतिज्ञा प्रस्तुत की है—

गुरुं गणेशं वाणीं च, ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं, प्रकटी क्रियते मया॥

भाव सौन्दर्य—जिन्होंने भव्य जीवों को उपदेश प्रदान कर गुरु के नाम को सार्थक किया है ऐसे इन्द्रभूति गौतम आदि गणधरों को तथा जिनवाणी को हृदय से ध्यान कर, उनके गुणों की स्तुति कर तथा नमस्कार करके मैं (देवदत्त कवि) सम्मेदशिखर क्षेत्र की वन्दना के महत्त्व को कहता हूँ।

---

1. भारत के दि. जैन तीर्थ, द्वितीय भाग, पृ. 149

इस ही प्रतिज्ञा को छठे तथा सातवें पद्य में आचार्य परम्परागत प्रमाणित किया गया है—"श्री सम्मेदशिखर क्षेत्र का माहात्म्य श्री 1008 भगवान महावीर तीर्थंकर ने गौतम गणधर को कहा, पश्चात् बुद्धिशाली एक अंगपाठी लोहाचार्य ने भव्य जीवों को कहा, पश्चात् तदनुसार देवदत्त, सत्कवि द्वारा श्री सम्मेदशिखर का महत्त्व व्यक्त किया जाता है।"

इसी अध्याय के पद्य संख्या 32 में चक्रवर्तियों द्वारा तीर्थराज की यात्रा का वर्णन किया गया है—

भरतेन कृता पूर्व यात्रैशा चक्रवर्तिना।
सगरेण तथा भक्त्या, सिद्धानन्दरसेप्सुना॥[1]

भावसार—मुक्ति सुख की इच्छा रखनेवाले सगर चक्रवर्ती ने इस सिद्धक्षेत्र की भक्तिपूर्वक यात्रा की थी। उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती ने भी इस अनादि सिद्धक्षेत्र की शुद्ध भाव से यात्रा की थी। पुण्य के प्रभाव से ही भव्य मानव श्री सम्मेदशिखर क्षेत्र की वन्दना कर सकता है, पाप कर्म के प्रभाव से नहीं कर सकता।

सम्मेदशिखर तीर्थराज दर्शन—

मधुवन से छह मील की चढ़ाई करने पर सम्मेदाचल का ऊपरी भाग प्राप्त होता है, पर्वत की टोंकों पर मढ़ियाँ (मन्दरियाँ) बनी हुई हैं जिनमें तीर्थंकरों के चरण विराजमान हैं। टोंक को कूट भी कहते हैं। इन टोंकों के नाम क्रमशः निम्न प्रकार हैं—(1) गौतम गणधरकूट, (2) कुन्थुनाथ का ज्ञानधरकूट, (3) नमिनाथ का मित्रधरकूट, (4) अरनाथ का नाटककूट, (5) मल्लिनाथ का सम्बलकूट, (6) श्रेयांसनाथ-संकुलकूट, (7) पुष्पदन्त-सुप्रभकूट, (8) पद्मप्रभ मोहनकूट, (9) मुनिसुव्रतनाथ-निर्जरकूट, (10) चन्द्रप्रभ-ललितकूट, (11) आदिनाथ-ऋषभकूट, (12) शीतलनाथ-विद्युत्कूट, (13) अनन्तनाथ-स्वयंभूकूट, (14) सम्भवनाथ धवलदत्तकूट, (15) वासुपूज्य-कूट, (16) अभिनन्दननाथ-आनन्दकूट। (17) धर्मनाथ-सुदत्तवरकूट, (18) सुमतिनाथ-अविचलकूट। (19) शान्तिनाथ-शान्तिप्रभकूट, (20) महावीर-महावीरकूट, (21) सुपार्श्वनाथ-प्रभासकूट, (22) विमलनाथ-सुवीरकूट, (23) अजितनाथ-सिद्धवरकूट, (24) नेमिनाथ-मित्रधरकूट, (25) पार्श्वनाथ-सुवर्णभद्रकूट।

पर्वत से इन सब कूटों की चढ़ाई कुल छह मील हो जाती है।

वन्दना करने के पश्चात् छह मील का उतार होता है। इस प्रकार श्री सम्मेदाचल की यात्रा कुल 18 मील की हो जाती है। इस विशाल पर्वत पर दो नाला शीतल जल की धारा बहाते हुए यात्रियों को प्रसन्न करते हैं।

सम्मेदशिखर का द्वितीय नाम पारसनाथ हिल भी कहा जाता है। यह बिहार

1. महाकवि देवदत्त कृत 'श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य' : सं. कुन्थुसागर मुनिराज, प्र.—कुन्थुविजय ग्रन्थ माला समिति, जयपुर, 1985 पृ. क्रमश: 1, 32

प्रान्त के हजारीबाग जिले में अपनी श्रेष्ठ सत्ता रखता है। यात्रियों को 'पारसनाथ रेलवे स्टेशन' पर उतरकर ईसरी की धर्मशाला में प्रवास करना चाहिए। ईशरी से 22 कि.मी. दूर मधुवन है, यह क्षेत्र भी तीर्थ जैसा ही है। प्रथम दि. जैन तेरहपन्थी कोठी में एक उन्नत मानस्तम्भ, तेरह मन्दिर और विशाल नन्दीश्वर द्वीप की रचना है। द्वितीय श्वेताम्बर जैन कोठी में विशाल मन्दिर है। तृतीय दि. जैन बीसपन्थी कोठी में आठ दि. मन्दिर, विशाल समवशरण मन्दिर और एक बाहुबलि मन्दिर है।

जैन पूजा-काव्य में तीर्थों का मूल्यांकन : परिचय और अर्चन

जैन पूजा-काव्य में इन समस्त तीर्थक्षेत्रों का अर्चन के साथ ही मूल्यांकन किया गया है जिससे पूजा-काव्य की महत्ता तथा व्यापकता सुरीत्या सिद्ध हो जाती है। इन तीर्थक्षेत्रों का अर्चन-वन्दन एवं स्मरण करने से श्रद्धा बलवती होती है, तीर्थंकर महात्मा मुनीश्वरों के गुणों का एवं जीवन चरित्र का स्मरण होने से आत्मा में विशुद्धि के साथ-साथ शक्ति का विकास और दुष्कर्मों का क्षय होता है। जैन पूजा-काव्य में अनेक तीर्थक्षेत्रों का पूजन किया गया है। उदाहरणार्थ कुछ पूजा एवं विधान यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं–

श्री सम्मेदशिखर विधान काव्य

यह विधानकाव्य कविवर जवाहरलाल द्वारा उन्नीसवीं शती में रचा गया है। इसमें 83 पद्य पन्द्रह प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। इनमें विविध अलंकारों के द्वारा भक्ति रस एवं शान्तरस उछलता है। उदाहरणार्थ कुछ प्रमुख पद्य प्रस्तुत किये जाते हैं–

दोहा

सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उत्कृष्ट महान।
शिखरसम्मेद सदा नमों, होय पाप की हान॥
अगणित मुनि जहँ ते गये, लोक शिखर के तीर।
तिनके पदपंकज नमों, नाशें भव की पीर॥

सुन्दरी छन्द

सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है, अति सु उज्ज्वल तीर्थ महान है
करहिं भक्ति सु जे गुणगायकें, वरहिं सुर शिव के सुख जायकें॥

गीता छन्द

सम्मेदगढ़ है तीर्थभारी, सबहिं को उज्ज्वल करे।
चिरकाल के जे कर्म लागे, दर्शतें छिन में टरें।

है परमपावन पुण्यदायक, अतुल महिमा जानिए।
अरु है अनूप सरूप गिरिवर, तासु पूजन ठानिए॥

सोरठा

कर्मनाश ऋषिराज, पंचमगति के सुख लहे।
तारण तरण जिहाज, मो दुख दूर करो सकल॥

दोहा

पारस प्रभु के नाम तें, विघन दूर टर जाय।
ऋद्धि सिद्धि निधि तासको, मिलि है निशदिन आय॥[1]

श्री सम्मेदशिखर समुच्चय पूजा-काव्य

इस पूजा-काव्य का सृजन भी कविवर जवाहरलाल द्वारा किया गया है। इसमें 64 पद्य, नौ प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। इनमें विविध अलंकारों की वर्षा से भक्ति रस का जलाशय परिपूर्ण हो रहा है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है।

सम्मेदशिखर तीर्थ की पूजा का महत्त्व

नित करें जे नरनारि पूजा, भावभक्ति सुलायकें
तिनको सुजश कहता 'जवाहर', हरष मन में धारिकें।
ते हों सुरेश नरेश खगपति, समझ पूजाफल यही
सम्मेदगिरि की करहु पूजा, पाव हो शिवपुर मही॥

सम्मेदाचल की प्रकृति का वर्णन

मारुत मन्द सुगन्ध चलेय, गन्धोदक जहँ नित वर्षेय।
जिय को जाति विरोध न होय, गिरवरवन्दौं कर धरि दोय॥
जो भवि वन्दे एकहि बार, नरक निगोद पशूगति टार।
सुर शिवपद को पावै सोय, गिरिवर वन्दौ कर धरि दोय॥[2]

इस पूजा-काव्य में कुल चौबीस पद्य छह प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। प्रकृतिवर्णन एवं अलंकारों की छटा से भक्ति रस का माधुर्य व्यक्त है।

---

1. बृहत्महावीर कीर्तन, पृ. 697-709
2. तथैव, पृ. 710-716

कैलाशपर्वत-तीर्थ क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय

कैलाश पर्वत अति प्राचीन जगत्पूज्य श्रेष्ठ तीर्थक्षेत्र है। स्फटिक मणि की शिलाओं से रमणीय उस कैलाश पर्वत पर आरूढ़ होकर भगवान ऋषभदेव ने एक हजार राजाओं के साथ योग निरोध किया और अन्त में शुक्ल ध्यान के द्वारा चार अघाति कर्मों का क्षय कर, देवों से पूजित होते हुए अनन्त सुख के मुक्ति पद को प्राप्त किया। भरत चक्रवर्ती और वृषभसेन आदि गणधरों ने भी कैलाश पर्वत से ही मोक्षपद प्राप्त किया। श्री बाहुबली स्वामी को कैलाश पर्वत से निर्वाण पद प्राप्त हुआ। अयोध्या के राजा ऋषभदेव के पितामह त्रिदशंजय ने मुनिदीक्षा लेकर तप करते हुए कैलाश से मुक्तिपद प्राप्त किया।

कैलाश अपरनाम अष्टापद पर्वत के शिखर से व्याल, महाव्याल, अच्छेद्य और नागकुमार मुनि ने मोक्ष प्राप्त किया। हरिषेण चक्रवर्ती के पुत्र हरिवाहन ने मुनि दीक्षा लेकर इसी पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया। अनेक जैनग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि कैलाश पर भरतचक्री तथा अन्य अनेक नृपों ने चौबीस तीर्थंकरों के मन्दिर बनवाकर उनमें रत्नमयी प्रतिमाएँ स्थापित करायीं। भरतचक्री ने चौबीस तीर्थंकरों के जो मन्दिर और प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की थीं, उनका अस्तित्व चक्रवर्ती के पश्चात् सहस्राब्दियों तक रहा, जैन साहित्य में इसके प्रमाण भी मिलते हैं।

द्वितीय चक्रवर्ती सगर के साठ हजार पुत्रों ने अपने पिता जी से कुछ महान् कार्य करने की जब आज्ञा माँगी, तब सगरचक्री ने विचारपूर्वक आज्ञा दी कि भरतचक्री ने कैलाश पर्वत पर चौबीस तीर्थंकरों के जो महारत्नजड़ित चौबीस जिनालय प्रतिष्ठित कराये थे, तुम सब उन मन्दिरों की सुरक्षा के लिए कैलाश के चारों ओर परिखा के रूप में गंगा नदी को बहा दो। पिता की आज्ञा के अनुसार उन राजपुत्रों ने भी दण्डरत्न से उस महान् कार्य को शीघ्र ही पूर्ण कर दिया।

कैलाशगिरि तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य

विक्रम की बीसवीं शती के कविवर भगवानदास ने कैलाशतीर्थ क्षेत्र पूजा-काव्य का निर्माण किया है। यह क्षेत्र प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाणक्षेत्र है। आर्यखण्ड के हजारों देशों में विहार कर मानवों को कल्याणमार्ग दर्शाते हुए भगवान् ऋषभदेव कैलाश पर्वत पर स्थिर हुए और परमशुक्ल ध्यान द्वारा शेष दुष्कर्मों का क्षय करते हुए निर्वाणपद को प्राप्त हुए। उसी समय से लोक में कैलाशतीर्थक्षेत्र की पूजा होने लगी। इस काव्य के कुछ भावपूर्ण पद्यों का दिग्दर्शन—

पूजन के समय कैलाश क्षेत्र की स्थापना—

> श्री कैलाश पहाड़ जगत परधान कहा है
> आदिनाथ भगवान जहाँ शिववास लहा है।

नागकुमार महाव्याल व्याल आदिक मुनिराई
भये तिहि गिरसों मोक्ष थापि पूजों शिरनाई॥

पूजा का उपदेश –

कैलाश पहारा, जग उजियारा, जिन शिव गाया, ध्यान धरो।
वसु द्रव्यन लायी, तिहि थल जायी, जिन गुणगायी पूज करो॥

इस मान्यता को स्वीकार कर लेने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कैलाश या अष्टापद कहने पर हिमालय में भागीरथी, अलकनन्दा और गंगा के तटवर्ती बदरीनाथ आदि से लेकर कैलाश पर्वत तक का समस्त पर्वत प्रदेश आ जाता है। इसमें आल्पतट के ऋषिकेश, जोशीमठ, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमुनोत्री और मुख्य कैलाश सम्मिलित हैं। यह पर्वत प्रदेश अष्टापद भी कहलाता था, क्योंकि इस प्रदेश में पर्वतों की जो शृंखला फैली हुई है, उसके बड़े-बड़े और मुख्य आठ पद हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–(1) कैलाश, (2) गौरीशंकर, (3) द्रोणगिरि, (4) नन्दा, (5) नर, (6) नारायण, (7) बदरीनाथ, (8) त्रिशूली। मानसरोवर कैलाश के ही निकट है।[1]

श्री गिरनार क्षेत्र पूजा-काव्य

सौराष्ट्र देश की दक्षिणश्रेणी में 'रैवतगिरि' नाम का एक विशाल पर्वत है जो अत्यन्त उन्नत होने से 'ऊर्जयन्तगिरि' के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ। यह समुद्रतल से 3666 फुट की ऊँचाई को लिये हुए है। अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध इस विशाल पर्वत के गगनचुम्बी शिखर शोभित हैं। प्राचीन काल में इस पर विशाल एवं सुन्दर मन्दिर तीर्थंकरों के प्रतिबिम्ब से रमणीय थे। यहाँ अनेक देव, विद्याधर और मानव, नेमिनाथ के दर्शन-पूजन करने के लिए आते थे। भगवान नेमिनाथ 22वें तीर्थंकर थे जो यदुवंशी श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। ये ऋग्वेद में अरिष्ट नेमिनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

नेमिनाथ ने अपने विवाह में होनेवाले पशुवध के षड्यन्त्र से द्रवित हो पशुओं को बन्धन से छुड़ाया और विरागता को धारण करते हुए, वस्त्राभूषणों का परित्याग कर रैवतक (गिरनार) पर्वत पर मुनिदीक्षा ग्रहण की और घोर तपस्या द्वारा दुष्कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान (विश्वज्ञान) प्राप्त किया और लोक-कल्याण के लिए विहार किया। अन्त में गिरनार पर्वत पर स्थिर योगपूर्वक शुक्लध्यान से मुक्ति प्राप्त की।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार और शम्बुकुमार ने नेमिनाथ

---

1. भारत के दि. जैन तीर्थ भाग-1 सम्पा. बलभद्र जैन, प्र. –भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, हीराबाग, बम्बई, सन 1974, पृ. 90

तीर्थंकर से दीक्षा लेकर इसी पर्वत पर तपश्चरण किया और परमात्मपद को प्राप्त किया। महामुनि गजकुमार ने इसी क्षेत्र पर परमध्यान करते हुए मुक्तिपद को प्राप्त किया। भगवान नेमिनाथ के गणधर वरदत्त महर्षि ने, अगणित साधुओं के साथ तपश्चरण कर परम सिद्ध पद को प्राप्त किया। राजकुमारी राजुलदेवी ने सती आर्यिका की दीक्षा लेकर इस पर्वत के सघन सहस्राम्रवन में (सहसावन) में तपश्चरण कर देवगति को प्राप्त किया। इसी पावन क्षेत्र पर महामुनि अनिरुद्ध कुमार (अनुरुद्ध कुमार) आदि करोड़ों जैन मुनियों ने आत्म-साधना कर परम सिद्ध पद को प्राप्त किया है।

इस पर्वत की प्रथम टोंक (शिखर) से आगे अम्बा देवी (अम्बिका देवी) का एक विशाल मन्दिर है। इसके पीछे चबूतरे पर महामुनि अनिरुद्ध कुमार के चरण चिह्न हैं। इस पर्वत पर सैकड़ों जैन मुनियों ने रत्नत्रयरूप आत्म-साधना कर सिद्ध पद को प्राप्त किया है अतः इस तीर्थ को सिद्ध क्षेत्र भी कहते हैं। गिरनार पर्वत का मूल्यांकन—

"मागा गर्वममर्त्यपर्वत परां प्रीतिं भजन्तस्त्वया
भ्रम्यन्ते रविचन्द्रमा-प्रभृतयः के के न मुग्धाशयाः।
एको रैवत भूधरो विजयतां यद्दर्शनात् प्राणिनो
यान्ति भ्रान्ति विवर्जिताः किल परमानन्दं सुखंभीनुष ।"

भाव सौन्दर्य—हे पर्वतश्रेष्ठ! गर्व मत करो। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र तुम्हारे प्रेम में इस प्रकार मुग्ध हुए हैं कि वे अपना मार्ग चलना भी भूल गये हैं अर्थात् वे प्रतिदिन तुम्हारी ही परिक्रमा देते रहते हैं। इतना ही नहीं, अपितु ऐसा कौन है जो तुम पर मुग्ध न हो! जय हो इस प्रधान रैवत पर्वत की, जिसके दर्शन करने से मानव भ्रान्ति को खोकर आनन्द का अनुभव करते हैं और परमसुख को प्राप्त होते हैं।

इस पर्वत पर तीर्थों, मन्दिरों, राजमहलों, क्रीड़ाकुंजों, झरनों और हरे-भरे फलों-फूले वनों ने अपनी अनुपम शोभा स्थापित कर ली है। उसकी प्राचीनता भी श्री ऋषभनाथ देव के समय से ज्ञात होती है। भरत चक्रवर्ती अपनी दिग्विजय के प्रसंग में यहाँ आये थे।

एक ताम्रपात्र से प्रकट है कि ईशा पूर्व 1140 में गिरिनार पर (रैवतक पर) भगवान नेमिनाथ के मन्दिर बन गये। गिरिनार के निकट ही गिरिनगर बसा हुआ था जिसको वर्तमान में जूनागढ़ कहते हैं।

इसी पर्वत पर चन्द्रगुफा में आचार्यप्रवर श्रीधर-सेन तपस्या करते थे। उन्होंने पुष्पदन्त और भूतबलि नामक आचार्यों को विशिष्ट श्रुतज्ञान का उपदेश देने के पश्चात् आदेश दिया था कि वे अनुभूत श्रुत को लिपिबद्ध करें।

सम्राट् अशोक ने यहीं पर जीवदया के बोधक धर्मलेख पाषाणों पर लिखवाये थे।

क्षत्रप रुद्रसिंह के लेख से व्यक्त होता है कि मौर्यकाल में एवं उसके बाद भी गिरिनार के प्राचीन मन्दिर आदि स्मारक तूफ़ान से नष्ट-भ्रष्ट हो गये थे। मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु श्री भद्रबाहुस्वामी भी यहाँ पधारे थे। क्षत्रप-रुद्रसिंह ने सम्भवतः दि. मुनियों को तपस्या करने हेतु गुफ़ाएँ बनवायी थीं। चूडासमासवंश के खड्गार नृप ने 10वीं से 16वीं शती तक राज्य किया, जो दिगम्बर जैन था।

हिन्दू समाज भी इस गिरनार पर्वत को अपना तीर्थक्षेत्र मानता है। कारण कि इस पर्वत की एक चोटी पर अम्बा देवी का विशाल मन्दिर शोभित है। हिन्दू भाई इसको अम्बा माता की टोंक कहकर पूजते हैं। तीसरी टोंक पर श्री नेमिनाथ के चरण चिह्न रमणीय हैं। कुछ अन्तर पर बाबा गोरखनाथ के चरण और मठ हैं, जिनको हिन्दूभाई पूजते हैं। पाँचवीं टोंक पर नेमिनाथ के चरणयुगल एक मढ़िया में बने हुए हैं। पास में ही नेमिनाथ की एक पाषाणमूर्ति है। हिन्दूभाई इस पंचम टोंक को गुरु दत्तात्रेय की तपस्या का क्षेत्र कहते हैं। उसको पूज्य तीर्थक्षेत्र मानते हैं।

यह गिरनार पर्वत उन्नत विशाल एवं सुरम्य है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य का अद्वितीय क्रीड़ास्थल है। मन्दिरों, सघन निकुंजों, प्राकृतिक झरनों और शीतलवन से लहलहाते हुए हरे-भरे वृक्षों से सघन वनों से इसकी शोभा निराली है। क़रीब ग्यारह हज़ार सीढ़ी पार करने पर इसकी सानन्द वन्दना हो पाती है।[1]

क्षेत्र की पूजा

इस विशाल गगनचुम्बी गिरनार क्षेत्र की पूजा-काव्य माला का निर्माण उन्नीसवीं शती के कविवर रामचन्द्र ने किया है। इस पूजा-काव्य में 48 पद्य आठ प्रकार के छन्दों में निबद्ध तथा भावपूर्ण हैं। प्रकृति एवं अलंकारों की शीतलवर्षा से भक्ति रस की गंगा हृदयसरोवर से प्रवाहित होती है। यह इस पूजा-काव्य का प्रभाव है। उदाहरणार्थ इसके कुछ सरस पद्यों का प्रदर्शन—

ऊर्जयन्त गिरिनाम तसु कहो जगतविख्यात।
गिरिनारी तासों कहत, देखत मन हर्षात॥

गिरनार वर्णन—

गिरि सु उन्नत सुभगाकार है, पंचकूट उत्तंग सधार हैं।
वन मनोहर शिला सुहावनी, लखत सुन्दर मन को भावनी॥
अवरकूट अनेक बने तहाँ, सिद्ध थान सु अति सुन्दर जहाँ।
देखि भविजन मन हर्षावते, सकल जन वन्दन को आवते॥

---

1. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, प्र.—दि. जैन परिषद् पब्लि. हाऊस, दिल्ली, तृ. सं., पृ. 133-139

निर्वाण कल्याणक वर्णन—

सित अष्टमि मास अषाढ़ा, तब योग प्रभू ने छोड़ा।
जिन लई मोक्ष ठकुराई, इत पूजत चरणा भाई॥

नेमिनाथ का निर्वाणधाम

श्री नेमिनाथ का मुक्ति थान देखत नयनों अतिहर्ष मान।
इक बिम्ब चरणयुग तहाँ आय, भविकरत वन्दना हर्ष ठान॥

पूजा-काव्य रचयिता की भावना

अब दुःख दूर कीजे दयाल, कहै 'चन्द' कृपा कीजै कृपाल
मैं अल्प बुद्धि जयमाल गाय, भवि जीव शुद्धि लीज्यो बनाय॥

श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा-काव्य

बिहार प्रान्त में नाथ नगर क्षेत्र वर्तमान में प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन नाम चम्पापुर नगर है। यहाँ तीर्थंकर वासु पूज्य (बारहवें) स्वामी के पाँच कल्याणक महोत्सव हुए थे। प्रसिद्ध हरिवंश की स्थापना का यही स्थान है। गंगातट पर स्थित इसी नगर में धर्मघोष मुनिने समाधिमरण किया था। गंगा नदी के एक चम्पा नाला नाम के नाले के निकट एक प्राचीन जिनमन्दिर दर्शनीय है। नाथनगर में भी दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं।

पं. दौलतराम जी वर्णी ने चम्पापुर तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य की रचना की है। इसमें तेइस पद्य तीन प्रकार के छन्दों में रचित हैं। जिनके पढ़ने से भक्तिरस की धारा बहने लगती है। वासुपूज्य के पूज्य गुणों का स्मरण हो जाता है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का उद्धरण इस प्रकार है—

चाल नन्दीश्वर पूजन, जल अर्पण करने का पद्य—

सम अमित विगतत्रस वारि, ले हिमकुम्भ भरा
लख सुखद त्रिगदहरतार दे त्रय धार धरा।
श्री वासुपूज्य जिनराय निर्वृति थान प्रिया,
चम्पापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥

रचयिता का भाव

श्री चम्पापुर जो पुरुष, पूजैं मन वच काय।
वर्णि 'दौल' सो पाय ही, सुख सम्पति अधिकाय॥[1]

---

1. वृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 721-723

श्री पावापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा-काव्य

पावापुर क्षेत्र अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर का निर्वाण धाम है। अतः यह पवित्र एवं पूज्य तीर्थ स्थान है। इसका प्राचीन नाम अपापापुर (पुण्यभूमि) था। इसके निकट में मल्ल राजतन्त्र का प्रमुख नगर हस्तिग्राम था। भगवान महावीर ने पावापुर में ही तीस वर्ष के विहार के पश्चात् स्थिरयोग को धारण करते हुए समस्त दुष्कर्मों पर विजय प्राप्त कर अक्षय निर्वाण को प्राप्त किया था। यह स्थान जल मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। जो विशाल तालाब के मध्य में शोभायमान है। इसमें भगवान महावीर, गौतम (इन्द्रभूति) गणधर और द्वितीय केवलज्ञानी सुधर्मांचार्य के चरण चिह्न हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी दि. जैन मन्दिर हैं।[1]

क्षेत्रीय पूजा-काव्य

इस पावापुर पूजा-काव्य के निर्माता कवि दौलतराम जी वर्णी हैं। इस पूजा-काव्य में सम्पूर्ण 24 पद्य हैं जो पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। अलंकारपूर्वक क्षेत्र का, महावीर के गुणों का और प्रकृति का वर्णन होने से हृदय में भक्ति रस उछलता है। उदाहरणार्थ कुछ पद्य—

जल समर्पण करने का पद्य—

शुचि सलिल शीती कलिलरीती श्रमनचीती लै जिसो,
भर-कनक झारी त्रिगदहारी दे त्रिधारी जिततृषो।
वर पद्मवन भर पद्मसरवर बहिर पावाग्राम ही
शिवधाम सन्मति स्वामि पायो, जजों सो सुखदा मही॥

महावीर का विहार और योगनिरोध से मुक्ति

पद्धरी छन्द

भवि जीव देशना विविध देत, आये धर पावानगर खेत।
कार्तिक अलि अन्तिम दिवस ईश, कर योगनिरोध अघाति पीस॥

दीपावली पर्व का उदय

तब ही तों सो दिन पूज्यमान, पूजत जिन गृहजन हर्षमान।
मैं पुन पुन तिस भुवि शीश धार, वन्दौं तिन गुणधर उर मझार॥
तिनही का अब भी तीर्थ एह, वरतत दायक अति शर्म गेह।
अरु दुखमकाल अवसान ताहिं, वरतैगो भवथितिहर सदाहि

---

1. जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, पृ. 40

महावीर पूजन का सुफल

श्री सन्मति जिन अंघ्रिपद्म-युग जजैं भव्य जो मन वच काय।
ताके जन्म-जन्म संचित अघ, जावहिं इक छिन माँहि पलाय॥
धन-धान्यादिक शर्म इन्द्रपद लहैं सो शर्म अतीन्द्री थाय,
अजर अमर अविनाशी शिवथल, 'वर्णी दौल' रहे शिरनाय॥[1]

श्री गुणावा सिद्ध क्षेत्र पूजाकाव्य

क्षेत्र का परिचय

विहार प्रान्तीय गुणावा क्षेत्र से, भगवान महावीर के प्रधान गणधरगौतम इन्द्रभूति ने आध्यात्मिक साधना करते हुए मुक्त पद को प्राप्त किया। गणधर का यह मन्दिर तालाब के मध्य में शोभित हो रहा है। मन्दिर में तीर्थंकरों के चरण चिह्न शोभायमान हैं।

क्षेत्रीय पूजा-काव्य

गुणावा तीर्थपूजाकाव्य का निर्माण श्री बाबूपन्नालाल ने किया है। इसमें बाईस पद्य पाँच प्रकार के छन्दों में रचित हैं। उदाहरण के कुछ पद्यों का उद्धरण—

तीर्थ की स्थापना

सोरठा छन्द

धन्य गुणावा धाम, गौतम स्वामी शिव गये।
पूजहु भव्य सुजान, अहनिश कर उर थापना॥

श्री पटना सिद्ध क्षेत्र पूजा-काव्य

क्षेत्र का परिचय

विहार प्रान्तीय पटना (वर्तमान) नगर, मौर्य राजाओं की प्राचीन राजधानी 'पाटलिपुत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। यह जैन संस्कृति का सिद्ध क्षेत्र है। कारण कि श्री सुदर्शन स्वामी ने वीरधर्म राव की साधना कर यहीं से मोक्षपद को प्राप्त किया था। सुरसुन्दरी के सदृश सुन्दर अभयारानी की काम वासनाओं के सन्मुख सेठ सुदर्शन अपनी ब्रह्मचर्य साधना में अटल रहे थे। अन्त में मुनिपद में रत्नत्रय की

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 725-726

साधना करते हुए परमात्म पद को प्राप्त हुए। पटना स्टेशन के पास ही एक टेकरी (तपोभूमि) पर चरण पादुकाएँ विराजमान हैं जो भव्य यात्री को शीलव्रती बनने के लिए उत्साहित करती हैं। पास में एक जैन मन्दिर व धर्मशाला है।

शिशुनागवंश के राजा अजातशत्रु, श्री इन्द्रभूति और सुधर्माचार्य जी के निकट जैनधर्म में दीक्षित हुए थे। उनके प्रपौत्र महाराजा उदयन ने पाटलिपुत्र नाम का राजनगर बसाया था और सुन्दर जिनमन्दिर निर्मित कराये थे। यूनानियों ने इस नगर की बहुत प्रशंसा की थी। मौर्यकाल की दि. जैन प्रतिमाएँ यहाँ भूगर्भ में जैसी निकला करती हैं वैसी दो प्रतिमाएँ पटना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। दि. जैनियों के यहाँ पाँच मन्दिर और एक चैत्यालय है। जैनधर्म का सम्पर्क पटना से अतिप्राचीन काल का है।

क्षेत्रीय पूजा-काव्य

बाबू पन्नालाल जी ने पटना सिद्ध क्षेत्र पूजा-काव्य की रचना की है। इस काव्य में इकतीस पद्य, चार प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। अलंकार एवं भाषा माधुर्य से शान्तरस का प्रवाह प्रवाहित होता है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्य--

क्षेत्र परिचय

उत्तम देश विहार में, पटना नगर सुहाय।
सेठ सुदर्शन शिव गये, पूजों मन वच काय।

सेठ का पूर्वभव—रचयिता का भाव

इक ग्वाल गमारा, जप नवकारा, सेठ सुदर्शन तन पायौ।
सुत लाल विहारी, आज्ञाकारी, 'पन्ना' यह पूजा गायौ॥[1]

खण्डगिरि-उदयगिरि तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य

कलिंग प्रान्त में भुवनेश्वर क्षेत्र से पाँच मील पश्चिम की ओर खण्डगिरि और उदयगिरि नामक दो पहाड़ियाँ हैं। मार्ग में भुवनेश्वर नगर मिलता है जिसमें एक विशाल शिवमन्दिर दर्शनीय है। मार्ग में सघन वृक्षों से हरा-भरा वन है। इन पहाड़ियों के बीच में एक तंग घाटी है। यहाँ पत्थर काटकर बहुत-सी गुफ़ाएँ और मन्दिर निर्मित हैं जो ईस्वी सन् से प्रायः एक सौ पचास वर्ष पूर्व से पाँच सौ वर्ष बाद तक के बने हुए हैं। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। उदयगिरि पहाड़ी का प्राचीन नाम कुमारी पर्वत है।

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 730-733

उदयगिरि

इस पर्वत पर भगवान महावीर ने अपने समवसरण में ओड़ीसा आदि अनेक क्षेत्रों के निवासी मानवों को अपनी अमृतवाणी का पान कराया था। अतः यह स्थान अतिशय क्षेत्र भी है। उदयगिरि एक सौ दश फीट ऊँचा है। इसके कटिस्थान में पत्थरों को काटकर कई गुफ़ाएँ और मन्दिर बनाये गये हैं। प्रथम 'अलकापुरी गुफ़ा' के द्वार पर हाथियों के चिह्न मिलते हैं। पुनः 'जयविजय गुफ़ा' के द्वार पर इन्द्र बने हैं। आगे 'रानी नूद' नामक दर्शनीय गुफ़ा में नीचे ऊपर बहुत-सी ध्यानयोग्य अन्तर गुफ़ाएँ हैं। आगे चलकर 'गणेश गुफ़ा' के बाहर पाषाण के दो हाथी बने हुए हैं। यहाँ से लौटने पर 'स्वर्ग गुफ़ा', 'मध्यगुफ़ा' और 'पाताल गुफ़ा' इन तीन गुफ़ाओं में चित्रों के साथ तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ भी हैं। 'पाताल गुफ़ा' के ऊपर 'हाथी गुफ़ा' 45 फीट विस्तृत पश्चिमोत्तर है। यह वही प्रसिद्ध गुफ़ा है जो जैन सम्राट खारवेल के शिलालेख के कारण प्रसिद्ध है।

खारवेल कलिंग देश के चक्रवर्ती राजा थे। उन्होंने भारत वर्ष की दिग्विजय की थी। उसी समय मगध के राजा पुष्यमित्र को परास्त करके, छत्र भृंगार आदि वस्तुओं के साथ 'कलिंग जिन ऋषभदेव' की वह प्राचीन मूर्ति वापस कलिंग में लाये थे, जिनको नन्द सम्राट पाटलिपुत्र ले गये थे। इस प्राचीन मूर्ति को सम्राट खारवेल ने कुमारी पर्वत पर 'अर्हत् प्रासाद' बनवाकर विराजमान किया था।

उन्होंने स्वयं एवं उनकी रानी ने इस पर्वत पर अनेक जिनमन्दिर, जिनमूर्तियाँ, गुफ़ा और स्तम्भों का निर्माण कराया था। इसी समय अनेक धर्मोत्सव भी किये थे। सम्राट खारवेल के समय से पहले ही यहाँ निर्ग्रन्थ श्रमणसंघ विद्यमान था। निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) मुनिगण इन गुफ़ाओं में तपस्या करते थे। स्वयं सम्राट खारवेल ने इस पर्वत पर रहकर धार्मिक यम-नियमों का पालन किया था। सत्यार्थ ज्ञान के उद्धार के लिए उन्होंने मथुरा, गिरनार और उज्जैन आदि जैन केन्द्रों के निर्ग्रन्थाचार्यों को संघ सहित आमन्त्रित किया था। निर्ग्रन्थ श्रमण संघ यहाँ एकत्रित हुआ और उपलब्ध द्वादशांगवाणी के उद्धार का प्रशंसनीय उद्योग किया था। इन कारणों से कुमारी पर्वत एक महापवित्र तीर्थ है।

खण्डगिरि

खण्डगिरि पर्वत 133 फीट ऊँचा सघन पर्वतमाला से शोभित है। खड़ी सीढ़ी का मार्ग ऊपर जाने के लिए हैं। सीढ़ियों के सामने ही खण्डगिरि गुफ़ा के नीचे-ऊपर पाँच गुफ़ाएँ अन्य भी बनी हुई हैं। अनन्त गुफ़ा में 2 फीट 4 इंच की कार्योत्सर्ग जिनप्रतिमा शोभायमान है। पर्वत की शिखर पर एक छोटा और एक बड़ा दि. जैन मन्दिर है। छोटे मन्दिर में एक प्राचीन प्रतिमा अष्टप्रतिहार्यों से अलंकृत है।

प्राचीन एवं दो शिखरवाले बड़े मन्दिर को प्रायः 200 वर्ष पूर्व, कटक के सुप्रसिद्ध दि. जैन श्रावक स्व. चौधरी मंजूलाल परवार ने निर्माण कराया था। इस मन्दिर से भी प्राचीन प्रतिमाएँ इसमें विराजमान हैं। मन्दिर के पीछे की ओर सैकड़ों भग्नावशेष, पाषाण खण्ड आदि पड़े हुए हैं जिनमें चार प्रतिमाएँ नन्दीश्वर की अनुमानित की जाती हैं। इस स्थान को 'देवसभा' कहते हैं। यहीं आकाशगंगा नाम का जलपूर्ण कुण्ड है, इसमें मुनियों के ध्यान योग गुफायें हैं। आगे गुप्त गंगा, श्याम कुण्ड और राधाकुण्ड नाम के कुण्ड शोभित हैं। फिर राजा इन्द्र केशरी की गुफा में आठ दि. जैन कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ हैं। तदुपरान्त चौबीस तीर्थंकरों की दि. प्रतिमा अंकित आदिनाथ गुफा है। अन्त में बारह भुजी गुफा में भी चौबीस जिनप्रतिमाएँ यक्षिणी देवी की मूर्ति सहित शोभायमान हैं। निकट में पुरीनामक हिन्दुओं का श्रेष्ठ तीर्थस्थान है। जगन्नाथ पुरी के मन्दिर के दक्षिण द्वार पर श्री आदिनाथ की मनोहर प्रतिमा विराजमान है।

खण्डगिरि-उदयगिरि क्षेत्र पूजा-काव्य -इसकी रचना श्री मुन्नालाल द्वारा की है। इस काव्य में तेतीस पद्य पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। जिनमें अलंकारों एवं प्रकृति का वर्णन होने से भक्ति रस की धारा प्रवाहित होती है। उदाहरणार्थ कतिपय प्रमुख पद्य उद्घाटित हैं—

क्षेत्र का सामान्य परिचय

अंग बंग के पास है, देश कलिंग विख्यात।
तामें खण्डगिरि लसत, दर्शन भये सुखात॥

अडिल्ल छन्द पूजार्थ क्षेत्र की स्थापना

दशरथ राजा के सुत अति गुणवान जी
और मुनीश्वर पाँच सैकड़ा जान जी।
अष्ट करम कर नष्ट मोक्षगामी भये
तिनके पूजहुँ चरण सकल मंगल ठये॥

पुन चलकर उदयगिरि सुजाय, भारी भारी जु गुफा लखाय।
एक गुफा में जिन विराजमान, पद्मासन धर प्रभु करत ध्यान॥

पूजा और वन्दना का फल

वन्दत भव दुख जाय पलाय, सेवक अनुक्रम शिवपद लहाय।
ता क्षेत्र को पूजत मैं त्रिकाल, कर जोड़ नमत हैं मुन्नालाल॥

घत्ता

> श्रीखण्डगिरिक्षेत्रं, अतिसुखदेतं, तुरतहिं भवदधि पार करै।
> जो पूजै ध्यावै, कर्म नशावै, वांछित पावै, मुक्ति वरै॥[1]

कुन्थलगिरि क्षेत्र पूजा-काव्य

बम्बई प्रान्तीय कुन्थलगिरि पर्वत से श्री कुलभूषण और देशभूषण मुनिवरों ने आत्म-साधना करते हुए परमात्म पद को प्राप्त किया। पर्वत यद्यपि विशाल नहीं है तथापि अत्यन्त रमणीक है। इसकी चोटी तथा पृष्ठभाग में मुनिराजों के चरणमन्दिर सहित दशमन्दिर निर्मित हैं। प्रकृति सौन्दर्य आकर्षक है। माघमास में मेला का आयोजन होता है। वि. सं. 1932 में यहाँ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार ईडर के भट्टारक कनक कीर्ति जी के उपदेशों से प्रभावित होकर सेठ हरिभाई देवकरण जी ने कराया था। यहाँ पर ब्रह्मचर्याश्रम संस्था दर्शनीय है।

पं. कन्हैयालाल ने 'कुन्थलगिरि क्षेत्र पूजा-काव्य' की रचना कर अपना भक्तिभाव व्यक्त किया है। इसमें तेईस पद्य चार प्रकार के छन्दों में विरचित हैं। कविता अलंकार एवं भक्तिरस से परिपूर्ण है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का निर्देश—

क्षेत्र परिचय एवं स्थापना

दोहा

> तीरथ परमपवित्र अति, कुन्थ शैल शुभ थान।
> जँहतें मुनि शिवधाम गये, पूजों थिरमन आन॥

भक्ति से शक्ति का विकास

दोहा

> तुम गुण अगम अपार गुरु, मैं थुति करं हो बाल।
> पै सहाय तुम भक्तिवश, वरणों तव गुणमाल॥

कुलभूषण-देशभूषण मुनिराज परिचय

पद्धरी छन्द

> कुल कौंच राय सुत अतिगंभीर, कुल भूषण देशभूषण दो वीर।
> लख राजऋद्धि को अति असार, वय बालमाँहि तप कठिन धार॥

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 733-746

पूजा सुर नर निरवार कीन, गत ऊँथ तनी फल सुफल लीन।
भव भरमत हम बहु दुःख पाय, पूजैं तुम चरणा चित्तलाय॥

कवि की प्रार्थना—

अरजी सुन लीजे महर आप, नाशो मेरा भव भ्रमण ताप।
विनवै अधिकी क्या 'कनई लाल', दुख मेट सकल सुख देव हाल॥

घत्ता छन्द

तुम दुख हरता, जग सुख करता, भरता शिवांतेय, मोक्षमती।
मैं शरणे आयो, तुम गुण गायो, उमगायो ज्यों हती मती॥[1]

गजपन्था क्षेत्र पूजा-काव्य

क्षेत्र परिचय

बम्बई प्रान्त में गजपन्थ नाम का एक प्राचीन तीर्थक्षेत्र है। वह नासिक के बाहरी भाग में शोभायमान हो रहा है। प्राचीन नासिक का उल्लेख भगवती आराधना ग्रन्थ में किया गया है। एवं गजपन्थ का उल्लेख पूज्यपाद आचार्य ने स्वरचित संस्कृत निर्वाण भक्ति में किया है और संस्कृत भाषा के असग महाकवि द्वारा रचित 'शान्तिनाथ चरित्र' में भी गजपन्थ का उल्लेख उपलब्ध होता है। पर वह प्राचीन नासिक यही वर्तमान नासिक है वह विषय विचारणीय है।

गजपन्थ पर्वत 400 फीट उन्नत, लघुकाय एवं रमणीय है। इस पर्वत से बलभद्र आदि सैकड़ों मुनिराज आत्म-साधना कर मुक्तिपद को प्राप्त हुए हैं। इस क्षेत्र की धर्मशाला के नवीन भवन में मान-स्तम्भ सहित जिनमन्दिर हैं। इस मान-स्तम्भ को महिलारत्न ब्र. कंकुबाई जी ने निर्मित कराया था। यहाँ से तीन किलोमीटर दूर गजपन्थ पर्वत है। पर्वत के निकट बंजीबाबा का एक सुन्दर मन्दिर और एक उदासीनाश्रम संचालित है। यहीं पर ही वाटिका में भट्टारक क्षेमेन्द्र कीर्ति की समाधि बनी हुई है। इसी स्थान से ही पर्वत पर चढ़ने का मार्ग प्रारम्भ होता है। इस पर्वत पर 325 सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं।

प्रथम ही दो नवीन मनोहर मन्दिर मिलते हैं। एक मन्दिर में श्री पार्श्वनाथ भगवान् की विशालकाय प्रतिमा दर्शनीय है। इन मन्दिरों के पार्श्व में दो प्राचीन गुफा-मन्दिर प्राचीनता को प्रकट करते हैं। ये पहाड़ काटकर बनाये गये हैं। इनमें बारहवीं शती से सोलहवीं शती तक की प्रतिमाएँ और शिल्पकला दर्शनीय है। किन्तु जीर्णोद्धार के कारण मन्दिरों की प्राचीनता नष्ट हो गयी है। प्रतिमाओं पर किये गये

1. बृहत्महावीर कीर्तन, पृ. 736-738

लेप के कारण उनके अभिलेख भी छिप गये हैं। यहाँ से चार मील दूर नासिक नगर है जो हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है यहाँ एक जैन मन्दिर है।

कवि किशोरीलाल ने 'गजपन्थक्षेत्र पूजा-काव्य' की रचना कर तीर्थक्षेत्र के प्रति अपनी भक्ति का परिचय दिया है। इस काव्य में 49 पद्य छह प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। जिनमें अलंकारों और गुणों के कीर्तन से भक्तिरस की गंगा गजपन्थगिरि से प्रवाहित होती है। कुछ मनोहर पद्यों का परिचय इस प्रकार है–

तीर्थक्षेत्र की स्थापना

श्री गजपन्थ शिखर जग में सुखदाय जी
आठ कोडि मुनिराज परमपद पायजी।
और गये बलभद्र सात शिवधाम जी
आवाहन विधि करूँ विविध धर ध्यान जी॥

तीर्थ का महत्त्व

गजपन्थ गिरिवर शिखर उन्नत, दरश लख सब अघ हरै
नरनारि जे तिन करत वन्दन, तिन सुजश जग विस्तरै।
इस थान ते मुनि आठ कोडि परमपद को पाय कें
तिनकों अर्घ जयमाला गाऊँ, सुनो चित हुलसाय कै॥

दण्डकवन, गंगानदी, नासिक तीर्थ का परिचय

यहाँ दण्डकवन की भूमिसन्त, तसु निकट शहर नासिक वसन्त।
तहाँ गंगानाम नदी पुनीत, वैष्णव जन ठाने धर्मतीर्थ॥
पुनि त्रिम्बकसीतागुफा कीन, गजपन्थ धाम जग में प्रचीन।
भट्टारक जी हिमकीर्ति आय, वन्दे गजपन्थाशिखर जाय॥

मांगी तुंगीगिरि-क्षेत्र पूजा-काव्य

मनमाड़ जंक्शन से क़रीब 90 किलोमीटर की दूरी पर मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र बम्बई प्रान्त में शोभायमान है। बस एक मात्र साधन इस क्षेत्र को प्राप्त करने का है। श्री रामचन्द्र जी, हनुमान, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील, महानील आदि 99 करोड़ मुनिराज तपस्या करते हुए इस पर्वत से मुक्ति को प्राप्त हुए। जंगल में इस क्षेत्र की शोभा प्राकृतिक दृष्टि से अति रमणीय है। चारों ओर फैली हुई पर्वतमालाओं के मध्य में मांगी और तुंगी पर्वत निराली शान से खड़े हुए हैं। पर्वत की चोटियाँ लिंगाकार दूर से दिखाई देती हैं। उन लिंगाकार चोटियों के चारों तरफ़ गुफ़ा मन्दिर हैं। उपत्यका में दो प्राचीन मन्दिर हैं। वर्तमान में एक मानस्तम्भ, इस क्षेत्र के मस्तक

के समान शोभित हो रहा है। विश्राम के लिए धर्मशालाएँ निर्मित हैं। मांगी पर्वत की चौड़ाई तीन मील है, सावधानी से इस पर्वत पर सभी आरोहण करना चाहिए। इस पर्वत पर चार गुफ़ा मन्दिर हैं जिनमें मूलनायक भद्रबाहुस्वामी की प्रतिमा है, अन्य प्रतिमाओं में कुछ भट्टारकों की भी प्रतिमाएँ हैं। सभी प्रतिमाएँ 11वीं तथा 12वीं शताब्दी की हैं। भद्रबाहु स्वामी की प्रतिमा होने से यह सिद्ध होता है कि उन्होंने इस पर्वत पर आध्यात्मिक तप किया था।

इस पर्वत से दो मील दूर तुंगी पर्वत है। संकीर्ण मार्ग में पर्वत की चढ़ाई कठिन साध्य है, सावधानी से चढ़ना चाहिए। इस मार्ग में श्रीकृष्ण जी के दाह-संस्कार का कुण्ड भी मिलता है। यदि वस्तुतः यहीं पर बलदेव जी ने अपने भाई नारायण का दाह-संस्कार किया था, तो इस पर्वत का प्राचीन नाम 'शृंगी' पर्वत होना चाहिए। कारण कि हरिवंश पुराण में उस पर्वत का यही नाम उल्लिखित है। तुंगी पर्वत पर तीन गुफ़ा मन्दिर के दर्शन होते हैं जिनमें प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। वहाँ पर मूलनायक श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा करीब चार फीट ऊँची पद्मासन में विराजमान है। मार्ग में उतरते हुए एक 'अद्भुत जी' नामक स्थान मिलता है जहाँ पर कई मनोज्ञ एवं प्राचीन प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। यहीं पर एक कुण्ड है।

क्षेत्रीय पूजा-काव्य

इस तीर्थ क्षेत्र के पूजा-काव्य की रचना कवि गोपालदास द्वारा की गयी है। इसमें चौबीस काव्य (पद्य) पाँच प्रकार के छन्दों में रचे गये हैं। इन पद्यों में अलंकार पूर्ण गुणों का वर्णन होने से भक्ति रस की धारा प्रवाहित होती है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का प्रदर्शन—

गंगाजल प्रासुक भर झारी, तुम चरणा ढिग धारो,
परिग्रह त्रिसना लगी आदि की, ताको ह्वै निरवारो।
राम हनू सुग्रीव आदि जे, तुंगीगिर थित थाई,
कोटि निन्यानवे मुक्त गये मुनि, पूजों मन वच काई॥

तिन सिद्धनि को मैं नमों सिद्धि के काजा
शिवथल में दे मोहि वास त्रिजग के राजा।
नावत नित माथ 'गुपाल' तुम्हें बहु भारी,
भव भव में सेवा चरण, मिले मोहि थारी॥

तुम गुणमाला परमविशाला, जे पहरें नित भव्य गले
नाशै अघ जाला, है सुखहाला, नित प्रति मंगल होत भले॥[1]

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 743-746

श्री पावागढ़ (पावागिरि) पूजा-काव्य

क्षेत्र-परिचय—बम्बई प्रान्त में पावागढ़ सिद्ध क्षेत्र ऐतिहासिक महत्त्व का है। यहाँ तालाब के किनारे दो जिनमन्दिर हैं। उनमें एक विशाल मन्दिर है जिसके प्राकार की दीवार पर कतिपय मनोज्ञ दि. जैन प्रतिमाएँ, चतुर शिल्पी द्वारा निर्मित एवं प्राचीन हैं। इस मन्दिर के सामने लवकुमार, कुशकुमार महामुनियों की चरणपादुकाएँ सं. 1337 के समय एक गुमटी में बनी हुई हैं। उनके सम्मुख एक दूसरा मन्दिर है। इस मन्दिर के आगे सीढ़ियों की दोनों तरफ़ दि. जैन प्रतिमाएँ जड़ित हैं। निकट में पर्वत की उत्तुंग चोटी है। यहीं पर लव-कुश का निर्वाण धाम है।

क्षेत्रीय पूजा

पावागढ़ पूजा-काव्य की रचना 'सेवक' कवि ने सं. 1967 में करके उक्त तीर्थ क्षेत्र के प्रति अपना भक्तिभाव प्रदर्शित किया है। इसमें सत्रह पद्य तीन प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। उदाहरणार्थ कतिपय पद्यों का दिग्दर्शन

फल प्रासुक लाई, भविजन भाई, मिष्ट सुहाई भेंट करूं,
शिवपद की आशा, मन हुल्लासा, करहु हुलासा मोक्ष करूं।
पावागिरि वन्दों, मन आनन्दों भव दुखखन्दो चितधारी,
मुनि पाँच जु कोडं, भव दुख छोडं, शिवमुख जोडं सुखभारी॥

कर्मकाट जे मुक्त पधारे, सब सिद्धन में जोई,
सुखसत्ता अरु बोधज्ञानमय, राजत सब सुख होई
दर्श अनन्तो ज्ञान अनन्तो, देखें जाने सोई,
समय एक में सब ही झलके, लोकालोक जु दोई॥

'धर्मचन्द्र' श्रावक की विनती, धर्म बड़ो हितदायी,
जो कोई भविजन पूजन गावें, तन मन प्रीति लगायी।
सो तैसो फल जल्दी पावे, पुण्य बढ़े दुख जायी,
'सेवक' को सुख जल्दी दीजो, सम्यक् ज्ञान जगायी॥[1]

शत्रुंजय तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य

क्षेत्र-परिचय—महाराष्ट्र प्रान्त में पालीताना स्टेशन से करीब दो कीलोमीटर दूर शत्रुंजय तीर्थ इस कारण से प्रसिद्ध है कि यहाँ से युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम ये तीन मुनिराज, द्राविड़देश के राजा मुनिदीक्षा प्राप्त कर तथा आठ करोड़ मुनिराज मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।

1. बृहत् महावीर कीर्तन पृ. 746-748

मन्दिर के परकोटा के पास पाण्डव मुनिराजों की कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। परकोटा के अन्दर प्रायः 3500 श्वे. मन्दिर अपूर्व शिल्पकला से परिपूर्ण दर्शनीय हैं। आदिनाथ, सम्राट कुमार पाल, विमलशाह और चतुर्मुखमन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। रतनपोल के पास एक विशाल दि. जैन मन्दिर फाटक के अन्दर है।

क्षेत्रीय पूजा-काव्य

इस तीर्थक्षेत्र की पूजा के काव्य का निर्माण भगोतीलाल कवि ने वि. सं. 1949 में, पौषकृष्ण द्वादशी तिथि शुक्रवार को किया था। इसमें सत्ताईस काव्य पाँच प्रकार के छन्दों में रचित हैं। उदाहरणार्थ—

कतिपय काव्यों का प्रदर्शन—

श्री शत्रुंजय शिखर अनूप, पाण्डव तीन बड़े शुभ भूप।
आठ कोटि मुनि मुक्ति प्रधान, तिनके चरण नमूं धर ध्यान॥
तहाँ जिनेश्वर बहुत स्वरूप, शान्तिनाथ शुभ मूल अनूप।
तिनके चरण नमूँ तिहुँकाल, तिष्ठ तिष्ठ तुम दीन दयाल॥

जय 'धर्मचन्द्र' मुनीम सोय, मो अल्पबुद्धि सों मेल होय।
ये धर्मीजन हैं बहुत जोय, सो कही उन्होंने मोहि सोय॥
तुम शत्रुंजय पूजा बनाय, तो बाँचे भविजन प्रीति लाय।
जय लाल 'भगोतीलाल' मोय, तिन रची पाठ पूजन जु सोय॥
जय संवत्सर गुनईश जोय, अरु ता ऊपर गुनचास होय।
जय पौष सुदी द्वादश जु होय, अरु वार शुक्र जानों जु सोय॥[1]

उत्तरप्रदेशीय हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य

क्षेत्र-परिचय—हस्तिनापुर पश्चिमी उत्तरप्रदेश के मेरठ ज़िला में ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अत्यन्त प्राचीन तीर्थक्षेत्र प्रसिद्ध है। यहाँ पर सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ, सत्रहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथ और अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ के गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक एवं केवलज्ञानकल्याणक, इस प्रकार कुल बारह कल्याणक-महोत्सव, देवों तथा मानवों द्वारा मनाये गये। अतः तीर्थंकरों की कल्याणकभूमि होने से यह नगर इतिहासातीत काल से तीर्थक्षेत्र के रूप में मान्य रहा है।

इसके अतिरिक्त भगवान आदिनाथ का धर्मविहार जिन देशों में हुआ, उनमें

---

1. बृहत्महावीर कीर्तन, पृ. 748-751

कुरुदेश भी था और हस्तिनापुर कुरुदेश की राजधानी थी, अतः यहाँ अनेक बार भगवान आदिनाथ का समवसरण आया था। उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ का भी समवसरण यहाँ पर आया था। यहाँ तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ दीक्षा के बाद पधारे और वरदत्त के गृह पर पारणा की थी। उनका समवसरण भी यहाँ आया। यहाँ का राजा स्वयंभू, भगवान पार्श्वनाथ को केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) होने पर अहिच्छत्र गया था और उनका उपदेश सुनकर उसने मुनि दीक्षा धारण की थी। वही भगवान का प्रथम गणधर हुआ। उसकी पुत्री प्रभावती भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में प्रधान आर्यिका हुई। पुराण शास्त्रों में भगवान महावीर के पावनविहार और समवसरण का जो प्रामाणिक विवरण मिलता है उनमें कुरुदेश या कुरुजांगल देश का भी वर्णन है।

आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण में स्पष्ट कहा है कि कुरुप्रदेश में भगवान् महावीर की वाणी ने जन-जन के मानस में धार्मिकता का प्रसार कर दिया था।

यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाग लोग जैनधर्म के अनुयायी रहे हैं।[1]

हस्तिनापुर क्षेत्र पूजा-काव्य

क्षेत्रीय पूजा-काव्य

इस हस्तिनापुर क्षेत्र पूजा-काव्य के रचयिता स्व. पं. मंगलसेन जी विशारद हैं। इस पूजा-काव्य में पैंतीस काव्य चार प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। उदाहरणार्थ कुछ सरस काव्यों का दिग्दर्शन—

श्री हथनापुर सुविशाल, सब जन हितकारी
लिया आदिनाथ आहार, है यह महिमा भारी।
शान्ति कुन्थु अरनाथ, जनमे भवतारी
पूजें हृदय सुख आन, मिल है आनन्द भारी॥

जल शीतल करत स्वभाव, कलशा भर लायो
हेमाचल से दी धार, आनन्द मन लायो।
हथनापुर है सुखकार, सब जन मन भायो
पूजत हो पाप कि हार, प्रभु चरणन आयो॥

नृप सोम श्रेयांस के द्वार, आये आदिनाथ स्वामी।
दियो इक्षुरस का आहार, तब भक्ति भाव नामी।

---

1. भारत के दि. जैन तीर्थ, भाग-1 : बलभद्र जैन, पृ. 25

श्री विष्णुकुमार सुखदाय, लघु गुरु तन पायो,
मुनिगण उपसर्ग नशाय, तब मोक्षपुरी पायो॥

रचयिता कवि का भक्ति भाव (दोहा छन्द)

जैसा ग्रन्थों में कहा, 'मंगल' रचियो पाठ।
जाप सहितपूजा करै, सुख सम्पत्ति दातार॥
तपोभूमि यह सार जो, भक्तिभाव भर भायो।
स्वर्गादिक दातार, 'मंगल' कर निधि पायो॥[1]

चौरासी (मथुरा) तीर्थक्षेत्र पूजा

तीर्थक्षेत्र का परिचय—मथुरा प्राचीन काल से तीर्थ क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। प्राकृत निर्वाण-काण्ड में एक गाथा इसका प्रमाण है—

महुराए अहि छित्ते, वीरं पासं तहेव वन्दामि।
जम्बुमुणिंदो बन्दे, णिव्वुइं पत्तोवि जम्बुवणगहणे॥

अर्थात्—मैं मथुरा के महावीर भगवान् और अहिच्छत्र के पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना करता हूँ तथा गहन जम्बूवन में निर्वाण प्राप्त करनेवाले जम्बुमुनिराज की वन्दना करता हूँ।

चौरासी (मथुरा) क्षेत्र पूजा अथवा जम्बुस्वामी पूजा

चौरासी मथुरा क्षेत्र पूजा-काव्य की रचना के कवि अज्ञातनाम हैं। इस काव्य में कुल बत्तीस पद्य चार प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। अलंकारों की छटा से शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है। उदाहरणार्थ पद्यों का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

विद्युत माली देव चये जम्बू भये
कामदेव अवतार अन्त केवलि भये।
कलयुग करि पाख व्यंगनि शिववरी
आओ आओ स्वामि भक्ति मम उर धरी॥

ज्ञायक सम्यक् शुद्ध ज्ञान केवल मय सोहै
केवल दर्शन प्राप्ति अगुरुलघु सुख में जोहै।
इनमें नेक समाहि हर्ष भारी गुन तेरी
अव्याबाध निवारि अर्घ दे चरणन चेरो॥

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 795-797

जम्बूकुमार मुनिराज का विहार, तपस्या, मुक्तिप्राप्ति–

पुनि आरजखण्ड विहारकीन, जम्बूवन में थिति योग लीन।
सब करमन को क्षयकर मुनीश, शिववधू लही विसवास बीस॥
मथुरा तें पश्चिम कोस आध, छत्री महिमा है ह्वै अगाध।
ब्रजमण्डल में जे भव्य जीव, कार्तिक बदि रथ का द्वत सदीव॥

महिमा जम्बूस्वामी की, मौपे कही न जाय।
कै जाने केवलि मुनी, कै उनमाँहि समाय॥[1]

वैशाली (कुण्डग्राम, कुण्डलपुर, विदेह कुण्डपुर) तीर्थक्षेत्र पूजा

वैशाली-कुण्डग्राम की पौराणिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन साहित्य और इतिहास इस विषय में एक मत हैं कि भगवान् महावीर विदेह के अन्तर्गत कुण्डग्राम के उत्पन्न हुए थे। पौराणिक ग्रन्थों में भगवान महावीर का जन्मस्थान कुण्डपुर को ही माना गया है। उस कुण्डपुर की स्थिति स्पष्ट करने के लिए ही 'विदेहकुण्डपुर' अथवा 'विदेह जनपद स्थित कुण्डपुर' कहा गया है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कुण्डपुर, कुण्डलपुर या कुण्ड ग्राम इन नामों वाले एक से अधिक नगर होंगे, अतः सन्देह के निवारण के लिए तथा निश्चित नगर का कथन करने के लिए कुण्डपुर के साथ विदेह शब्द का प्रयोग करना आवश्यक समझा गया। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के ही साहित्य ग्रन्थों में इस विषय पर एक मान्यता पायी जाती है। इस विषय को सिद्ध करने के लिये दोनों ही साहित्य के कुछ प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

दिगम्बर साहित्य में कुण्डपुर–

आचार्य पूज्यपाद विरचित संस्कृत निर्वाण भक्ति में तीर्थंकर महावीर के जन्म का वर्णन किया गया है–

सिद्धार्थनृपति तनयो, भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां, सुस्वप्नान्सम्प्रदर्श्य विभुः।
चैत्रसित पक्ष फाल्गुनि, शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने॥
हस्ताश्रिते शशांके, चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशी दिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैः विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम्॥[2]

1. वृहत् महावीर कीर्तन, पृ. 780-728
2. श्री विमलभक्ति संग्रह : सं. क्षु. सन्मतिसागर, प्र.–स्याद्वाद विमलज्ञानपीठ सोनागिर (दतिया), प्रथम संस्करण, पृ. 106, निर्वाणभक्ति श्लोक-4, 5, 6

तात्पर्य—सिद्धार्थ राजा के पुत्र (महावीर) को भारतदेश के विदेह कुण्डपुर में सुन्दर सोलह स्वप्नों को देखकर देवी प्रियकारिणी (त्रिशला) ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को फाल्गुनि नक्षत्र में अपने उच्चस्थान वाले सौम्यग्रह और शुभलग्न में जन्म दिया तथा चतुर्दशी को पूर्वाह्न में इन्द्रों ने रत्नघटों से वीर का अभिषेक किया।

श्वेताम्बर साहित्य में विदेह कुण्डपुर—

ज्ञातमस्तीह भरते महीमण्डलमण्डनम्।
क्षत्रिय कुण्डग्रामाख्यं, पुरं मत्पुरसोदरम्॥[1]

भावार्थ—इस भारत में पृथिवीमण्डल का आभूषण रूप तीर्थक्षेत्र के समान प्रसिद्ध क्षत्रिय कुण्डग्राम नामवाला नगर है।

श्वेताम्बर साहित्य में कुण्डग्राम, क्षत्रिय कुण्ड, उत्तरक्षत्रिय कुण्डपुर, कुण्डपुर सन्निवेश, कुण्डग्राम नगर, क्षत्रिय कुण्डग्राम आदि अनेक नाम भगवान महावीर के जन्मनगर विषयक प्राप्त होते हैं पर वे सब नाम एक ही नगर के महावीर के जन्म स्थान हैं।

महाराज सिद्धार्थ और महावीर क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे, उनके वंश का नाम ज्ञातृवंश और गोत्र काश्यप था। महारानी त्रिशला के पितृपक्ष का गोत्र वासिष्ठ था। ज्ञातृवंश के होने के कारण महावीर को नातपुत्त (ज्ञातृपुत्र) भी कहा जाता था।

महाराज सिद्धार्थ कुण्डपुर के राजा थे। इस विषय में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराएँ सहमत हैं। उनके महल का नाम नन्द्यावर्त, जो कि सात खण्डों से विभूषित था। इस प्रकार के वैभव सम्पन्न परिवार में तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ। यह कुण्डपुर नगर वैशाली संघ या वज्जिसंघ में सम्मिलित था।

कुण्डलपुर तीर्थ-पूजन (महावीर जयन्ती-पूजा)

कुण्डलपुर तीर्थ पूजा-काव्य अथवा महावीर जयन्ती पूजा-काव्य की रचना कविवर राजमल पवैया ने की है। इसमें 34 पद्य चार प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। इसमें उपमा, रूपक एवं स्वभावोक्ति अलंकारों के द्वारा शान्तरस की शीतल वर्षा की गयी है। भाषा में प्रसाद गुण झलकता है। इस काव्य के शब्दों के पठनमात्र से मानस में भाव झलकने लगता है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों के उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं—

जन्मोत्सव का वर्णन—

महावीर की जन्मजयन्ती का दिन जग में है विख्यात।
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को हुआ विश्व में नवल प्रभात।

1. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित।

कुण्डलपुर वैशाली नृप सिद्धार्थराजगृह जन्म लिया।
माता त्रिशला धन्य हो गयी वर्धमानरवि उदय हुआ।

महावीर का अर्चन—

दुखी जगत के जीवों का प्रभु के द्वारा उपकार हुआ,
निजस्वभाव जप मोक्ष गये, प्रभु सिद्ध स्वपद साकार हुआ।
मैं भी प्रभु के जन्म-महोत्सव पर पुलकित हो गुण गाऊँ
अष्ट द्रव्य से प्रभु चरणों की पूजन करके हर्षाऊँ॥

मन्दारगिरितीर्थक्षेत्र और तत्सम्बन्धी पूजा-काव्य

मन्दारगिरितीर्थ परिचय—मन्दारगिरि तीर्थ क्षेत्र बिहार प्रदेश के भागलपुर जिले में भागलपुर से 49 कि.मी. दूर है।

मन्दारगिरि तीर्थ पूजा

मन्दारगिरि तीर्थक्षेत्र के पूजा-काव्य की रचना कवि मुन्नालाल द्वारा की गयी है। इस काव्य में चालीस पद्यों की रचना छह प्रकार के छन्दों में की गयी है। इसमें उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से शान्तरस की वर्षा आनन्ददायिनी है। प्रत्येक पद्य में प्रसाद गुण सरल हृदय को तरल कर देता है। पूजा-काव्य के कुछ सरस पद्य हैं—

रंग देश के मध्य है, चम्पापुर सुख खानी।
राय तहाँ वसु पूज्य है, विजया देवी रानी॥

मोक्ष गये मन्दार शैल के शिखर तें
पर्वत चम्पा पास सु दीखत दूर तें।
सो पंचकल्याणक भूमि पूजता चाव सों
वासुपूज्य जिनराज तिष्ठ इत आवसों॥

पदम द्रह को नीर उज्ज्वल, कनक भाजन में भरों
मम जन्म मृत्यु जरा निवारन, पूज प्रभुपद की करों।
श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र ने, गर्भ जन्म धर चम्पापुरी
श्रीतपस ज्ञान अरण्य शैल-मन्दार तें शिवतिय वरी॥

राजगृहीतीर्थक्षेत्र

राजगृहीतीर्थ का इतिहास एवं परिचय

भारत के बिहार प्रान्त में राजगृहीतीर्थ प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। यहाँ

पर बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ के गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक और केवलज्ञान महोत्सव हुए हैं। राजगृह नगर में श्रावणकृष्ण द्वितीया के शुभ समय में श्री मुनि सुव्रत-तीर्थंकर का गर्भकल्याणक महोत्सव हुआ।

जैन साहित्य तथा अन्य साहित्य में राजगृह के अनेक नाम प्राप्त होते हैं, जैसे गिरिव्रज, क्षितिप्रतिष्ठ, वसुमती, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर, राजगृह और पंचशैल। जैन दर्शन के महान् ग्रन्थ षट्खण्डागम का उल्लेख—

> पंचसैलपुरे रम्मे, विउले पव्वदुत्तमे।
> णाणादुम समाइण्णे, देव-दाणव वंदिदे॥
> महावीरेणत्थो कहिओ भवियलोयस्स।[1]

तात्पर्य—पंचशैलपुर (राजगृह) में रमणीय, नाना प्रकार के वृक्षों से व्याप्त, देव और दानवों से वन्दित एवं सर्व पर्वतों में उत्तम—ऐसे विपुलाचल पर्वत के ऊपर भगवान् महावीर ने भव्य जीवों को उपदेश दिया। इस ग्रन्थ में पंच शैलपुर के पंच पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं—(1) ऋषिगिरि, (2) वैभार, (3) विपुलगिरि, (4) छिन्नगिरि, (5) पाण्डुगिरि।

> सुरखेयरमणहरणे, गुणणामे पंचसेलणयरम्मि।
> विउलम्मि पव्वदवरे, वीरजिणो अट्ठकत्तारो॥[2]

भावार्थ—देव तथा विद्याधरों के मन को हरण करनेवाला, सार्थक नाम युक्त पंचशैल नगर में स्थित श्रेष्ठ विपुलगिरि पर भगवान महावीर की दिव्य देशना प्रारम्भ हुई। वास्तव में राजगृह को 'पंचशैलपुर' इस सार्थकवाला कहा जाता है। इस ग्रन्थ में पाँच नाम इस प्रकार हैं—(1) ऋषिशैल, (2) वैभार, (3) विपुलगिरि, (4) छिन्नगिरि, (5) पाण्डुगिरि।

महाभारत (सभापर्व-21) पंचशैलों के नाम इस प्रकार हैं—(1) वैभार, (2) वराह, (3) वृषभगिरि, (4) ऋषिगिरि, (5) चैत्यकगिरि।

बौद्धदर्शन के पालिग्रन्थों में पंचशैलों के नाम—(1) गिज्झकूट, (2) इसिगिलि, (3) वैभार, (4) वेपुल्ल, (5) पाण्डवगिरि।

सोनभण्डार गुफ़ा

इस पर्वत के दक्षिणी ढलान पर दो गुफ़ाएँ हैं। एक पश्चिम की ओर और द्वितीय पूर्व की ओर। पश्चिमी गुफ़ा में 6 फुट का द्वार है, एक गवाक्ष (खिड़की)

---

1. पुष्पदन्त-भूतबलिप्रणीत षट्खण्डागम : सत्प्ररूपणा-1, सं. डॉ. हीरालाल, प्र.—जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर-2, पृ. 62, सन् 1973
2. यतिवृषभाचार्य : तिलोयपण्णत्ति 1 : सं. डॉ. हीरालाल जैन, प्र.—जैन स.सं.सं. सोलापुर, पृ. 1/66-67, सन् 1951

है जिसको सरकार ने बनवाया है। इसकी दीवारें छह फुट उन्नत हैं, छत झुकावदार है। इस गुफा की दीवारों पर लेख भी किन्तु वे प्रायः अस्पष्ट और अपाठ्य हैं। द्वार के वाम ओर की दीवार पर एक शिलालेख की केवल दो पंक्तियाँ पुरातत्त्ववेत्ताओं ने पढ़ पायी हैं जो इस प्रकार हैं—

निर्वाणलाभाय तपस्वियोग्ये शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नं मुनिवैरदेवः विमुक्तयेऽकारयदूर्ध्वतेजः॥

राजगृही तीर्थ पूजा-काव्य

इस विशाल ऐतिहासिक सर्वप्रिय राजगृहीतीर्थ के पूजा-काव्य का सृजन बीसवीं शती के कविवर मुन्नालाल ने किया है एवं तीर्थ के महत्त्व को दर्शाया है। इस पूजाकाव्य में 52 पद्य नव प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। कवि ने अलंकारों की कान्ति से पूजा-काव्य रूप शरीर को मनोहर बना दिया है। इस काव्य का भक्तिरस हृदय को आप्लावित कर देता है। कुछ विशिष्ट उद्धरण-

मगधदेश की राजधानि सोहे सही
राजगृही विख्यात पुरातन है मही।
तिस नगरी के पास महागिरि पाँच हैं
अति उत्तंग तिन शिखर सुशोभ लहात हैं॥
विपुलाचल रतना उदयागिरि जानिए
सोनागिरि व्यवहार सुगिरि शुभ नाम ये।
तिनके ऊपर मन्दिर परम विशाल जी
एकोनविंशति वन, सु पूजहु 'लाल' जी॥

प्राचीन विहार-बंगाल उत्कल प्रदेश के दिगम्बर जैन तीर्थों की सूची

वज्जि-विदेह जनपद : (1) वैशाली—कुण्डग्राम (कुण्डलपुर), (2) मिथिलापुरी।
अंग जनपद : (1) चम्पापुरी, (2) मन्दारगिरि।
मगध जनपद : (1) राजगृही, (2) पावापुरी, (3) गुणावा, (4) पाटलिपुत्र।
भंगि जनपद : (1) सम्मेदशिखर, (2) भद्रिकापुरी-कुलुहा पहाड़।
बंग जनपद : (1) कलकत्ता—ऐतिहासिक स्थान।
कलिंग जनपद : (1) कटक, (2) भुवनेश्वर, (3) खण्डगिरि-उदयगिरि, (4) पुरी।
दक्षिणकोशल देश : (1) कोटिशिला-सिद्धशिला।

ग्वालियर (गोपाचल) का ऐतिहासिक परिचय

प्राचीन काल में ग्वालियर का महान् राजनीतिक महत्त्व रहा है। अनेक राजनीतिक घटनाएँ यहाँ घटित हुई हैं। दक्षिण भारत का द्वार होने के कारण इसको

विशेष राजनीतिक महत्त्व प्राप्त हुआ। जैन कला, इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से इसका गौरवपूर्ण स्थान है।

गोपाचल दुर्ग

प्राचीन काल में ग्वालियर के अनेक नाम जैन साहित्य में उपलब्ध होते हैं, जैसे गोपाद्रि, गोपगिरि, गोपाचल, गोपालाचल, गोवागिरि, गोवालगिरि, गोपालगिरि, गोपालचलहु, ग्वालियर ये सब नाम ग्वालियर के दुर्ग के कारण प्रसिद्ध हैं। इस दुर्ग का एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है। इतिहासज्ञों का कथन है कि यह दुर्ग प्रायः ईसा से 3000 वर्ष पूर्व का है। कुछ पुरातत्त्वज्ञ इसे ईसा की तृतीय शताब्दी में निर्मित हुआ मानते हैं। इस दुर्ग की गणना भारत के प्राचीन दुर्गों में की जाती है।

भट्टारक परम्परा

गोपाचल पीठ की भट्टारक परम्परा के भट्टारकों के उपदेश एवं उनके प्रतिष्ठाचार्यत्व के माध्यम से इस दुर्ग के मूर्ति समूह की प्रतिष्ठा योजना सफल हुई। यहाँ के मूर्तिलेखों में अत्रत्य भट्टारक परम्परा इस प्रकार अपना महत्त्व रखती है—

"श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये भट्टारक श्रीगणकीर्ति देवास्तत्पट्टे श्रीयशकीर्ति देवास्तत्पट्टे श्रीमलयकीर्ति देवास्ततो भट्टारक गुणभद्रदेवः"[1]

इनमें भट्टारक गुणकीर्ति महाराज, वीरमदेव, गणपतिदेव और डूँगरसिंह के शासनकाल में थे। इन भट्टारक जी के प्रति इन नरेशों की, विशेषतः डूँगरसिंह की अत्यन्त भक्ति थी। इन भट्टारक जी के सम्पर्क और उपदेशों के कारण ही डूँगरसिंह की रुचि जैनधर्म की ओर हो गयी। इन ही की प्रेरणा और प्रभाव के कारण डूँगरसिंह के शासन काल में गोपाचल पर अनेक मूर्तियों का उत्खनन हुआ। इसी प्रकार कीर्तिसिंह के शासन काल में भगवान गुणभद्र के उपदेश से अनेक मूर्तियों का निर्माण एवं प्रतिष्ठा हुई। उरवाही द्वार के मूर्ति समूह में चन्द्रप्रभ की मूर्ति की प्रतिष्ठा इन्हीं गुणभद्र के उपदेश से हुई थी। अन्य भी अनेक मूर्तियाँ इनकी प्रेरणा से प्रतिष्ठित की गयीं।

भट्टारक महीचन्द्र ने एक पत्थर की बावड़ी के गुफ़ा मन्दिर की प्रतिष्ठा करायी थी। भट्टारक सिंह कीर्ति ने बावड़ी के मूर्तिसमूह में से पार्श्वनाथ प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी। महाराज गणपति सिंह के शासन काल में मूलसंघ नन्दी तटगच्छ कुन्दकुन्द आम्नाय के भट्टारक शुभचन्द्रदेव के मण्डलाचार्य पण्डित भगवत के पुत्र खेमा और धर्मपत्नी खेमादे ने धातुनिर्मित चौबीसी मूर्ति की, सं. 1479 वैशाख शुक्ला तृतीया

---

1. भट्टान्-पण्डितान्, अहिंसादिसिद्धान्त-निरीक्षणार्थं, आरयति-प्रेरयति इति भट्टारकः : यथा अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु। सामान्यत्यागी।

शुक्रवार-शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठा करायी थी। यह चौबीसी मूर्ति वर्तमान में नया मन्दिर लश्कर में विराजमान है। इस प्रकार भट्टारकों के उपदेश से ही उनके प्रतिष्ठाचार्यत्व के द्वारा गोपाचल की समस्त मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

मूर्तिलेखों का परिचय

अनेक मूर्तिलेखों में प्रतिष्ठाचार्य के रूप में पण्डितवर्य महाकवि रइधू का नाम प्रसिद्ध है। अपभ्रंश भाषा के मूर्धन्य कवियों में रइधू महाकवि का एक विशिष्ट स्थान है। इनका कुछ परिचय इनके स्वयं रचित साहित्य से ही उपलब्ध होता है। इनका समय विक्रम सं. 1450 से 1546 तक निश्चित किया गया है। वे संघाधिप देवराय के पौत्र और हरिसिंह के पुत्र थे। महाकवि रइधू के व्यक्तित्व से इनकी माता विजयश्री ने अपने जीवन को सार्थक माना था। वे पद्मावती पुरवाल समाज के आभूषण थे। आपके निवासस्थान और गृहस्थ जीवन के विषय में कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं होता। बलभद्रचरित (पद्मपुराण) की अन्तिम प्रशस्ति से यह अवश्य ज्ञात होता है कि उनके दो भाई थे -(1) बाहोल, (2) माहणसिंह। इसी ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति के अनुसार महाकवि रइधू के गुरु का नाम आचार्य ब्रह्म श्रीपाल था जो भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे। सामान्य रूप से सभी भट्टारकों को वे अपना गुरु मानते थे।

कविवर ग्वालियर में नेमिनाथ और वर्धमान जिनालय में रहकर साहित्य-सृजन करते थे। वे अपनी दिव्य प्रतिभा, प्रखर पाण्डित्य, उच्च कोटि की रचना एवं सरल स्वभाव के कारण अल्प समय में ही जन-जन के लोकप्रिय कवि बन गये थे। उन दिनों गोपाचलदुर्ग के शासक महाराज डूँगरसिंह विद्या-कला के प्रेमी एवं जैनधर्म के परम श्रद्धालु थे। उनके निकट भी इस महान् लोकप्रिय कवि की गौरवगाथा श्रवणगोचर हुई। उन्होंने कविवर को आदर के साथ राजदरबार में आमन्त्रित किया। महाराज, कविवर के व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए और कविवर के प्रति, दुर्ग में रहकर ही अपनी साहित्य-साधना का केन्द्र नियत करने हेतु अनुरोध किया। कविवर ने उसको स्वीकार कर लिया और दुर्ग में रहकर साहित्य-सृजन तथा प्रतिष्ठा का कार्य करने लगे। यह कार्यक्रम महाराज डूँगरसिंह के पश्चात् उनके पुत्र महाराज कीर्ति सिंह के शासनकाल में भी चलता रहा।

कविवर ने 30 से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमें से 24 ग्रन्थ उपलब्ध हो गये हैं। उनकी भाषा प्रायः सन्धिकालीन अपभ्रंश है। किन्तु कुछ ग्रन्थ प्राकृत, हिन्दी एवं संस्कृत में भी उपलब्ध होते हैं।

महाकवि रइधू के व्यक्तित्व की एक द्वितीय कला प्रतिष्ठाचार्यत्व की विकसित थी। उन्होंने अपने जीवन में ग्वालियर दुर्ग में तथा अन्य नगरों में भी अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा को सम्पन्न कराया था। यह वृत्त कविवर रचित ग्रन्थों की प्रशस्तियों

से तथा मूर्तिलेखों से ज्ञात होता है। उरवाही द्वार के मूर्ति समूह में भगवान् आदिनाथ की 57 फीट ऊँची मूर्ति चन्द्रप्रभ भगवान् की विशालकाय मूर्ति के लेखों में प्रतिष्ठाचार्य रइधू द्वारा प्रतिष्ठित होना दर्शाया है। 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' तथा 'सम्मइजिणचरिउ' आदि स्वरचित काव्यों में कविवर ने अनेक मूर्ति-निर्माताओं का और प्रतिष्ठाकारकों का उल्लेख किया है। एक अभिलेख के अनुसार प्रतिष्ठाचार्य रइधू ने चन्द्रपाट नगर (वर्तमान चन्द्रवार फिरोजाबाद के निकट) में चौहानवंशी नरेश रामचन्द्र और युवराज तापचन्द्र के शासनकाल में अग्रवाल वंशी संघाधिपति गजाधर और भोला नामक प्रतिष्ठाकारकों के अनुरोध पर तीर्थंकर शान्तिनाथ के बिम्ब की प्रतिष्ठा करायी थी।

कविवर के समय में ग्वालियर दुर्ग में दि. जैन मूर्तियों का अत्यधिक निर्माण हुआ था। इस विषय को कविवर ने स्वयं रचित 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व' ग्रन्थ में प्रमाणित किया है–

"अगणिय अण्ण पडिम को लक्खइ। सुरगुरु ताह गणण जइ अक्खइ।"

अर्थात्--गोपाचल दुर्ग में अगणित जैन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा हुई है। उनकी गणना करना असम्भव नहीं है।

कविवर की विद्वत्ता, राजसम्मान और लोकप्रियता को देखकर यह सिद्ध होता है कि ग्वालियर दुर्ग की अधिकांश मूर्तियों की प्रतिष्ठा कविवर के द्वारा सम्पन्न हुई है।

मूर्ति-निर्माता और प्रतिष्ठाकारक

कविवर रइधू रचित ग्रन्थों में कुछ ऐसे व्यक्तियों के उल्लेख आये हैं जिन्होंने मूर्तियों का निर्माण और उनकी प्रतिष्ठा गोपाचल दुर्ग पर करायी है। तोमर वंश के शासनकाल में गोपाचल में जैनधर्म और संस्कृति से सम्बन्धित विविध समायोजन हुए। मूर्तिलेखों तथा ग्रन्थ-प्रशस्तियों से उस युग के शासकों के धर्मप्रेम का प्रशस्त परिचय प्राप्त होता है।

गोपाचल तीर्थ का पूजा-काव्य

गोपाचल तीर्थ का ऐतिहासिक परिचय उपर्युक्त प्रकार है। उसके पूजा-काव्य की रचना ग्वालियर-लश्कर निवासी कवि श्यामलाल जैन द्वारा की गयी है। इस पूजा-काव्य में 33 पद्य पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं।

इस पूजा-काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों की वर्षा से शान्तरस का प्रवाह उमड़ आया है। कविता के अध्ययन से प्रतीति होती है कि कवि के मानस-पटल में तीर्थ के प्रति भक्तिरस का अपूर्व

चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ पूजा-काव्य के कुछ महत्त्वपूर्ण पद्यों का प्रदर्शन किया जाता है—

हे पारस मेरे हृदय बसो, गोपाचल मुक्ती द्वारा है
हे करुणासागर चिद्घन, सन्निकट करो भवपार है।
श्री तीर्थराज गोपाचल को, स्थापन निज में करता हूँ,
निज आत्मलक्ष्मी-प्राप्ति हेतु, गोपाचल पूजन करता हूँ॥

दोहा— आशा दृष्टि त्याग के, जो पारस उर ध्याए।
नासा दृष्टि पायकर, स्वयं पारस बन जाए॥

तुम पारस प्रभु केवलज्ञानी, मैं चरण शरण में आया हूँ
मैं भगत नहीं भगवान बनूँ, तुम जैसा बनने आया हूँ।
उज्ज्वलता निज की पाने को, समकित जल लेकर आया हूँ
गोपाचल पूजन करने को, प्रभु पार्श्व शरण में आया हूँ॥

मन्त्र—ओं ह्रीं श्री गोपाचल पार्श्वनाथ तीर्थंकराय मिथ्यामलविनाशनाय जन्मजरामृत्यु विनाशाय जलं नि. स्वाहा।

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा-काव्य

सोनागिरि का इतिहास एवं परिचय

श्री मोक्षसिद्धिसमवाप्तिनिदानमेकम्।
शैलान्वयाम्बुजवनप्रतिबोधभानुम्।
ध्यानात्समस्त कलुषाम्बुधिकुम्भजातम्।
वन्दे सुवर्णमयमुज्ज्वलुवर्णशैलम्॥

भाव-सौन्दर्य—जो श्रमणगिरि (सोनागिरि) मोक्षसिद्धि की प्राप्ति में मूल कारण है, जो पर्वत कुलरूपी कमल वन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य के समान है। जिस सोनागिरि के ध्यान से समस्त पापों का समुद्र घड़े के समान छोटा हो जाता है। उस सुवर्ण के समान सुन्दर और उन्नत सुवर्णगिरि को मैं वन्दना करता हूँ।

इस तीर्थ को श्रमणगिरि, श्रमणाचल, स्वर्णगिरि संस्कृत भाषा में कहते हैं, इसको हिन्दी में सोनागिरि कहते हैं, वर्तमान में यह नामसोनागिरि ही प्रसिद्ध है। यह सिद्धक्षेत्र (तीर्थ) इस कारण कहा जाता है कि यहाँ से नंगकुमार, अनंगकुमार आदि सार्ध पाँच कोटि मुनिराज आत्मसाधनाकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। प्राकृत निर्वाणकाण्ड तथा हिन्दी निर्वाणकाण्ड स्तोत्र में इस विषय का स्पष्ट प्रमाण दर्शाया गया है—

णंगाणंगकुमारा, कोडी पंचद्ध मुणिवरा सहिया।
सवणागिरिवरसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥
नंग अनंग कुमार सुजान, पंचकोटि अरु अर्धप्रमान।
मुक्ति गये सोनागिर शीश, ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईश॥[1]

इस क्षेत्र से यौधेयदेश के श्रीपुरनरेश अरिंजय के पुत्र (1) नंगकुमार और (2) अनंगकुमार तथा सहस्रों मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया। यहाँ 77 मन्दिर पर्वत पर और नीचे 16 मन्दिर हैं।

सोनागिरि तीर्थ पूजा-काव्य

सोनागिरि तीर्थ सातिशय महत्त्वपूर्ण है। उसके पूजा-काव्य की रचना कवि राजमल पवैया द्वारा की गयी है। यह पूजाकाव्य 23 पद्यों में है। इस पूजा-काव्य में उपमा, रूपक स्वभावोक्ति अलंकारों द्वारा भक्ति रस का प्रवाह गतिशील है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप सुभरत क्षेत्र के मध्यदेश में अतिपावन,
सिद्धक्षेत्र सोनागिर पर्वत, दिव्य मनोहर मनभावन।
एक शतक जिनमन्दिर शोभित, चन्द्रप्रभ का समवशरण,
वृषभादिक महावीर जिनेश्वर की प्रतिमाओं को वन्दन।

हिंसादिक पाँचों पापों में, सदालीन होता आया
पाप पंक से रहित अवस्था, पाने को प्रभु जल लाया।
सिद्ध क्षेत्र सोनागिर वन्दूँ, वन्दूँ चन्द्रप्रभ जिनराय,
नंग अनंग कुमार सुपूजें, साढ़े पाँच कोटि मुनिराज॥

बजरंगगढ़ तीर्थक्षेत्र पूजा

श्री शान्तिनाथ दि. जैन अतिशयक्षेत्र बजरंगगढ़ गुना मण्डल के मुख्यालय गुना से 7 कि.मी. दक्षिण दिशा की ओर है। यह क्षेत्र समतल भूमि पर अवस्थित है परन्तु चारों दिशाओं की पर्वतमाला के कारण यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर है। जिसका दर्शन करने से मानसकमल प्रफुल्लित हो जाता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस क्षेत्र पर शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ की विशाल, कायोत्सर्ग, मनोज्ञ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन : सं. पं. मंगल सेन जैन, प्र.—जैन वीर पुस्तकालय श्री महावीर जी क्षेत्र (राज.), 1951 पृ. 277, 279

प्रतिष्ठाकारक पाड़ाशाह

प्रतिमाओं के प्रतिष्ठाकारक श्री पाड़ाशाह के जीवन पर इतिहास ग्रन्थों अथवा मूर्तिलेखों से कुछ विशेष प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किन्तु किंवदन्तियों के आधार पर यह अवश्य ज्ञात होता है कि श्री पाड़ाशाह गहोई नामक वैश्यजाति के रत्न थे। वे थूबौन (चन्देरी) ग्राम के निवासी, जैनधर्म के अटल श्रद्धानी, कुशल व्यापारी एवं धनकुबेर थे।

श्री शान्तिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र बजरंगढ़ के मूलनायक श्री शान्तिनाथ भगवान का पूजन

श्री शान्तिनाथ पूजा-काव्य के रचयिता कवि राजमल पवैया हैं। इस पूजा-काव्य में कुल 25 पद्य दो प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। शान्तरस एवं अनेक अलंकारों के प्रयोग से काव्य में भक्ति प्रवाहित होती है। पूजन के काव्य सरस, सरल और मनन करने योग्य हैं—

शान्ति जिनेश्वर हे परमेश्वर परमशान्त मुद्रा अभिराम
पंचमचक्री शान्ति सिन्धु सोलहवें तीर्थंकर सुखधाम।
निजानन्द में लीन शान्तिनायक जग गुरु निश्चल निष्काम।
श्री जिनदर्शन पूजन अर्चन वन्दन नितप्रति करूँ प्रणाम॥

जल स्वभाव शीतल मलहारी, आत्मस्वभाव शुद्ध निर्मल
जन्म-मरण मिट जाये प्रभु जब जागे निजस्वभाव का बल।
परम शान्ति सुखदायक शान्तिविधायक शान्तिनाथ भगवान्
शाश्वत सुख की मुझे प्रीति हो, श्री जिनवर दो यह वरदान॥

अतिशय तीर्थ थूबोन

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र थूबोन मध्यप्रदेश के ग्वालियर सम्भाग में गुना जिले के अन्तर्गत पार्वत्य प्रदेशों में अवस्थित है। यहाँ पर देवकृत अतिशयों की अनेक घटनाएँ किंवदन्ती के रूप में प्रसिद्ध हैं अतएव यह अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।

(1) एक समय कतिपय उपद्रवियों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया। वे जब मूर्तिभंजन करने के लिए उद्यत हुए तो उनको मूर्ति ही दिखाई नहीं पड़ी। तब वे उपद्रवी मन्दिर को ही कुछ क्षति पहुँचाकर वापस चले गये।

(2) मन्दिर नं. 15 में प्रतिष्ठा समय भगवान आदिनाथ की 30 फीट ऊँची प्रतिमा को खड़ा करना जरूरी था। सभी सम्भव प्रयत्न किये गये परन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब प्रतिष्ठाकारक आये और मूर्ति के समक्ष बैठकर भगवान् की

स्तुति करते हुए कहने लगे—"प्रभो! क्या इसी प्रकार उपहास और लोकनिन्दा होती रहेगी" यह कहकर भावभक्ति की उमंग से उन्होंने "भगवान् ऋषभदेव की जय" कहकर मूर्ति को उठाने का प्रयत्न किया कि मूर्ति सुगमता से उठ गयी—यह उपस्थित जनता ने आश्चर्य के साथ देखा।

(3) क्षेत्र के चारों ओर भयंकर जंगल है, पूर्वकाल में इसमें सिंह आदि क्रूर जानवर भी रहते थे। क्षेत्र के निकट तथा क्षेत्र पर पशु चरते-फिरते रहते थे, परन्तु कभी किसी पशु पर कोई बाधा सुनने में नहीं आयी—यह आश्चर्य का विषय है।

(4) विक्रम सं. 15 भगवान आदिनाथ मन्दिर में फाल्गुन, आषाढ़ एवं कार्तिक मास के नन्दीश्वर पर्व में तथा पर्युषण पर्व में अर्धरात्रि के समय देवों के पूजन की मधुर ध्वनि और वाद्य यन्त्रों के मधुर स्वर निकटवर्ती जनता को सुनाई देते हैं।

(5) अनेक ग्रामीण जन अपनी-अपनी मनोकामना लेकर भगवान् आदिनाथ के समक्ष प्रार्थना करते हैं और मनोकामना पूर्ण होने पर भगवान् के चरणों में श्रीफल अर्पित करते रहते हैं।

क्षेत्र का प्राकृतिक सौन्दर्य—वेत्रवती (वेतवा) की एक सहायक नदी उर्वशी से एक कि.मी. दूर एक सपाट चट्टान पर मन्दिर है। मन्दिर के उत्तर की ओर एक छोटी नदी लीलावती है। इस प्रकार इन युगल सरिताओं के मध्य स्थित क्षेत्र की प्राकृतिक सुषमा अवर्णनीय है। ये नदियाँ कल-कल ध्वनि करती हुई पर्वत शिलाओं से टकराती उछलती-मचलती बहती हुई अत्यन्त सुहावनी लगती हैं। एक ओर पर्वतमालाओं पर प्रसरित सघन वन की हरीतिमा और उनके मध्य शिर उठाकर झाँकते हुए जिनालय के उत्तुंग शिखर तथा उसके शिखर पर फहराती हुई धर्मध्वज, ये सब मिलकर इस सम्पूर्ण अंचल को एवं शान्त वातावरण को सुन्दर लोक जैसा बना देते हैं। भक्तजन इस प्रदेश का आश्रय लेकर आध्यात्मिक साधना में निमग्न हो जाते हैं।

क्षेत्र के नाम की व्युत्पत्ति—जिस प्रकार बौद्ध साहित्य में 'तुम्बवन' का नाम कहा जाता है जो वर्तमान 'तूमैन' कहलाता है। उसी प्रकार प्राचीन काल में इस क्षेत्र का नाम 'तपोवन' कहा जाता था। वर्तमान में तपोवन शब्द विकृत होकर 'थोबन या थूबोन' कहा जाता है। यहाँ कुल 25 मन्दिरों में अनेक उत्तुंग मनोहर जिनबिम्ब विराजमान हैं।

शोभित चारु सुचन्द्रपुरी, जिन नेमि समै से महासुखदाई,
पावन 'चन्द्र' सुहावन मंजुल, मंगलपूरित मोद लताई।
तासन पश्चिम में सरितातट, थूबन जी की छटा शुभ छाई।
मोहत हैं मन मानव के, पन बीस जिनालय में जिनराई॥

हीरक पन्नग और जवाहर, रत्नन की जिन ज्योति जगाई,
पै न मिटो निज मोह महातम, चारित और भयो अधिकाई।

चन्देरी क्षेत्र

चन्देरी चौबीसी अर्थात् 24 तीर्थंकरों की अत्यन्त कलापूर्ण और तीर्थंकरों के स्वाभाविक शरीर वर्ण से शोभित मूर्तियाँ, इनके कारण, मध्यप्रान्त के तीर्थ क्षेत्रों की श्रेणी में चन्देरी क्षेत्र एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है। यहाँ के एक स्तम्भ लेख में वि. सं. 1350 अंकित होने से यह बड़ा मन्दिर इससे भी अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। इसी मन्दिर के चौबीस शिखर शोभित 24 कोष्ठों में 24 तीर्थंकरों की पद्मासन मूर्तियाँ विराजमान हैं। चतुर्थकाल (सत्ययुग) में साक्षात् अवतरित तीर्थंकरों के शरीर का जो स्वाभाविक वर्ण था, शास्त्र कथित उसी वर्ण के अनुसार इन मूर्तियों का वर्ण है अर्थात् 16 मूर्तियाँ स्वर्णसम वर्णयुक्त, 2 श्वेतवर्ण, 2 श्यामवर्ण, 2 हरितवर्ण और 2 लालवर्ण से विभूषित मूर्तियाँ हैं। इन रमणीय मूर्तियों का निर्माण जयपुर में हुआ था।

कवि राजमल पवैया ने वर्तमान 24 तीर्थंकरों के अर्चाकाव्य की रचना कर अपने पवित्र हृदय-सरोवर से भक्ति रस की धारा को प्रवाहित किया है। इस पूजा-काव्य में 18 पद्यों की रचना तीन प्रकार के छन्दों में निबद्ध है। कविता सरल, सरस एवं आध्यात्मिक है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का उद्धरण—

> भरत क्षेत्र की वर्तमान जिन चौबीसी को करूँ नमन,
> वृषभादिक श्री वीरजिनेश्वर के पद पंकज में वन्दन।
> भक्तिभाव से नमस्कार कर विनय सहित करता पूजन
> भवसागर से पार करो प्रभु यही प्रार्थना है भगवन्॥
>
> आत्मज्ञान वैभव के जल से यह भवतृषा बुझाऊँगा,
> अन्तरगहर चिदानन्द चिन्मय की ज्योति जगाऊँगा।
> वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर के नित चरण पखारूँगा,
> परद्रव्यों से दृष्टि हटाकर अपनी ओर निहारूँगा॥
>
> पार्श्वनाथ प्रभु के चरणाम्बुज दर्शनकर भवभार हरूँ,
> महावीर के पथ पर चलकर मैं भवसागर पार करूँ।
> चौबीसों तीर्थंकर प्रभु का भाव सहित गुणगान करूँ
> तुम समान निज पद पाने को, शुद्धातम का ध्यान धरूँ॥[1]

पपौरा क्षेत्र

मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले में 'पपौरा' एक अतिशय क्षेत्र है। विशाल स्थल के मध्य सुरम्य वृक्षावली से शोभित एक परकोटा के अन्दर 108 गगनचुम्बी मन्दिर

---

1. जैन पूजांजलि, पृ. 148-150

शोभायमान है। इस संख्या में बाहुबलि मन्दिर की 24 मढ़ियाँ और चौबीसो मन्दिर के 24 शिखर वाले मन्दिरों की गणना सम्मिलित है। जैन मन्दिरों की यह नगरी अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, उद्यान और शान्त वातावरण के कारण आत्मसाधकों एवं भक्त श्रावकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। साथ ही कलाप्रेमी, शोधक और इतिहासकारों के लिए भी उपयोगी है।

श्री पपौरा क्षेत्र पूजा-काव्य के रचयिता पं. दरयावसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पूजा-काव्य में सम्पूर्ण 23 पद्य पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। कविता में प्रसाद गुण एवं उपमा, रूपक आदि अलंकारों से भक्तिरस की धारा प्रवाहित होती है। इस पूजा-काव्य के कतिपय पद्य—

अतिशय क्षेत्र प्रधान अति ग्राम पपौरा जान।
टीकमगढ़ से पूर्व दिश, तीन मील परमान॥
पचहत्तर जहाँ लसत हैं, जिन मन्दिर सुखकार।
जिन प्रतिमा तिहिं मधि लसैं, चौबीसों दुखहार॥[1]

अहार क्षेत्र

मध्यप्रदेश के प्राचीन स्थलों में अहार क्षेत्र का नाम उल्लेखनीय है। अनेक जैन सांस्कृतिक एवं धार्मिक केन्द्रों की तुलना में यह अहार क्षेत्र भी एक सांस्कृतिक केन्द्र है। विन्ध्यक्षेत्र के टीकमगढ़ जिला में अवस्थित यह क्षेत्र पर्वतीय प्राकृतिक भूमि की हरित अरण्यावली में शोभायमान है। टीकमगढ़ से यह क्षेत्र प्रायः 25 किलोमीटर की दूरी पर अपनी सत्ता व्यक्त करता है।

श्री अहार तीर्थ स्तवनम्—

स्व. ब्र. पं. बारेलाल जैन राजवैद्य, टीकमगढ़, म.प्र.

मध्यप्रदेशीय मथाभिरामं, चन्देल बुन्देल नरेन्द्रशिष्टम्।
तपोवनं जैन मुनीन्द्रपूतं, अहारक्षेत्रं प्रणमामि नित्यम्॥
यतस्ततो पत्र विशालछाया, अनोकहास्ते फलपुष्पनम्राः।
मत्ता विहंगा हि न दन्ति तत्र, अहार तीर्थं प्रणमामि नित्यम्॥

स्वच्छं पवित्रं स्फटिकप्रभं च, समन्ततो यत्र दधाति तोयम्।
सरोवरो यन्मदनेशनाम, अहारतीर्थं प्रणमामि नित्यम्॥
निर्मापितो यो मदनेशराजा, पद्मांचितो यत्र च मत्तभृंगाः।
नदन्ति नामैव यशोनृपस्य अहारतीर्थं ....॥

1. बृहद् महावीर कीर्तन : पृ. 835-837

पाणाख्यशाहो हि पणायतेस्म, यावन्न पूजां विनिधाय तावत्।
तत्रोपवासं च मुदा चकार, अहारतीर्थं..................॥
कृत्वासपर्यां भगवज्जिनस्य, मुनिं ददर्शाथ ददावहारम्।
अहारनाम्ना हि ततः प्रसिद्धं, अहारतीर्थं..........॥
विनिःसृतं यत्र च दिव्यरूपं, भूमेरधस्तान्ननु चैत्य-बिम्बम्।
अनेकशस्तत्र पदे पदे च, अहार तीर्थं.........॥
देवांगनानामपि किन्नराणां, व्यक्तं निशायां हि कदा कदापि।
मनोरमं वादनगाननृत्यं, अहारतीर्थं..............॥[1]

खजुराहो का परिचय और उसका अर्चन

अवस्थिति : खजुराहो क्षेत्र मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में, अत्यन्त कलापूर्ण भव्य मन्दिरों के कारण विश्व में प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र के रूप में विद्यमान है। जो एक सहस्रवर्ष पूर्व चन्देलनृपों की राजधानी था। किन्तु वर्तमान में यह एक छोटा-सा ग्राम है। यह खजुराहो-सागर बस मार्ग से सम्बन्धित है।

क्षेत्र दर्शन—खजुराहो के हिन्दू और जैन मन्दिर चन्देलराजाओं के शासन काल की समुन्नत शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। यहाँ जितने मन्दिर तथा चन्देलों से सम्बन्धित स्थान हैं, वे राहिलवर्मा (लगभग सन् 900) से लेकर मुसलमानों द्वारा कालिंजर की विजय (ई. 1213 तक के काल के हैं)।

खजुराहो क्षेत्र पूजनकाव्य (संस्कृत)

खजुराहो क्षेत्रस्थ शान्तिनाथ स्तोत्रम्

वसन्ततिलका छन्द

हे शान्तिनाथ भगवन् भववीतराग
तुभ्यं नमोस्तु जगदेकशरण्य भूत।
श्री-मत्प्रसिद्ध खजुराह विराजमान
श्री-वर्धमान महनीय शतेन्द्र सेव्य॥

अत्रोगतो जनगणस्तव दर्शनेन
नानाविधैर्गदचयर्भवति प्रयुक्तः।
संसारदुःखनिकरा न भवन्ति तस्य
तेऽङ्घ्रिद्वयं वसति यस्य मनोरविन्दे॥

1. वैभवशाली अहार : सं. डॉ. दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य : प्र. भ.—शान्तिनाथ अष्टशताब्दि महामस्तकाभिषेकोत्सव समिति अहारक्षेत्र : (टीकमगढ़ म.प्र.) : 1982 : के आधार पर।

ऐरासुतस्य भवतो भवतो विरक्तिः
जाता यदा प्रकटितोऽत्र तदा सतोऽग्रे
तीर्थंकर प्रकृतिपुण्यवशान्निलम्पे
लौकान्तिकस्तव विभोरकरोद् स्तुतिं सः॥

गर्भस्थेऽपि त्वयि सति विभो व्याधयो बाधयो वा।
नष्टा जाताः श्रुतमिति मया प्राणिनां त्वत्प्रसादात्।
त्वां साक्षाद् ये नयनचषके मुक्तकण्ठं पिबन्ति
तेषामापद्विषधरविषं सत्वरं नश्वरं स्यात्॥

चित्रं चित्रं सुचरितमिदं यत्प्रभो ध्यानतस्ते
त्वादृग्जीवस्त्रिभुवनपतिः स्याद् दरिद्रोऽधमो वा।
ज्ञात्वैवं त्वाऽहमपि तवाभ्यर्णमत्रागतोऽस्मि
भाष्टुं स्वीयं प्रबलमशुभं कर्मरोगं दुरन्तम्॥

वह्नेस्तापो जिनवर यथा कज्जलं स्वर्णवर्णम्,
अन्तर्भूत्वा मलविरहितं सर्वशुद्धं करोति।
त्वन्निर्मेयं यदि मम मनोऽभ्यन्तर्गतः स्याः
तत् किं चित्रं जिन मम मनोगेह शुद्धिर्न किं स्यात्।

शान्तिनाथस्य संस्तोत्रं, भक्त्या मूलेन्दुना कृतम्।
पठतः शृण्वतः पुंसः, शान्तिः स्थेयात् पदे पदे॥[1]

खजुराहो क्षेत्र पूजा-काव्य

सन् 1947 में कवि 'सुधेश' जैन नागौद द्वारा खजुराहो क्षेत्र में विराजमान श्री शान्तिनाथ भगवान् के पूजन काव्य का निर्माण किया गया। इस काव्य में कुल 28 पद्यों का सात प्रकार के छन्दों में सृजन किया गया है। काव्य में प्रसादगुण, अलंकार और सरलरीति के माध्यम से शान्तरस को पुष्ट किया गया है। इस काव्य के कुछ प्रमुख पद्य इस प्रकार हैं—

जल अर्पण करने का छन्द—जोगीरासा

चिर से मेरे संग लगी है, जन्ममरण की बाधा
इनसे बचने हेतु तुम्हें है आज यहाँ आराधा।

1. शान्तिनाथ स्तोत्र रच. पं. मूलचन्द्रशास्त्री, प्र.--दि. जैन वीर पुस्तकालय महावीर जी (राज.) सन् 1980

शान्तिनाथ! खजुराहो में आ, तुमको शीस नवाऊँ
जन्म-मरण के नाशकरण को निर्मल नीर चढ़ाऊँ॥

ओं ह्रीं कलातीर्थ खजुराहो संस्थित श्री 1008 शान्तिनाथ जिनेंद्राय जन्म-जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा।[1]

द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र

द्रोणगिरि क्षेत्र मध्यप्रदेशीय छतरपुर मण्डल के अन्तर्गत बिजावर तहसील में पर्वत पर अपना अस्तित्व रखता है। 232 सोपानों के माध्यम से पर्वत पर आरोहरण किया जाता है। द्रोणगिरि क्षेत्र प्राप्त करने के लिए मध्य रेलवे के सागर या हरपालपुर स्टेशन पर उपस्थित होना चाहिए। प्रत्येक स्टेशन से लगभग 100 कि.मी. की दूरी पर यह क्षेत्र शोभित है। सभी स्थानों पर बस की व्यवस्था उपलब्ध है। द्रोणगिरि पर्वत के निकट सेंधपा ग्राम चन्द्रभागा (काठिन) नदी और श्यामली नदी के मध्य क्षेत्र में शोभायमान है। यहाँ पर प्रकृति ने तपोभूमि के उपयुक्त सुषमा का समस्त परिकर एकत्रित कर दिया है जैसे सघन वृक्षावलि, निर्जन प्रदेश, वन्य पशु, चन्द्रभागा नदी, जलपूर्ण दो निर्मल कुण्ड, श्यामली नदी—ये सब एकत्रित होकर यथार्थ में तपोभूमि की शोभा बढ़ाते हैं।

सिद्धक्षेत्र (निर्वाण क्षेत्र)

द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र है। इस विषय में प्राकृत निर्वाणकाण्ड स्तोत्र में उल्लेख प्राप्त होता है—

फलहोडी बड़गामे, पच्छिम भायम्मि दोणगिरि सिहरे।
गुरुदत्तादि मुणिन्दा, णिव्वाण गया णमो तेसिं॥

सारांश—फलहोडी बडगाँव के पश्चिम में द्रोणगिरि पर्वत है। उसके शिखर से गुरुदत्त आदि मुनिराज निर्वाण को प्राप्त हुए। उनको मैं नमस्कार करता हूँ। संस्कृत निर्वाण भक्ति में भी द्रोणिमान् क्षेत्र का नाम कहा गया है।

द्रोणगिरि क्षेत्र पूजा-काव्य

सन् 1986 में पं. गोरेलाल शास्त्री ने द्रोणगिरि पूजा-काव्य की रचना कर क्षेत्र के प्रति अपनी अन्तरंग भक्ति को व्यक्त किया है। इस काव्य के अन्तर्गत 25 पद्य छह प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। इस काव्य में प्रसादगुण, रूपकादि

---

1. शान्तिनाथ स्तवनम् भाग-1 : सं. सुरेश जैन मारोरा, प्र.—अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्ध समिति, खजुराहो, सन् 1947, पृ. 9-22

अलंकार तथा स्वभावोक्ति की छटा से शान्तरस को प्रवाहित किया गया है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्यों का दिग्दर्शन—

स्थापना—अडिल्ल छन्द

पावन परम सुरम्य द्रोणगिरि नाम है
सिद्धक्षेत्र सुखदाय सुउत्तम धाम है।
हरितन पुण्यारी गुरुदत्त महामुनी
मुक्ति गये वरधान जिनागम में सुनी॥[1]

रेशन्दी गिरि तीर्थ

मध्यप्रान्तीय छतरपुर मण्डल के अन्तर्गत रेशन्दी गिरि तीर्थ निर्वाण क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। रेशन्दी गिरि का शुद्ध संस्कृत शब्द ऋषीन्द्रगिरि है। कारण कि इस पर्वत से वरदत्त आदि पंच ऋषिराज निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। इसका द्वितीय नाम नैनागिरि भी प्रसिद्ध है। प्राकृत निर्वाणकाण्ड स्तोत्र में इस क्षेत्र के विषय में उल्लेख किया गया है—

पासस्स समवसरणे, सहियावरदत्त मुणिवरा पंच।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमोतेसिं॥

सारांश—23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के समवशरण में आत्महित के इच्छुक श्रीवरदत्त आदि पंच ऋषिराज तपश्चरण करते हुए रेशन्दीगिरि के शिखर से निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उनके लिए नमस्कार हो।

कवि भगवती दास ने उक्त प्राकृत गाथा का हिन्दी में पद्यानुवाद इस प्रकार किया है—

समवसरण श्री पार्श्व जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौ नित धरमजिहाज॥

सारांश—इस क्षेत्र पर जब भगवान् पार्श्वनाथ का समवसरण आया, उसी समय वरदत्त, मुनीन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, गुणदत्त और सायरदत्त इन पाँच मुनिराजों ने तपश्चरण करते हुए शुक्लध्यान के द्वारा अष्टकर्मों का नाश कर निर्वाणपद को प्राप्त किया।

---

1. द्रोणगिरि अर्चना : पं. गोरेलाल शास्त्री, प्र. सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि ट्रस्ट, द्रोणगिरि (छतरपुर), 1986, पृ. 5-16

रेशन्दी गिरितीर्थ पूजाकाव्य

स्व. त्यागी दौलतराम वर्णी द्वारा भक्ति-भावपूर्ण रेशन्दीगिरि तीर्थ के पूजा-काव्य की रचना की गयी है। इस काव्य में 19 पद्य तीन प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। इसके अध्ययन करने से पूज्य तीर्थ क्षेत्रों के प्रति आस्था, तपस्वी-मुनिराजों के प्रति नम्रता, परमात्मा के प्रति अर्चना की भावना जागृत होती है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्यों का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

स्थापना—दोहा छन्द

पावन परम सुहावनो, गिरि रेशन्द अनूप।
जजहुँ मोद उर धर अति, कर त्रिकरण शुचि रूप॥

जलार्पण का पद्य—नन्दीश्वरचाल

अति निर्मल क्षीरधिवारि, भर हाटक झारी
जिन अग्रदेय त्रयधार, करन त्रिरुज छारी।
पन वरदत्तादि मुनीन्द्र शिवथल सुखदाई
पूजों श्री गिरि रेशन्दि प्रमुदित चित थाई॥[1]

बीना-बारहा तीर्थ

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र बीना-बारहा मध्यप्रदेशीय सागरमण्डलान्तर्गत रहली तहसील में अवस्थित है। इसको प्राप्त करने के लिए मध्यरेलवे के बीना-कटनी मार्ग के सागर स्टेशन का तथा जबलपुर-इटारसी मार्ग के करेली स्टेशन का माध्यम ग्रहण करना चाहिए। इस तीर्थ को प्राप्त करने के लिए नियमित बस सेवा भी सब स्थानों में उपलब्ध होती है।

इस अतिशय क्षेत्र पर 6 दि. जैन मन्दिर हैं। उनमें भगवान शान्तिनाथ के मुख्य मन्दिर में शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा, 15 फीट उन्नत अवगाहना से विभूषित विराजमान है। इसके इतिहास के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं।

यहाँ भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति सातिशय चमत्कारपूर्ण है। अपने अतिशयों के कारण यह मूर्ति जनसामान्य में अत्यधिक श्रद्धा अर्जित किये है।

बीना बारहा क्षेत्र के मूलनायक शान्तिनाथ का पूजा-काव्य

कविवर वृन्दावन ने शान्तिनाथ पूजा-काव्य की रचना कर हार्दिक भक्तिभाव को व्यक्त किया है। इस काव्य में 30 पद्य, पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन : सं. पं. मंगलसेन विशारद : पृ. 766-768

गये हैं। इन पद्यों में शब्दालंकार, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति अलंकारों की छटा से शान्तरस की वर्षा की गयी है। पांचाली रीति के माध्यम से प्रसाद गुण का चमत्कार इस काव्य में दर्शाया गया है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्यों का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

मत्तगयन्द छन्द-यमकालंकार

या भवकानन में चतुरानन, पाप पनानन घेरी हमेरी,
आतम जानन मानन ठान, न, बान न होन दई सठ मेरी।
जानत भाजन आगारि हो तुह, जान न आन न मानन टेरी
आन गही शरनागत को अब, श्रीपत जी पत राखहु मेरी॥

जल अर्पण करने का पद्य—चाल अष्टक

हिमगिरिगत गंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा भरिभृंगा,
जरमरनमृतंगा, नाशि अभंगा, पूजिपदंगा मृदुहिंगा।
श्रीशान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं
हनि अरिचक्रेशं, हे गुणधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं॥[1]

कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र का परिचय और पूजा-काव्य

कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र मध्यप्रदेश के दमोह जिले में अवस्थित है। यह क्षेत्र बीना-कटनी रेलमार्ग के दमोह स्टेशन से ईशान कोण में 35 कि.मी. और दमोह-पटेरा पक्के रोड पर पटेरा से 5 कि.मी. की दूरी पर विद्यमान है।

इस क्षेत्र में पर्वत के ऊपर और नीचे तलहटी में मन्दिरों की कुल संख्या 60 है। इनमें से मुख्य मन्दिर 'बड़े बाबा का मन्दिर' कहा जाता है। पर्वत पर इस मन्दिर का नं. 11 है। बड़े बाबा की मूर्ति पद्मासन, अवगाहना (ऊँचाई) 12 फीट 6 इंच तथा चौड़ाई 11 फीट 4 इंच है।

इस तीर्थक्षेत्र पर कुल 60 मन्दिर शोभायमान हैं जिनमें चालीस मन्दिर पर्वत पर और नीचे भूमि समतल पर 20 मन्दिर निर्मित हैं। धर्मशालाओं के मध्य मैदान में एक विशाल संगमरमर का मानस्तम्भ निर्मित है। यहाँ धर्मशालाओं के निकट वर्धमान सागर नामक एक विशाल सरोवर शोभित है। इसके घाटों और सीढ़ियों का निर्माण इतिहास, प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल ने कराया था।

कुण्डलपुर क्षेत्र का पूजा-काव्य

कुण्डलपुर क्षेत्र पूजाकाव्य की रचना पं. मूलचन्द्र वत्सल द्वारा की गयी है।

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 184-187

इस काव्य में 47 पद्य सात प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। इस काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति अलंकारों के द्वारा, प्रसादगुण, पांचालीरीति के माध्यम से शान्तरस की धारा प्रवाहित की गयी है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्यों की विशेषता—

कुण्डलपुर क्षेत्र का वर्णन

श्री कुण्डलपुर क्षेत्र सुभग अतिसोहनो
कुण्डलसम सुखसदन हृदय मन्मोहनो।
पावन पुण्य निधान मनोहर धाम है।
सुन्दर आनन्दभरण मनोज्ञ ललाम है॥

दर्शन करने का फल

गिरि ऊपर जिन भवन पुरातन हैं सही
निरखि मुदित मन भविक लहत आनदमही।
अति विशाल जिन बिम्ब ज्ञान की ज्योति हैं
दर्शन से चिरसंचित अघक्षय होत है॥[1]

मढ़िया अतिशय क्षेत्र (जबलपुर)

जलबपुर नगर की गणना मध्यप्रदेश के प्रमुख नगरों में की जाती है। यह औद्योगिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से महाकौशल का सबसे बड़ा नगर है। जबलपुर नगर से 6 कि.मी. दूर, जबलपुर-नागपुर रोड पर, दक्षिण-पश्चिमी की ओर पुरवा तथा त्रिपुरी ग्राम के मध्य में एक लघु पर्वत है। यह धरातल से 300 फीट उन्नत है। 'पिसनहारी की मढ़िया' इसी पर्वत पर शोभित है। इस पर्वत पर जाने के लिए कुल 265 सोपान परम्परा वाला मार्ग है। इसके समक्ष ही मेडिकल कॉलेज है।

इस क्षेत्र का सुधार तथा विकास

सन् 1943 में श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी द्वारा संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार हेतु गुरुकुल एवं छात्रावास की स्थापना हुई।

मढ़िया क्षेत्र के मूलनायक श्री पद्मप्रभ तीर्थंकर का पूजा-काव्य

अठारहवीं शताब्दी के कविवर वृन्दावन ने भगवान् पद्मप्रभ के पूजा-काव्य का सृजन कर परमात्मा के प्रति स्वकीय भक्ति भाव को व्यक्त किया है। कविवर द्वारा

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 761-766

इस पूजा-काव्य में 33 पद्यों की रचना पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध की गयी है। इस काव्य में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, परिकर आदि अलंकारों द्वारा तथा प्रसादगुण के प्रयोग से शान्तरस की शीतल वर्षा की गयी है—

पदमरागमणिवरन धारन, तनतुंग अढ़ाई
शतक दण्ड अखण्ड, सकल सुरसेवत आई।
धरणि तात विख्यात, सुषीमा जू के नन्दन
पदमचरण धरि राग सथापों इत करि वन्दन॥[1]

मक्सी पार्श्वनाथ

श्री अतिशय क्षेत्र मक्सी पार्श्वनाथ मध्य रेलवे भोपाल उज्जैन लाइन पर स्थित मक्सी नामक स्टेशन से प्रायः तीन कि.मी. दूर है। इस क्षेत्र को जाने के लिए उज्जैन-इन्दौर और शाजापुर से सर्वदा बसें उपलब्ध होती हैं। यह क्षेत्र मध्यप्रान्तीय शाजापुर जिले के कल्याणपुर ग्राम में विद्यमान है।

यह क्षेत्र भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के अतिशयों के कारण अतिशय क्षेत्र की श्रेणी में प्रसिद्ध है। इस मूर्ति के विविध चमत्कारों की कथाएँ जनश्रुतियों के आधार पर प्रसिद्ध हैं।

मक्सीपार्श्वनाथ क्षेत्र पूजा-काव्य

मक्सीपार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र के पूजा-काव्य की रचना किसी अज्ञात कवि द्वारा की गयी है। कविवर ने इस पूजाकाव्य में 27 पद्यों की रचना पाँच प्रकार के छन्दों में गुम्फित कर तीर्थक्षेत्रों के प्रति अपना विनम्रतया भक्तिभाव प्रदर्शित किया है। काव्य में विविध अलंकार, प्रसादगुण और सरलरीति से शान्तरस की सरिता प्रवाहित की गयी है। इस पूजा-काव्य के कतिपय पद्यों का दिग्दर्शन—

अर्चा की स्थापना—दोहा छन्द

श्री पारस परमेश जी, शिखर शीष शिवधार।
यहाँ पूजते भाव से, थापन कर त्रयवार॥

जल अर्पण करने का पद्य—अष्टक छन्द

ले निर्मल नीर सुछान, प्राशुक ताहि करौं
मन वच तन कर वर आन, तुम ढिग धार धरौं।

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन : सं. मंगलसैन विशारद, प्र.—महावीर क्षेत्र, पृ. 148-151

श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों
मम जन्म जरा मृत्यु नाश तुम गुण गावत हों॥[1]

चूलगिरि सिद्ध क्षेत्र का परिचय और पूजा-काव्य

श्री दि. जैन सिद्धक्षेत्र चूलगिरि मध्यप्रदेशीय निमाड़ ज़िले के अन्तर्गत बड़वानी नगर से 7 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है। यह 'बावन राजा क्षेत्र' नाम से अत्यन्त प्रसिद्ध है। बड़वानी जाने के लिए इन्दौर, मऊ, खण्डवा, सनावद, धूलिया और दोहद इन रेलवे स्टेशनों से बसें उपलब्ध होती हैं। बड़वानी से क्षेत्र तक पक्का मार्ग है।

चूलगिरि दि. जैन सिद्धक्षेत्र है। इस क्षेत्र से इन्द्रजीत मुनिराज कुम्भकर्ण मुनि तथा अन्य अनेक दि. जैन मुनि मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। प्राकृत निर्वाणकाण्ड में इस विषय पर निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त है।

प्राकृत— बड़वाणिवरणयरे, दक्खिण भायम्मि चूलगिरि सिहरे।
इंदजिय कुम्भकरणो, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

सारांश—बड़वानी नगर से दक्षिण की ओर चूलगिरि शिखर से इन्द्रजीत मुनि कुम्भकर्ण आदि मुनिराज मुक्ति को प्राप्त हुए, मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

भट्टारक सुमति सागर ने इस क्षेत्र की मूर्ति को 'बावनगजा' कहा है।

बावनगजा प्रतिमा का सम्पूर्ण माप इस प्रकार है—

(1)	मूर्ति की ऊँचाई	84 फीट
(2)	एक भुजा से दूरी भुजा का विस्तार	29 फीट 6 इंच
(3)	भुजा से उँगली तक (कन्धे से उँगली तक)	46 फीट 2 इंच
(4)	कमर से एड़ी तक	37 फीट
(5)	सिर का घेरा	26 फीट
(6)	चरणों की लम्बाई	13 फीट 9 इंच
(7)	नासिका की लम्बाई	3 फीट 11 इंच
(8)	आँख की लम्बाई	3 फीट 3 इंच
(9)	कान की लम्बाई	9 फीट 8 इंच
(10)	एक कान से दूसरे कान की दूरी	17 फीट 6 इंच
(11)	चरण के पंजे की चौड़ाई	5 फीट

इस पर्वत की तलहटी में 19 मन्दिर, 1 मानस्तम्भ, 1 छत्री और दो गुफाएँ ये सभी पर्वत की शोभा को वृद्धिंगत करते हैं।

इस क्षेत्र पर जितनी दि. जैन मूर्तियाँ हैं, उनमें दो मूर्तियाँ मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर की, वि.सं. 1131 की प्रतिष्ठित हैं। ये ही मूर्तियाँ इस तीर्थ की प्राचीनतम

---

1. बृहद् महावीर कीर्तन : सं. पं. मंगलसेन विशारद, पृ. 827-830

मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त भगवान पार्श्वनाथ की दो मूर्तियाँ सं. 1242 की प्रतिष्ठित हैं। एक धातुनिर्मित मूर्ति सं. 1487 की प्रतिष्ठित है। वि. सं. और 1939 की प्र. मूर्तियों की संख्या बहुत है। इससे प्राचीनता सिद्ध होती है।[1]

चूलगिरि सिद्ध क्षेत्र पूजा-काव्य

चूलगिरि सिद्धक्षेत्र पूजा-काव्य की रचना कवि छगनलाल द्वारा भक्तिभाव के साथ की गयी है। इस काव्य में 25 पद्यों का सृजन पाँच प्रकार के छन्दों के प्रयोग से किया गया है। इस काव्य के पद्यों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों द्वारा, प्रसाद, गुण एवं सरलरीति के प्रयोग से शान्तरस की धारा प्रवाहित की गयी है—

> आर्या क्षेत्र विहारबोधभवि ये, दशग्रीव सुत भ्रातना,
> सम्यक्त्वादिगुणाष्ट प्राप्ति शिव में, कर्मारिघाती घना।
> ता भगवान प्रति प्रार्थना, सुधहदै त्वद् भक्ति मम वासना,
> आह्वानम विमुक्तनाथ तु पुनः अत्राय तिष्ठो जिना॥[2]

पावागिरि (ऊन) सिद्धक्षेत्र

श्री पावागिरि सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेशीय खरगौन मण्डल में ऊननामक स्थान से दो फर्लांग दूर दक्षिण दिशा में अवस्थित है। ऊन एक कस्बा है जिसकी जनसंख्या प्रायः 4000 है। ऊन से खरगौन 18 कि.मी. दूर है। खरगौन से जुलवान्या जानेवाली सड़क के किनारे ही ऊन में दि. जैनधर्मशाला निर्मित है। धर्मशाला से पावागिरि सिद्धक्षेत्र केवल दो फर्लांग दूरी पर है। इस क्षेत्र को आने के लिए खण्डवा, इन्दौर, सनावद और महू से बस व्यवस्था सर्वदा विद्यमान है। पावागिरि क्षेत्र के पूर्वभाग में चिरूढ़ नदी बहती है, पश्चिम में कमल तलाई तालाब है, उत्तर में ऊनग्राम है, दक्षिण में एक कुण्ड बना हुआ है जिसे नारायण कुण्ड कहा जाता है। वैष्णव समाज इसको तीर्थ मानते हैं। इस क्षेत्र के पश्चिम में चूलगिरि और उत्तर में सिद्धवर कूट क्षेत्र विद्यमान हैं।

इस पावागिरि क्षेत्र से स्वर्णभद्र आदि चार मुनिराज मोक्ष को प्राप्त हुए। इस विषय में सम्बन्धित उल्लेख प्राकृत निर्वाणकाण्ड में उपलब्ध होता है, यथा—

> "पावागिरिवरसिहरे, सुवण्णभद्दाई मुणिवरा चउरो।
> चलणाणईतडग्गे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥"[3]

---

1. भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग तृतीय, पृ. 287-298
2. बृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 756-758
3. तथैव : सं. मंगलसैन विशारद, पृ. 277

पावागिरि सिद्धक्षेत्र का पूजा-काव्य

पं. विष्णुकुमार द्वारा भक्तिभाव से पावागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा-काव्य की रचना की गयी है। इस काव्य में 27 काव्यों की रचना 6 प्रकार के छन्दों में निबद्ध है। इसमें पावागिरि का परिचय, इतिहास, महत्त्व और अतिशय दर्शाया गया है। इस काव्य में अलंकारगुण तथा सरलरीति से शान्तरस को तरंगित किया गया है।

> वरनगरी के निकट सुसुन्दर पावागिरिवर जाना,
> ताके समीप सुनदी चेलना, तट ताका परमाना।
> सुवरणभद्र आदि मुनिचारों, तहँ ते मोक्ष विराजे।
> हम थापन कर पूजें तिनको पापताप सब भाजे॥[1]

सिद्धवरकूट क्षेत्र

सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र है। इन्दौर से मान्धाता (ओंकारेश्वर) 77 कि.मी. दूर है, इतना ही प्रमाण खण्डवा से होता है। ओंकारेश्वर रोड (अजमेर-खण्डवा के मध्य रेलवे स्टेशन) से मान्धाता 11 कि.मी. की दूरी पर है। वहाँ से नौका द्वारा सिद्धवरकूट क्षेत्र प्राप्त होता है। बड़वाह (पश्चिमी रेलवे के इन्दौर-खण्डवा स्टेशनों के मध्य एक स्टेशन) से फेअर वेदर रोड द्वारा सिद्ध वरकूट 19 कि.मी. प्रमाण है। इस मार्ग से नर्मदा नदी नहीं मिलती है। मान्धाता में क्षेत्र की धर्मशाला है और बड़वाह में भी जैनधर्मशाला है। ये दोनों धर्मशालाएँ बस स्टैण्ड के निकटस्थ हैं।

सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र की श्रेणी में प्रसिद्ध है। इस विषय का समर्थन अनेक आचार्यों ने किया है। प्राकृत निर्वाण काण्ड स्तोत्र में सिद्धक्षेत्र के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—

> रेवाणइये तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे।
> दो चक्की दह कप्पे, आहुट्ठयकोडि णिव्वुदे वंदे॥[2]
> रेवानदी सिद्धवरकूट, पश्चिम दिशा देह जहाँ छूट।
> द्वयचक्री दश कामकुमार, आठ कोडि वन्दौं भवपार॥[3]

बोध प्राभृत की गाथा नं. 27 की व्याख्या में भट्टारक श्रुतसागर ने इस क्षेत्र का नाम सिद्धकूट लिखा है। भट्टारक गुणकीर्ति, विश्व भूषण आदि साहित्यकारों ने भी इस क्षेत्र का नाम 'सिद्धकूट' ही लिखा है। प्राकृत निर्वाणकाण्ड की उपर्युक्त गाथा

---

1. वृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 744-777
2. तथैव, निर्वाण प्राकृत, पृ. 277
3. तथैव, निर्वाणकाण्ड प्राकृत, पृ. 277

में इस क्षेत्र की अवस्थिति के विषय में भी संकेत किया गया है कि यह क्षेत्र रेवा नदी के पश्चिम तट पर अवस्थित है। कूट शब्द से यह आशय व्यक्त होता है कि यह क्षेत्र पर्वत के ऊपर शोभायमान है और यह कूट सिद्धकूट या सिद्धवर कूट कहा जाता है। संस्कृत निर्वाण भक्ति में 'वरसिद्ध कूटे' यह शब्द भी आया है। रेवा नदी के तटवर्ती इस क्षेत्र का कोई विशेष नाम नहीं था, किन्तु सार्ध तीन कोटि मुनिराजों का सिद्धिस्थान होने के कारण इस पर्वत-शिखर एवं क्षेत्र का नाम ही सिद्धवरकूट हो गया।

इस तीर्थ पर सम्पूर्ण दशमन्दिर मानव समाज के लिए नव्य चेतना प्रदान करते हैं। कुल 90 दिगम्बर प्रतिमाएँ विश्व को मोक्षमार्ग का उपदेश करती हुई की तरह प्रतीत होती हैं, 12 चरण युगल चिह्न महात्माओं का स्मरण कराते हैं।

श्री बाहुबलिस्वामी की मकराने की एक भव्य प्रतिमा, खड्गासन 8 फीट उन्नत, वी.सं. 2491 में प्रतिष्ठित, विश्व को आत्मशुद्धि करने को सम्बोधित करती है।

कवि महेन्द्र कीर्ति द्वारा तीर्थों के प्रति भक्ति भावना से प्रेरित होकर सिद्धवरकूट तीर्थ के पूजा-काव्य की रचना की गयी है। इस काव्य में 31 पद्यों का सृजन पाँच प्रकार के छन्दों के माध्यम से किया गया है। इन पद्यों में अलंकार, प्रसादगुण और सरलरीति के प्रयोग से शान्तरस की पुष्टि की गयी है। उदाहरणार्थ कतिपय काव्यों का दिग्दर्शन—

दोहा—तीर्थ की महिमा

सिद्धकूट तीरथ महा, है उत्कृष्ट सुथान।
मन वच काया कर नमों, होय पाप की हान॥
जग में तीर्थ प्रधान है, सिद्धवरकूट महान।
अल्पमती मैं किमि कहौं, अद्भुत महिमा जान॥

घत्ता छन्द

जो सिद्धवर पूजे, अतिसुख हूजे, ता गृह सम्पत्ति नाहि टरे।
ताको जश सुरनर मिल सब गावें, 'महेन्द्र कीर्ति' जिनभक्ति करे॥

दोहा

सिद्धवरकूट सुथान की, महिमा अगम अपार।
अल्पमती मैं किमि कहौं, सुरगुरु लहे न पार॥[1]

---

1. वृहद् महावीर कीर्तन : पृ. 753-756

(1) श्री महावीर तीर्थ

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी राजस्थान प्रान्तीय सवाई माधोपुर जिले में विद्यमान है। पश्चिमी रेलवे की देहली-बम्बई मुख्य लाइन पर भरतपुर और गंगापुर रेलवे स्टेशनों के मध्य 'श्री महावीर जी' नाम का रेलवे स्टेशन है। रेलवे स्टेशन से जैनमन्दिर 6 कि.मी. दूरी पर है। क्षेत्र के पूर्व की ओर श्री महावीर के चरणों को प्रक्षालित करती हुई गम्भीर नदी बहती है। इस पर निर्मित पुल के माध्यम से प्रत्येक ऋतु में पक्की सड़क द्वारा यातायात की सुविधा है। यहाँ नल, बिजली, जल, पोस्ट ऑफिस, तारघर, टेलीफ़ोन, बैंक आदि सभी प्रकार की आधुनिक दैनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

श्री महावीर क्षेत्र का इतिहास

चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का मन्दिर चाँदनपुर ग्राम के अति समीप है। इस क्षेत्र पर भगवान महावीर की जिस प्रतिमा के अतिशय की प्रसिद्धि है उस प्रतिमा की भूगर्भ से प्राप्ति के विषय में अद्भुत किंवदन्ती प्रचलित है।

विक्रम की 16वीं तथा 17वीं शताब्दी के मध्य भगवान् महावीर की मूंगावर्ण वाली जिस प्रतिमा का टीले से निर्गमन हुआ था वह इसी स्थान पर किसी प्राचीन मन्दिर में विराजमान थी, किन्तु इन्हीं अज्ञात कारणों से मन्दिर के नष्टभ्रष्ट होने पर वह भूगर्भ में ही समा गयी थी अथवा किसी दूरस्थ मन्दिर (दि. जैन) में विराजमान थी और मुगलसत्ता में नष्ट-भ्रष्ट होने के भय से वह प्रतिमा इस स्थान पर आनीत कर भूगर्भ से सुरक्षित कर दी गयी, इस प्रकार अनुमान किये जाते हैं।

इस मूर्ति की शिल्पयोजना और रचना शैली, गुप्तोत्तर काल की प्रतीत होती है। मूर्ति का निर्माण ठोस ग्रेनाइट (पाषाण) से न होकर रवादार बलुए (बालुमय) पाषाण से हुआ है इसलिए वह मूर्ति पर्याप्त घिस चुकी है। यह पाषाण ग्रेनाइट की अपेक्षा कमज़ोर होता है और वर्षों तक वह मूर्ति क्षारवाली मिट्टी के मध्य में दबी रही है जिससे पाषाण रुक्ष कमज़ोर हो गया है अतएव इसकी सुरक्षा होना अत्यावश्यक हो जाता है।

तीर्थंकर महावीर की जयन्ती के पुण्य अवसर पर प्रतिवर्ष इस क्षेत्र पर चैत्र शुक्ला 11 से वैशाख कृष्णा 2 तक विशाल मेलापक का आयोजन होता है। इस अवसर पर भगवान महावीर की रथयात्रा का प्रदर्शन होता है। इस समय दि. जैन यात्रियों के अतिरिक्त मीणा, गूजर, जादव आदि वर्ग भी अत्यधिक संख्या में महावीर स्वामी के दर्शन-पूजनार्थ एकत्रित होते हैं। इस मेलापक में प्रायः 2-3 लक्षप्रमाण व्यक्ति उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार इस अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी का महत्त्व पौराणिक, सामाजिक

एवं धार्मिक दृष्टि से भारत में प्रसिद्ध है इसलिए इसका अर्चन-पूजन किया जाता है।

श्री महावीर क्षेत्र पूजाकाव्य

विक्रम की 20वीं शताब्दी में कवि पूरनमल द्वारा श्री महावीर क्षेत्र पूजा-काव्य की रचना की गयी है। इस पूजाकाव्य में 37 पद्य 6 प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। इस पूजा-काव्य में अलंकार, गुण एवं सरलरीति द्वारा मानस सरोवर में भक्ति रस की तरंगें उच्छलित होने लगती हैं। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का दिग्दर्शन इस प्रकार है–

स्थापना

श्री वीरसन्मति गाँव चाँदन में प्रकट भये आयकर
जिनको वचन मन काय से मैं पूजहूँ शिरनायकर,
हुए दयामय नारिनर लखि शान्तरूपी भेष को
तुम ज्ञानरूपी भानु से कीना सुशोभित देश को,
सुर इन्द्र विद्याधर मुनी नरपति नमावें शीस को
हम नमत हैं नित चावसों, महावीर प्रभु जगदीश को॥

(2) श्री ऋषभदेव तीर्थक्षेत्र का पूजा-काव्य

श्री ऋषभदेव तीर्थ राजस्थान प्रदेशीय उदयपुर मण्डलान्तर्गत उदयपुर नगर से 64 कि.मी. दूर, खेरवाड़ा तहसील में, कोयल नामक लघु नदी के तट पर अवस्थित है। ग्राम का नाम धुवेल है, जिसकी जनसंख्या प्रायः 5000 है। इस ग्राम के उत्तर और पश्चिम में नदी तथा दक्षिण में पहाड़ी नाला है। यह गाँव ऋषभदेव की मूल नायक प्रतिमा के प्रकट होने के पश्चात् बसाया गया है। भगवान ऋषभदेव के नाम पर ग्राम का नाम भी ऋषभदेव तथा पूजा में केशर अर्पण करने की प्रथा के कारण केशरिया तीर्थ प्रसिद्ध हो गया है।

यहाँ पहुँचने के लिए पश्चिमी रेलवे के उदयपुर स्टेशन से ऋषभदेव तक पक्की सड़क है।

इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व एवं धार्मिक दृष्टि से ऋषभदेव (केशरियानाथ) तीर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है अतएव आत्महितार्थ इसका अर्चन किया जाता है।

श्रीऋषभदेव तीर्थ के पूजा-काव्य के रचयिता का नाम अज्ञात है, परन्तु वृहद्महावीरकीर्तन के पृष्ठ 821 की टिप्पणी से ज्ञात होता है कि वि.सं. 1760 में लिखित, एक जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थ से यह पूजा-काव्य संगृहीत है। यह ग्रन्थ अंकलेश्वर (गुजरात-प्रान्त) के किसी जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार से प्राप्त हुआ था। इस पूजा-काव्य में कुछ पद्य शुद्ध संस्कृत भाषा में और कुछ पद्य राजस्थानी भाषा में

निबद्ध हैं। इस पूजा-काव्य में कुल सम्पूर्ण पद्य 33 हैं जो पाँच प्रकार के छन्दों में प्रयुक्त हैं। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का निदर्शन—

सलिल चन्दन पुष्प तन्दुल, चरु सुदीप सुधूपकैः,
फणस रम्य कुशाग्र स्वस्तिक, धवल मंगलगानकैः।
जननसागर भविकतारक, दुःखदावधनोपमं,
विजयकीर्ति सघसेवित, धुलेव नयर निवासिनं॥

सुरेन्द्रनागेन्द्र नरेन्द्र शिष्टो, धुलेववासो जगदीश्वरेष्टो।
इक्ष्वाकुवंशो वरदो वरिष्ठो, भक्तेष्ट शिष्टेष्ट गरिष्ठ इष्टो।
पुण्यपयोनिधि वर्धनचन्द्रं, क्षोभित मोह महागजतेन्द्रं।
धुलेवनयर निवासविराजं, आदि जिनेश्वर नमितसुराजं।
संकटकोटि विनाशनदक्षं, नासितरोगभयादिक-यक्षं
धुलेवनयर निवास विराजं,................॥
कान्तिकला परिपूरितगात्रं, वांछितदान सुपोसित पात्रं।
धुलेव नयर ....॥
आदि जिनेन्द्रमनादिमनन्तं, सन्ततभिन्न सुरूप धरन्तं।
धुलेव नयर ....॥
श्रीधुलेवपुराश्रितं त्रिभुवनं, श्रेष्ठैर्निसेव्यं मुदा
भक्तानां दुरितं विनाशिततरं, कुष्टादिसंघोत्करम्।
नीरादिप्रमुखाष्टद्रव्यनिचयैः दूर्वादधि स्वस्तिकैः
चर्चे श्रीविजयादिकीर्ति सततं, लक्ष्मी ससेनान्तकम्॥
लक्ष्मीकलाकान्तिरनन्त सौख्यं, सेनिं चतुर्धाधिपचक्रिमुख्यम्।
राजा सुराधर्मनन्तरूपं, धुलेव नयरे वृषभंजिनेन्द्रम॥[1]

इस पूजा-काव्य में शब्दालंकार, अर्थालंकार, प्रसादगुण, सरलरीति, सरस भाषा और रम्य छन्दों के प्रयोग से भक्तिपूर्ण शान्तरस का वर्णन किया गया है।

आबू क्षेत्र

आबू क्षेत्र पश्चिम रेलवे के अजमेर-अहमदाबाद रेलमार्ग के 'आबूरोड' स्टेशन से 29 कि.मी. दूर दिलवाड़ा नामक ग्राम में राजस्थान प्रान्तीय सिरोही जिला में अवस्थित है। दिलवाड़ा से आबू डेढ़ कि.मी. अन्तर पर है जो पर्वत की शिखर पर शोभित है। आबू रोड स्टेशन से 10 कि.मी. दूर आबू पर्वत की तलहटी है, यहाँ से 19 कि.मी. पर्वत पर पक्के मार्ग से चलना पड़ता है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य

1. बृहद् महावीर कीर्तन, पृ. 821-823

एवं वनस्थली अत्यन्त नयनाभिराम है। यह पर्वतीय पर्यटन केन्द्र एवं आरोग्यप्रद स्थान (सेनिटोरियम) है। यह स्थान समुद्र के समतल से 5350 फीट उन्नत है। पर्यटन केन्द्र होने के कारण शासन ने इस क्षेत्र का उपयोगी विकास किया है। यहाँ पर विश्राम एवं विराम के लिए उपयोगी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

अर्बुद के मूलनायक भगवान आदिनाथ का पूजाकाव्य

श्री आदिनाथ पूजा-काव्य की रचना कवि राजमल पवैया ने भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत होकर सम्पन्न की है। इसमें 26 काव्य रचना पाँच प्रकार के छन्दों के माध्यम से की है। इस पूजा-काव्य में शब्दालंकार अर्थालंकार, प्रसादगुण, पांचालीरीति एवं काव्य-लक्षणों के द्वारा भक्ति रस का वर्णन किया गया है। इसके पठन मात्र से आत्मशक्ति का अनुभव होता है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यों का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

जय आदिनाथ जिनेन्द्र जय जय प्रथम जिन तीर्थंकरम्।
जय नाभिसुत मरुदेविनन्दन ऋषभप्रभु जगदीश्वरम्।
जय जयति त्रिभुवनतिलक चूड़ामणि वृषभ विश्वेश्वरम्
देवाधिदेव जिनेश जय जय महाप्रभु परमेश्वरम्॥[1]

अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा

श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरातिजारा राजस्थान प्रान्तीय अलवर जिले का एक सुन्दर नगर है। यह अलवर के उत्तर-पूर्व में 50 कि.मी. तथा मथुरा के उत्तरपश्चिम में 96 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है। इसके चारों ओर सघन वृक्षावली और उद्यान हैं। इसके चारों ओर सघन वृक्षावली और उद्यान हैं। अनुश्रुति (जनश्रुति) के अनुसार इस नगर की स्थापना यदुवंश नृप तेजपाल ने सम्पन्न की थी।

कवि सुमतिलाल ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर तिजारा तीर्थ के मूलनायक भगवान चन्द्रप्रभ के पूजा-काव्य की रचना कर अपने जीवन को सार्थक माना है। इस पूजा-काव्य में 35 पद्य छह प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। इस काव्य में शब्दालंकार, अर्थालंकार, प्रसादगुण और पांचालीरीति के माध्यम से शान्तरस की धारा प्रवाहित की गयी है। इसके पढ़ने से ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। उदाहरणार्थ कतिपय पद्यों का दिग्दर्शन—

नमस्कारपूर्वक चन्द्रप्रभ की स्थापना

वर चन्द्र काम कलंक वर्जित, नेत्र मनहि, लुभावने
शुभ ज्ञान केवल प्रकट कीनों, घातिया चारों हनें।

---

1. जैन पूजांजलि : रचयिता - राजमल पवैया, प्र.—जैनग्रन्थमाला विदिशा, सन् 1985, पृ. 150-154

ऐसे प्रभू के दर्श पाये, धन्य दिन यह वार है
होकर प्रकट महिमा दिखायी, नमन शत शत बार है॥

मुक्ति का वर्णन

सम्मेद शैल प्रभु नामी, है ललित कूट अभिरामी।
फाल्गुन सुदि सप्तमि चूरे, शिवनारि वरी विधि कूरे॥

घत्ता छन्द—चन्द्रप्रभ गुणवर्णन

श्री चन्द्रजिनेशं, दुखहरलेशं, सब सुख देतं, मनहारी।
गाऊँ गुणमाला, जग उजियाला, कीर्ति विशाला, सुखकारी॥[1]

तारंगा सिद्धक्षेत्र

तारंगा एक प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र है। यहाँ से वरदत्त, वरांगदत्त, सागरदत्त आदि सार्ध तीन कोटि मुनिराजों ने निर्वाण (परमात्मपद) प्राप्त किया था। इस तीर्थ के नाम तारानगर, तारापुर, तारागढ़, तारवर, तारंगा आदि इतिहास में उपलब्ध होते हैं।

प्रथम या द्वितीय शती की रचना प्राकृत 'निर्वाणकाण्ड' में इसके विषय में निम्नलिखित गाथा उपलब्ध होती है—

वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तोय तारवरणयरे।
आहुट्ठय कोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥[2]

तारंगा क्षेत्र का पूजा-काव्य

विक्रम की बीसवीं शताब्दी के कवि दीपचन्द ने तारंगा तीर्थ पूजा-काव्य का सृजन किया है। इस पूजा-काव्य में 19 पद्य पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं जो प्रसाद गुण, भक्ति रस, शब्दालंकार, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों और सरलरीति के माध्यम से शान्तरस की वर्षा करते हैं।

वरदत्तादिक आठ कोटि मुनि जानिए
मुक्ति गये तारंगागिरि से मानिए।
तिन सब को शिरनाय सुपूजा ठानिए
भवदधितारन जान सुविरद बखानिए॥[3]

---

1. बृहत् महावीर कीर्तन : पं. मंगलसेन, सन् 1971, पृ. 814-818
2. बृहद् महावीर कीर्तन : सं. मंगलसेन विशारद, प्र.—वीरपुस्तकालय महावीर जी (राज.), पृ. 276, सन् 1971
3. तत्रैव, पृ. 751-753

एलोरा के गुहामन्दिर

ऐतिहासिक और धार्मिक एलोरा क्षेत्र की लोक प्रसिद्ध गुहाएँ और गुहामन्दिर महाराष्ट्र के औरंगाबाद नगर से पश्चिम दिशा में 30 कि.मी. दूरी पर अवस्थित हैं। औरंगाबाद से एलोरा (वर्तमान वेरूल ग्राम) तक पक्के मार्ग के माध्यम से नियमित बस सेवा उपलब्ध है। एलोरा की पहाड़ी समुद्र तल से 22 फीट उन्नत है, यह सह्याद्रिपर्वत शृंखला की एक सुन्दर कड़ी है। इस क्षेत्र का जलवायु समशीतोष्ण है और प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त नयनाभिराम एवं आनन्दप्रद है।

इस क्षेत्र पर कुल गुफ़ाओं की संख्या 34 है। ये सब ही गुफ़ाएँ किसी एक धर्म से सम्बन्धित नहीं हैं अपितु भारत के तीन प्रसिद्ध धर्मों से समाश्रित हैं। गुफ़ा नं. 1 से 12 तक की गुफ़ाएँ बौद्ध संस्कृति के अनुरूप हैं। नं. 13 से नं. 29 तक की गुफ़ाएँ शैवधर्म के अनुकूल हैं और क्रमांक 30 से 34 तक की गुफ़ाएँ जैन संस्कृति रूप हैं।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ' महाराष्ट्र के अकोला मण्डलान्तर्गत सिरपुर (श्रीपुर) ग्राम में अवस्थित है। यह क्षेत्र बम्बई-नागपुर लाइन पर स्थित अकोला स्टेशन से प्रायः 70 कि.मी. की दूरी पर विद्यमान है।

अतिशय क्षेत्र सिरपुर (श्रीपुर और उसके अधिष्ठाता देव 'अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ') अखिल भारत में प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र का इतिहास अति प्राचीन है। कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि इस क्षेत्र का निर्माण ऐलनरेश श्रीपाल ने कराया था। तथापि क्षेत्र के रूप में अन्तरिक्ष में विराजमान उस पार्श्वनाथ मूर्ति विशेष की अपेक्षा क्षेत्र की ख्याति तो इससे भी पूर्वकाल से थी। जैन साहित्य, ताम्रशासन और शिलालेख में इसके विषय में अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

प्राकृत निर्वाण काण्ड में इस मूर्ति की वन्दना करते हुए कहा गया है—

> अग्गल देवं वंदमि, वरणयरे णिवणकुण्डली वंदे।
> पासं सिरिपुरि वंदमि, होलागिरि संख देवम्मि॥[1]

अर्थात् इस गाथा के तृतीय चरण में कहा गया है कि—"मैं श्रीपुर के पार्श्वनाथ की वन्दना करता हूँ।"

भट्टारक उदयकीर्ति कृत अपभ्रंश निर्वाण-भक्ति में इसी विषय को कहा गया है।

---

1. धर्मध्यान दीपक : सं. अजितसागर, प्र.—महावीर जी (राज.), पृ. 142

"अरु वंदउं सिरपुरि पासणाहु, जो अंतरिक्ख थिउ णाणलाहु"

प्राकृत निर्वाण—भक्ति की अपेक्षा अपभ्रंश निर्वाण भक्ति में एक विशेषता यह है कि इसमें श्रीपुर के जिनदेव पार्श्वनाथ की वन्दना की गयी है जो कि पार्श्वनाथ भगवान् अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर और मूर्ति दिगम्बर आम्नाय की है—

पवली मन्दिर, सिरपुर मन्दिर, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति तथा इस क्षेत्र की अन्य सभी मूर्तियाँ दिगम्बर जैन आम्नाय की हैं। मन्दिर का निर्माण दिगम्बर जैन धर्मानुयायी ऐल श्रीपाल ने कराया। मूर्तियों के प्रतिष्ठाकारक और प्रतिष्ठाचार्य दिगम्बर धर्मानुयायी हैं। मूर्तियों की वीतराग ध्यानावस्था दिगम्बर धर्मसम्मत और उसकी संस्कृति के अनुकूल है।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र का पूजा-काव्य

अतिशय क्षेत्र अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के पूजा-काव्य का सृजन कविवर राजमल पवैया द्वारा भक्ति भाव के साथ किया गया है। इस काव्य में 27 पद्य दो प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं। इस काव्य में विविध अलंकार, प्रसाद गुण, सरलरीति के प्रयोग से शान्तरस का सिंचन किया गया है। पठन मात्र से ही अर्थबोध होता है, इस काव्य के कतिपय प्रमुख पद्यों का उद्धरण—

अन्तरीक्ष प्रभु पार्श्वनाथ को नितप्रति वारंवार प्रणाम
शान्त दिगम्बर भव्य मूर्ति जिन प्रतिमा शोभनीय अभिराम।
है नासाग्र दृष्टि अति पावन परम पवित्र अपूर्व ललाम
अन्तरीक्ष प्रभु सदा विराजित ध्यान लीन त्रिभुवन में नाम॥[1]

मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र का परिचय एवं पूजा-काव्य

श्री मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र भारत के मध्यप्रदेशीय बैतूल ज़िले में है। यह विचित्रता है कि मुक्तागिरि क्षेत्र यद्यपि मध्यप्रदेश में है किन्तु पोस्टल विभाग की दृष्टि से इसका ज़िला अमरावती (महाराष्ट्र) प्रसिद्ध है।

ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च॥[2]

'बोधपाहुड़' की 27वीं गाथा की श्रुतसागरी टीका में भी इस क्षेत्र का नाम मेण्ढ्रगिरि दिया गया है। प्राकृत निर्वाण भक्ति में भी मेंढागिरि नाम प्राप्त होता है।

---

1. पूजन दीपिका : सं. राजमल पवैया, प्र.—मुमुक्षु मण्डल भोपाल—सन् 1984, पृ. 15-22
2. धर्मध्यान दीपक : सं. श्री अजितसागर जी, प्र.—जैन ग्रन्थमाला श्री महावीर जी (राज.), सन् 1978, पृ. 183

भट्टारक गुणकीर्ति ने मराठी भाषा की तीर्थवन्दना में लिखा है।

"मेंढ़गिरि आहूढ़कोडि मुनि सिद्धि पावले-
त्या सिद्धासि नमस्कारु माझा"

इन शब्दों द्वारा मेंढ़गिरि के साढ़े तीन करोड़ निर्वाण प्राप्त मुनियों को नमस्कार किया है। किन्तु ज्ञान सागर, सुमति सागर, विमणा पण्डित, सोमसेन, जयसागर आदि विद्वानों ने भाषाग्रन्थों में इस क्षेत्र का नाम 'मुक्तागिरि' दिया है। इससे ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र का प्राचीन नाम मेण्ढ़गिरि रहा होगा, पश्चात् इस क्षेत्र को 'मुक्तागिरि' इस नाम से सम्बोधित करने लगे।

मुक्तागिरि निर्वाणक्षेत्र या सिद्धक्षेत्र है, कारण कि इस क्षेत्र से तीन कोटि (करोड़) पचास लक्ष मुनिराज मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। प्राकृत एवं हिन्दी निर्वाण काण्ड ग्रन्थ का प्रमाण—

अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणे भाए मेंढगिरि सिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

हिन्दी-अनुवाद

अचलापुर की दिश ईशान, तहाँ मेंढगिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराज, तिनके चरणनमूँ चितलाय॥

(1) मलखेड (प्राचीन मान्यखेट)

गुलबर्गा के समीप ही सेडम तालुक में एक द्वितीय महत्त्वपूर्ण प्राचीन जैन केन्द्र मलखेड है। यदि इस स्थान को प्रचलित नक्शे में खोजा जाए तो नहीं मिलेगा, क्योंकि यह स्थान इस समय सेरम (सेडक तहसील में कगना नदी के किनारे) पर अवस्थित लघु परिमाण, अल्प आबादीवाला एक ग्राम है। यह गुलबर्गा से रोडमार्ग द्वारा प्रायः 35 कि.मी. की दूरी पर स्थित है और मध्य रेलवे की बड़ी लाइन के वाड़ी-सिकन्दराबाद रेलमार्ग पर 'मलखेडरोड' नामक एक लघु रेलवे स्टेशन है, यहाँ से मलखेड स्थान प्रायः छह कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है।

ऐतिहासिक महत्त्व

जैन धर्मावलम्बी राष्ट्रकूट राजाओं ने मलखेड (प्राचीन मान्यखेट) में 753 ईस्वी से लगभग 200 वर्षों तक राज्य किया था। दक्षिण के इस राज्य ने अपने उत्कर्ष काल में इस प्रदेश के इतिहास में वैसी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था जैसा कि 17वीं शताब्दी में मरहठों ने निर्वाह किया। इस वंश का सबसे प्रभावशाली नरेश अमोघवर्ष सन् 814 से 878 तक शासक रहा। उसने इस राजधानी का विस्तार

करते हुए अनेक महल, उद्यान एवं दुर्ग इन सबका निर्माण कराया। भग्न-क़िले इस समय भी दृष्टिगत होते हैं। इन 200 वर्षों की अवधि में मान्यखेट जैनधर्म का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। उस युग की पाषाण और कांस्य निर्मित मूर्तियाँ आज भी यहाँ दृष्टिगत हो सकती हैं।

क्षेत्र-दर्शन

मलखेड़ ग्राम में 'नेमिनाथ' बसदि नामक एक जैन मन्दिर है जो कि नवमीं शताब्दी का मान्य किया जाता है। इसमें 9वीं से 11वीं शताब्दी तक की अनेक मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस मन्दिर के अन्तर्गत एक कांस्य का मन्दिर है जिसमें चारों दिशाओं में तीर्थंकर आदि की 96 मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

जैन साहित्य का केन्द्र

संस्कृत प्राकृत और कन्नड़ साहित्य की दृष्टि से मलखेड़ (मान्यखेट) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

राजा अमोघवर्ष (प्रथम) का द्वितीय नाम नृपतुंग भी था। उसने स्वयं संस्कृत में 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका' नामक ग्रन्थी की रचना की थी, जिसका विषय नैतिक आचार था। यह ग्रन्थ दूर-दूर तक लोकप्रिय हो गया। कहा जाता है कि इस ग्रन्थ का अनुवाद तिब्बती भाषा में भी हुआ था। इसी कारण से इस राजा की विद्वत्ता, लोकप्रियता एवं प्रभुत्व का अनुमान किया जा सकता है। इस रचना के अन्तिम छन्द से ज्ञात होता है कि नृप अमोघवर्ष ने राजपाट त्यागकर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली थी।

प्रसिद्ध 'शाकटायन व्याकरण' पर भी आपने अमोघवृत्ति नामक टीका लिखी थी, ऐसा इस टीका के नाम से प्रकट होता है अथवा यह टीका इनके नाम से प्रसिद्ध हुई।

अमोघवर्ष के शासनकाल में ही महावीराचार्य ने स्वयं 'गणितसार' ग्रन्थ की रचना किया था।

कन्नड़भाषा में अमोघवर्ष ने 'कविराज मार्ग' नामक (अलंकार, छन्दशास्त्र सम्बन्धी) ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ आज भी उपलब्ध है। इसमें गोदावरी नदी से लेकर कावेरी नदी तक विस्तृत कानड़ी प्रदेश का प्रसंगोपात्त सुन्दर वर्णन है। इससे इस प्रदेश की तत्कालीन संस्कृति का भी अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

राष्ट्रकूट नरेशों के शासनकाल में जैन साहित्य की प्रशंसनीय उन्नति निरन्तर होती रही।

इस ऐतिहासिक पवित्र क्षेत्र के मूलनायक 22वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ हैं। इसलिए जैन पूजा-काव्य के माध्यम से भगवान् नेमिनाथ का नित्य पूजन-अर्चन और आरती की जाती है।

बीजापुर (दक्षिण का आगरा)

गुलबर्गा से रोडमार्ग द्वारा बीजापुर का यात्रा क्रम इस प्रकार है—गुलबर्गा से जेबर्गी 39 कि.मी., जेबर्गी से सिन्दगी 45 कि.मी., सिन्दगी से हिप्परगी 23 कि.मी. और वहाँ से बीजापुर 37 कि.मी की दूरी पर, राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 13 पर अवस्थित है। बंगलोर-हुबली-शोलापुर छोटी लाइन (मीटरगेज) पर बीजापुर दक्षिणमध्य रेलवे का एक प्रमुख रेलवे स्टेशन है। भारत सरकार और कर्नाटक सरकार द्वारा बहुविज्ञापित बीजापुर अपनी गोलगुम्बद के लिए एक अत्यन्त आकर्षक एवं आश्चर्यप्रद पर्यटक केन्द्र है। बीजापुर का प्राचीन नाम विजयपुर था जिसका उल्लेख सप्तमशती के एक स्तम्भ में एवं 11वीं शती के मल्लिनाथ पुराण में उपलब्ध होता है। कन्नड़भाषा में वर्तमान में भी इसको बीजापुर ही कहा जाता है।

दिगम्बर जैन मन्दिर

वर्तमान में बीजापुर में दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं—(1) प्राचीन दि. जैन आदिनाथ मन्दिर। इसमें 11वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। (2) दरगा के सहस्रफणी पार्श्वनाथ।

बीजापुर जैन साहित्य की दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है। यह नगर कन्नड़ के महाकवि पम्प की जन्मभूमि है जो कि स्वरचित 'पम्परामायण' और 'मल्लिनाथ पुराण' इन दो महाकृतियों के कारण जैन साहित्य एवं कन्नड़ साहित्य में अमर हो गये हैं और अधुना भी जिनका नाम साहित्यकारों द्वारा बड़े आदर से लिया जाता है। साहित्यकार इनको 'अभिनव पम्प' कहते थे, वास्तव में उनका नाम नागचन्द्र प्रसिद्ध था। इसी प्रकार उनकी रामायण का नाम भी 'रामचन्द्र-चरितपुराण' के नाम से प्रसिद्ध था।

बीजापुर से 25 कि.मी. की दूरी पर बाबानगर नामक एक स्थान पर एक दि. जैन मन्दिर है। इस मन्दिर में हरे रंग के पाषाण की एक पार्श्वनाथ की रमणीय प्रतिमा 1½ फीट उन्नत विराजमान है।

बीजापुर जिले के तीन प्रमुख जैन कला केन्द्र हैं—1. बादामी, 2. पट्टदकल, 3. ऐहोल—ये अपने इतिहास और शिल्पकला के लिए अनेक विद्वानों के अध्ययनस्थल और आज भी देशी एवं विदेशी पर्यटकों के आकर्षण केन्द्र हैं। इस जिले में 13 जैन स्थल हैं।

कुन्दाद्रि (कुन्दकुन्दबेट्ट)

कुन्दाद्रि को प्राप्त करने का मार्ग इस प्रकार है—नरसिंह राजपुर कोप्पातीर्थ हल्ली-गुड्डकेरी-—से कुन्दाद्रि को सम्भवतः 8 कि.मी. बस गाड़ी से या पैदल यात्रा से प्राप्त किया जाता है।

कुन्दाद्रि वर्तमान में कर्नाटक प्रान्त के चिकमंगलूर ज़िले के तीर्थ हल्ली तालुक (तहसील) के अन्तर्गत, आदिवासी क्षेत्र की, तीन सहस्र फीट से उन्नत एक पहाड़ी है। कुन्दकुन्दाचार्य से सम्बन्धित होने के कारण यह प्राचीन काल से ही तीर्थ मान्य है।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

यह मंगल मन्त्र प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है और इसमें नमस्कृत कुन्दकुन्दाचार्य से ही इस पहाड़ी का सम्बन्ध है। इसी पर उन्होंने घोर तपस्या की थी। इसी पहाड़ी से वे विदेह क्षेत्र गये हैं। इसी पर उन महान् आचार्य के पवित्र चरण 13 कलियोंवाले कमल में निर्मित हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म दक्षिण भारत के पेदथनाडु ज़िले के अन्तर्गत कोण्डकुन्दपुर नामक ग्राम में (एक अन्य मत के अनुसार गुन्तकल के समीप कुण्डकुण्डी ग्राम में) ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ था। अपने जन्मग्राम के नाम से ही ये आचार्य कुन्दकुन्द के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनका वास्तविक नाम आचार्य पद्मनन्दी दर्शाया जाता है। इनके पाँच नाम दूसरे भी प्रसिद्ध हैं–

आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यो, वक्रग्रीवो महामतिः।
एलाचार्यो गृध्रपिच्छः, पद्मनन्दी वितन्यते॥
आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यो, वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छ इति तन्नाम पंचधा॥

कुन्दाद्रि के कुन्दकुन्दाचार्य का पूजाकाव्य

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पूजाकाव्य की रचना कवि राजमल द्वारा की गयी है। इस काव्य में 27 पद्य दो प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। शब्दावली रचना भावपूर्ण एवं भक्तिरस से परिपूर्ण है। अलंकारों के प्रयोग से कविता की शोभा वृद्धिंगत हो जाती है। इसके पढ़ने तथा चिन्तन से आचार्य कुन्दकुन्द के प्रति श्रद्धा तथा बहुमान का भाव जागृत होता है और आत्मानन्द की प्राप्ति होती है।

मंगलमय भगवान् वीरप्रभु, मंगलमय गौतम गणधर,
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि, मंगल जैनधर्म सुखकार।
कन्नड़ प्रान्त बड़ा दक्षिण में, कोण्डाकुण्ड था ग्राम अपूर्व,
कुन्दकुन्द ने जन्म लिया था, दो सहस्र वर्षों से पूर्व॥[1]

---

1. जैन पूजांजलि : राजमलकवि, पृ. 71-76

अतिशय क्षेत्र मूडबिद्री

कारकल से मूडबिद्री 26 कि.मी. दूर है। वेणूर से सम्भवतः 25 कि.मी. की दूरी पर है। मूडबिद्री के लिए बसों का सबसे अच्छा साधन मंगलोर से है। निकटतम वायुयान स्टेशन और बन्दरगाह मंगलोर है। सबसे निकट का रेलवे स्टेशन भी मंगलोर ही है, दिल्ली से मंगलोर तक मंगलोर एक्सप्रेस (जयन्ती जनता) तथा केरल एक्सप्रेस प्रतिदिन यहाँ गमनागमन करती है, स्टेशन से जैनमठ को जाने-आने की सुविधा है।

यहाँ का एक सहस्रस्तम्भों से सुशोभित त्रिभुवन तिलक चूडामणि मन्दिर (चन्द्रनाथ मन्दिर), स्थानीय मन्दिरों में विराजमान पक्की मिट्टी आदि की निर्मित प्राचीन प्रतिमाएँ तथा कुछ हीरा-मोती आदि की दुर्लभ प्रतिमाएँ दृश्य हैं।

कतिपय पाश्चात्य इतिहासज्ञ कलाविदों ने लिखा है कि यहाँ की मन्दिर निर्माण कला, नेपाल और तिब्बत की भवननिर्माण कला से तुलना रखती है। दोनों देशों की कलाओं के साथ कलाओं का साम्य आश्चर्यप्रद एवं ज्ञातव्य है।

निषिधियाँ या समाधियाँ

मूडबिद्री में समाधियों की अद्भुत रचना दर्शनीय है। ऐसी रचना भारत में सम्भवतः अन्यत्र नहीं है। ये समाधियाँ 18 मठाधिपतियों तथा दो व्रती श्रावकों की ज्ञात होती हैं। किन्तु लेख केवल दो ही समाधियों पर अंकित है। समाधियाँ तीन से लेकर आठ तल (खण्ड) तक ही हैं। इनका एक तल दूसरे तल की ढलवाँ छत के द्वारा विभक्त होता है। इस कारण ये काठमाण्डू या तिब्बत से पैगोडा जैसी आकृतिवाली दिखाई देती हैं। इनकी प्रत्येक मंजिल की छत ढलावदार है। ये भारत में विचित्र शैली की ही रचना है।

मूडबिद्री क्षेत्र में 18 प्राचीन दि. जैन मन्दिर, चार चौबीसी मन्दिर, 5 मान स्तम्भ और सैकड़ों प्राचीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। अनेकों विशाल और सुन्दर मूर्तियाँ अपने परिकरों के साथ शोभित हैं। सहस्रकूट चैत्यालय भी दर्शनीय है।

मूडबिद्री न केवल एक प्रमुख जैन केन्द्र, तीर्थ, अमूल्य प्रतिमा संग्रह तथा अपूर्व शास्त्र संग्रह का आयतन है अपितु कवि रत्नाकर की जन्मभूमि भी है। महाकवि की अमरकृतियाँ भी प्रसिद्ध हैं जैसे 'भरतेश वैभव', रत्नाकरशतक' आदि। उनकी स्मृति में यहाँ पर 'रत्नाकर नगर' नाम की एक कॉलोनी बसायी गयी है।

उक्त कारण विशेषों से यह मूडबिद्री क्षेत्र श्रद्धा के साथ पूजा वन्दना एवं कीर्तन के योग्य है।[1]

---

1. भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ—पंचम भाग।

मूडविद्री क्षेत्र का पूजा-काव्य

मूडविद्री क्षेत्र के पूजा-काव्य की रचना को कविवर राजमल पवैया ने करके पवित्र तीर्थ क्षेत्रों के प्रति अपना सद्भक्ति भाव व्यक्त किया है। इस काव्य में कविवर ने 40 पद्यों को दो प्रकार के छन्दों में निबद्ध किया है। इस काव्य के अन्तर्गत अलंकार, छन्द, काव्यगुण, पांचालीरीति, सरलवृत्ति के साथ पावन तीर्थ का वर्णन करने से शान्तरस की समृद्धि द्योतित होती है। जिसके पठन मात्र से ही मानव में आनन्द की धारा प्रवाहित होती है—

दक्षिण भारत कर्नाटक में, दक्षिण कन्नड़भाग प्रसिद्ध,
अतिशय क्षेत्र मूडबिद्री है, कथित जैन काशी सुप्रसिद्ध।
क्षेत्रमूलनायक जिनस्वामी, पार्श्वनाथ को करूँ नमन,
त्रिभुवन तिलक शीर्ष चूडामणि, चन्द्रनाथ प्रभु को वन्दन॥

शास्त्रभण्डार का अर्चन

षटखण्डागम धवल जयधवल, महाधवल जिनशास्त्र महान
द्वादशांग श्रुत श्री जिनवाणी, भाव सहित वन्दूँ धर ध्यान।
जल फलादि वसुद्रव्य अर्घ ले, जिनशास्त्रों को नमन करूं,
भेद,ज्ञान की प्राप्ति हेतु मैं, निज श्रद्धा के सुमन धरूँ॥[1]

श्रवणबेलगोल अतिशयक्षेत्र का परिचय एवं पूजा-काव्य

कर्नाटक के तीर्थ स्थानों में श्रवणबेलगोल को तीर्थराज की संज्ञा देने के योग्य है। यहाँ पहुँचने के लिए केवल सड़क मार्ग है। यह तीर्थ बंगलोर से 142 कि.मी. मैसूर से 80 कि.मी., हासन से 48 कि.मी. और अरसी केरे (रेलवे स्टेशन) से 70 कि.मी. की दूरी पर विद्यमान है। चन्नराय पट्टन नामक स्थान से यह तीर्थ केवल 13 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है।

गोमटेश्वर पूजा-काव्य

श्री गोमटेश्वर पूजा-काव्य की रचना कविवर राजमल पवैया द्वारा की गयी है। इस पूजा-काव्य में 24 पद्यों की रचना तीन प्रकार के छन्दों में पूर्ण की गयी है। इस काव्य में अलंकार, प्रसाद गुण, सरलरीति, काव्य के सद्गुणों द्वारा शान्तरस की धारा प्रवाहित की गयी है। पद्यों के पठन मात्र से अर्थबोध हो जाता है। इस काव्य की रचना कर कवि ने धार्मिक तीर्थक्षेत्रों के प्रति भक्ति भाव दर्शाया है। इस काव्य के कतिपय प्रमुख पद्यों का निदर्शन इस प्रकार है—

---

1. श्री मूडविद्रीपूजन : कविवर राजमल, प्र.—मुमुक्षु मण्डल भोपाल, वी.सं. 2510, पृ. 1-11

गोमटेश्वर स्थापना

जम्बूद्वीप सु भरत क्षेत्र में, है सुन्दर कर्नाटक प्रान्त
श्रवणबेलगुलपुरी मनोहर, बहु जिनमन्दिर शोभित शान्त।
चन्द्रगिरी की भव्य पहाड़ी, पर मन्दिर हैं अति प्राचीन,
विन्ध्यगिरि पर गोमटेश्वर, प्रतिमा आत्मध्यान में लीन॥

अखिल विश्व में नहीं दूसरी ऐसी कहीं श्रेष्ठ प्रतिमा
दशों दिशा में गूँज रही है, श्री बाहुबलि की महिमा।
पूज्य गोमटेश्वर दर्शन से हर्षित हृदय अमन्द हुआ,
भक्तिभाव से प्रभुपूजन का अवसर पा मैं धन्य हुआ।[1]

दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्रों के पूजा-काव्य

क्र. तीर्थ क्षेत्र का नाम	तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य	रचयिता कवि
1. सम्मेदशिखर	सम्मेदशिखरपूजा	कवि जवाहरलाल (19वीं शती)
2. सम्मेदशिखर	सम्मेदशिखरपूजा	कवि जिनेश्वर दास
3. श्री कैलाशगिरिक्षेत्र	कैलाशगिरिपूजा	भगवानदास, (वि. 20वीं शती)
4. श्री गिरनारक्षेत्र	गिरनारक्षेत्रपूजा	रामचन्द्र (19वीं शती)
5. चम्पापुर सिद्धक्षेत्र	चम्पापुरपूजा	पं. दौलतराम वर्णी
6. पावापुर सिद्धक्षेत्र	पावापुरपूजा	पं. दौलतराम वर्णी
7. गुणावासिद्धक्षेत्र	गुणावापूजा	पन्नालाल (वि.सं. 1972)
8. पटना सिद्धक्षेत्र	पटनाक्षेत्रपूजा	पन्नालाल (वि.सं. 1972)
9. खण्डगिरि उदयगिरि	ख.उ.क्षेत्रपूजा	मुन्नालाल कवि
10. कुन्थलगिरिक्षेत्र	कुन्थलगिरिपूजा	पं. कन्हैयालाल, कविराजमल
11. गजपन्था क्षेत्र	गजपन्थापूजा	कवि किशोरीलाल (सं. 1949)
12. मांगीतुंगीगिरिक्षेत्र	मांगीतुंगीपूजा	कवि गोपालदास, कविराजमल
13. पावागढ़क्षेत्र	पावागढ़पूजा	कवि सेवक (राजमल सं. 1967)
14. शत्रुंजयतीर्थक्षेत्र	शत्रुंजयपूजा	कवि भगोतीलाल (सं. 1949)
15. हस्तनापुरक्षेत्र	हस्तिनापुरपूजा	पं. मंगलसेन विशारद
16. चौरासीमथुरातीर्थ	मथुरापूजा	अज्ञात
17. तारंगागिरिक्षेत्र	तारंगागिरिपूजा	कवि दीपचन्द्र, कवि राजमल
18. सिद्धवरकूटक्षेत्र	सिद्धवरकूटपूजा	महेन्द्रकीर्ति

1. पूजनदीपिका : कवि राजमल, पृ. 36-41

क्र. तीर्थ क्षेत्र का नाम	तीर्थक्षेत्र पूजा काव्य	रचयिता कवि
19. चूलगिरि (बड़वानी)	चूलगिरिपूजा	छगनलाल
20. मुक्तागिरिक्षेत्र	मुक्तागिरिपूजा	जवाहरलाल, राजमल पवैया
21. कुण्डलपुरक्षेत्र	कुण्डलपुरपूजा	मूलचन्द्र वत्सल
22. रेशन्दीगिरिक्षेत्र	रेशन्दीगिरिपूजा	वर्णी दौलतराम
23. द्रोणगिरिक्षेत्र	द्रोणगिरिपूजा	मंगलसेन विशारद/ पं. गोरेलाल शास्त्री
24. द्रोणगिरिक्षेत्र	द्रोणगिरिपूजा	ब्र. भगवानदास
25. अहारक्षेत्र	अहारक्षेत्रपूजा	पं. भगवानदास/ पं. बारेलाल राजवैद्य
26. पावागिरिक्षेत्र	पावागिरिपूजा	विष्णुकुमार कवि
27. सोनागिरिक्षेत्र	सोनागिरपूजा	राजमल पवैया/मीतासुत
28. राजगिरिक्षेत्र	राजगृहीपूजा	मुन्नालाल कवि
29. मन्दारगिरिक्षेत्र	मन्दारगिरिपूजा	मुन्नालाल कवि
30. अहिच्छत्रपार्श्वनाथ	अहिच्छत्रपार्श्वपूजा	चन्द्र कवि
31. गोमटेश्वर बाहुबलि	गोमटेश्वरपूजा	जिनेश्वरदास कवि/राजमल कवि
32. चान्दनपुरमहावीरक्षेत्र	चाँदनपुर महावीरपूजा	कवि पूरनमल
33. पद्मपुरीक्षेत्र	पद्मपुरीक्षेत्रपूजा	कवि पूरनमल
34. चन्द्रप्रभ (तिजारा)	चन्द्रप्रभक्षेत्रपूजा	कवि सुमति
35. आदिनाथचमत्कार	आदिनाथचमत्कार पूजा	राजमल कवि
36. केशरियाक्षेत्र	केशरियाक्षेत्रपूजा	लक्ष्मीसेन कवि वि.सं. 1760
37. देवगढ़क्षेत्र	देवगढ़पूजा	प्रेमचन्द्र कवि
38. मक्सीपार्श्वनाथ	पार्श्वनाथपूजा	बख्तावर रतन
39. थूबौनक्षेत्र	थूबौनक्षेत्रपूजा	कवि चन्द्र
40. पपौराक्षेत्र	पपौराक्षेत्रपूजा	पं. दरयावसिंह
41. श्रमणबेलगोलक्षेत्र	गोमटेशबाहुबलिपूजा	कवि नीरज जैन सन् 1981
42. लूणवां अतिशयक्षेत्र	चन्द्रप्रभपूजा	प्रभुदयाल कवि सन् 1982
43. तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्र	निर्वाणक्षेत्रपूजन	कविवर द्यानतराय
44. अयोध्यातीर्थक्षेत्र	आदिनाथपूजा	कविवर मनरंगलाल
45. वैशालीकुण्डलपुर	महावीरजयन्तीपूजा	कविवर राजमल पवैया

क्र.	तीर्थ क्षेत्र का नाम	तीर्थक्षेत्र पूजा-काव्य	रचयिता कवि
46.	खजुराहोक्षेत्र	शान्तिनाथपूजन	कवि सुधेश जैन / प्रो. [illegible]
47.	चाँदखेड़ी अति.क्षेत्र	क्षेत्रपूजा ऋषभदेवपूजा	मंगलबाई
48.	चाँदखेड़ी अति.क्षेत्र	क्षेत्रपूजा ऋषभदेवपूजा	नमजी
49.	चाँदखेड़ी अति.क्षेत्र	क्षेत्रपूजा ऋषभदेवपूजा	मिश्रीलाल
50.	चाँदखेड़ी अति.क्षेत्र	क्षेत्रपूजा ऋषभदेवपूजा	रूपचन्द
51.	मूडबिद्री अतिशयक्षेत्र	चतुर्विंशति तीर्थंकरपूजा	कवि गजमल

श्वेताम्बर जैन तीर्थों के पूजा-काव्य इस प्रकार हैं :

क्र.	पुस्तक का नाम	रचयिता
1.	विविध पूजा संग्रह	
2.	जैन रत्नसार	
3.	स्तवन सज्झाय संग्रह	विजयलब्धि सूरीश्वर
4.	आत्मगुंजन	विजयलब्धि सूरीश्वर
5.	श्री नवपद पूजा	मुनि मुक्तिसागर जी
6.	राइदेवसि प्रतिक्रमण	मुनि मंगलसागर
7.	स्नात्रपूजा विधि	पं. हरजीवनदास
8.	स्नात्र पूजा	पं. वीरविजय
9.	शान्ति जिनकलश	श्री ज्ञानविमल सूरि
10.	स्नात्र पूजा	श्री देवपाल कवि
11.	श्री आदिनाथ जन्माभिषेक कलश	पं. हरजीवनदास
12.	श्री पार्श्वनाथ कलश	पं. हरजीवनदास
13.	श्री अजितनाथ कलश	पं. हरजीवनदास
14.	श्री वर्धमानजन्माभिषेक कलश	पं. हरजीवनदास
15.	स्नात्र पूजा	पं. देवचन्द्र

क्र.	पुस्तक का नाम	रचयिता
16.	श्री अठीसो अभिषेकनी विगत	अज्ञात
17.	पंचकल्याणक पूजाविधि	अज्ञात
18.	अष्टप्रकारी पूजा	विद्याविजय मुनि
19.	पंचकल्याणक पूजा	अज्ञात
20.	नवाष्ट प्रकारी पूजा	अज्ञात
21.	श्री बार व्रतनी पूजा	अज्ञात
22.	पिस्तालीश आगम पूजा	अज्ञात
23.	श्री चौसठ प्रकारी पूजा	अज्ञात
24.	पंचकल्याणक पूजा	पं. रूपविजय
25.	वीशस्थानक तपपूजा	श्री विजयलक्ष्मी सूरि
26.	सत्तरभेदी पूजा	सकलचन्द्र उपाध्याय
27.	श्रीनवपद पूजा	यशोविजय उपाध्याय
28.	श्री नवपद पूजा	पं. पद्मविजय
29.	श्री अष्टापद पूजा	श्री दीपविजय
30.	नवाणु अभिषेक पूजा	पं. पद्मविजय
31.	सत्तर भेदी पूजा	श्री आत्माराम
32.	वास्तुक पूजा	बुद्धिसागर सूरि
33.	वास्तुक पूजा	श्री विजयमाणिक्य सिंह सूरि
34.	त्रयीस्तवन	प्रभु श्रीपुंखणाना
35.	शान्ति पूजा	विजयवल्लभ सूरि
36.	श्री पंचपरमेष्ठि पूजा	अज्ञात
37.	श्री शान्तिजिन आरती	अज्ञात
38.	श्री पंचतीर्थ पूजा	अज्ञात
39.	आध्यात्मिक पद्यसंग्रह	अज्ञात
40.	पूजा भणावली बखतना रागडुहा	अज्ञात
41.	श्री जिन पूजा	अज्ञात

नवम अध्याय

जैन पूजा-काव्यों का महत्त्व

जैनदर्शन में दो प्रकार के मार्ग कहे गये हैं जो आत्मशुद्धि के लिए आवश्यक हैं, (1) निवृत्ति मार्ग, (2) प्रवृत्ति मार्ग।

निवृत्ति मार्ग में राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारों की आत्मा से निवृत्ति (त्याग) की जाती है और प्रवृत्ति मार्ग में शुभकार्य में आचरण किया जाता है। यदि दोषों (विकारों) की निवृत्ति के साथ शुभकार्य में प्रवृत्ति (आचरण) होती है तो शुभप्रवृत्ति का होना प्रयोजनभूत (सफल) है। जैसे कोई व्यक्ति वैभव की इच्छा के बिना भगवत्पूजा कर रहा है तो उसकी पूजाप्रवृत्ति सार्थक है। यदि दोषों या लोभ-लालच आदि विकारों के रहते हुए कोई व्यक्ति भगवत्पूजा, स्तवन या मन्त्र की जाप कर रहा है तो उसकी पूजा, स्तवन आदि धार्मिक क्रिया सार्थक या प्रयोजनभूत नहीं है। कारण कि बाह्यप्रवृत्ति करते हुए भी मानव की अन्तरंग निवृत्ति नहीं है।

जैनदर्शन में पूजारूप प्रवृत्ति जो दर्शाया गया है वह अन्तरंग में विकृतभावों की निवृत्ति के साथ दर्शाया गया है। इस मार्ग को पूजाकर्म या कृतिकर्म के नाम से घोषित किया गया है जो मुनिराज और नागरिक गृहस्थ दोनों के लिए उपयोगी है, कृतिकर्म के छह प्रकार कहे गये हैं :

स्वाधीनतापरीतिः, त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम्॥[1]

सारांश–कृतिकर्म छह प्रकार कहा गया है–(1) कृतिकर्म में वन्दना करनेवाले की स्वाधीनता, (2) तीन प्रदक्षिणा करना, (3) तीन कायोत्सर्ग करना, अर्थात् खड़े होकर नव बार महामन्त्र का पाठ करना, (4) तीन निषद्या अर्थात् कायोत्सर्ग के पश्चात् पद्मासन दशा में आलोचना करना, चैत्यभक्ति आदि करना, (5) चारशिरोनति (प्रणाम) चारों दिशाओं में करना, (6) 12 आवर्त चार दिशाओं

---

1. देववन्दना दि. संग्रह : सं. विमलमति माता जी, प्रका.–शान्तिवीरनगर श्री महावीर जी, 1961 ई., पृ. 1।

में करना अर्थात् सम्पुटित करों को वाम ओर से दक्षिण की ओर घुमाना पश्चात् प्रणाम करना। मुनिराजों के लिए इन छह कृतिकर्म करते समय अष्ट द्रव्यों की आवश्यकता नहीं होती। ये साधुश्रेष्ठ आत्मशुद्धि के लिए कृतिकर्म करते हैं, लोकेषणा, आत्मसम्मान और यशप्राप्ति के लिए नहीं करते हैं तथा आहार, विहार और निहार करते हुए यथासम्भव होनेवाले दोषों की आलोचना भी कृतिकर्म से करते हैं। पूर्वोक्त छह कृतिकर्मों को साधुवर पूर्ण विधि से और गृहस्थ या श्रावक एकदेश (आंशिक) रूप से सफल बनाते हैं। दोनों के लिए कृतिकर्म का श्रेष्ठ महत्त्व है।

कृतिकर्म (पूजाकर्म) की अन्य प्रकार से व्याख्या :

मूलाचारग्रन्थ में कृतिकर्म के अपेक्षाकृत चार पर्यायशब्द कहे गये हैं :

(1) कृतिकर्म, (2) चितिकर्म, (3) पूजाकर्म, (4) विनयकर्म।

(1) जिस वर्णोच्चारणरूप वाचनिक क्रिया के करने से, आत्म-परिणामों की पवित्रतारूप मानसिक क्रिया के करने से और नमस्कारादि रूप कायिक क्रिया के करने से, ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का छेदन होता है। उसे कृतिकर्म कहते हैं। संस्कृत में विग्रह इस प्रकार होता है—कृत्यते—छिद्यते अष्टकर्माणि येन कर्मणा (क्रिया) इति कृतिकर्म।

(2) यह पूजाकर्म पुण्यसंचय का कारण है अतः इसको चितिकर्म कहते हैं।

(3) इस कर्म में परमदेव शास्त्रगुरु, तीर्थंकर एवं परमेष्ठी देवों का पूजन किया जाता है इसलिए इसको पूजाकर्म कहते हैं।

(4) इस क्रिया के द्वारा पूज्य परमदेव शास्त्र गुरु में पूजक द्वारा श्रेष्ठ विनय प्रकाशित होती है इसलिए इसको विनय कर्म कहते हैं।

संस्कृत में इसका विग्रह—विनीयते निराक्रियते कर्माष्टकं येन इति विनयकर्म।

तात्पर्य यह कि जिस कृतिकर्म के द्वारा अशुभ कर्मों का क्षय होता और पुण्यकर्म का संचय होता है, विनयगुण का प्रधान कारण पूजाकर्म है इसलिए यति-वर्ग को और नागरिक गृहस्थों को सावधानी से अपनी शक्ति के अनुसार करना आवश्यक है।

मूलाचार का प्रमाण उक्त विषय पर :

> किदियम्मं चिदियम्मं, पूयाकम्मं च विणयकम्मं च।
> कादव्वं केण कस्स व, कधेव कहिं व कदिखुत्तो ॥[1]

मूलाचार में कृतिकर्म के व्याख्यान के प्रसंग में विनयकर्म का स्पष्टीकरण किया गया है। वह इस प्रकार है—(1) लोकानुवृत्तिविनयकर्म दो प्रकार का है—(1) श्रेष्ठसाधु अथवा श्रेष्ठत्यागी धर्मात्मा के आने पर, आसन से उठना,

1. आ. वट्टकेर—सं. कैलाशचन्द्रशास्त्री, प्र.—भारतीय ज्ञानपीठ, देहली, 1984, मूलाचार, पृ. 428, श्लोक 576 अधिकार-7.

अंजलिकरण, नमस्कृति, आसनदान, तथा अतिथिसत्कार करना प्रथमविनयकर्म है। (2) अपनी शक्ति एवं विभव के अनुकूल भगवत्पूजा करना द्वितीय लोकानुवृत्तिविनयकर्म है। यह पूजा गन्ध, पुष्प, धूप आदि के द्वारा विनय सहित की जाती है। द्रव्य शुद्ध एवं प्रासुक होना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थ के लिए कृतिकर्म के समय आठ द्रव्यों की आवश्यकता होती है। योगि श्रेष्ठ के लिए द्रव्यों की आवश्यकता नहीं होती, उनके निवृत्तिपरक भाव, द्रव्य के बिना ही स्थिर रहते हैं। उनके महाव्रत की साधना होती है। इस विनय गुणपूर्ण कृतिकर्म से उन्नत गुणों (रत्नत्रय आदि) की सम्प्राप्ति होती है। पूजाकर्म का यह महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन है।

विनयकर्म का द्वितीय मुख्य भेद मोक्ष विनय है। मुक्ति सम्बन्धी विनय पंच प्रकार की होती है—(1) दर्शन विनय, (2) ज्ञान विनय, (3) चारित्रविनय, (4) तप विनय, (5) औपचारिक विनय।

जीव आदि सात तत्त्व एवं छह द्रव्यों का निर्दोष श्रद्धान करना दर्शन विनय है। यथार्थ तत्त्वज्ञान की उपासना करना ज्ञान विनय है। पंचमहाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्तियों की साधना करना चारित्र विनय है। द्वादश तपों का निर्दोष आचरण करना तप विनय है। पूर्वोक्त विनयों की साधना में तथा पंचपरमेष्ठी परमदेवों में करबद्ध प्रणाम आदि का आचरण करना औपचारिक विनय है। इन पंच प्रकार विनयों के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति अथवा परमात्मपद की प्राप्ति होती है इसलिए कृतिकर्म (पूजाकर्म) का महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन सिद्ध होता है।

कृतिकर्म या पूजाकर्म की साधना के अन्य प्रकार :

देवपूजा के छह अंग होते हैं—(1) प्रस्तावना, (2) पुराकर्म, (3) स्थापना, (4) सन्निधापन, (5) पूजा, (6) पूजाफल। (1) जिनेन्द्र देव गुणों का स्मरण करते हुए विधिपूर्वक अभिषेक करना प्रस्तावना कहा जाता है।

(2) सिंहासन के चारों कोणों पर स्वास्तिक शोभित, जलपूर्ण चार कलशों की स्थापना करना पुराकर्म कहा जाता है।

(3) सिंहासन पर विधिपूर्वक अर्हन्तदेव के स्थापित करने को स्थापना कर्म कहते हैं।

(4) ये जिनेन्द्र देव हैं, यह सिंहासन मेरुपर्वत है, जलपूर्ण ये कलश क्षीरोदधि के जल से पूर्ण कलश हैं, अभिषेक के लिए उद्यत हुआ मैं इन्द्र हूँ, ये मानव देवता हैं। ऐसा विचार करना सन्निधापन है।

(5) अभिषेक के साथ विधिपूर्वक पूजन करना पूजाकर्म है।

(6) स्वर्ग की प्राप्ति तथा विश्वकल्याण की कामना करना, आत्मकल्याण की कामना करना पूजा का फल है। इसी विषय को सोमदेवाचार्य ने यशस्तिलक चम्पू ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है :

प्रस्तावना पुराकर्म, स्थापना सन्निधापनम् ।
पूजा पूजाफलं चेति, षड्विधं देवसेवनम् ॥[1]

इसके अतिरिक्त बहुसंख्यक आचार्यों ने नागरिक गृहस्थों के जो दैनिक कर्तव्य शास्त्रों में दर्शाये हैं। उनमें कृतिकर्म (पूजाकर्म) का निर्देश अवश्य किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मशुद्धि के लिए पूजाकर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गृहस्थाचार में अति आवश्यक दैनिक कर्तव्यों के कुछ आचार्य कथित प्रमाण :

श्रावक के दैनिक आवश्यक कर्मों में आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राभृतग्रन्थ में तथा अन्य आचार्यों ने वरांगचरित और हरिवंशपुराण में पूजा, दान, तप एवं शील ये चार दैनिक कर्म दर्शाये हैं।

भगवज्जिनसेनाचार्य ने इनको अधिक व्यापक बनाकर—(1) पूजा, (2) वार्ता, (3) दान, (4) स्वाध्याय, (5) संयम, (6) तप—इनको श्रावक के आवश्यक कर्म (कर्तव्य) वर्णित किये हैं। आचार्य सोमदेव और पद्मनन्दि ने (1) देवपूजा, (2) गुरूपासना, (3) स्वाध्याय, (4) संयम, (5) तप, (6) दान—ये छह आवश्यक कर्म घोषित किये हैं। इन सभी आचार्यों ने देवपूजा को श्रावक का प्रथम आवश्यक कर्तव्य बताया है।

परमात्मप्रकाश (पृ. 168) में तो यहाँ तक कहा गया है कि—"तूने न तो मुनिराजों को दान ही किया, न जिन भगवान् की पूजा ही की, न पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया, तब तुझे मोक्ष का लाभ कैसे होगा"। इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् की पूजा श्रावक (गृहस्थ) को अवश्य करना चाहिए। भगवान् की पूजा मोक्ष-प्राप्ति का एक उपाय है।

आदिपुराण पर्व 38 में पूजा के चार भेद बताये हैं—(1) नित्यपूजा, (2) चतुर्मुख पूजा, (3) कल्पद्रुम पूजा, (4) आष्टाह्निक पूजा। अपने घर से गन्ध, पुष्प, अक्षत ले जाकर जिनालय में जिनेन्द्रदेव की पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह (पूजा) कहलाता है। मन्दिर और मूर्ति का निर्माण कराना, मुनियों की पूजा करना भी नित्यमह कहलाता है। मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की गयी पूजा चतुर्मुख पूजा कहलाती है। चक्रवर्ति द्वारा की जानेवाली पूजा कल्पद्रुम पूजा होती है और आष्टाह्निका पर्व में नन्दीश्वर द्वीप में देवों द्वारा की जानेवाली पूजा आष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

पूजा अष्टद्रव्य से की जाती है—(1) जल, (2) चन्दन, (3) अक्षत, (4) पुष्प, (5) नैवेद्य, (6) दीप, (7) धूप, (8) फल। इस प्रकार के उल्लेख प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थों में मिलते हैं—तिलोयपण्णत्ति (पंचम अधिकार, गाथा 102 से 111 तक) में नन्दीश्वर द्वीप में आष्टाह्निका पर्व में देवों द्वारा भक्तिपूर्वक की जानेवाली पूजा का वर्णन है। उसमें अष्ट द्रव्यों का वर्णन आया है। धवला टीका में ऐसा ही वर्णन है।

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि : प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ. 27।

आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व 17, श्लोक 252) में भरत द्वारा तथा पर्व 23, श्लोक 106 में इन्द्रों द्वारा भगवान् की पूजा के प्रसंग में अष्टद्रव्यों का वर्णन आया है।[1]

इस प्रकार उक्त आचार्य कथित प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि नागरिक गृहस्थों के दैनिक कर्तव्यों में देवपूजा का प्रथम महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब कृतिकर्म के मूल्यांकन का दिग्दर्शन कराया जाता है :

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः, स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥[2]

तात्पर्य—परमात्मा के पवित्र गुणों का कीर्तन करना स्तुति है। यह पूजा का एक प्रकार है। भव्य (मुक्ति का पात्र) प्रसन्नचित्तवाला या निर्मलबुद्धिमान् मानव स्तोता कहा जाता है। कृतकृत्य परमसिद्ध परमात्मा आप स्तुत्य (स्तुति के योग्य हैं) और भक्तिपूर्वक स्तुति या पूजा का फल स्वर्ग आदि की विभूति प्राप्त करते हुए मुक्ति को प्राप्त करना है। इस भक्ति मार्ग के पदचतुष्टय को दूसरे शब्दों में पूजा-पूजक-पूज्य और पूजाफल इस पदचतुष्टय से कहा जाता है।

भगवत्पूजा का एक प्रकार (भेद) स्तोत्र साहित्य महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है जिसका वर्णन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है। उसके परम मूल्यांकन का दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जा रहा है। सबसे प्रथम संस्कृत स्तोत्र साहित्य में सहस्रनामस्तोत्र प्रसिद्ध एवं विशालकाय स्तोत्र कहा जाता है। भगवज्जिनसेन आचार्य ने स्वरचित सहस्रनाम स्तोत्र की पीठिका के अन्त में दर्शाया है :

एवं स्तुत्वा जिनं देवं, भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्रं पापशान्तये ॥

तथा इस स्तोत्र के प्रथम श्लोक में भी स्तोत्र का मूल्यांकन दर्शाया है जो कि स्तोत्र पाठक के मानस पटल को पवित्र कर देता है, वह इस प्रकार है :

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणं, त्वां गिरांपतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण, तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥[3]

क्रमशः श्लोकद्वय का सारांश—(1) इस प्रकार विद्वान् श्रेष्ठ भक्ति से जिनेन्द्रदेव का स्मरण कर पाप या दुष्कर्म की शान्ति के लिए जिनेन्द्रदेव के एक हज़ार आठ नामों का पाठ करें।

1. भारत के दि. जैन तीर्थ : प्रथम भाग : सम्पा. बलभद्र जैन, प्र.- भारत दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई, सन् 1974, पृ. 16-17, प्राक्कथन।
2. धर्मध्यानदीपक : सं. श्री अजितसागर जी महाराज, प्र.- ब्र. लाडमल जैन महावीर जी, 1978, पृ. 50।
3. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 435।

(२) आचार्य परम्परा से प्रसिद्ध, एक हज़ार आठ उज्ज्वल लक्षणों से शोभित, सर्वविद्या के अधिपति आपका, हम जिनसेन अभीष्ट की सिद्धि के लिए एक सहस्र आठ शुभनामों के द्वारा स्तवन करते हैं।

इन दो पद्यों में क्रमशः परमात्मा के नामों का स्तवन करने से पापों का क्षय और इष्ट स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्तिरूप फल दर्शाया गया है।

वैक्रम आठवीं शती की घटना है—संस्कृत साहित्यप्रिय तथा मन्त्रशास्त्रप्रिय महाराज भोज ने श्री मानतुंगाचार्य के मन्त्रवाद की परीक्षार्थ कारागार में आचार्य को विराजमान करा दिया था। कारागार के 48 द्वारों में 48 ताले निबद्ध थे एवं उन आचार्य का शरीर 48 ज़ंजीरों से शिर से लेकर पाद तक निबद्ध था। आचार्यवर ने भक्तिभाव से भक्तामर स्तोत्र की संस्कृत में रचना कर स्वमानस-पटल पर लिख लिया और तीन दिनों तक अखण्ड पाठ करते रहे। इस स्तोत्र के प्रभाव से कारागार के 48 ताले खुलने के साथ 48 द्वार खुले गये और आचार्यश्री कारागार के बाह्यक्षेत्र में आकर एक शिलाखण्ड पर विराजमान हो गये। कई बार वे पुनः बन्दीगृह में कर दिये गये और स्तोत्र के प्रभाव से पुनः पुनः निकलकर शिलाखण्ड पर स्थित हो जाते थे। यह चमत्कार देखकर और आचार्यश्री के प्रभावपूर्ण मन्त्रशक्ति को सफलतापूर्ण ज्ञातकर महाराज भोज जैनधर्म के प्रति श्रद्धालु हो गये। भक्तामरस्तोत्र को यदि मन्त्रस्तोत्र कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। भक्तामरस्तोत्र का मूल्यांकन :

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि -
संग्रामवारिधिमहोदर बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥

सारांश—जो बुद्धिमान् मानव आपके इस स्तोत्र का पाठ करता है उसका, मदोन्मत्त हाथी, सिंह, वनाग्नि, सर्प, युद्ध, समुद्र या जलाशय, जलोदर आदि रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न हुआ भय, भय से क्या शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् आपका नित्यस्तवन करने से सब प्रकार का भय विनष्ट हो जाता है और जीवन की यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न होती है। इस स्तोत्र का अन्तिम पद्य :

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्ण विचित्र पुष्पां।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मी ॥[1]

काव्यसौन्दर्य—भक्ति रस से परिपूर्ण एवं श्लेषालंकार से अलंकृत इस काव्य

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 495.

के दो अर्थ द्योतित होते हैं। प्रथम अर्थ पुष्पमाला का, द्वितीयभक्तामरस्तोत्र का।

प्रथम अर्थ—हे जिनेन्द्र देव! इस विश्व में जो मानव उत्साह के साथ अच्छे धागे से गूँथी गयी, मनोहर विचित्र वर्णवाले पुष्पों से शोभित फूलमाला को सदा गले में पहनता है उसका सम्मान बढ़ जाता है। जीवन में सुखी और लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) से सम्पन्न हो जाता है। स्वतन्त्र हो जाता है।

द्वितीय अर्थ—हे जिनेन्द्र भगवन्! इस जगत् में जो मानव, मेरे द्वारा (मानतुंगाचार्य द्वारा) भक्तिपूर्वक, प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि काव्यगुणों से रची गयी, मनोहर वर्णों (अक्षरों) से शोभित, आपकी इस भक्तामरस्तुति (स्तोत्र) को सर्वदा शुद्ध कण्ठ से पढ़ता है, सम्मान से उन्नत उस पुरुष को अथवा मानतुंगाचार्य को लक्ष्मी अर्थात् स्वर्ग मोक्ष आदि विभूति स्वतन्त्र रूप से प्राप्त होती है अर्थात् बहिरंग एवं अन्तरंग गुणरूप लक्ष्मी प्राप्त होती है।

तृतीय अर्थ—भक्तामरस्तोत्र के प्रणेता मानतुंग आचार्य का नाम भी इस पद्य के चतुर्थ चरण में आ जाता है 'मानतुंग'।

कल्याणमन्दिर स्तोत्र का मूल्यांकन :

> जननयनकुमुदचन्द्र-प्रभास्वराः स्वर्ग सम्पदो भुक्त्वा।
> ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥[1]

सारांश—आचार्य कुमुदचन्द्र कहते हैं कि जो भव्यमानव मन-वचन-काय से सावधान होकर विनय के साथ शास्त्रकथित विधिपूर्वक परमात्मा पार्श्वनाथ के पवित्र गुणों का स्तवन करते हैं, हे भगवन्! वे मानव देदीप्यमान स्वर्ग की सम्पत्तियों का भोग करते हुए, कर्ममल से रहित, परमविशुद्ध होकर शीघ्र ही मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करते हैं। स्पष्टार्थ यह है कि जो मानव भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं वे मध्यम फल स्वर्ग आदि के सुख भोगते हुए अन्तिम श्रेष्ठफल मुक्ति को अवश्य प्राप्त करते हैं।

पूर्वकाल में उत्तरभारत के दिगम्बर आचार्य श्री वृद्धवादि सूरि का शास्त्रार्थ एक संस्कृतज्ञ विद्वान् के साथ, 'शरीर की शुद्धि और अशुद्धि' के विषय में हुआ था। श्री वृद्धवादि सूरि का पक्ष—शरीर जड़ (अचेतन) होने से अशुद्ध है। वह सप्त धातु और सप्त उपधातु का पिण्ड है। पं. कुमुदचन्द्र का विपक्ष-शरीर, स्नान आदि क्रिया से पवित्र होता है। तीनबार शास्त्रार्थ हुआ और तीनों ही बार पं. कुमुदचन्द्र ने विपक्ष में पराजय प्राप्त किया। शास्त्रार्थ में तत्त्वनिर्णय का परामर्श होने से पण्डित कुमुदचन्द्र ने एक ज्ञानात्मक निर्णय प्राप्त किया कि स्वभावतः शरीर अशुद्ध है और आत्मा शुद्ध है। इस शास्त्रार्थ से प्रभावित होकर पं. कुमुदचन्द्र ने अपनी गलती पर पश्चात्ताप

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 504।

करते हुए, कल्याण-मन्दिर स्तोत्र की रचना की। एकीभावस्तोत्र में भक्तिगंगा का मूल्यांकन :

पूर्व समय में भारत के जयसिंहपुर (नगर) के एक भीषण वन में तपस्या करते हुए आचार्य वादिराज को कुष्ट का रोग हो गया। तपस्या के प्रभाव से, वीतराग परमात्मा का गुणार्चन करते हुए आचार्य ने 'एकीभावस्तोत्र' की सर्जना की और पवित्र आध्यात्मिक दवा के सेवन से उनका भयंकर कुष्ट क्षीण हो गया। एकीभाव स्तोत्र के चतुर्थ पद्य से यह चमत्कार सिद्ध होता है, चतुर्थ पद्य का सारांश :

जब आपके स्वर्ग लोक से आगमन के छह मास पूर्व से ही रत्नों की वर्षा होने के कारण यह पृथ्वी सुवर्णमय हो गयी। अब तो आप हमारे मनमन्दिर में ही विराजमान हो चुके हैं, आपके प्रभाव से हमारा यह शरीर सुवर्ण जैसी कान्तिवाला हो जाए तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। अर्थात् एकीभाव-स्तोत्र के माध्यम से परमात्मा के गुणों का कीर्तन करने से आचार्य वादिराज का शरीर रोगरहित, सुवर्ण के समान कान्तिवाला सुन्दर हो गया था। विषापहार स्तोत्र का मूल्यांकन :

संस्कृति के संरक्षक महाकवि धनंजय के इकलौते पुत्र को एक समय सर्प ने डस लिया। उस समय महाकवि भगवत्पूजन में तल्लीन थे। पुत्र को निर्विष करने के लिए बहुत उपाय किये गये, पर सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में माता ने पुत्र को मन्दिर के द्वार पर रख दिया, रुदन तो कर ही रही थी। पूजन समाप्त करने के पश्चात् महाकवि ने विषापहार स्तोत्र का सृजन करते हुए पुनः परमात्मा वीतराग देव के गुणों का कीर्तन किया। उसके प्रभाव से महाकवि ने पुत्र को हाथ पकड़कर उठा दिया! हँसते हुए पुत्र, माता और पिता ने (महाकवि ने) भगवान के समक्ष पुनः स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया।

विषापहार स्तोत्र के अन्त में संस्कृतज्ञ महाकवि धनंजय सत्यार्थ भक्ति का परिणाम दर्शाते हैं :

> वितरति विहिता यथाकथंचित्, जिनविनताय मनीषितानि भक्तिः।
> त्वयिनुतिविषया पुनर्विशेषाद्, दिशति सुखानि यशो धनं जयं च ॥[1]

भावसौन्दर्य—हे भगवन्! जिस किसी प्रकार की गयी भगवद्भक्ति, नम्र मानव के लिए इच्छित फल को प्रदान करती है। पुनः आपके विषय में की गयी स्तुति मूलक भक्ति विशेष रूप से सुख, यश, धन-सम्पदा और जीवन में विजय को प्रदान करती है। इस स्तोत्र में समस्त पद्य भक्तिरस और विविध अलंकारों से ओतप्रोत हैं जो भक्ति का मूल्यांकन करते हैं।

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 514।

अनन्तानन्तसंसारसन्ततिच्छेद कारणम्।
जिनराजपदाम्भोज-स्मरणं शरणं मम ॥[1]

तात्पर्य—वीतराग जिनेन्द्र देव के स्मरण, कीर्तन, स्तुति, पूजन और प्रणाम करने से अपार, अनन्तानन्त संसार की जन्म-मरणरूप परम्परा का नाश होता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है अतएव आप हमारे लिए शरण हैं।

रचनात्मक पूजा का मूल्यांकन—पशुप्राणी का आदर्श :

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत् स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥[2]

भावसौन्दर्य—पच्चीस सौ वर्ष पूर्वकालिक एक पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। राजगृह नगर (बिहार प्रान्तस्थ) की एक वापिका में पूर्वजन्म के संस्कार से परिपूर्ण एक मेंढक ने भगवान महावीर की अर्चा करने के भाव किये। वह कमल की एक कली को मुख में लेकर भगवान महावीर के पूजन के लिए वापिका से निकलकर सड़क पर चलने लगा। उसके मानस-पटल में भगवान महावीर की अर्चा का अटल श्रद्धान था। उसी समय मगध देश के सम्राट श्रेणिक अपने दलबल के साथ, भगवान महावीर के दर्शन एवं उपदेश श्रवण के लिए, राजगृह नगर के विपुलाचल की ओर जा रहे थे, अकस्मात् उन सम्राट के महागज के पद (पैर) के नीचे दबकर वह पूजाभाव से ओतप्रोत मेंढक मरण को प्राप्त हो गया और प्रथम स्वर्ग में अनेक ऋद्धि आदि गुणों से सम्पन्न देवपर्याय को प्राप्त हो गया। उसने अपने मुकुट के अग्रभाग में मेंढक का चिह्न शोभित कर रखा था। वह शीघ्र ही भगवान महावीर के समवसरण में गया। उसके मुकुट में मेंढक का लक्षण देखकर अन्य देवों ने आश्चर्य के साथ, मुख्य गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम से प्रश्न किया कि इस देव के मुकुट में दर्दुर का लक्षण क्यों है? गणधर ने उत्तर दिया कि इसी नगर के श्रेष्ठी जिनदत्त की वापिका में रहनेवाले एक मेंढक ने भगवान महावीर की अर्चा के शुद्धभाव किये थे, वह पूजा के लिए महावीर के समवसरण में आ रहा था। सहसा म. श्रेणिक के गजराज के पैर से उसका निधन हो गया और वह इस पवित्र देवपर्याय को प्राप्त हुआ है। अतएव इस देव के मुकुट में मेंढक का चिह्न है।

इस प्रकार पशु पर्यायधारी उस मेंढक ने जब भगवान महावीर की पूजा के भावमात्र से देवपद प्राप्त कर लिया, तब फिर जो मानव अष्टद्रव्य के माध्यम से शुद्धभावपूर्वक तीर्थंकर महावीर का अर्चन कर श्रेष्ठ देवपद प्राप्त करते हुए अक्षयसुख

---

1. धर्मध्यान दीपक - पृष्ठ—8।
2. तथैव, पृ. 89।

धाम मुक्ति को प्राप्त करें, इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

इस प्रकार राजगृह नगर के एक मेंढक ने जगत् की जनता के समक्ष पूजन के महाप्रभाव को उपस्थित किया। यह पूजा का आदर्श आज भी पौराणिक कथा के माध्यम से जगत् में प्रसिद्ध है। वे विश्ववन्द्य भगवान महावीर स्वामी हम सबके लिए भी पावन दर्शन प्रदान करें।

इस ही भगवत्पूजन के प्रभाव को आचार्य समन्तभद्र ने भी स्वरचित रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ में दर्शाया है :

अर्हच्चरणसपर्या, महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः, कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥[1]
देवाधिदेवचरणे, परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि, परिचिनुयादाद्दृतोनित्यम् ॥[2]

भावसौन्दर्य–सद्गृहस्थ (श्रावक) शुद्धभावों के साथ, पुण्यमनोरथों को पूर्ण करनेवाले, इन्द्रियों के विषय विकारों को भस्म करनेवाले अरहन्त भगवान के चरणों में प्रतिदिन समस्त दुःखों को दूर करनेवाली पूजा का आचरण करें। इस पद्य से भगवत्पूजा का यह फल ध्वनित होता है कि जो मानव भक्ति भाव से पूजा करते हैं वे इस जन्म के तथा अग्रिम जन्म के अनेक दुःखों को नष्ट कर अपना जीवन धर्म कीर्ति सुखमय बनाते हैं।

यतिवृषभ आचार्य के मत से पूजा का मूल्यांकन :

सम्माइट्ठी देवा, पूजा कुव्वंति जिणवराण सदा।
कम्मक्खवणणिमित्तं, णिब्भरभत्तीए भरिदमणा ॥[3]

तात्पर्य—सम्यग्दर्शन से सहित देव मन में अतिशय भक्ति से ओत-प्रोत होकर जिनेन्द्र भगवान् की पूजा सर्वदा करते हैं। कारण कि जिनेन्द्रदेव के यथार्थ पूजन से ज्ञानावरण, राग, द्वेष, मोह आदि दुष्कर्मों का क्षय होता है। समन्तभद्राचार्यस्यमते पूजायाः मूल्यांकनम् :

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दयानाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितां जनेभ्यः ॥[4]

---

1. आ. समन्तभद्र : रत्नकरण्डश्रावकाचार : सम्पा. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य. प्रका.–वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी, सन् 1972, पृ. 218।
2. तथैव, पृ. 216।
3. आ. यतिवृषभ - तिलोयपण्णत्ती : स. प्रो. हीरालाल जैन, प्र.–जैनसंस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर, सन् 1951, द्वि भा. पृ. 856।
4. आ. समन्तभद्र : स्वयंभूस्तोत्र : स. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.–शान्तिवीर दि. जैन संस्थान श्री महावीरक्षेत्र, पृ. 70, सन् 1969।

भावसौन्दर्य—हे भगवन्! आपने राग, मोह, प्रीति आदि दोषों को दूर कर दिया है, इसलिए आपकी कोई पूजा करे तो भी आप प्रसन्न नहीं होते, और आपने द्वेष, क्रोध, मान, अप्रीति आदि दोषों को भी विनष्ट कर दिया है इसलिए आपकी कोई मानव यदि निन्दा करे, तथापि आप किसी प्रकार भी रुष्ट नहीं होते, न शाप देते हैं, अपितु समताभाव धारण करते हैं। चाहे वह भक्त आपकी प्रशंसा करे अथवा निन्दा करे। इस विषम परिस्थिति में भी आप शान्त रहते हैं। तथापि आपके पवित्र गुणों की पूजा, स्मरण, स्तुति, कीर्तन, हम सद्भक्त जनों के मानस-पटल को, पाप व्यसन एवं कष्टों को दूर कर पवित्र कर देते हैं अर्थात् आपकी यथार्थ पूजा करने से मानव के चित्त पवित्र हो जाते हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के मत से पूजा का मूल्यांकन :

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥[1]

तात्पर्य—जो पुरुष अरहन्त भगवान् को द्रव्य, गुण, पर्यायों से जानता है वह पुरुष निज आत्मस्वरूप को जानता है और निश्चय से उस पुरुष के मोह, राग, द्वेष आदि दोष नाश को प्राप्त होते हैं। इसका स्पष्ट भाव यह है कि कुन्दकुन्दाचार्य एक आध्यात्मिक महर्षि हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ में आध्यात्मिक विष की दृष्टि से गुणस्तवन या पूजा का साफल्य दर्शाया है जो व्यक्ति अरहंत (जीवन्मुक्त) परमात्मा के आत्मद्रव्य को, उसके ज्ञान, दर्शन आदि गुणों को तथा मनुष्य, जीवन्मुक्त आदि पर्यायों (दशाओं) को जानता है। श्रद्धान करता है एवं तदनुकूल आचरण करता है यही उनका स्तवन गुणकीर्तन या पूजन है, इस प्रकार का श्रद्धान ज्ञान अपने आत्मा का भी करता है कारण कि सब आत्माओं का स्वभाव समान ही है। निश्चय से उस पुरुष के मोह आदि विकार नाश को प्राप्त होते हैं। आचार्यकल्प पण्डितप्रवर आशाधर के मत से पूजा का मूल्यांकन :

यथाकथंचिद्भजतां, जिनं निर्व्याजचेतसाम्।
नश्यन्ति सर्वदुःखानि, दिशः कामान् दुहन्ति च ॥

भावसौन्दर्य—यथाशक्ति साधनों के द्वारा शुद्धभावपूर्वक जिनेन्द्र परमात्मा की पूजा करनेवाले भक्त मानवों के सब प्रकार के दुःख नष्ट होते हैं और दिशाएँ उनके मनोरथों को पूर्ण करती हैं अर्थात् चारों ओर से उनके सब श्रेष्ठ कार्यों की सिद्धि होती है। यह सब सत्यार्थपूजन से प्राप्त हुए पुण्य का प्रभाव है। अपि च :

1. कुन्दकुन्दाचार्य : प्रवचनसार : सं. आदिनाथ उपाध्याय, प्रकाशक—श्री राजचन्द्र शास्त्रमाला अगास, वि. सं. 2021, पृ. 91।

जिनानिव यजन् सिद्धान् साधून् धर्मं च नन्दति।
तेपि लोकोत्तमास्तद्वत् शरणं मंगलं च यत् ॥[1]

तात्पर्य—अरहन्त (जीवन्मुक्त) के समान, सिद्धपरमात्मा, आचार्य, उपाध्याय, साधु-तपस्वियों की तथा सत्यधर्म की पूजन करनेवाले मानव, अन्तरंग-बहिरंग विभूति के साथ सुखसम्पन्न होते हैं, कारण कि वे अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म लोक में उत्तम, मंगल एवं शरण रूप हैं ॥

तपस्वी वादिराज की भक्ति में स्तवन का मूल्यांकन—पौराणिक

प्रापद्दैवं तव नुति पदैः जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहोयदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं
जल्पन् जाप्यैः मणिभिरमलैः त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥[2]

भावसौन्दर्य—जीवन्धर कुमार के द्वारा सुनाये गये नमस्कार मन्त्र के पवित्र पदों से जब पापी कुत्ता भी मरण समय पशुभव को छोड़कर देवगति के सुख को प्राप्त हुआ, तब निर्मल माला के द्वारा आपके नमस्कार मन्त्र को जपता हुआ पुरुष यदि इन्द्र की लक्ष्मी के स्वामित्व को प्राप्त करता है तो इसमें क्या सन्देह है अर्थात् कुछ भी सन्देह नहीं।

सम्बन्धित कथा—एक दिन राजपुरी नगरी के निवासी क्षत्रियपुत्र जीवन्धर कुमार अपने मित्रों के साथ वसन्त ऋतु की शोभा देखने के लिए वन में जा रहे थे। मार्ग में इनकी दृष्टि नदी के किनारे पर तड़पते हुए एक कुत्ते पर पड़ी। दयालु जीवन्धर कुमार ने उसके कान में नव बार पवित्र णमोकार मन्त्र को सुनाया। मन्त्र के पवित्र शब्द कुत्ते के कान में टकराये। मन्त्र के श्रवण से कुत्ते की आत्मा में पवित्रता आयी, उसी समय उसका मरण हो गया। मन्त्र के प्रभाव से वह चन्द्रोदय पर्वत पर यक्ष जाति के देवों का इन्द्र हुआ और सुदर्शन के नाम से वह प्रसिद्ध हुआ। सारांश यह हुआ कि परमात्मा का नाम सुनने मात्र से भी कुत्ता जैसा निकृष्ट प्राणी देव हो जाता है। यदि मानव शुद्ध हृदय से परमात्मा की भक्ति करे तो इससे भी अधिक फल प्राप्त कर सकता है। यह इस पौराणिक कथा से सिद्ध होता है। महाकवि धनंजय की भक्ति में पूजा का द्वितीय मूल्यांकन :

विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्रमन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्यायनामानि तवैव तानि ॥[3]

---

1. पं. आशाधर : सागर धर्मामृत : सं. पं. देवकीनन्दन सि. शास्त्री, प्र.—दि. जैन पुस्तकालय सूरत, सन् 1940, पृ. 68, अ.-2, श्लोक-41-42।
2. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 507।
3. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 512।

भावार्थ—आश्चर्य है कि जगत् के मानव विष को दूर करने के लिए, विषापहारक मणि, औषधि, मन्त्र और रसायन आदि को प्राप्त करने के लिए यत्र-तत्र घूमते फिरते हैं परन्तु वे यह विचार नहीं करते हैं कि हे भगवन्! आप ही मणि हैं, औषधि हैं, मन्त्र हैं और विष को नष्ट करनेवाली अपूर्व रसायन हैं। कारण कि वे मणि आदि सब पदार्थ आपके ही पर्यायवाचक अर्थात् दूसरे नाम हैं अतएव आपका ही स्मरण करना उपयोगी है। श्री अकलंकदेव की आराधना में भक्ति का मूल्यांकन :

> श्री पार्श्वनाथमित्येवं यः समाराधयेज्जिनम्।
> सर्वपापविनिर्मुक्तं, लभ्यते श्रीः सुखप्रदम् ॥
> जिनेशः पूजितो भक्त्या, संस्तुतः प्रणतोऽथवा।
> ध्यात्वा स्तुयेत् क्षणं चापि, सिद्धिस्तेषां महोदया ॥
> श्री पार्श्वमन्त्रराजं तु चिन्तामणिगुणप्रदम्।
> शान्तिपुष्टिकरं नित्यं क्षुद्रोपद्रवनाशनम् ॥[1]

भावसौन्दर्य- जो मानव मनसा, वाचा, कर्मणा श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रदेव की आराधना करता है, जो पार्श्वनाथ सर्वपाप कर्मों से रहित एवं अक्षय सुख को प्रदान करनेवाले हैं उनकी भक्ति करने से श्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जो मानव वीतराग जिनेन्द्रदेव की एक क्षण भी पूजा करता है, भक्ति से स्तुति करता है, नमस्कार करता है, ध्यान करता है और कीर्तन करता है उसके लिए सर्वोदयी सिद्धि प्राप्त होती है।

श्री पार्श्वमन्त्रराज का जाप करने से चिन्तामणि के समान गुणों की प्राप्ति, नित्य शान्ति, पुष्टिगुणों की सम्प्राप्ति और क्षुद्र उपद्रवों का विनाश होता है। यह पार्श्वनाथ मन्त्र के जाप का मूल्यांकन है। अद्याष्टक स्तोत्र के रचयिता की जिनेन्द्रदेव भक्ति में मूल्यांकन :

> अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः।
> तस्य सर्वार्थसंसिद्धिः जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥[2]

तात्पर्य—जो मानव शुद्धभावों के साथ अद्याष्टकस्तोत्र का पाठ करता है वह गुणों की प्राप्ति से आनन्दित हो जाता है एवं हे जिनेन्द्रदेव! शुद्धभावों के साथ आपका दर्शन या पूजन करने से मानव के समस्त इष्ट कार्यों की सिद्धि होती है।

---

1. कुन्थुजश्रमणसिद्धान्त पाठावलि : सं. श्रीकुन्थुसागर जी महाराज, प्रका.—कुन्थुविजय ग्रन्थमाला समिति जयपुर, सन् 1982, पृ. 252।
2. तत्रैव, पृ. 5।

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥[1]

भावार्थ—परमात्मा का दर्शन या पूजन सम्यक् श्रद्धा है वह पापों का नाश करनेवाला है, स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए एक सोपान परम्परा है, तथा वह दर्शन मोक्ष की प्राप्ति करने का श्रेष्ठ साधन (कारण) है।

धर्मशास्त्रों में भगवद्भक्ति का मूल्यांकन :

एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिः दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥[2]

भावसौन्दर्य—श्रीपूज्यपाद आचार्य ने समाधि भक्ति में दर्शाया है कि अकेली जिनेन्द्रदेव की भक्ति भी दुर्गतिगमन का निवारण करती है, पुण्य की प्राप्ति का कारण है और भव्य प्राणी को मुक्तिलक्ष्मी देने में समर्थ है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा भावपाहुड़ में परमात्मभक्ति का मूल्यांकन :

जिणवरचरणांबुरुहं, णमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेलिमूलं, खणंति वरभाव सत्थेण ॥[3]

तात्पर्य—जो जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों को परमभक्ति भाव से प्रणाम करते हैं वे उज्ज्वल भावरूप शस्त्र के द्वारा जन्म-मरणरूपी बेल की जड़ को नष्ट करते हैं इसलिए जिनेन्द्रभक्ति को आत्मकल्याण के लिए, कल्पवृक्ष सदृश श्रेष्ठ समझना चाहिए। श्री सोमप्रभाचार्य के भक्तिरस में प्रयुक्त पूजा का मूल्यांकन :

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदम्।
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते, पुष्णाति नीरोगताम्।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता ॥[4]

भावसौन्दर्य—शुद्धभावों से रची गयी भगवान् जिनेन्द्र की पूजा पापों का लोप करती है, नरक आदि दुर्गतियों का दलन करती है, आपदाओं का नाश करती है, पुण्य को संचित करती है, अन्तरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी को बढ़ाती है, नीरोगता को पुष्ट करती है, सौभाग्य को प्रदान करती है, प्रीति या वात्सल्य को पल्लवित करती

1. पंचास्तिकाय दीपिका : व्याख्याकार पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर, प्रका.—शान्तिनाथ जैन ट्रस्ट सिवनी, म. प्र. सन् 1986, पृ. 90।
2. तत्रैव, पृ. 9।
3. तत्रैव, पृ. 9।
4. अभिषेक पूजा पाठ - सं. पं. राजकुमार शास्त्री, प्र.—संयोगितागंज, इन्दौर, वीराब्द 2463, पृ. 5 प्राक्कथन।

है, कीर्ति को उन्नत करती है, स्वर्ग को प्रदान करती है, और मोक्ष को प्राप्त कराने में सहायक होती है। पुनश्च :

> स्वर्गस्तस्य गृहांगणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मी शुभा
> सौभाग्यादि गुणावलिः विलसति स्वैरं वपुर्वेश्मनि।
> संसारः सुतरां शिवं करतलक्रोडे लुठत्यंजसा
> यः श्रद्धाभरभाजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः ॥[1]

भावसौन्दर्य—जो मानव श्रद्धा का पात्र होकर द्रव्य तथा भाव के साथ जिनेन्द्र भगवान् का पूजन करता है उसके निवासगृह में स्वर्ग जैसा वातावरण हो जाता है, श्रेष्ठ साम्राज्य रूपी लक्ष्मी उसकी सहचरी बन जाती है, सौभाग्य, सत्य, सदाचार आदि गुण उसकी आत्मा में शोभित होने लगते हैं, वह विश्व के जन्म-मरण आदि कष्टों को जीत लेता है। अन्त में वह अविनाशी परमात्मपद को प्राप्त करता है। शान्तिभक्ति में लीन पूज्यपाद आचार्य द्वारा भक्ति का मूल्यांकन :

> सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्।
> देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥
> प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
> कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्याः जिनेश्वराः ॥[2]

सारांश—परमात्मा का पूजन करने के पश्चात् भक्त अपनी भावना व्यक्त करता है—पूजा करनेवालों के लिए, प्रजा के रक्षकों, आचार्यों, तपस्वियों के लिए तथा देश राष्ट्र नगर और नरेशों के लिए भगवान् शान्ति प्रदान करें।

दुःखप्रद कर्मों को नाश करनेवाले, विश्वज्ञान से विभूषित श्रीऋषभनाथ आदि चतुर्विंशति (24) तीर्थंकर, इस जगत् में सब प्रकार से शान्ति का वातावरण उपस्थित करें। अर्हद्भक्ति में निमग्न आचार्य पूज्यपाद का भक्ति में मूल्यांकन :

> श्रीमुखालोकनादेव, श्री मुखालोकनं भवेत्।
> आलोकनविहीनस्य, तत्सुखावाप्तयः कुतः ॥
> अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य, देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
> अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे, संसारवारिधिरयं चुलक प्रमाणम् ॥[3]

सारांश—अरहन्त भगवान् के मुख का दर्शन करने से ही, ज्ञान दर्शन रूप अन्तरंग लक्ष्मी और स्वर्ग, राज्य, सम्पत्ति आदि बहिरंग लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

---

1. अभिषेक पूजापाठ : सं. पं. राजकुमार शास्त्री, प्र.—संयोगितागंज, इन्दौर, वीराब्द 2408, पृ. 5, प्राक्कथन।
2. हुम्बुज श्रमणसिद्धान्त पाठावलि, पृ. 133-134।
3. धर्मध्यान दीपक, पृ. 149, अर्हद्भक्ति।

जो मानव भक्तिभाव से भगवान् के दर्शन नहीं करता है उसको लक्ष्मी की प्राप्ति से होनेवाला सुख कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता।

हे भगवन्! आज आपके चरणकमलों का दर्शन करने से हमारे इन दोनों नेत्रों की सफलता प्राप्त हो गयी है और हे त्रिलोकतिलक! आपके दर्शन से आज मेरे लिए यह विशाल संसार सागर, चुलुक प्रमाण प्रतिभासित होता है। यह सब भगवद्भक्ति का चमत्कार है॥ अद्याष्टकस्तोत्र में दर्शन एवं पूजन का मूल्यांकन :

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे, शुभाश्चैकादशस्थिताः।
नष्टानि विघ्नजालानि, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्॥
अद्य कर्माष्टकं नष्टं, दुःखोत्पादनकारकम्।
सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्॥
अद्याष्टकं पठेद् यस्तु, गुणानन्दितमानसः।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धिः जिनेन्द्र तव दर्शनात्॥[1]

भावसौन्दर्य—भगवान् के दर्शन-पूजन में दत्तचित्त एक भक्त कहता है कि हे जिनेन्द्रदेव! आज आपके दर्शन से ग्यारहवें स्थान में स्थित सभी अशुभग्रह शुभ हो गये हैं तथा सभी ग्रह शान्त हो गये हैं इसलिए हमारे जीवन में आनेवाले विघ्नों का समूह भी नष्ट हो गया है।

भक्त पुनः कहता है कि हे परमात्मन्! आपके दर्शन-पूजन से, दुःखदायक ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म नष्ट हो रहे हैं इसलिए मैं सुखरूपी समुद्र में मग्न हो गया हूँ।

भक्त पुनरपि कहता है कि हे परमेश्वर! आपके श्रेष्ठ गुणों का स्मरण या पूजन जो व्यक्ति प्रसन्नचित्त से करता है अथवा जो मानव इस अद्याष्टक स्तोत्र का पाठ करता है उसके सभी इष्ट प्रयोजनों की सिद्धि प्राप्त होती है। यह सब परमात्मा के दर्शन-पूजन का परिणाम है। ऋषिमण्डलस्तोत्र में भक्ति का मूल्यांकन :

इदं स्तोत्रं महास्तोत्रं, स्तुतीनामुत्तमं परम्।
पठनात्स्मरणाज्जाप्यात् सर्वदोषैः विमुच्यते॥
शतमष्टोत्तरं प्रातः, ये पठन्ति दिने दिने।
तेषां न व्याधयो देहे, प्रभवन्ति च सम्पदः॥
अष्टमासावधिं यावत्, प्रातः प्रातस्तु यः पठेत्।
स्तोत्रमेतन्महातेजस्त्वर्हद्बिम्बं स पश्यति॥
दृष्टे सत्यार्हते बिम्बे, भवे सप्तमके ध्रुवम्।
पदं प्राप्नोति विश्वस्तं, परमानन्दसम्पदा॥

---

1. कुन्थुज श्रमण सिद्धान्त पाठावलि, पृ. 4, 5।

रणे राजकुले वह्नौ, जले दुर्गे गजे हरौ।
श्मशाने विपिने घोरे, स्मृतो रक्षति मानवम् ॥[1]

क्रमशः पद्यों का सारांश—परमात्मा के गुणों का स्तवन करनेवाला, सर्वश्रेष्ठ इस ऋषिमण्डल नाम के महास्तोत्र के पाठ करने से, स्मरण करने से एवं जाप करने से मानव समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है।

भक्तिभाव से विनम्र जो मानव प्रतिदिन प्रातःकाल ऋषि मण्डल स्तोत्र का एक सौ आठ बार पाठ करता है, उनके देह में व्याधियाँ नहीं होती हैं। उनके लिए समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं।

भक्तिरस में ओत-प्रोत जो मानव प्रतिदिन प्रातःकाल आठ माह तक, महाप्रभावपूर्ण इस ऋषिमण्डल स्तोत्र का पाठ करते हैं, वे साक्षात् अर्हन्तभगवान् के प्रतिबिम्ब का दर्शन करते हैं।

अर्हन्तभगवान् के प्रतिबिम्ब का साक्षात् दर्शन करने पर वे मानव सातवें भव (पर्याय) में निश्चय से परम आनन्दरूपी सम्पति के साथ अजर-अमर मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं।

घोररण में, राजकुल में, अग्निकृत उपद्रव में, जलकृत उपद्रव में, दुर्ग में, गज और सिंह के उपद्रव में, श्मशान में एवं भयंकर जंगल में स्तोत्र के स्मरण करने पर ऋषिमण्डल स्तोत्र मानव की सुरक्षा करता है। समन्तभद्राचार्यकृत बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में पूजा या गुणकीर्तन का मूल्यांकन :

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरितां जनेभ्यः ॥[2]

सार सौन्दर्य—हे जिनेन्द्रदेव! आप में किसी वस्तु के प्रति राग भाव नहीं है इसलिए आप पूजन से प्रसन्न नहीं होते और किसी के प्रति द्वेष (वैरभाव) भाव नहीं है इसलिए आप निन्दा से क्रोधित नहीं होते हैं अर्थात् प्रशंसा तथा निन्दा के समय भी समताभाव को धारण करते हैं तो भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण या पूजन, हम सब मानवों के या प्राणियों के पापरूपी कालिमा को दूर कर चित्त को पवित्र करता है। यह आश्चर्य की वार्ता है। पूज्यपाद आचार्य द्वारा समाधिभक्ति में कथित जिनेन्द्र वन्दन का मूल्यांकन :

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिसमार्जितम्।
जन्ममृत्युजरामूलं, हन्यते जिनवन्दनात् ॥

सारांश जन्म-जन्म में किया गया पाप तथा कोटिजन्म में उपार्जित, जन्म-जरा

---

1. क्षुल्लक श्रमण सिद्धान्त पाठावलि, पृ. 73-74।
2. तत्रैव, पृ. 94।

मरण का मूल कारण मिथ्यातत्त्व, जिनेन्द्रदेव की वन्दना या पूजा से नष्ट हो जाता है।

आराधयन्ति क्षणमादरेण, यदङ्घ्रिपंकेरुहमात्तभावाः।
पराङ्मुखास्ते परसत्क्रियायामित्यर्चनीयं जिनमर्चयामि ॥[1]

काव्य सौन्दर्य—जो उत्तम भावों को प्राप्त कर क्षण भर भी आदरपूर्वक जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों की आराधना करते हैं वे अपात्रों का सत्कार करने से पराङ्मुख हो जाते हैं। इसलिए मैं पूजनीय श्री वर्धमान तीर्थंकर की पूजा करता हूँ॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥[2]

सारांश—परमात्मा का स्तवन करने पर विघ्नों के समूह, शाकिनी-डाकिनी एवं सर्पों के उपद्रव तथा कष्ट नाश को प्राप्त होते हैं और विष अपने प्रभाव से रहित हो जाता है, अर्थात् अमृत हो जाता है। श्री पूज्यपाद आचार्यकृत चैत्यभक्ति में भक्ति का मूल्यांकन :

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्, आकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये ॥
ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे ॥[3]

भावार्थ—इस लोक में जितने अकृत्रिम (स्वाभाविक) और कृत्रिम (पुरुषों द्वारा बनाये गये) जिन चैत्यालय (मन्दिर) एवं चैत्य (मूर्तियाँ) विद्यमान हैं उन सबकी मैं वन्दना करता हूँ अन्तरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए।

व्यन्तरदेवों के विमानों में जितने चैत्यालय स्थित हैं वे संख्यातीत हैं अर्थात् उनकी गणना करना सम्भव नहीं। उनकी वन्दना करने से हम सब भक्तों के दोषों का नाश होता है। दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण में भक्ति का मूल्यांकन :

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥[4]

सारांश—संयमधारी जो मानव मनसा, वाचा, कर्मणा ध्यान में स्थित होते हुए

---

1. वादीभसिंह सूरि : गद्यचिन्तामणि : सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र.- भारतीय ज्ञानपीठ, देहली, 1968, पृ. 410।
2. तथैव, पृ. 136, 137।
3. तथैव : पृ. 149।
4. तथैव : पृ. 168।

प्रातः प्रतिदिन भगवान् महावीर स्वामी को प्रणाम करते हैं वे लोक में निर्दोष पवित्र होते हुए निश्चय से विषम (कष्टमय) संसाररूपी दुःख का पार करते हैं। यह भगवान् महावीर तीर्थंकर की भक्ति का सुफल है। सरस्वती स्तोत्र में उपासना का परिणाम :

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चलभावेन, पूजनीया सरस्वती ॥

सारांश—शिक्षित मानव सरस्वती के प्रसाद से काव्य की एवं कविता की रचना करते हैं, इसलिए एकाग्र मनोयोग से सरस्वती माता की नित्य उपासना करनी चाहिए।

श्री सर्वज्ञमुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषिणी।
अज्ञानतिमिरं हन्ति, विद्याबहुविकासिनी ॥

सारांश—सर्वज्ञदेव के मुख से निकली हुई, बहुभाषाओं का प्रयोग करनेवाली, बहुत विद्याओं तथा कलाओं का विकास करनेवाली भारती देवी अज्ञानतिमिर का विनाश करती है।

एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य सन्तुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत् ॥

तात्पर्य—जो मानव प्रातःकाल उठकर श्रुत आदि अनेक नामवाली सरस्वती की उपासना करते हैं, उनके लिए सरस्वती माता प्रसन्न हो जाती है और शारदा देवी मनोरथ को प्रदान करनेवाली होती है।

सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे कामरूपिणी।
विद्यारम्भं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

सार सौन्दर्य—हे सरस्वती माता! आपके लिए प्रणाम करते हैं, आप मनोरथ को प्रदान करनेवाली हैं और लौकिक एवं पारमार्थिक कार्यों को सिद्ध करनेवाली हैं। मैं विद्यारम्भ करूँगा अथवा कर रहा हूँ, आपके प्रसाद से मेरी सदा सिद्धि हो।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय, सर्वकार्याणि चिन्तयेत्।
यतः करोति सान्निध्यं, तस्मिन् हृदि सरस्वती ॥[1]

भावसौन्दर्य—प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में बिस्तर से उठकर सब आवश्यक कार्यों का विचार करना चाहिए और तदनुकूल समय पर कार्य करना चाहिए, कारण कि प्रातः हृदय में सरस्वती का निवास रहता है। इसलिए सभी कार्य सफल होते हैं। अथवा :

1. वादीभसिंह सूरि : गद्यचिन्तामणि : सं. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ. 247-248।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वृत्त पंचनमस्कृतिः।
कोऽहं को मम धर्मः किं व्रतं चेति परामृशेत् ॥[1]

सारांश—ब्राह्ममुहूर्त (प्रातः 4 बजे) में शय्या से उठकर मानव नमस्कार मन्त्र को 9 बार उच्चारण करे। पश्चात् विचार करे कि मैं कौन हूँ, मेरा क्या धर्म है, मेरा क्या नियम है इत्यादि विषयों का विचार करे। संकटनिवारक पार्श्वनाथ स्तोत्र में भक्ति का महत्त्व :

श्री पार्श्वजिनसिंहस्य, नीलवर्णस्य संस्तवात्।
लभन्ते श्रेयसं सिद्धिं, प्रकुर्वन् वांछितैः सह ॥[2]

सारांश—नीलवर्ण से शोभित श्री पार्श्वनाथ भगवान् की भक्ति करनेवाले भक्त मानव, मनोरथों सहित सिद्धि को प्राप्त करते हुए अन्त में मुक्ति को प्राप्त करते हैं। वज्रपंजर स्तोत्र में भक्ति का मूल्यांकन :

परमेष्ठिनमस्कारं सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं मन्त्रपंजरं संस्मराम्यहम् ॥
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठि पदैः सदा।
तस्य तस्मात् भयं व्याधिराधिश्चापि कदापि न ॥[3]

सार सौन्दर्य—नौ देवों के नमस्कार से शोभित, श्रेष्ठ पंच परमेष्ठी के नमस्कार का द्योतक, आत्मरक्षा को करनेवाले मन्त्र पंजर को मैं बार-बार स्मरण करता हूँ।

जो मानव पंचपरमेष्ठी मन्त्रों के द्वारा सदा अपनी रक्षा को करता है उस मानव को किसी से भी भय नहीं होता और व्याधि (शारीरिक रोग) तथा आधि (मानसिक रोग) कभी भी नहीं होते हैं। अर्थात् पंचपरमेष्ठी देवों का मन्त्र जाप मानव को सदैव करना चाहिए। यह रक्षा मन्त्र वज्र पंजर अथवा कवच के सदृश मानव की रक्षा करता है इसलिए इसको वज्रपंजर मन्त्र कहते हैं। श्रीचन्द्रप्रभस्तोत्र में उपासना का महत्त्व :

श्री चन्द्रप्रभविद्येयं, स्मृता सद्यः फलप्रदा।
भवाब्धि-व्याधि-विध्वंसदायिनी चैव रक्षदा ॥[4]

भावसौन्दर्य—इस चन्द्रप्रभ विद्या (मन्त्र) का जाप या स्मरण करने पर यह शीघ्र फल को देनेवाली होती है तथा संसार सागर के कष्टों को, रोगों को नाश करनेवाली एवं आत्मा की सुरक्षा करनेवाली है।

---

1. पं. आशाधर : सागार धर्मामृत : सं. पं. देवकीनन्दन शास्त्री, प्र.—दि. जैन पुस्तकालय गाँधी चौक, सूरत, वी. सं. 2466 : पृ. 207।
2. तथैव, पृ. 257।
3. तथैव, पृ. 257।
4. तथैव, पृ. 256।

सर्वविघ्नविनाशक श्री पार्श्वनाथ मन्त्रात्मक स्तोत्र में उपासना का प्रभाव—

सार सौन्दर्य—जो मानव श्री पार्श्वनाथ मन्त्रात्मक स्तोत्र का नित्य जाप करता है, पाठ करता और स्तवन करता है वह आरोग्य एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है और उसकी इष्टकार्य की सिद्धि होती है। यह स्तोत्र श्री पार्श्वनाथ के मन्त्राक्षरों से निष्पन्न अनुपम शक्तिवाला है, यह स्तोत्र विद्वेष, उच्चाटन, स्तम्भन, जनवशीकरण, पाप रोग आदि को दूर करनेवाला है, क्रुद्ध जंगम (त्रस) तथा स्थावर जीवों के भयंकर विष को विध्वंस करनेवाला और जीवन की आयु को दीर्घ करनेवाला है अर्थात् निर्विघ्न करनेवाला है।[1]

विद्यानन्द आचार्यकृत 'आनन्दस्तव' में उपासना का प्रभाव :

पूजां प्रकुर्वन्ति नरास्तु भक्त्या, यन्त्रस्य ये श्रीकलिकुण्ड नाम्नः।
तेषां नराणामिह सर्वविघ्नाः, नश्यन्त्यवश्यं भुवि तत्प्रसादात् ॥
चित्ताम्बुजे ये स्वगुरूपदेशाद्, ध्यायन्ति नित्यं कलिकुण्डयन्त्रम्।
सिंहादयो दुष्टमृगास्तु लोके, पीडां न कुर्वन्ति नृणां च तेषाम् ॥[2]

भावसौन्दर्य—जो मानव भक्ति से श्रीकलिकुण्ड नामक यन्त्र की पूजा करते हैं उस पूजन के प्रभाव से इस लोक में उन मानवों के समस्त विघ्न अवश्य ही नष्ट होते हैं।

जो पुरुष अपने गुरु के उपदेश से चित्तरूपी कमल में विधिपूर्वक नित्य कलिकुण्डयन्त्र का ध्यान करते हैं उनके लिए लोक में सिंह आदि दुष्ट जानवर पीड़ा नहीं देते, उनके वश में हो जाते हैं। जैन रक्षास्तोत्र में उपासना का प्रबल प्रभाव :

जैन रक्षामिमां भक्त्या, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
इच्छितान् लभते कामान्, सम्पदश्च पदे पदे ॥
अग्निसर्पभयोत्पाताः भूपालाश्चौरविग्रहाः।
एते दोषाः प्रणश्यन्ति, रक्षकाश्च भवन्त्यमी ॥

नरोवापि तथा नारी, शुद्धभावयुतोऽपि सन्।
दिनं दिनं तथा कुर्यात्, जाप्यं सर्वार्थसिद्धये।
एकायां तु विधातव्यं, उद्यापनमहोत्सवम्।
पूजाविधि-समायुक्तं, कर्तव्यं सज्जनैः जनैः ॥[3]

---

1. पं. आशाधर : सागर धर्मामृत : सं. पं. देवकीनन्दन शास्त्री, प्र.—दि. जैन पुस्तकालय गांधी चौक, सूरत, वी. सं. पृ. 259।
2. तथैव, पृ. 260।
3. तथैव, पृ. 262।

विशद व्याख्या—जो मानव प्रातःकाल बिस्तर से उठकर झटिति भक्तिपूर्वक इस जैन रक्षास्तोत्र का पाठ करता है वह जन्म-जन्म में अथवा स्थान-स्थान पर इच्छित मनोरथों को और इच्छानुकूल सम्पत्तियों को प्राप्त करता है।

उस जैन रक्षास्तोत्र का पाठ करनेवाले पुरुष को पुण्य के उदय से, अग्नि, सर्प, भयानक उपद्रव, राज उपद्रव, चोर उपद्रव ये दुःख विनष्ट होते हैं और राजा तथा देव न्यायपूर्वक रक्षक होते हैं।

इसलिए शुद्धभावपूर्वक नर तथा नारी सम्पूर्ण इष्ट प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्रतिदिन जैन रक्षास्तोत्र का पाठ करें या जाप करें।

श्रेष्ठ महापुरुषों को एक वर्ष में शास्त्रकथित पूजाविधि के अनुसार पूजा करनी चाहिए और समारोह के साथ उसका उद्यापन-महोत्सव करना चाहिए। समन्तभद्र आचार्यकृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार में भक्तिभाव का प्रभाव :

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानं, राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं, लब्ध्वाशिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥[1]

विशद भाव—देवों द्वारा पूज्य तथा अपारमहिमा आदि ऋद्धियों को धारण करनेवाले इन्द्र पद को, नरेशों द्वारा पूज्य चक्रवर्तित्वपद को, शत इन्द्रों द्वारा वन्दनीय श्रेष्ठ तीर्थंकर पद को प्राप्त करके जिनेन्द्र परमात्मा में भक्ति करनेवाला भव्य मानव अन्त में अक्षय अनुपम मुक्ति पद प्राप्त करता है।

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः
प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥[2]

भावसौन्दर्य—इष्टफल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति शास्त्रस्वाध्याय से होती है, शास्त्र का उद्भव आप्त (सत्यार्थ अर्हत्देव) से होता है। उस आप्त के प्रभाव से प्रबुद्ध व्यक्तियों के द्वारा वह कल्याण का मूल कारण आप्त पूज्य होता है। अतएव नीतिकारों का कथन है कि कृतज्ञ सज्जन पुरुष किये हुए उपकार को कभी भी विस्मृत नहीं करते हैं अर्थात् कृतज्ञ होते हैं।

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु
न दुष्टदेवाः परिलंघयन्ति।

---

1. पं. आशाधर : सागर धर्मामृत : सं. पं. देवकीनन्दन शास्त्री, प्र.—दि. जैन पुस्तकालय गाँधी चौक, सूरत, वी. सं. पृ. 286।
2. धर्मभूषणयतिः न्यायदीपिका : सं. डॉ. दरबारीलाल कोठिया, प्र.—वीर सेवा मन्दिर दरियागंज, देहली, 1968, पृ. 136।

अर्थान्यथेष्टांश्च सदा लभन्ते
जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥[1]

तात्पर्य—जिनेन्द्रदेव के गुणों का कीर्तन या अर्चन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं, कदापि भय नहीं होता है, दुष्टदेव आक्रमण नहीं कर सकते एवं निरन्तर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

केवलज्ञानी के अथवा उनकी प्रतिमा के आगे अनुरागकरि उत्तमवस्तु धरने का दोष नाहीं। उनके विक्षिप्तता होती नहीं। धर्मानुराग तैं जीव का भला होय।[2]

तपस्विगुरुचैत्यानां, पूजाकोपप्रवर्तनम्।
अनाथदीनकृपणभिक्षादि प्रतिषेधनम् ॥[3]

तात्पर्य—तपस्वी, गुरु और प्रतिमाओं की पूजा न करने के व्यवहार को एवं अनाथ, दीन और कृपण मानवों को भिक्षा आदि न देने को, अन्तराय कर्म आदि पापबन्ध का कारण कहा है।

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, तेषां धिक् च गृहाश्रमम् ॥[4]

सारसौन्दर्य—जो मानव भक्ति से जिनेन्द्रदेव का दर्शन, पूजन और स्तवन नहीं करते हैं उनका जीवन निष्फल है और उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

सारंभई ण्हवणाइयहं जे सावज्ज भणंति।
दंसणु तेहिं विणासियउ इत्थुण कायउ भंति ॥[5]

तात्पर्य—जो व्यक्ति अभिषेक, पूजन आदि के समारम्भों को सावद्य (दोषपूर्ण) कहते हैं उन्होंने सम्यग्दर्शन (देवशास्त्र गुरु की श्रद्धा) का नाश कर दिया। वे पूजाकर्म को नहीं समझते, इसमें कोई भ्रान्ति नहीं।

अग्रतो जिनदेवस्य, स्तोत्रमन्त्रार्चनादिकम्।
कुर्यान्न दर्शयेत् पृष्ठं, सम्मुखं द्वारलङ्घनम् ॥[6]

भाव—जिनेन्द्रदेव के आगे स्तोत्र, मन्त्र और पूजन आदि कर्तव्य अवश्य करें; परन्तु बाहर निकलते समय अपनी पीठ न दिखाएँ, सम्मुख ही पीछे चलकर द्वार का उल्लंघन करें।

1. आ. वीरसेन : छक्खण्डागम, जीवट्ठाण 1।1।1।21, पृष्ठ 41।
2. पं. टोडरमल : मोक्षमार्गप्रकाशक, 5।241 पृ.।
3. आ. अमृतचन्द्र : तत्त्वार्थसार 4।55।
4. आ. पद्मनन्दी पद्मनन्दिपंचविंशतिका—6।15।
5. सावयधम्म दोहा—204।
6. प्रासादमण्डन; 2।34। पृ. 36।

सुश्रद्धाममतेमते, स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चापि ते।
हस्तांजलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि सम्प्रेक्षते ॥
सुस्तुत्यांव्यसनं शिरोनतिपरं सेवेदृशी येन मे।
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृतीतेनैव तेजःपते ॥[1]

भावसौन्दर्य--हे तेजपुंज जिनेन्द्र! मेरी सुश्रद्धा आपके मत में है, मेरी स्मृति भी आप में लीन है, मैं आपकी ही अर्चना करता हूँ, मेरे हाथ आपके समक्ष अंजलि मुद्रा में हैं, अर्थात् मैं करबद्ध हूँ। मेरे कर्ण आपकी कथा सुनने में निरत हैं, नेत्र आपका ही दर्शन करते हैं। मुझे आपकी पवित्र स्तुति-प्रार्थना ही व्यसनरूप है। मेरा मस्तक आपके पवित्र चरणकमलों में नमस्कारतत्पर है। अहो, मेरी इस प्रकार की सेवा है कि मैं नेत्र, कर्ण, मन, वचन, काय आदि से आपकी ही भक्ति में निरत हूँ। तो मुझे कहना चाहिए कि मैं तेजस्वी हूँ, भव्यजन हूँ और पुण्यवान् भी आपकी संगति से हूँ।

संस्कृत देवशास्त्र गुरु की महती पूजा में भक्तिपूर्वक पूजा का मूल्यांकन :

ये पूजां जिननाथ शास्त्रयमिनां, भक्त्या सदा कुर्वते,
त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयन्तो नराः।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणाः
ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥[2]

भावसौन्दर्य—जो पुण्यात्मा मानव प्रातः, मध्यकाल और सायंकाल सरस अलंकारपूर्ण अनेक पूजा-काव्यों या पद्यों का उच्चारण करते हुए भक्तिभाव से यथार्थ देव शास्त्र (वाणी) और गुरु की पूजा करते हैं वे भव्यजन मुनिपद धारण कर तपश्चरण से विभूषित एवं केवलज्ञान से समुज्ज्वल होते हुए उत्कृष्ट निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं।

विद्यमान विंशति तीर्थंकरों की प्राकृत जयमाला में भक्ति का मूल्यांकन :
प्राकृत में पूजा का मूल्यांकन :

ए वीस जिणेसर, णमिय सुरेसर, विहरमाण मइ संथुणियं।
जे भणहि भणावहि अरु मन भावहिं, ते णर पावहिं परमपयं ॥[3]

भावसौन्दर्य—इस प्रकार सुर तथा मानव एवं पशुओं से नमस्कृत इन विद्यमान विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों को मैंने (पूजा रचयिता ने) स्तुति पूजन किया है। पूजन

---

1. श्री एकाग्रार्थ विधानन्द : जिनपूजा एवं जिनमन्दिर : स. पं. नाथूरामशास्त्री, प्र.—वी. नि. ग्रन्थ प्रकाशन समिति इन्दौर 1952, पृ. 12।
2. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 43।
3. तथैव, पृ. 84।

की इस जयमाला को जो पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं अथवा मन में स्मरण करते हैं वे मानव परमपद मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

कविवर द्यानतराय की पूजा कविता में पूजा का मूल्यांकन :

हिन्दी पूजा-काव्यों में पूजा का मूल्यांकन :

कीजे शक्तिप्रमान, शक्तिविना सरधा धरे।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवे ॥
तुमको पूजे वन्दना करे धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥[1]

श्री हीराचन्द्र कविकृत पूजा-काव्य में पूजा का मूल्यांकन :

सिद्ध जजैं तिनको नहिं आवै आपदा
पुत्र पौत्र धन धान्य लहैं सुख सम्पदा।
इन्द्र चन्द्र धारणेन्द्र जु होयकै
जावे मुकति मझार करम सब खोयकै ॥[2]

इन्द्रकविकृत परमात्मपूजन में उपासना का महत्त्व :

हे प्रभु तेरे चरणों में मैं बारबार सिर नाता हूँ।
जिनकी छाया में अपूर्व अपनेपन का सुख पाता हूँ ॥[3]

रइधूकविकृत समुच्चयदशधर्म जयमाला में पूजा-काव्य का महत्व :

कोहाणलु चुक्कउ होइ गुरुक्कउ जाइ रिसिंदहिं सिट्ठइं।
जगताइं सुहंकरु धम्ममहातरु देइ फलाइं सुमिट्ठइं ॥[4]

तात्पर्य—क्रोधानल का त्याग कर महान् सुशील बनो, ऐसा ऋषिवरों ने उपदेश दिया है। शुभ करनेवाला यह दशधर्म पूजा-काव्य रूपी महावृक्ष जगत् के प्राणियों को मीठे फल प्रदान करता है।

सम्यक्चारित्र गुण के पूजा-काव्य में भक्ति का मूल्यांकन :

शुद्धोपयोग उपलब्धमनन्त सौख्यम्
सिद्धान्तसार मुररीकृतमात्मविद्भिः।
सन्मुक्तिसंवरणमद्भुतमादरेण
तद्वृत्तमत्र कुसुमांजलिना धिनोमि ॥[5]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 115।
2. तथैव, पृ. 121, पृ. 126।
3. तथैव, पृ. 121, पृ. 126।
4. तथैव, पृ. 229।
5. तथैव, पृ. 285।

सार सौन्दर्य—जिस गुण के कारण आत्मज्ञानी पुरुषों को आदरपूर्वक शुद्ध उपयोग और अनन्त सुख की प्राप्ति हुई, धर्म का मर्म स्वीकृत हुआ और अन्त में समीचीन मुक्ति का लाभ हुआ, उस सम्यक्चारित्र गुण की हम कुसुमांजलि से पूजा करते हैं।

कविवर द्यानतराय कृत सोलह भावना पूजा-काव्य में भक्ति का प्रभाव :

एही सोलह भावना सहित धरै व्रत जोय।
देव इन्द्र नर वन्द्यपद 'द्यानत' शिवपद होय ॥
पंचमेरु की आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥[1]

कवि वृन्दावनकृत आदिनाथ पूजा-काव्य में उपासना का प्रभाव :

यह अरज हमारी, सुन त्रिपुरारी, जनम जरा मृति दूर करो।
शिव सम्पति दीजे, ढील न कीजे, निज लख लीजे कृपा धरो ॥
जो ऋषभेश्वर पूजै, मन वच तन भाव शुद्धकर प्राणी।
सो पावै निश्चै सों, मुक्ती औ मुक्ति सार सुखथानी ॥[2]

कविवर वृन्दावनकृत चन्द्रप्रभ पूजा-काव्य में उपासना का महत्त्व :

जय चन्दजिनन्दा, आनंदकन्दा, भवभयभंजन राजै हैं।
रागादिक द्वन्द्वा, हरि सब फन्दा, मुकतिमांहि थिति साजै हैं।
आठों दरब मिलाय गाय गुण जो भविजन जिनचन्द जजैं।
ताके भव भव के अघ भाजैं, मुक्तिसार सुख ताहि सजैं ॥
जम के त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं।
वृन्दाबन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥[3]

कविवर मनरंगलाल कृत शीतलनाथ तीर्थंकर पूजा-काव्य भक्ति का मूल्यांकन :

आपद सब दीजे भार झोंकि यह पढ़त सुनत जयमाल,
हे पुनीत! करण अरु जिह्वा वरते आनन्द जाल ॥
पहुँचे जहँ कबहूँ पहुँचे नहिं, नहीं पायी सो पावे हाल,
नहीं भयो कभी सो होय सबेरे भाषत मनरंगलाल ॥
भो शीतल भगवान्, तो पद पक्षी जगत् में।
हैं जेते परवान, पक्ष रहे तिन पर बनी ॥[4]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. 341।
2. तथैव, पृ. 342।
3. तथैव पृ. 348।
4. तथैव पृ. पृ. 355।

वृन्दावन कवि कृत वासुपूज्य तीर्थंकर पूजा-काव्य में उपासना का प्रभाव :

नित आस्रवबन्दत, पापनिकन्दत, वासुपूज्य व्रतब्रह्मपती।
भवसंकलखण्डित, आनन्दमण्डित, जै जै जै जैवन्त जती ॥
वासुपूज्य पद सार, जजों दरबविधि भावसों।
सो पावै सुखसार भुक्ति मुक्ति को जो परम ॥[1]

भगवत्पूजा करनेवाले उपासक की हिंसा, असत्य, राग, द्वेष, मोह, विषय, तृष्णा आदि पापों से निवृत्ति होती है, साथ ही पूजाकार्य में प्रवृत्ति होती है। पूज्य पुरुषों के या परमात्मा के गुणों में अनुराग स्थिर रहता है अतएव आत्मशुद्धि अवश्य होती है। पूजा करने के पश्चात् शान्तिपाठ में पूजा का लक्ष्य तथा फल दर्शाया गया है। पूजा-काव्यों का लक्ष्य :

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्यवल्गन्
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥

भावसौन्दर्य—हे भगवन्! हम शक्ति के अनुकूल द्रव्यों की शुद्धि को प्राप्त कर आपके समक्ष पूजन हेतु खड़े हुए हैं परन्तु भावों (आत्म-परिणामों) की शुद्धि अधिक-से-अधिक चाहते हैं। इसलिए अनेक निमित्तों का आश्रय लेकर सावधानतया महापुरुष के पूजन को कर रहा हूँ।

अन्त में भक्त अपना लक्ष्य (प्रयोजन) व्यक्त करता है :

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहे प्रभु, जब लौं प्राप्ति न मुक्तिपद की हो ॥

पूजा साहित्य में सर्वत्र पूजा का प्रयोजन, शुभकामना, प्रार्थना और फल दर्शाया गया है। इसलिए पूजाकर्म महत्त्वपूर्ण आदरणीय, आचरणीय और फलप्रद है।

पूजा कर्तव्य का विशेष फलः

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥
भेकः स्वर्गेऽमरोजातः, पूजाभावात् जिनस्य च।
कुष्टादिरोगहीनोभूत्, श्रीपालोनृपतिः खलु ॥
पूजया लभ्यते स्वर्गः, पूज्यो भवति पूजया।
ऋद्धिवृद्धिकरी पूजा, पूजा सर्वार्थसाधनी ॥[2]

---

1. ज्ञानपीठ पूजांजलि, पृ. पृ. 369।
2. अनिलकुमार मुनि : सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह, पृ. 185।

भक्ति के बिना दुष्परिणाम

> यावन्नोदयते प्रभापरिकरः, श्रीभास्करो भासयन्
> तावद् धारयतीह पंकजवनं, निद्राति भारश्रमम्।
> यावत् त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्, न स्यात्प्रसादोदयः
> तावत् जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ॥[1]

भावसौन्दर्य–इस विश्व में किरणों से व्याप्त, चमकता हुआ सूर्य जब तक उदित नहीं होता है, तब तक कमलों का समूह अत्यन्त निद्रा के भार को धारण करता है अर्थात् प्रफुल्लित नहीं होता। इसी तरह लोक में जब तक हे भगवन्! आपके चरणों का प्रभावक दर्शन नहीं होता है तब तक प्राणियों का समूह अज्ञानान्धकार में सुप्त होकर महान् पापों को धारण करता है।

---

1. धर्मध्यान दीपक, पृ. 172।

परिशिष्ट : एक

संस्कृत जैन पूजा-काव्य[1]

(प्रकाशित और अप्रकाशित)

1.	अंकुरारोपण विधान	इन्द्रनन्दिकृत—वि. सं. 990।
2.	अनन्तनाथ पूजा	ब्र. शान्तिदास।
3.	अनन्तव्रत पूजा	ब्र. जिनदास, वि. सं. 1510।
4.	अनन्तव्रत पूजा	श्री भूषण भट्टारक।
5.	अनन्तव्रत पूजा व उपासना	गुणभद्राचार्य (वि. सं. 1600)।
6.	अनन्तव्रत पूजा व उपासना	श्री कृष्ण भट्टारक।
7.	अनन्तव्रतोद्यापन	रत्नचन्द्र भट्टारक (वि. सं. 1600)।
8.	अनन्तव्रतोद्यापन	धर्मचन्द्र भट्टारक।
9.	अनन्तव्रतोद्यापन	गुणचन्द्र भ. (वि. 1600)।
10.	अनन्तव्रतोद्यापन	ब्र. जिनदास (वि. सं. 1510)।
11.	अन्तरीक्षपार्श्वनाथ पूजा	नेमिदत्तयति (नेमिपुराण प्रणेता) (वि. सं. 1575)।
12.	अभिषेक पूजन	केशवनन्दन।
13.	अर्हत्कारक्षर पूजा	अज्ञात
14.	आष्टाहिनकासर्वतोभद्र पूजा	कनककीर्ति भट्टारक।
15.	आष्टाहिनकासिद्धचक्रव्रतोद्यापन	महाचन्द्रसूरि (वि. सं. 974)।
16.	आष्टाह्निकोद्यापन	कनककीर्ति भट्टारक।
17.	आष्टाह्निकोद्यापन	धर्मकीर्ति भ.।
18.	आष्टाह्निकोद्यापन	श्रुतसागर- (यशस्तिलक टीका प्रणेता)।
19.	आष्टाह्निकोद्यापन	सकलकीर्ति (द्वि.)।
20.	आदित्यव्रतोद्यापन	भ. देवेन्द्रकीर्ति (150 श्लोक)।

1. विशेष विवरण के लिए देखिए **भारतीय संस्कृति के विकास में जैनवाङ्मय का अवदान, खण्ड** प्र., डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ. 475-481।

21. आराधना सार	देवसेन (काष्ठासंघी)।
22. इन्द्रध्वज पूजा	भ. विश्वभूषण (वि. सं. 1810)।
23. इन्द्रध्वज पूजा	शुभ चन्द्र (वि. सं. 1680 सागवाड़ा पट्टाधीश)।
24. आदित्यवारव्रत पूजा	भ. देवेन्द्रकीर्ति (सांगानेरपट्ट वि. 1662)।
25. ऋषिमण्डल पूजा	गुणनन्दि भ.।
26. ऋषिमण्डल पूजा	वीरपण्डित।
27. ऋषिमण्डलस्तवन व पूजन	ब्र. जिनदास।
28. ऋषिमण्डलस्तवन व पूजन	भ. विश्वभूषण।
29. कर्मचूरोद्यापन	लक्ष्मीसेन।
30. कर्मदहन पूजा	शुभचन्द्र।
31. कर्मदहन पूजा	जिनचन्द्रमुनि (वि. सं. 1507)।
32. कर्मदहन पूजा	सोमकीर्ति—सप्तव्यसन च. प्रणेता।
33. कर्मदहन पूजा	सोमदत्त।
34. कर्मदहनाराधनाविधान	कल्याणकीर्ति।
35. कलिकुण्ड पूजा	श्रुतसागर।
36. कलिकुण्ड पूजा	पद्मनन्दि भ. (वि. सं. 1362)।
37. कलिकुण्ड पूजा	देवराज (श्लोक सं. 200)।
38. कल्याणमन्दिरोद्यापन	सुरेन्द्रभूषण (वि. सं. 1882)।
39. कल्याणमन्दिरोद्यापान	देवेन्द्र कीर्ति भ.।
40. कांजीद्वादश्युद्यापन	पण्डित खुशालचन्द्र।
41. कवलचान्द्रायणोद्यापन	देवेन्द्र कीर्ति।
42. क्षमावाणी पूजा	ब्रह्मसेन।
43. क्षीरोदानी पूजाष्टक	अभयचन्द्र।
44. क्षेत्रपाल पूजा	देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक।
45. क्षेत्रपाल पूजा	विश्वसेन भ.।
46. गणधरवलय पूजा	हस्तिमल्ल पण्डित।
47. गणधरवलय पूजा	शुभचन्द्र (वि. सं. 1680)।
48. गणधरवलय पूजा	धर्मकीर्ति भ.।
49. गणधरवलय पूजा	पद्मनन्दि भ. (वि. 1362)।
50. गणधरवलय पूजा	प्रभाचन्द्र भ. (वि. 1380)।
51. गणधर वलययन्त्र पूजा	राजकीर्ति सूरि।
52. गन्धकुटी पूजा	शुभचन्द्र भ.।

53.	गन्धकुटी पूजा	पं. आशाधर।
54.	गुरुपूजा	जसकीर्ति।
55.	गोम्मटसार पूजा	श्रुतसागर (यश. टीकाकार) (रायमल्ल)।
56.	चतुर्दशीविधान	विद्यानन्दि मुनि (जससिंह राजा के मन्त्री ताराचन्द्र के व्रतोद्यापन के लिए रचना की गयी, ग्रन्थ प्रमाण 15 पत्र)।
57.	चतुर्दशी उद्यापन	सुरेन्द्रभूषण।
58.	चतुर्मुख पूजा	ऋषिकेश।
59.	चतुर्विंशति पूजा	श्री भूषण।
60.	चतुर्विंशति पूजा	शुभचन्द्र।
61.	चतुर्विंशति पूजा	रामचन्द्र मुमुक्षु।
62.	चतुर्विंशति-उद्यापन	जिनदास।
63.	चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतोद्यापन	जिनदास।
64.	चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतोद्यापन	शुभचन्द्र।
65.	चन्दनषष्ठी पूजा	लक्ष्मीसेन।
66.	चन्दनषष्ठी पूजा	वज्रकीर्ति।
67.	चन्दनषष्ठी उद्यापन	देवसेन भ.।
68.	चन्दनषष्ठी उद्यापन	सोमकीर्ति।
69.	चन्द्रप्रभदेव पाठ	देवसेन।
70.	चन्द्रप्रभदेव पूजा	अज्ञात।
71.	चमत्काराख्य आदिनाथ पूजा	अज्ञात।
72.	चारित्रशुद्धि पूजा	श्रीभूषणमुनि।
73.	चारित्रशुद्धि तपोद्यापन	शुभचन्द्र।
74.	चिन्तामणि पूजा	शुभचन्द्र।
75.	चिन्तामणि पार्श्वनाथ पूजा	सोमसेन।
76.	चिन्तामणि यन्त्र पूजा	शुभचन्द्र।
77.	चौबीसी पूजा	माघनन्दी व्रती।
78.	जम्बूद्वीपस्थ अकृत्रिम जिनपूजा	लक्ष्मीसागर शिष्य पं. जिनदास।
79.	जम्बूद्वीप पूजा	ब्र. जिनदास।
80.	जिनगुणसम्पत्तिव्रत पूजा	श्रुतसागर मुनि।
81.	जिनगुणसम्पत्ति उद्यापन	विश्वभूषण भ.।
82.	जिनगुणसम्पत्ति उद्यापन	सुमतिसागर।
83.	जिनयज्ञकल्प	आशाधर।
84.	जिनयज्ञकल्प	भावशर्मा।

85.	जिनयज्ञकल्प	शुभचन्द्र।
86.	जिनसहस्रनाम पूजा	विश्वसेन।
87.	जिनेन्द्रदेव शास्त्रगुरु पूजा	विश्वसेन।
88.	जैन पूजा पद्धति	गुणचन्द्र भट्टारक।
89.	जैन महाभिषेक पूजा	पूज्यपाद।
90.	जैनेन्द्र यज्ञविधि	श्रुतसागर।
91.	ज्ञानपंचविंशति उद्यापन	भ. सुरेन्द्रकीर्ति।
92.	ज्येष्ठजिनवर पूजा	ब्र. कृष्णराज (वि. 672, लिपिकाल 1640 वि.)।
93.	ज्येष्ठजिनवरव्रतोद्यापन	श्री भूषणकवि।
94.	ज्वालामालिनी उद्यापन	लक्ष्मीसेन।
95.	तीसचौबीसी पूजा	धर्मचन्द्र भ.।
96.	तीसचौबीसी पूजा	शुभचन्द्र।
97.	तीसचौबीसी पूजा	भावशर्मा।
98.	तेरहद्वीप पूजा	शुभचन्द्र।
99.	त्रिकाल चतुर्विंशतिकोद्यापन	गुणनन्दि भट्टारक।
100.	त्रिकाल चौबीसी पूजा	भ. विद्याभूषण।
101.	त्रिकुण्डी होमशान्तिक पूजा	रविषेण भट्टारक।
102.	त्रिचतुर्विंशति विधान	विद्याभूषण भ.।
103.	त्रिपंचाशत् क्रियोद्यापन	देवेन्द्र कीर्ति।
104.	त्रिलोकसार पूजा	ललित कीर्ति।
105.	त्रिलोकसार पूजा	वामदेव।
106.	त्रिलोकसार पूजा	सुमतिसागर।
107.	त्रिलोकसार महापूजा	सहस्रकीर्ति।
108.	त्रेपनक्रियाव्रत पूजा	देवेन्द्रकीर्ति अग्रवाल (वि. 1640)।
109.	त्रेपनक्रियाव्रतोद्यापन	विक्रमदेवेन्द्र अग्रवाल।
110.	दशलक्षण पूजा	धर्मचन्द्र।
111.	दशलक्षण पूजा	सुमतिसागर।
112.	दशलक्षण पूजाविधान	सोमसेन।
113.	दशलक्षणव्रतोद्यापन	सुमतिसागर।
114.	दशलक्षणव्रतोद्यापन	रत्नकीर्ति।
115.	दशलक्षणव्रतोद्यापन	धर्मचन्द्र।
116.	दशलक्षणव्रतोद्यापन	विश्वभूषण।
117.	दुधारसव्रतोद्यापन	श्रीधर्ममुनि।

118.	देवपूजा	पं. शिवचन्द्र (लिपि सं. 1947)।
119.	देवव्रतोद्यापन	पद्मनन्दी।
120.	द्वादशव्रत पूजा	भोजदेव।
121.	द्वादशव्रतोद्यापन	ब्र. शान्तिदास।
122.	द्वादशव्रतोद्यापन	भूषणकवि।
123.	धर्मचक्र पूजा	साधु रणमल्ल।
124.	धर्मचक्र पूजा	यशोनन्दि (द्वि सं. 368)।
125.	धर्मचक्र पूजा	वीरपण्डित।
126.	धर्मबृहत् पूजा	हंसकवि।
127.	नन्दीश्वर पंक्ति पूजा	कनककीर्ति।
128.	नन्दीश्वर लघु पूजा	देवेन्द्रकीर्ति।
129.	नन्दीश्वरविधान	देवेन्द्रकीर्ति।
130.	नन्दीश्वर व्रतोद्यापनविधि	ज्ञानसागर।
131.	नन्दीश्वर व्रतोद्यापनविधि	
132.	नवकारपैंतीस पूजा	भ. सुमतिसागर।
133.	नवकारपैंतीस पूजा	अक्षयराम।
134.	नवकार पैंतीसव्रत पूजा	कनककीर्ति।
135.	नवग्रह पूजा	इन्द्रनन्दि भ.।
136.	नवग्रह पूजा	बुधवीरु।
137.	नित्यमहोद्योत अभिषेकपाठ	पं. आशाधर।
138.	निर्वाण पूजा	उदयकीर्ति।
139.	पंचपरमेष्ठीपाठ	आशानन्दी।
140.	पंचपरमेष्ठी पूजा	यशोनन्दी (वि. 368)।
141.	पंचपरमेष्ठी पूजा	शुभचन्द्र।
142.	पंचपरमेष्ठी पूजा	जिनदास।
143.	पंचपरमेष्ठी पूजा	ज्ञानभूषण।
144.	पंचकल्याण पूजा	सुधीसागर।
145.	पंचकल्याण पूजा	सुमतिसागर।
146.	पंचकल्याण पूजा	श्रीचन्द्र (वि. 1214)।
147.	पंचकल्याण पूजा	ज्ञानसागर।
148.	पंचकल्याण पूजा	चन्द्रकीर्ति (लिपिकाल सं. 1887)।
149.	पंचकल्याण पूजा	सुरेन्द्रभूषण।
150.	पंचकल्याण पूजा	मेघराज।
151.	पंचक्षेत्रपाल पूजा	गंगादास।

152.	पंचमासचतुर्दशीव्रतोद्यापन	भ. सुरेन्द्रकीर्ति।
153.	पंचमी व्रतोद्यापन	उदयपुत्र हर्षनामा सुधीर (ग्र. प्र. 75 श्लोक)।
154.	पंचमेरु पूजा	सुखानन्द।
155.	पंचमेरुपूजाष्टक	भ. विश्वभूषण।
156.	पद्मावती पूजा	सिंह नन्दी।
157.	पल्यविधान पूजा	भ. रत्ननन्दी (भद्रबाहुचरित्रप्रणेता)।
158.	पल्यविधान पूजा	शुभचन्द्र।
159.	पल्यव्रतोद्यापन	देवेन्द्रकीर्ति (सांगानेरपट्टभट्टारक)।
160.	पल्यव्रतोद्यापन	शुभचन्द्र।
161.	पुष्पांजली पूजा	रत्नचन्द्र भ. (वि. 1600)।
162.	पुष्पांजली पूजा	देवेन्द्रकीर्ति।
163.	पुष्पांजली-उद्यापन	गंगादास।
164.	पुष्पांजली-उद्यापन	छत्रसेन।
165.	पूजाकल्प	अभयनन्दी।
166.	पूजाकल्प	जिनसेन।
167.	पूजाकल्प	इन्द्रनन्दी।
168.	पूजाकल्प	एकसन्धि।
169.	पूजाकल्प	रविषेण।
170.	पूजाकल्प	द्वि पूज्यपाद।
171.	पूजाकल्प	भ. चन्द्रकीर्ति।
172.	पूजाविधि	लघु समन्तभद्र।
173.	पूजासार	जिनसेन।
174.	प्रति मासान्तचतुर्दशीव्रतोद्यापन	अखयराज।
175.	प्रतिमासंस्कारारोपण पूजा	ब्रह्मदास।
176.	प्रतिमासंस्कारारोपण पूजा	अमरचन्द्र (ग्रन्थप्रमाण 31 पत्र)।
177.	बुद्धाष्टमी उद्यापन	भ. देवेन्द्रकीर्ति।
178.	बृहत्कलिकुण्ड पूजा	भ. विद्याभूषण।
179.	बृहद् ध्वजारोपण पूजा	केसरीसिंह पण्डित।
180.	बृहद् सिद्धचक्र पूजा	ब्र. जिनदास।
181.	बृहत् सिद्धचक्रयन्त्रोद्धारक पूजा	प्रभाचन्द्र।
182.	बृहत् सिद्धचक्रविधान	वीरुकवि अग्रवाल।
183.	भक्तामरस्तवन पूजा	श्रीभूषणशिष्य भ. ज्ञानसागर।

184.	भक्तामरोद्यापन	सुरेन्द्रभूषण भ.।
185.	महाभिषेकविधि व पूजन	पं. नरेन्द्रसेन।
186.	मांगीतुंगीगिरि पूजा	विश्वभूषण भ.।
187.	मातृकायन्त्र पूजा	इन्द्रनन्दि।
188.	मुक्तावलीव्रत पूजा	ब्र. जीवन्धर।
189.	मुक्तावली-उद्यापन	रत्नकीर्ति भ.।
190.	मुक्तावली-उद्यापन	खुशालपण्डित।
191.	मेघमालोद्यापन	ब्र. जिनदास।
192.	यति भावनाष्टक	पद्मनन्दी।
193.	योगीन्द्र पूजा	पण्डित साधारण।
194.	रत्नत्रय पूजा	नरेन्द्रसेन।
195.	रत्नत्रयबृहत्पूजा	धर्मचन्द्र भ.।
196.	रत्नत्रयार्चन विधि	मल्लिषेण।
197.	रविव्रतोद्यापन	भ. महीचन्द्र।
198.	रविव्रतोद्यापन	ब्र. जयसागर।
199.	रोहिणीव्रतोद्यापन	भ. प्रभाचन्द्र।
200.	लब्धिविधान	सकलकीर्ति द्वितीय।
201.	लब्धिविधानोद्यापन	विद्याधर।
202.	विघ्नहर पार्श्वनाथ पूजा	भ. महीचन्द्र।
203.	विद्यानुवादांग (जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय)	अग्गयार्य (वि. 1241)। माघ शु. 10 रविवार को एकशैलग्राम में इसकी रचना हुई।
204.	विमानशुद्धि पूजा	चन्द्रकीर्ति।
205.	विमानशुद्धिशान्ति पूजा	शुभचन्द्र।
206.	विवाह पटल पूजा	ब्रह्मदेव।
207.	विंशतितीर्थंकर पूजा	नरेन्द्रकीर्ति।
208.	विषापहारपूजाविधान	देवेन्द्रकीर्ति।
209.	व्रतोद्यापनश्रावकविधि	अभयमुनि।
210.	शान्तिचक्र पूजा	पद्मनन्दि।
211.	शान्तिचक्र पूजा	इन्द्रनन्दि।
212.	शान्तिपूजाविधान	धर्मदेव काष्ठासंघी।
213.	शास्त्र पूजा	मलयकीर्ति।
214.	शीतलगंगाष्टक	यशोनन्दि।
215.	शुक्लपंचमी-उद्यापन	सामन्तसेन।

216.	श्रुतस्कन्ध पूजा	भ. त्रिभुवनकीर्ति।
217.	श्रुतस्कन्ध पूजा	पं. आशाधर।
218.	श्रुतस्कन्धोद्यापन	नक्षत्रदेव।
219.	श्रुतज्ञानोद्यापन	वामदेव।
220.	श्रेयस्करणोद्यापन	भ. सुरेन्द्रभूषण।
221.	श्रेयोविधान	अभयनन्दि।
222.	षट्चतुर्थजिनार्चन	शिवरामिराम (लिपिकाल सं. 1938)।
223.	षण्णवतिक्षेत्रपाल पूजा	भ. विश्वभूषण।
224.	षोडशकारणविस्तार पूजा	भ. ज्ञानभूषणशिष्य जयभूषण।
225.	षोडशकारणव्रतोद्यापन	केशवाचार्य।
226.	षोडशकारणव्रतोद्यापन	सुमतिसागर।
227.	सप्तम परमस्थान पूजा	विद्यानन्दि मुनि।
228.	समयसार पूजा	शुभचन्द्र।
229.	समवशरण पूजा	रत्नकीर्ति।
230.	सम्मेदशिखर पूजा	गंगादास।
231.	सरस्वती पूजा	मल्लिभूषणशिष्य श्रुतसागर।
232.	सरस्वती पूजा	ब्र. नेमिदत्त।
233.	सर्वतोभद्र पूजा	शुभचन्द्र।
234.	सर्वदोषप्रायश्चित्त पूजा	महेन्द्रकीर्ति।
235.	सहस्रगुण पूजा	धर्मकीर्ति।
236.	सहस्रगुणी पूजा	धर्मचन्द्र।
237.	सहस्रनाम पूजा	खड्गसेन।
238.	सारस्वतयन्त्र पूजा	शुभचन्द्र।
239.	सारस्वतयन्त्र पूजा	श्रुतसागर।
240.	सार्धद्वयद्वीप पूजा	शुभचन्द्र।
241.	सार्धद्वयद्वीप पूजा	सुरेन्द्रभूषण।
242.	सार्धद्वयद्वीप पूजा	जिनदास।
243.	सिद्धचक्र पूजा (विधान)	प्रभाचन्द्र।
244.	सिद्धचक्र पूजा (विधान)	ललितकीर्ति।
245.	सिद्धचक्र पूजा (विधान)	देवेन्द्रकीर्ति।
246.	सिद्धचक्र पूजा (विधान)	पं. आशाधर।
247.	सिद्धचक्र की बृहद् पूजा	भानुकीर्ति।
248.	सिद्धचक्र की बृहद् पूजा	शुभचन्द्र।
249.	सिद्धचक्रसहस्रगुणित पूजा	शुभचन्द्र।

250.	सिद्धचक्रयन्त्रोद्धारस्तवन पूजा	भ. विद्याभूषण।
251.	सिद्धपूजा	पद्मनन्दि।
252.	सिद्धपूजा	सोमदत्त।
253.	सुखसम्पत्तिव्रतोद्यापन	भ. सुरेन्द्रभूषण।
254.	सुगन्धदशमीव्रतोद्यापन	पद्मनन्दि।
255.	सुगन्धदशमीव्रतोद्यापन	गंगादास।
256.	सूत्रोद्यापन	विजयसेन।
257.	स्थाण्डिल्यहोम पूजा	भ. सोमसेन।
258.	स्नपनविधि व पूजा	भ. अभयनन्दि।
259.	स्वयम्भूसहस्रनाम पूजा	धर्मचन्द्र भट्टारक।
260.	हेमकारी जिन पूजा	भ. विश्वभूषण।
261.	होमविधि व वास्तुपूजन	इन्द्रनन्दि।
262.	वज्रपंजराराधनाविधान	अज्ञात।
263.	कलिकुण्डाराधनाविधान	अज्ञात।
264.	मृत्युंजयाराधना विधान	अज्ञात।
265.	जिनपुरन्दरोद्यापन	सोमसेन।
266.	अक्षयनिधिव्रतोद्यापन	अज्ञात।
267.	वास्तुविधान	अज्ञात।
268.	जैनपूजाविधान	अज्ञात।
269.	जैनमन्त्रयन्त्र पूजा	अज्ञात।
270.	जैनहोमोत्सव पूजा	अज्ञात।
271.	जैनाराधनविधि	अज्ञात।
272.	तीर्थंकर पूजा	अज्ञात।
273.	तीर्थंकरयजनक्रम	अज्ञात।
274.	शान्तिहोमोत्सवविधि	अज्ञात।
275.	ज्वरशान्तियन्त्र पूजा	अज्ञात।
276.	जैनेन्द्रयज्ञविधि	अज्ञात।
277.	अनादिसिद्धयन्त्र पूजा	अज्ञात।
278.	अकलंक संहिता (प्रतिष्ठापाठ)	अकलंकदेव भट्टारक (सं. 1256)।
279.	अर्हत्प्रतिष्ठासार	कौमारसेन (सं. 770)।
280.	प्रतिष्ठाकल्प	प्रभाकरसेन।
281.	प्रतिष्ठाकल्प	आशाधर।
282.	प्रतिष्ठाकल्प टिप्पण (जिनसंहिता)	माघनन्दी सुत कुमुदचन्द्र (पत्र सं. 39)।

283.	प्रतिष्ठातिलक	नरेन्द्रसेन।
284.	प्रतिष्ठातिलक	ब्रह्मसूरि।
285.	प्रतिष्ठातिलक	देवसेनकाष्ठसंघी।
286.	प्रतिष्ठातिलक	नेमिचन्द्र कवि।
287.	प्रतिष्ठापाठ	प्रभाचन्द्र।
288.	प्रतिष्ठापाठ	पूर्णदेव।
289.	प्रतिष्ठापाठ	इन्द्रनन्दि।
290.	प्रतिष्ठापाठ	जयसेन।
291.	प्रतिष्ठासार	वसुनन्दी।
292.	प्रतिष्ठासार संग्रह	फतेहलाल।
293.	प्रतिष्ठापाठ (हस्तलिखित-सचित्र)	अज्ञात।
294.	जिनयज्ञकल्प (प्रतिष्ठाशास्त्र) ह. लि.	अज्ञात।
295.	प्रतिष्ठासारसंग्रह	ब्र. शीतलप्रसाद जी वर्णी।
296.	प्रतिष्ठाविधानसंग्रह (प्रतिष्ठाचन्द्रिका)	पं. शिवजी रामजी जैन राँची।
297.	सहस्रनामांकित पूजा	पं. पन्नालालसाहित्याचार्य (1988)।
298.	गोमटसार पूजा	पण्डितप्रवर टोडरमल (1970) हिन्दी अनु.।
299.	श्री सम्मेदशिखर माहात्म्यम्	श्री देवदत्त कवि सन् 1985।
300.	गणधरवलय पूजा	टिमडि। देवदत्त कवि, प्र. 1985।
301.	दि. जैन व्रतोद्यापनसंग्रह	प्र. ख., द्वि. खं. पं. फूलचन्द्रशास्त्री इडर—वि. सं. 1993।
302.	श्रुतस्कन्धपूजाविधान	अज्ञात—वी. नि. 2505।
303.	रविव्रत कथा	आचार्य श्रुतसागर।
304.	रविवार व्रतोद्यापन	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य—वी. 2493।
305.	कर्मदहनव्रतविधानं	पं. प्रवर आशाधर—1970।
306.	श्री शान्तिनाथ पूजा विधानं	कविजिनदास—वी. नि. 2488।
307.	त्रैलोक्यतिलकव्रतोद्यापनम्	पं. पन्नालाल साहित्याचार्य—1943।
308.	प्रतिष्ठाचन्द्रिका	पं. शिवजीराम पाठक, वी. सं.—2017।

हिन्दी जैन पूजा-काव्य (प्रकाशित और अप्रकाशित)

1.	विस्तृत देवशास्त्रगुरु पूजा	कवि पुष्पइन्दु।
2.	लघु देवशास्त्र गुरु पूजा	कविवर द्यानतराय।
3.	नवीन देवशास्त्र गुरु पूजा	श्री जुगलकिशोर जी एम. ए.।
4.	रविव्रत पूजा	अज्ञात।
5.	सप्तर्षि पूजा	मनरंगलाल कवि।
6.	नन्दीश्वर पूजा	राजमल।
7.	नन्दीश्वर पूजा	कविवर द्यानतराय।
8.	नन्दीश्वर पूजा	कविवर टेकचन्द्र।
9.	सोलह कारण पूजा (सोलह भावना) पूजा	कविवर द्यानतराय।
10.	सोलह कारण पूजा (सोलह भावना) पूजा	राजमल।
11.	श्री कलिकुण्ड पार्श्वनाथ पूजा	अज्ञात।
12.	श्री महावीर तीर्थंकर पूजा	कविवर वृन्दावन।
13.	सरस्वती पूजा	कविवर द्यानतराय।
14.	सरस्वती पूजा	राजमल कवि।
15.	परमात्म पूजन	कवि पुष्प इन्दु।
16.	पंचमेरुपूजन	कविवर द्यानतराय।
17.	पंचमेरुपूजन	राजमल।
18.	दशलक्षणधर्म पूजा	राजमल।
19.	दशलक्षणधर्म पूजा	कविवर द्यानतराय।
20.	दशलक्षणधर्म पूजा	कवि टेकचन्द्र।
21.	शान्तिनाथ तीर्थंकर पूजा	सुधेशकवि।
22.	शान्तिनाथ तीर्थंकर पूजा	कविवर वृन्दावन।

23.	शान्तिनाथ तीर्थंकर पूजा	प्रो. हुकुमचंद सिंघई।
24.	श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ पूजा-काव्य	कवि बखतावर।
25.	निर्वाण क्षेत्र पूजा-काव्य	राजमल।
26.	निर्वाण क्षेत्र पूजा-काव्य	कविवर द्यानतराय।
27.	चन्द्रप्रभ जिनपूजा काव्य	कवि जिनेश्वरदास।
28.	चन्द्रप्रभ जिनपूजा काव्य	वृन्दावन।
29.	श्री गोमटेश बाहुबलि जिन-पूजा-काव्य	कवि नीरज जैन।
30.	श्री गोमटेश बाहुबलि जिन-पूजा-काव्य	पं. छोटेलाल बरैया।
31.	चाँदनपुरमहावीर पूजा-काव्य	कवि पूरनमल।
32.	श्री सिद्धचक्रमण्डल विधान	कविवर सन्तलाल।
33.	श्री इन्द्रध्वज विधान	श्री ज्ञानमती माता जी।
34.	श्री त्रिलोकमण्डल विधान	अज्ञात।
35.	श्री ऋषिमण्डल विधान	अज्ञात।
36.	श्री नन्दीश्वर विधान	अज्ञात।
37.	श्री पंचकल्याणक विधान	कविवर पं. कमलनयन।
38.	श्री सम्मेदशिखर विधान	कविवर जवाहरलाल।
39.	श्री पंचपरमेष्ठी विधान	कविवर पं. टेकचन्द्र।
40.	श्री कर्मदहन विधान	कविवर पं. टेकचन्द।
41.	श्री नवग्रह विधान	अज्ञात।
42.	श्री तेरहद्वीप विधान	अज्ञात।
43.	अढ़ाई द्वीप विधान	अज्ञात।
44.	यागमण्डल विधान	अज्ञात।
45.	सम्मेदशिखर विधान	कवि जवाहरलाल।
46.	चौंसठ ऋद्धि विधान	अज्ञात।
47.	रत्नत्रय विधान	अज्ञात।
48.	तीस चौबीसी विधान (लघु)	कविविमल।
49.	विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजा	कविवर द्यानतराय।
50.	विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजा	जौहरीलाल।
51.	समुच्चय चौबीस तीर्थंकर पूजा	कवि वृन्दावन।
52.	सिद्धपूजा-काव्य	कवि लालचन्द्र।
53.	सिद्धपूजा-काव्य	जौहरीमल।

54.	अकृत्रिम चैत्यालय पूजा	नेमि कवि।
55.	अकृत्रिम चैत्यालय पूजा	राजमल पवैया।
56.	विष्णु कुमार मुनि पूजा	अज्ञात।
57.	सलूना पूजन	अज्ञात।
58.	अनन्तव्रत पूजा	अज्ञात।
59.	क्षमावाणी पूजा	कवि मल्ल जी।
60.	पंच बालयति पूजा	अज्ञात।
61.	सहस्रकूटचैत्यालय पूजा	अज्ञात।
62.	आदिनाथ पूजा	कविवर वृन्दावन।
63.	चन्द्रप्रभ पूजा	कविवर वृन्दावन।
64.	शीतलनाथ पूजा	कविवर मनरंगलाल।
65.	शीतलनाथ पूजा	वृन्दावन कवि।
66.	ऋषिमण्डल पूजा	कवि दौलतराम।
67.	पंचपरमेष्ठी पूजा	राजमल पवैया।
68.	जन्मकल्याणक पूजा	अज्ञात।
69.	लघु निर्वाण विधान	अज्ञात।
70.	सिद्धचक्र पूजा	कवि हीराचन्द्र।
71.	सिद्धचक्र पूजा	द्यानतराय।
72.	पंचपरमेष्ठीपूजन	राजमल पवैया।
73.	वासुपूज्यतीर्थंकर पूजा	वृन्दावनलाल कविवर।
74.	अनन्तनाथ जिनपूजा	कविवर मनरंगलाल वृन्दावन।
75.	कुन्थुनाथ जिनपूजा	कवि बख्तावरसिंह।
76.	कुन्थुनाथ जिनपूजा	वृन्दावन।
77.	नेमिनाथ जिनपूजा	कविवर मनरंगलाल।
78.	नेमिनाथ जिनपूजा	वृन्दावन।
79.	पार्श्वनाथ जिनपूजा	कवि बख्तावरसिंह।
80.	पार्श्वनाथ जिनपूजा	वृन्दावन।
81.	देवशास्त्रगुरुपूजा	पं. खेमचन्द्र।
82.	समुच्चय पूजा (देव. बीस. सिद्ध)	ब्र. सुखलाल जी।
83.	अजितनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
84.	अजितनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
85.	सम्भवनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
86.	सम्भवनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।

87.	अभिनन्दननाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
88.	अभिनन्दननाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
89.	सुमतिनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
90.	सुमतिनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
91.	पद्मप्रभ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
92.	पद्मप्रभ जिनपूजा	राजमल पवैया।
93.	सुपार्श्वनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
94.	सुपार्श्वनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
95.	पुष्पदन्त जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
96.	पुष्पदन्त जिनपूजा	राजमल पवैया।
97.	श्रेयांसनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
98.	श्रेयांसनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
99.	विमलनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
100.	विमलनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
101.	अनन्तनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
102.	अनन्तनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
103.	धर्मनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
104.	धर्मनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
105.	कुन्युनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
106.	कुन्थुनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
107.	अरनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
108.	अरनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
109.	मल्लिनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
110.	मल्लिनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
111.	मुनि सुव्रतनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
112.	मुनि सुव्रतनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
113.	नेमिनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
114.	नेमिनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
115.	नेमिनाथ जिनपूजा	कविवर वृन्दावन।
116.	नेमिनाथ जिनपूजा	राजमल पवैया।
117.	देवपूजा	कवि द्यानतराय।
118.	गुरुपूजा	कवि हेमराज।
119.	रक्षाबन्धन पूजा	बाबूलाल कवि।
120.	श्री विष्णुकुमार महामुनि पूजा	रघुपति कवि।

121. श्री वीर निर्वाण दीपावलि पूजा अज्ञात।
122. चौसठ ऋद्धि समुच्चय पूजा अज्ञात।
123. श्री तत्त्वार्थसूत्र पूजा अज्ञात।
124. पद्मावती पूजा कवि सेवक।
125. क्षेत्रपाल पूजा शान्तिदास।
126. श्री गिरनार क्षेत्र पूजा कवि चन्द्र।
127. श्री गिरनार क्षेत्र पूजा कवि राजमल पवैया।
128. चम्पापुर सिद्ध क्षेत्र पूजा वर्णी दौलतराम।
129. कैलाशगिरि पूजा अज्ञात।
130. गुणावासिद्धक्षेत्र पूजा बाबू पन्नालाल।
131. पटनासिद्धक्षेत्र (सुदर्शनपूजा) बाबू पन्नालाल।
132. श्री खण्डगिरिक्षेत्र पूजा मुनीम मुन्नालाल।
133. कुन्थलगिरिक्षेत्र पूजा कवि कन्हैयालाल।
134. कुन्थलगिरिक्षेत्र पूजा राजमल पवैया।
135. श्रीगजपन्थाक्षेत्र पूजा किशोरी लाल।
136. श्रीगजपन्थाक्षेत्र पूजा राजमल पवैया।
137. श्रीमांगीतुंगीगिर पूजा गोपालदास।
138. श्रीमांगीतुंगीगिरि पूजा राजमल पवैया।
139. श्री पावागढ़ (पावागिर) पूजा श्री धर्मचन्द्र।
140. श्री पावागढ़ (पावागिर) पूजा राजमल पवैया।
141. श्री शत्रुंजय क्षेत्र पूजा श्री भगोतीलाल।
142. श्री शत्रुंजय क्षेत्र पूजा राजमल पवैया।
143. श्री तारंगागिरिक्षेत्र पूजा कवि दीपचन्द्र।
144. श्री तारंगागिरिक्षेत्र पूजा कवि राजमल पवैया।
145. श्री सिद्धवरकूट पूजा महेन्द्र कीर्ति कवि।
146. श्री चूलगिरि (बावनगजा) पूजा श्री छगनलाल।
147. श्री मुक्तागिरि पूजा कवि जवाहरलाल।
148. श्री मुक्तागिरि पूजा राजमल पवैया।
149. श्री कुण्डलपुरक्षेत्र पूजा पं. मूलचन्द्र वत्सल।
150. रेशंदीगिरि (नैनागिरि) क्षेत्रपूजा त्यागी दौलतराम वर्णी।
151. श्री द्रोणगिरिक्षेत्र पूजा पं. मंगलसेन विशारद।
152. श्री द्रोणगिरिक्षेत्र पूजा पं. गोरेलालशास्त्री।
153. श्री अहारक्षेत्र पूजा पं. भगवानदास जैन।
154. श्री पावागिर सिद्ध क्षेत्र पूजा पं. विष्णुकुमार।

155. श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर पूजा	छोटे लाल जैन।
156. श्री जम्बू स्वामी पूजा- (चौरासी मथुरा)	अज्ञात।
157. श्री राजगृही क्षेत्र पूजा	पं. मुन्नालाल।
158. श्री मन्दारगिरिक्षेत्र पूजा	पं. मुन्नालाल।
159. श्री हस्तिनापुरक्षेत्र पूजा	पं. मंगलसेन विशारद।
160. श्री अहिक्षेत्र पार्श्वनाथ पूजा	चन्द्र कवि।
161. श्री अहिक्षेत्र पार्श्वनाथ पूजा	राजमल पवैया।
162. सहस्रकूट जिनचैत्यालय पूजा	पं. मंगल सेन विशारद।
163. श्री गोमटेश्वर बाहुबलि पूजा	पं. राजमल पवैया।
164. अतिशयपूर्णपद्मप्रभ क्षेत्र पूजा	चन्द्रकवि।
165. तिजारा अतिशय क्षेत्र- चन्द्रप्रभपूजा	सुमति चन्द्र।
166. चमत्कार क्षेत्र पूजा	पं. राजकुमार।
167. श्री केशरिया क्षेत्र (ऋषभदेव) पूजा	अज्ञात।
168. अतिशय क्षेत्र देवगढ़ पूजा	ब्र. प्रेमसागर पंचरत्न।
169. मक्सीक्षेत्र (पार्श्वनाथ) पूजा	अज्ञात।
170. अतिशयपूर्ण थूबोन क्षेत्र पूजा	अज्ञात।
171. अतिशय पूर्ण पपौरा क्षेत्र पूजा	पं. दरयावसिंह जी टीकमगढ़।
172. तीन लोक के चैत्यालयों की समुच्चय पूजा	अज्ञात।
173. श्री देवशास्त्र गुरुपूजा	डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल।
174. श्री सीमन्धर स्वामीपूजन	डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल।
175. श्री सिद्धपूजन	डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल।
176. श्री शीतलनाथ पूजन	पं. राजमल पवैया।
177. श्री पार्श्वनाथपूजा (नवीन)	अज्ञात।
178. श्री महावीर पूजन	डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल।
179. श्री अनन्त नाथ पूजा	हीतीलाल 'हिंति' ग्वालियर।
180. श्री गोपाचलपारसनाथ पूजा	श्यामलाल जैन सराफ।
181. श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर पूजन	पं. राजमल पवैया, भोपाल।
182. देवशास्त्र गुरु पूजा	पं. खेमचन्द्र।
183. श्री बाहुबलि पूजा	दीपचन्द्र जी वर्णी।

184.	श्री बाहुबलि पूजा	राजमल।
185.	बृहद् जिनवाणी संग्रह	डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल।
186.	पंचपरमेष्ठी पूजन	राजमल पवैया।
187.	समुच्चय पूजन	राजमल पवैया।
188.	सीमन्धर पूजन	डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल।
189.	गौतम स्वामी पूजन	राजमल पवैया।
190.	कुन्दकुन्दाचार्य पूजन	राजमल पवैया।
191.	समयसार पूजन	राजमल पवैया।
192.	दीपावली पूजन	राजमल पवैया।
193.	महावीर जयन्ती पूजन	राजमल पवैया।
194.	अक्षयतृतीया पूजन	राजमल पवैया।
195.	श्रुतपंचमी पूजन	राजमल पवैया।
196.	वीरशासनजयन्ती पूजन	राजमल पवैया।
197.	रक्षाबन्धन पूजन	राजमल पवैया।
198.	क्षमावाणी पूजन	कविवर मल्ल।
199.	क्षमावाणी पूजन	राजमल।
200.	नवदेवतासमुच्चय पूजन	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
201.	अरहन्त पूजन	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
202.	सिद्ध पूजन	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
203.	आचार्य परमेष्ठी पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
204.	उपाध्याय परमेष्ठी पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
205.	साधु परमेष्ठी पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
206.	जिनधर्म पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
207.	जिनवाणी पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
208.	जिनचैत्य पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
209.	जिन चैत्यालय पूजा	ब्र. सूरजमल जैन मुनिसंघ।
210.	भाव पूजांजलि	वि. आशा मलैया।
211.	विद्यासागर मुनिराज पूजा	पं. जमुनाप्रसाद प्रतिष्ठाचार्य।
212.	देवशास्त्र गुरु पूजा (नवीन)	कवि चिरंजीलाल।
213.	विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजा (नवीन)	कवि चिरंजीलाल।
214.	सिद्धपरमेष्ठीपूजन (नवीन)	कवि चिरंजीलाल।
215.	वर्तमान चतुर्विंशतिपूजन (नवीन)	कवि चिरंजीलाल।

216.	निर्वाणक्षेत्र अतिशय क्षेत्र पूजन (नवीन)	कवि चिरंजीलाल।
217.	कर्मदहन काव्य	कवि चिरंजीलाल।
218.	नवग्रह पूजा-काव्य	कवि चिरंजीलाल।
219.	नंगानंगमुनीन्द्रपूजनकाव्य	पं. छोटेलाल बरैया।
220.	चन्द्रप्रभजिनेन्द्रपूजा-काव्य	पं. छोटेलाल बरैया।
221.	श्री मूडबिद्रीपूजा-काव्य	राजमल पवैया।
222.	चन्द्रप्रभपूजा-काव्य (लूणवांक्षेत्र)	प्रभुदयाल।
223.	शान्तिनाथ पूजा-काव्य (लूणवाक्षेत्र)	प्रभुदयाल।
224.	शीतलनाथ पूजाविधान	आर्यिका विजयमती माता।
225.	सीमन्धर पूजन	कवि राजमल पवैया।
226.	जिनेन्द्र पंचकल्याणक पूजा	राजमल पवैया।
227.	णमोकार मन्त्र पूजन	राजमल पवैया।
228.	भक्तामर स्तोत्र पूजा	राजमल पवैया।
229.	इन्द्रध्वज पूजा	राजमल पवैया।
230.	कल्पद्रुम पूजा	राजमल पवैया।
231.	सर्वतोभद्र पूजा	राजमल पवैया।
232.	नित्यमह पूजा	राजमल पवैया।
233.	ऋषभजयन्ती पूजा	राजमल पवैया।
234.	जैन पूजांजलि	राजमल पवैया।
235.	बृहद्जिनवाणी संग्रह	पं. पन्नालाल वाकलीवाल।
236.	शान्तिनाथ विधान	पं. ताराचन्द्र शास्त्री।
237.	बृहद् महावीर कीर्तन	पं. मंगलसैन विशारद।
238.	जिनेन्द्र अर्चना	रतनलाल सोगानी।
239.	जिनेन्द्रपूजनमणिमाला	मिश्रीलाल जैन।
240.	ज्ञानपीठ पूजांजलि	पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री।
241.	श्रीतीनचौबीसी पूजा (विधान)	कवि ताराचन्द्र।
242.	जिनेन्द्र पंचकल्याणकपूजन	सुजानमल सोनी।
243.	बृहत् निर्वाण विधान	पं. बुद्धिलाल श्रावक।
244.	णमोकार पैंतीसीमण्डल विधान	पं. प्रकाशचन्द्र शास्त्री, 1987।
245.	त्रिकाल चौबीसी पूजन	कवि राजमल।
246.	परमात्मपूजासंग्रह	कवि. सुभाषचन्द्र जैन।

247.	दीपावली महोत्सव पूजा	पं. कमलकुमार शास्त्री।
248.	भक्तामर काव्य प्रवचन	श्री कहान जी।
249.	पूजनपाठ प्रदीप	स. पं. हीरालाल कौशल।
250.	तेरहद्वीप विधान	अज्ञात।

अपि च :

जैन भक्तकवि 'राजशेखर सूरि'--वि. सं. 1405 से लेकर कवि 'अजयराज पारणी' वि. सं. 1794 तक 90 भक्तकवि हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में जैन भक्ति (पूजा) काव्यों की रचनाकर भारतीय हिन्दी साहित्य के विकास में पूर्ण सहयोग दिया है।[1]

1. डॉ. प्रेमसागर जैन : पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ. २५, अनुक्रम प्रकरण।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
			(अ)		
1.	अजितसागर मुनि	धर्मध्यानदीपक		जैनग्रन्थमाला महावीर जी	1978
2.	अमृतचन्द्राचार्य	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय		निर्णयसागर प्रेस बम्बई	1977
3.	अमरसिंह कवि	अमरकोष (नामलि.)	डॉ. रामकृष्ण भण्डारकर	निर्णयसागर प्रेस बम्बई	1890
4.	अकलंकदेव आ.	तत्त्वार्थराजवार्तिक	प्रो. महेन्द्रकुमार न्याया.	भा. ज्ञानपीठ, देहली	1953
5.	अमितगति आ.	सामयिक पाठ	डॉ. भागचन्द्र दमोह		1984
6.	अकलंकदेव आ.	अकलंक स्तोत्र		संज्ञानभूषण	-
		पूजापाठसंग्रह		मदनगंज किशनगढ़	1976
7.	अजितसागर आ.	सर्वोपयोगी श्लोकसंग्रह		दि. जैनग्रन्थमाला महावीरजी	1988

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
8.	आ. अमृतचन्द्र	लघुतत्त्वस्फोट	पन्नालाल साहित्या.	ग्रन्थप्रकाशनसमिति फलटण (महा.)	1981
		(आ)			
9.	पं. आशाधर	सागारधर्मामृत	कैलाशचन्द्र शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	1978
10.	आदिमती आर्यिका	गो. कर्मकाण्ड टीका		जैनग्रन्थमाला महावीर जी	1980
		(उ)			
11.	उमास्वामी	तत्त्वार्थसूत्र	पन्नालाल साहित्या.	जैन पुस्तकालय, सूरत	1987
12.	उमास्वामी	मोक्षशास्त्र	मोहनलाल शास्त्री	जैनग्रन्थभण्डार, जबलपुर	वी.नि. 2513
		(क)			
13.	कार्तिकेयस्वामी	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आदिनाथउपाध्याय	राजचन्द्र आश्रम, अगास	1978
14.	डॉ. कामताप्रसाद	जैनतीर्थ और उनकी यात्रा		जैन पब्लिशिंग हाऊस, देहली	1962
15.	कुन्दकुन्दाचार्य	प्रवचनसार	उ. आदिनाथ	राय शास्त्रमाला, अगास	1975 (2)
16.	कुन्दकुन्दाचार्य	धर्मध्यानप्रकाश	पं. विद्याकुमार सेठी	जैनसमाजकुचामन (राज.)	1968 (1)
17.	कुन्दकुन्दाचार्य	रयणसार	डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन	ग्रन्थप्रकाशनसमिति, इन्दौर	1974
18.	कुन्थुसागरमुनि	लु. श्रमणसि. पाठावलि		कुन्थुविजयग्रन्थमाला, जयपुर	1982
19.	काशीनाथ शर्मा	सुभाषितरत्नभाण्डागार		निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	1905

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
20.	कमलकुमार शास्त्री	भक्तामरस्तोत्र हिन्दी		जैन ग्रन्थमाला, जबलपुर	वी. 2503
21.	कुन्दकुन्दाचार्य	अष्टपाहुड सं. टीका		जैन संस्थान, महावीर जी	1968
22.	आ. कुमुदचन्द्र	कल्याणमन्दिरस्तोत्र	पं. पन्नालाल साहित्या.	सन्मति कुटीर चन्दावाड़ी, बम्बई-4	1959
			(ग)		
23.	गुणभद्राचार्य	आत्मानुशासन	पं. बालचन्द्र सि. शास्त्री	जैन सं.सं. संघ, सोलापुर	1980
24.	गौरीनाथ पाठक	नीतिसंग्रह		मानव मन्दिर, वाराणसी	1982
25.	गुलाबचन्द्र दर्श.	स्याद्वाद ज्ञानगंगा		सुमतचन्द्रशास्त्री, मुरैना	1981
			(च)		
26.	चिरंजीलाल	नित्यजिनेन्द्रपूजन			
27.	चम्पालाल पण्डित	तारणतरणजिनवाणीसंग्रह		तारणतरण ट्रस्ट, सागर	1980
			(ज)		
28.	जिनसेनाचार्य	महापुराण (आदि पु.)	पन्नालाल साहित्या.	भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	1988
29.	जिनसेनाचार्य	हरिवंशपुराण	पं. पन्नालाल साहित्या.	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1963
30.	जयसेनाचार्य	वसुबिन्दुप्रतिष्ठापाठ	हीराचन्द्र दोशी	जैन सं.सं.संघ, सोलापुर	वी.सं. 2452
31.	जगन्नाथ कवि	चतुर्विंशति सं. काव्य	लालाराम शास्त्री	चं.उ.मं., सोलापुर	1929

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
32.	जटासिंहनन्दि	वरांगचरित हिन्दी	खुशालचन्द्र गोरावाला	जैन संघ चौरासी, मथुरा	1953
33.	टेकचन्द्र कविवर	रत्नत्रय विधान	सरलग्रन्थमाला, जबलपुर		वी. 2478
34.	टेकचन्द्र कविवर	तीनलोक पूजा	भँवरलाल न्यायतीर्थ, जय.		
35.	(पं.) टोडरमल	मोक्ष मार्ग प्रकाशक	परमानन्द शास्त्री	वीरसेवा मन्दिर, देहली	1950
			(द)		
36.	दौलतराम वर्णी	रेशन्दीगिरि पूजन		सिद्धक्षेत्र रेशन्दीगिर (छतरपुर)	1988
37.	दयाचन्द्र साहित्या.	महावीर मुक्तक स्तवन		शास्त्री परिषद्, बड़ौत	1977
38.	देवदत्त दीक्षित	स्वर्णाचलमाहात्म्य	सुमतिचन्द्र शास्त्री	सो. संरक्षक कमेटी, सोनागिर	1978
39.	(डॉ.) दरबारीलाल कोठिया	न्यायदीपिका हि.टीका	वीरसेवा मन्दिर, देहली		1968
40.	देवसेनाचार्य	भावसंग्रह	लालाराम शास्त्री अकलूज	जैनग्रन्थमाला अकलूज (म.)	1987
			(ध)		
41.	धनञ्जय महाकवि	नाममाला	मोहनलाल शास्त्री	सरलग्रन्थमाला, जबलपुर	1980
42.	धर्मभूषणयति	न्यायदीपिका	पं. दरबारीलाल कोठिया,	वीरसेवा मन्दिर, देहली	1968
			(न)		
43.	नेमिचन्द्राचार्य	गोमटसार जीवकाण्ड	पं. खूबचन्द्र शास्त्री	राजचन्द्र आश्रम, अगास	1977

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
44.	नेमिचन्द्राचार्य	गोमटसार कर्मकाण्ड	मनोहरलाल शास्त्री	राय चन्द्रग्रन्थमाला, अगास	1971
45.	नेमिचन्द्राचार्य	त्रिलोकसार	विशुद्धमति माताजी	जैन संस्थान, महावीरजी	1975
46.	डॉ. नेमिचन्द्र	ती. महावीर-आचार्य परम्परा, भाग-2, 3		भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् वर्णीभवन, सागर, म.प्र.	1974
47.	पं. नृपेन्द्रकुमार	षोडशसंस्कार		जिनवाणी प्रचारक कार्या. कलकत्ता	2467
48.	नागराज क. कवि	समन्तभद्र भारती स्तोत्र	अप्रकाशित–र. काल		1332
49.	नानकचन्द्रराय सुराणा,	श्री जिनपूजा		निर्ग्रन्थ प्रका. वाराणसी	1967
50.	नृपेन्द्र कुमार जैन	जैन विवाह पद्धति		उक्तकार्यालय, कलकत्ता	2467
51.	पं. नेमिचन्द्र (डॉ.)	आदिपुराण में प्रतिपादित, भारत		गणेशप्रसाद वर्णी, ग्रन्थमाला, वाराणसी	1968
52.	एन.एस.सोनटक्के (नारायण शर्मा)	ऋग्वेद		वैदिक सं. मण्डल, पूना	1946
53.	डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री	भारतीय संस्कृति के विकास में जैनवाङ्मय का अवदान खण्ड-1		दि. जैन विद्वत्परिषद्, सागर	

(प)

54.	पवन कुमार जैन	जैनकला में प्रतीक		साहित्यसदन, ललितपुर	1983

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
55.	पन्नालाल साहित्या.	मन्दिरवेदी प्रतिष्ठा कलशारोहण विधि		प्र. गणेश प्रसाद वर्णी, जैन ग्रन्थमाला वाराणसी	1961
56.	पुष्पदन्तभूतबलि आ.	षट्खण्डागम प्र.ख. जीव. सत्प्ररूपणा-1	डॉ. हीरालाल जैन	जैन सं.सं.संघ, सोलापुर	1973
57.	पूज्यपाद आचार्य	सर्वार्थसिद्धि टीका	पं. फूलचन्द्र शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1955
58.	पद्मनन्दि आचार्य	पद्मनन्दि पंचविंशतिका	पं. जवाहरलाल शास्त्री	जैन मन्दिरभण्डार, (राज.)	1983
59.	डॉ. पन्नालाल सा.	शिवसागर स्मृति ग्रन्थ		कमल प्रिण्टर्स मदनगंजकिशनगढ़	वी. 250
60.	पं. पन्नालाल सा.	पंचस्तोत्रसंग्रह		जैन पुस्तकालय, सूरत	1940
61.	पूज्यपाद आचार्य	सर्वार्थसिद्धि	पं. वर्धमान पा.शा. सोलापुर		1939
62.	डॉ. प्रेमसागर जैन	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि		भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	1964
63.	डॉ. प्रेमसागर जैन	जैनभक्ति काव्य की पृष्ठभूमि		भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1963

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
		(फ)			
64.	पं. फूलचन्द्र सि. शास्त्री	ज्ञानपीठ पूँजांजलि		भा. ज्ञानपीठ, देहली	1977
		(ब)			
65.	पं. बलभद्र शास्त्री	भारत के दि. जैन तीर्थ भाग 1, 2, 3, 4		तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई	1975
66.	बनारसीदास कवि	बनारसीविलास		निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	1905
		(भ)			
67.	डॉ. भागचन्द्र जैन	देवगढ़ की जैनकला		भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	1974
68.	डॉ. भागचन्द्र जैन	भारतीय संस्कृति में जैन तीर्थों का योगदान		अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज (एटा)	1961
69.	मानतुंग आचार्य	भक्तामर स्तोत्र (रहस्यम्)	कमलकुमार शास्त्री		1977
70.	मंगलसेन विशारद	बृहत्महावीर कीर्तन		वीरपुस्तकालय, महावीरजी	1971
71.	मोहनलालशास्त्री	सरल जैन विवाह विधि		जैनग्रन्थ भण्डार, जबलपुर	2467
72.	मानतुंग आचार्य आदि	पंचस्तोत्र संग्रह	पं. पन्नालाल जैन	जैन विजय प्रेस गाँधीचौक, सूरत	1940

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
73.	मोहनलाल शास्त्री	जैन विधान-संग्रह		सरलग्रन्थ भण्डार, जबलपुर	1970
74.	मिश्रीलाल जैन	जिनेन्द्रपूजनमणिमाला		जैन समाज शिवपुरी. प्र.सं.	
75.	मनोहर वर्णी	आत्मकीर्तन		सहजानन्द ग्रन्थमाला, मेरठ	1953
76.	मोतीलाल राँका	सफलता के तीन साधन		जैन ग्रन्थमाला, ब्यावर	
77.	मोहनलाल शास्त्री	भक्तामरमण्डल पूजा	सरलग्रन्थ भण्डार, जबलपुर		1970
		(य)			
78.	यतिवृषभ आचार्य	तिलोयपण्णत्ति, भाग-1	डॉ. हीरालाल जैन	जैन सं.सं.सं.सोलापुर	1951
79.	यशोविजय मुनि	पार्श्वनाथ जिनाष्टकं (जैनस्तोत्रसंग्रह द्विभा.)		चन्द्रप्रभा यन्त्रालय, काशी	वी. 243
80.	योगीन्दु देव	परमात्मप्रकाश		राजचन्द्रग्रन्थ, अगास	1973
		(र)			
81.	रतनलाल एडवोकेट	जैनधर्म		परिषद पब्लिशिंग हाऊस, देहली	1974
82.	राजकुमार शास्त्री	दि. जैनपूजनसंग्रह		संयोगितागंज, इन्दौर	1958
83.	राजमल्ल आचार्य	पंचाध्यायी	पं. मक्खनलाल शा.	ग्रन्थप्रकाश कार्यालय, इन्दौर	1918
84.	रामजी उपाध्याय	भारतस्य सांस्कृतिक निधिः		गाँधी वि. परि., द्वाना	2015

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
85.	राजमल कविवर	जैन पूजांजलि		जैन ग्रन्थमाला, विदिशा	1987
86.	डॉ. राजमल जैन	भारत के दि. जैनतीर्थ क्षेत्र भाग-5		तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई	1988
87.	रविषेणाचार्य	पद्मपुराण	पं. पन्नालाल साहित्या.	भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	1960
88.	राजमल कविवर	मूडविद्रीपूजन		मुमुक्षु मण्डल, भोपाल	1985
89.	राजमल कविवर	पूजनकिरण		"	1985
90.	राजमल कविवर	पूजनदीपिका		"	1984
91.	डॉ. सर राधाकृष्णन्	इण्डियन फिलासफी जिल्द-1		"	
92.	राजकुमार शास्त्री	दि. जैन पूजनसंग्रह		जैन मन्दिर संयोगितागंज, इन्दौर	प्र.सं.
93.	राजमल कविवर	जैन पूजांजलि		जैन ग्रन्थमाला, विदिशा	1987

(व)

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
94.	विद्यानन्द आचार्य	आप्त परीक्षा	पं. दरबारीलाल	वीरसेवा मन्दिर, देहली	1949
95.	विमलमति माता	देववन्दनादि संग्रह		वीरसेवा मन्दिर, देहली	1949
96.	वट्टेरकाचार्य	मूलाचार	पं. कैलाशचन्द्रशास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	1984
97.	वसुबिन्दु आचार्य (जयसेनाचार्य)	वसुबिन्दुप्रतिष्ठापाठ	हीराचन्द नेमिचन्द दोशी, सोलापुर	जैन सिद्धान्त प्र. प्रेस, कलकत्ता	वी.नि.सं. 2452

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
98.	वीरसेन	षट्खण्डागमधवला, पु. 6	डॉ. हीरालाल जैन	जैन साहित्य उ. मण्डल, अमरावती	1943
99.	विष्णु शर्मा	हितोपदेश	विश्वनाथ झा	मोतीलाल बनारसीदास, देहली	1964
100.	विद्यानन्द मुनि	जिनपूजा एवं जिनमन्दिर	सं.पं. नाथूराम शास्त्री	ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर	1982
101.	पं. [illegible]	[illegible]	सदाशिव शास्त्री	संस्कृत सीरीज, वाराणसी	1960
102.	आ. विद्यानन्द	आप्तपरीक्षा	पं. दरबारीलाल कोठिया	वीर सेवामन्दिर,, देहली	1949
103.	वादीभसिंह सूरि	गद्यचिन्तामणि	पं. पन्नालाल साहि.	भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	1968
104.	विद्याकुमार सेठी (सं.)	धर्मध्यान प्रकाश	जैन मन्दिर कुचामनसिटी		सं. 2029
105.	विश्वनाथ झा	हितोपदेश-मित्रलाभ		मोतीलाल बनारसीदास, देहली	1964
106.	विमलमती आर्यिका	देववन्दनादि-संग्रह		जैन ग्रन्थमाला, महावीरजी	1961
107.	विद्याविजय मुनि	अष्टप्रकारी पूजा		यशोविजय जैनग्रन्थमाला, भावनगर	1928
		(स)			
108.	समन्तभद्र आचार्य	आप्तमीमांसा	डॉ. दरबारीलाल कोठिया	वीरसेवामन्दिर, देहली	
109.	सोमदेव सूरि	उपासकाध्ययन	पं. कैलाशचन्द्रशास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, देहली	
110.	सोमदेव सूरि	उपासकाध्ययन			
111.	सुभाष जैन	परमात्मपूजासंग्रह		जैनसाहित्यसमिति, ग्वालियर	1981
112.	स्वरूपचन्द्रकवि	चौंसठऋद्धि विधान		शान्तिनगरमहावीरजी	वी.सं. 2507

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
113.	सन्मतिसागर (क्षु.)	मुक्तिपथ की ओर		स्याद्वादपरिषद्सोनागिर	1983
114.	सुमेरुचन्द्र दिवाकर	पंचास्तिकायदीपिका	प्र. शान्तिनाथ ट्रस्ट, सिवनी		1986
115.	सूरजमल ब्रह्मचारी	नवदेवतापूजनमण्डलविधान			
116.	समन्तभद्र आचार्य	युक्त्यनुशासन	जुगलकिशोर मुख्तार	वीरसेवा मन्दिर, देहली	1951
117.	समन्तभद्र आचार्य	रत्नकरण्डश्रावकाचार	पं. पन्नालाल साहित्या.	वीरसेवामन्दिर, देहली	1972
118.	समन्तभद्र आचार्य	बृहत्स्वयंभूस्तोत्र	पं. पन्नालाल साहित्य.	दि. जैन संस्थान, महावीरजी	1969
119.	सिद्धसागर (क्षु.)	श्रीस्तोत्रपाठ संग्रह		सुन्दरलाल जैन, जयपुर	1962
120.	सन्मतिसागर (क्षु.)	विमलभक्ति संग्रह		स्याद्वाद प्रेस, सोनागिर	1985
121.	सन्तलाल कवि	सिद्धचक्रविधान		जैनपुस्तकभवन, कलकत्ता	वी.सं. 2498
122.	सोमप्रभ आचार्य	सूक्तिमुक्तावली		जैनग्रन्थरत्नाकर, बम्बई	वी. 2432
123.	सन्मति सागर	स्याद्वाद वाटिका		स्या. विमलपीठ, सोनागिर	1987
124.	सुरेन्द्रनाथ श्रीपाल जैन	बाहुबलि पूजा-स्तुति		जुबिलीबाग, बम्बई तारदेव-7	1953
125.	आ. समन्तभद्र	स्तुतिविद्या	पं. पन्नालाल साहि.	वीरसेवा मन्दिर, देहली	1950
			(श)		
126.	श्रीलाल काव्यतीर्थ	ऋषिमण्डल मन्त्र कल्प	शान्तिनगर	श्रीमहावीर जी	वी. 2502
127.	शुभचन्द्र आचार्य	ज्ञानार्णव	पं. कैलाशचन्द्रशास्त्री, वाराणसी	जैनसंस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर	

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
128.	शीतल प्रसाद ब्र.	प्रतिष्ठासार संग्रह		जैन पुस्तकालय गाँधीचौक, सूरत	1962
129.	शान्तिदास कवि	शान्तिनाथ विधान	सरल जैनग्रन्थ भण्डार, जबलपुर		1986
130.	श्रीधरसेन (पं.)	विश्वलोचन कोष		जैन ग्रन्थरत्नाकर का., बम्बई	1912
131.	पं. श्रीराम शर्मा	यजुर्वेद		संस्कृति संस्थान, बरेली	1965
132.	डॉ. शम्भुनाथ सिंह	प्राचीन भारत की गौरवगाथा		चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	
		(ह)			
133.	डॉ. हीरालाल जैन	भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान		मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, म.प्र.	1975
134.	पं. हीरालाल शास्त्री	श्रावकाचार संग्रह, भाग-1		जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर	1976
135.	डॉ. हीरालाल जैन	षट् खण्डागम सत्प्ररूपणा टीका		जैन सं.संरक्षक सं., सोलापुर	1973
136.	डॉ. हीरालाल जैन	षट्. धवला टीका, पु. 6		जैन साहित्य उद्धारक फण्ड, अमरावती	1943
137.	पं. हीरालाल शास्त्री	प्रमेयरत्नमाला टीका		चौ. विद्याभवन, वाराणसी	1964

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
			(ज्ञ)		
138.	ज्ञानमती माताजी	इन्द्रध्वजविधान	पं. रवीन्द्रकुमार शास्त्री	त्रि.शोध संस्थान हस्तिनापुर	1980
139.	ज्ञानभूषण महाराज	स्तोत्रपूजापाठ संग्रह		प्र. जैन समिति मदनगंज किशनगढ़	1976

पत्र-पत्रिकाएँ

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
140.	काशीप्रसाद जायसवाल	खारवेल शिलालेख संग्रह		नागरी प्रचा. सभा पत्रिका	
141.	(डॉ.) कामताप्रसाद	अहिंसावाणी (ऋषभदेवविशेषांक)		वि. जैनमिशन अलीगंज (एटा उ.प्र.)	1957
142.	"	अहिंसावाणी (महावीर विशेषांक)		" "	1956
			(ग)		
143.	गुलाबचन्द्रदर्शनाचार्य	स्याद्वाद ज्ञानगंगा		स्याद्वादप्रेस, सोनागिर म.प्र.	1981
			(भ)		
144.	डॉ. भागचन्द्र 'भागेन्दु'	सर्जना (शोधलेख)	सत्यमोहन वर्मा	सर्जना कार्यालय दमोह, म.प्र.	1977
145.	डॉ. भागचन्द्र भागेन्दु	म.प्र. का नयनाभिराम स्थल-कुण्डलपुर (दमोह)	सत्यमोहन वर्मा	सर्जना-दमोह, म.प्र.	1988

क्रमांक	रचयिता	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक	सन्
146.		श्रीमद्भागवत, शिवमहापुराण,			
147.		भागवत पुराण, मज्झिम निकाय,			
148.	नारायण शर्मा	ऋग्वेद		वैदिक संशोधन मण्डल, पूना	1946
149.		भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान		मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् भोपाल, म.प्र.	1975
150.		प्राकृत अपभ्रंश संग्रह			
151.		आर्यमंजुश्री-मूलश्लोक-तैत्तिरीय-संहिता, ताण्ड्य ब्राह्मण			
152.		प्रश्नोपनिषद्			
153.		भारतीय दर्शन		राजपाल एण्ड सन्स, देहली	1969
154.		मार्कण्डेयपुराण			
155.		विष्णुपुराण			
156.	डॉ. सर राधाकृष्णन	इण्डियन फिलासफी			
157.	डॉ. हर्मन जैकोबी	इण्डियन एण्टीक्वेरी			
158.	पं. विजयमूर्ति एम.ए.	जैन शिलालेख संग्रह भाग-2		मा. दि. जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई	1952
159.	पं. प्यारेलाल राजवैद्य	जैनव्रतविधान संग्रह		जैनबाबूलाल, टीकमगढ़	1952
160.	व्यास ऋषि	महाभारत-अनुशासन पर्व			

परिशिष्ट : चार

जैन पूजा-काव्यों में मण्डल

जैन पूजा-काव्य में मण्डल रचना का मूल्यांकन

पूज्य परमदेवों के प्रकार, परमेष्ठीदेवों के भेद, प्रमुख गुण और उनके प्रकारों को एवं व्रत, तीर्थक्षेत्र इनको सामान्यदृष्टि से जानने के लिए जो रेखाकार चित्र बनाया जाता है उसे मण्डल (मॉडना) कहते हैं, इसको यथायोग्य फलक (पाटा) पर बनाकर प्रतिमा के या यन्त्र के सामने स्थापित किया जाता है। मन्त्र सहित रेखाचित्र को यन्त्र कहते हैं।

जिसका उपयोग विशेष पूजा, विधान, व्रतोद्यापन, तीर्थक्षेत्र पूजा और प्रतिष्ठाकार्यों में नियमतः किया जाता है। इसी प्रकार ग्रहशान्ति, नवीनगृहोद्घाटन, अखण्डकीर्तन, शान्तिकर्म आदि विशेष अवसरों पर भी मण्डल अथवा यन्त्र का उपयोग करना अनिवार्य है। इस धार्मिक पूजा अनुष्ठान आदि में जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत यह मण्डल प्रणाली वैज्ञानिक एवं युक्तिपूर्ण है।

राष्ट्र, देश, प्रान्त, प्राकृतिक दृश्य, पर्वत, नदी, क्षेत्र, उद्यान आदि वस्तुओं को जानने के लिए आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी रेखाचित्र के आविष्कार किये हैं। व्यंग्य अर्थ को समझने के लिए व्यंग्यचित्र, मकानों के रेखाचित्र और स्पष्ट एवं कठिन विषय को सरलता से समझने के लिए रेखाचित्र (मण्डल) के उपयोग—लोकव्यवहार में किये जाते हैं। महाविद्यालयों, विद्यालयों आदि शिक्षण संस्थाओं में रेखाचित्र, नक्शा आदि के द्वारा छात्र पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार पूजा-काव्यों में भी उपयोगी मण्डलों/रेखाचित्रों का प्रयोग सार्थक है।

□□□